प्रकाशक :
श्रुत-प्रकाशन-मन्दिर,
१८८, क्रोस स्ट्रीट,
कलकत्ता

मुद्रक :
सुराना प्रिन्टिङ्ग वर्क्स,
४०२, अपर चितपुर रोड,
कलकत्ता

विजयादशमी, संवत् २०११
प्रथमावृत्ति १०००
मूल्य ६।।)

प्राप्ति-स्थान

श्री शिवकुमार मिश्र
३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट,
कलकत्ता।

श्री सौभाग्यमल जैन
संयोजक, श्रुतप्रकाशन-मन्दिर
१८८, क्रोस स्ट्रीट,
कलकत्ता

श्री सवाईसिंहजी मेहता
बड़ीसादड़ी (राज०)

ओसवाल प्रेस,
१८८, क्रोस स्ट्रीट कलकत्ता।

– अनुवादक

श्री सवाई सिंहजी मेहता

समर्पण

पूज्य पिता श्री सवाई सिंहजी मेहता को
जिनका त्यागमय आदर्श जीवन
सदैव अनुप्रेरणाओं का केन्द्र और प्रोत्साहन का
प्रतिस्रोत रहा है।

—अनुवादक

प्रकाशकीय

साहित्य-जगत्को श्री भगवतीसूत्र (हिन्दी) समर्पित करते हुए हम आज अत्यन्त प्रसन्नता अनुभव कर रहे हैं। विद्वान अनुवादक ने प्रस्तुत अनुवादको सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने के लिये अत्यन्त श्रम व शक्तिका व्यय किया है। यदि साहित्य-जगत् में प्रस्तुत कृतिका स्वागत हुआ तो हम अपने श्रम व अध्यवसायको सफल समझेंगे।

जैन श्रुत-सागर अत्यन्त गहन है। निशिदिन के अध्ययन, मनन व चिन्तनरूपी साधनोंके साथ अर्द्धमागधी भाषाके ज्ञान-रूपी पोतकी आवश्यकता होती है। यदि भाषा-सम्बन्धी कठिनाई दूर हो जाय तो अध्ययनशील पुरुष बहुत कुछ प्राप्त कर सकते हैं। इन्हीं सर्व बातोंको ध्यानमें रखते हुए राष्ट्रभाषा हिन्दीमें जैनागम अनुवादित करवाकर प्रकाशित करनेका महत् निश्चय किया है। श्री भगवतीसूत्र (हिन्दी) के रूपमें यह साकार प्रयत्न आपके सम्मुख है।

हम श्रीमान् सेठ सोहनलालजी सा० दुगड़, श्रीमान् फूसराजजी सा० बच्छावत व उनके सुपुत्र श्री सूरजमलजी सा० बच्छावत, श्री० मास्टर बंशीसिंहजी सा० तथा उन सर्व सज्जनों के अत्यन्त आभारी हैं जिन्होंने अग्रिम ग्राहक बनकर तथा प्रेरित कर हमें सहयोग प्रदान किया है।

हम प्रस्तावना के विद्वान लेखक श्री मोहनलालजी बांठिया बी० ए०के आभारी हैं; जिन्होंने विद्वत्तापूर्ण तथा खोजपूर्ण प्रस्तावना लिखकर हमारे उत्साहको वर्द्धित किया है।

सौभाग्यमल जैन

संयोजक,, श्रुतप्रकाशन मन्दिर

निवेदन

एक दिन अपने कार्यालयमें बैठा हुआ कार्य कर रहा था। इतनेमें मेरे एक प्राध्यापक मित्रने जो स्थानीय विश्वविद्यालय में प्रोफेसर है, एक अपरिचित व्यक्तिके साथ प्रवेश किया। मैंने आदर-सत्कार करते हुए अकस्मात् आगमनका कारण पूछा। उन्होंने अपने साथीकी ओर इङ्गित करते हुए कहा—ये हमारे सहपाठी मित्र है। इलाहाबाद विश्वविद्यालवमें प्रोफेसर हैं। बौद्ध साहित्य पर डॉक्टरेट के लिये महानिवंध (Thesis) लिख रहे हैं। यहा राष्ट्रीय पुस्तकालयमें अनुसंधान-कार्यके लिये आए हुए है। इन्हें आपके कुछ सहयोग की आवश्यकता है। मैंने प्रसन्नता अभिव्यक्त करते हुए सहयोगके सम्बन्ध में पूछा। आगत अपरिचित प्राध्यापक महोदय वोले—भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध दोनों समकालीन युगपुरुष थे। दोनोंके समक्ष प्रायः समान परिस्थितियां उपस्थित थीं, दोनोंका विहारस्थल भी प्रायः एक ही था, एक ही श्रेणीके व्यक्ति दोनों के सम्पर्कमें आते थे अतः अनेक विषयोंके प्रतिपादनमें दोनोंमें समानता सम्भव है। तुलनात्मक अध्ययनके लिये मुझे जैन-धर्मके अध्ययन की भी आवश्यकता अनुभव हो रही है। जैन-मान्यताओं और विश्वासोंको समझे विना मेरा निवन्ध मुझे अपरिपूर्ण-सा लगता है। इसी सम्बन्धमें आपके सहयोगकी आवश्यकता है। मैंने यथाशक्य पूर्ण सहयोग देनेका आश्वासन दिया। वे वहुत वार मेरे यहाँ आते रहे। उनका अभिप्सित कार्य पूर्ण हुआ।

श्री भगवतीसूत्र (हिन्दी) का अनुवाद उन्हीं प्रोफेसर मित्रकी बलवती प्रेरणाका परिणाम है। प्रश्नोत्तरकी पद्धति न अपनाकर मात्र प्रतिपादित विषयका ही अनुवाद करनेकी दृष्टि मेरे श्रद्धेय मित्र श्री श्रीचन्दजी रामपुरियाने दी, जो एक सफल वकीलके साथ जैन-साहित्यके मर्मज्ञ तथा कई जैन-ग्रन्थोंके लेखक हैं।

शैशव वयसे जैन-साहित्यका विद्यार्थी रहा हूं। योग्य विद्वान अध्यापकोंके सानिध्यमें अध्ययनका अवसर भी प्राप्त हुआ है; फिर भी श्रीमद् भगवतीसूत्र का हिन्दी अनुवाद करनेके लिये हृदय सशंक था, पर सेवा की भावना और कर्त्तव्यकी पुकार ने साहस प्रदान किया और मैं प्रस्तुत महत् कार्यमें जुट गया। कलकत्ता जैसे अर्थप्रधान क्षेत्रमें जहाँ व्यक्तित्वका मूल्यांकन मात्र अर्थसे ही होता हो, वहां जीवन-निर्वाहके कार्यके साथ साहित्यिक कार्यमें प्रवृत्त होना, सचमुच आश्चर्यका ही विषय है। कभी-कभी मुझे स्वयं भी अपने इस कार्यपर आश्चर्य होता है।

वर्तमान युग वैज्ञानिक युग है। व्यक्ति प्रत्यक्षकी कसौटी पर ही प्रत्येक दर्शन, विचार और सिद्धान्तको परखना चाहता है। "बाबा वाक्यं प्रमाणं" के अनुसार वह किसी तथ्यको ग्रहण नहीं करना चाहता। फिर ढाई सहस्र प्राचीन विज्ञानको आजका मानव उसीरूपमें ग्रहण करले, यह संभव भी नहीं लगता। वर्तमान विज्ञान-जगत् जिन तथ्योंको स्वीकार नहीं करता, उन तथ्योंको हम क्षेपक समझकर अपने आगमोंसे निकाल दें; यह भी उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। क्योंकि आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्त अपरिपूर्ण हैं। दिन प्रतिदिन नवीन २ तथ्य

प्रकट होते हैं और पूर्व स्वीकृत सिद्धान्त बदलते जाते हैं। प्रवाहित निर्झरके सदृश इसकी गति है। कभी रुकता है और कभी बढ़ता है पर यदि यही प्रवाह अर्थात् सत्यकी शोध चालू रही तो एक न एक दिन हमें उन सभी तथ्योंको स्वीकृत करना होगा, जो जैनागमोंमें वर्णित हैं। डॉ० एस० सी० कोठारी, जो भारतके विख्यात वैज्ञानिक हैं, के शब्दोंमें—अभी तो विज्ञानने दो सो वर्षोंमें भौतिक जगत्का कुछ ही अन्वेषण किया है, जिसमें इतने नवीन २ तथ्य और आविष्कार हमारे सम्मुख उपस्थित हुए हैं, जिनसे हम चमत्कृत व विस्फारितनैत्र हैं। पर अभी तो आध्यात्मिक, मानसशास्त्र व सौरमंडलके सहस्रों विषय अवशेष हैं जिनकी शोध ही नहीं हो सकी है। जिन दिनों इनकी शोध प्रारम्भ होगी उन दिनों वे नवीन २ तथ्य सम्मुख आयेंगे; जिनको पढ़-सुनकर हम चकित, विस्मित और स्तंभितसे रह जायगें और तब शायद हमारी भौतिकवादी विचारधारा भी बदल जाय।

जैन श्रुत-सागर भी गहन है। जैन-ज्ञानियोंने प्रत्येक विषय और पदार्थके सम्बन्धमें अपने निश्चित विचार व्यक्त किये हैं परन्तु जैनागमों की भाषा अर्द्धमागधी होनेसे प्रत्येक व्यक्तिके लिये ये सहज अध्ययन-योग्य नहीं। श्रमण-निर्ग्रन्थोंके अतिरिक्त गृहस्थ मूलागम नहीं पढ़ सकते; इस धारणाने भी साहित्यके प्रचार एवं प्रसारके पर्याप्त वाधा ही उपस्थित की है। यदि सूत्रोंका विविध भाषाओंमें अनुवाद होता तो जैन-तत्त्वज्ञानका सर्वत्र प्रचार एवं प्रसार होता।

भगवतीसूत्र हमारे अंग सूत्रोंमें सबसे वृहत् सूत्र है। इसका द्वितीय नाम व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र भी है। रत्नाकर शब्दसे यदि किसी

सूत्रको संबोधित किया जा सकता है तो यही एक महान् सूत्र हैं। एक ही नहीं सहस्रों विषय इसमें छूए गये हैं। खगोल, भूगोल, गणित, रसायनशास्त्र, प्राणिशास्त्र, ज्योतिष, पदार्थवाद और इतिहास आदि कोई विषय अछूता नहीं रहा है।

भगवतीसूत्र प्रश्नोत्तरोंके रूपमें ग्रथित हुआ है। प्रश्न-कर्ताओंमें भगवान् महावीरके प्रधान शिष्य इन्द्रभूति गौतम मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त माकंदिपुत्र, रोह, अग्निभूति आदि भी हैं। कभी-कभी अन्य धर्मावलम्बी भी वादविवाद करने अथवा किसी विषयके समाधानके लिये आ पहुंचते हैं। कभी तत्कालीन श्रावक और श्राविकायें भी प्रश्न पूछ जाती हैं। प्रश्नोत्तरों के रूपमें सूत्र ग्रथित होनेके कारण अनेक स्थानोंपर पिष्टपेषण भी हुआ है; जो किसी भी तत्त्वदर्शी के लिये अपरिहार्य भी है। क्योंकि किसी भी प्रश्नको समझानेके पूर्व उसकी पृष्ठभूमि भी बतानी आवश्यक हो जाती है।

प्रतिपादित विषयोंके दृष्टिकोणसे समस्त सूत्र निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) आचारखंड—साध्वाचार के नियम, सुसाधु, असाधु, आदि।

(२) द्रव्यखंड—षड् द्रव्योंका वर्णन, पदार्थवाद।

(३) सिद्धान्तखण्ड—आत्मा, आत्माका विकसित रूप, द्रव्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, कर्म, क्रिया, कर्मबंध, कर्मसे विमुक्त होनेके उपाय आदि।

(४) परलोक खंड—देव, नैरयिक, सिद्ध आदि। देवताओंकी जातियां, उपजातियां, उनकी व्यवस्था आदिका विस्तृत वर्णन।

(५) भूगोल—लोक, अलोक, द्वीप, समुद्र, कर्म और अकर्म-भूमियां। वर्षा, ऋतु, दिन और रात्रियां आदि।

(६) खगोल—सूर्य, चन्द्र, तारे ग्रह, अन्धकार, प्रकाश, तमस्काय व कृष्णराजि आदि।

(७) गणितशास्त्र—एक-संयोगी, द्विक-संयोगी, त्रिकसंयोगी भग आदि, प्रवेशनक, राशि आदि।

(८) चारित्रखण्ड—महावीरके सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्तियों का परिचय।

(९) विविध—कुतूहलजनक प्रश्न—राजगृहके गर्म पानीके स्रोत, अश्वध्वनि, विविध वैक्रिय शरीरके रूप, आशीविष, स्वप्न, धान्यकी स्थिति आदि।

आधेसे अधिक भगवतीसूत्र स्वर्ग-नर्कके वर्णनोंसे भरा हुआ है। आजके शिक्षित व्यक्तिको स्वर्ग-नर्क-सम्बन्धी वर्णनोंसे प्रायः चिढ़ हैं और वे इसे कल्पनाके विषयसे अधिक नहीं समझते। प्रस्तुत ज्ञानका कोई उपयोग नहीं अतः इस ज्ञानको कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता। पर जैन-ज्ञानियों ने स्वर्ग-नर्कको सबसे अधिक महत्त्व दिया है। इसमें भी गुह्य तत्त्व निहित है।

यदि हम आत्माको सत्तात्मक रूपसे स्वीकृत करते है तो हमें स्वर्ग-नर्क भी स्वीकार करने होंगे। जो व्यक्ति आत्म-तत्त्व में विश्वास नहीं करता; उसके लिये तो स्वर्ग-नर्क कल्पना ही कहे जा सकते है परन्तु आत्म-तत्त्वमें विश्वास रखनेवाला व्यक्ति कैसे विरोध कर सकता है? इस जगत्के स्वर्ग-नर्क भी हमारे भूमडल के सदृश ही जब अंग हैं तो सर्वज्ञ व सर्वदर्शी

जगत् का अधिकांश भाग बिना वर्णन किये कैसे छोड़ सकते थे ? नर्क-स्वर्ग-सम्बन्धी वर्णन निकाल देनेपर कर्मवाद, आत्मवाद, विमुक्ति आदि सब सिद्धान्त ही समाप्त हो जाते हैं और जैन-धर्मका स्वरूप ही नष्ट हो जाता है।

भगवतीसूत्र अन्य जैनागमों की तरह न उपदेशात्मक ग्रन्थ है और न सैद्धान्तिक ग्रन्थ ही। यह तो एक विश्लेषणात्मक ग्रन्थ है। दूसरे शब्दोंमें इसे सिद्धान्तों का अंकगणित कहा जा सकता है। गणित ही जगत्के सब आविष्कारों की जड़ है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्स्टिनका The theory of Relativity-सापेक्षवादका सिद्धान्त अङ्कगणितका ही चमत्कार है। अतः भग-वतीमें सिद्धान्तोंके प्रतिपादनमें अत्यन्त गहनता व सूक्ष्मता आ गई है। दर्शनके प्राथमिक विद्यार्थीके लिये यह भूलभूलैयाके अतिरिक्त कुछ नहीं है। अन्य सूत्रों तथा कर्म-ग्रन्थोंका जिसे अच्छा ज्ञान हो, वही व्यक्ति इसके प्रतिपादित विषयोंकी गहनता समझ सकता है तथा इसका रसास्वादन भी कर सकता है।

अनुवादकी विशेषताएं

(१) जैनागमोंमें तत्कालीन पद्धतिके अनुसार एक ही बातकी पुनरावृत्ति बहुत है। जैसे—प्रश्नको दोहराना, प्रश्नको दोहराते हुए उत्तर, पुनः उत्तरके साथ सारांशमें प्रश्नको दोह-राना। उस युगमें यह पद्धति उपयोगी रही होगी। आधुनिक युगमें इस प्रकारकी पद्धति प्रचलित नहीं है और न पसन्द ही की जाती है। अतः पुनरावृत्ति न देकर प्रतिपादित विषयका ही वर्णन किया गया है : जिससे पाठक उलझनमें न पड़ें।

(२) मूल न देकर अनुवाद ही दिया गया है। आरम्भसे

अन्ततक सर्व हिन्दीमें ही है ; जिससे संस्कृत-प्राकृत नहीं पढ़े हुए व्यक्ति भी, जिन्हें साधारण हिन्दीका ज्ञान हो, पढ़ सकते हैं। जैन-साहित्यके अजैन जिज्ञासुओं, विद्वानों तथा प्राध्यापकोंने इस शैलीको अत्यन्त उपयोगी बताया है।

(३) स्थान-स्थान पर पाद-टिप्पणियों (Foot Notes) द्वारा कठिनांशोंका स्पष्टीकरण कर दिया गया है तथा विशिष्ट शब्दोंकी परिभाषायें भी दे दी गई हैं।

(४) तत्त्व-चर्चाके मध्य आनेवाले चारित्र तथा कथा-प्रसंग अलग परिशिष्ट—चारित्रखण्डमें दिये हैं। प्रत्येक चारित्र के साथ शतक व उद्देशककी टिप्पणी भी दे दी गई है।

(५) विस्तृत अकारादि अनुक्रमणिका (Index)।

(६) विशिष्ट पारिभाषिक जैन-शब्दकोष।

गलती मानवका स्वभाव है। यद्यपि अनुवाद करते हुए तथा प्रूफ देखते हुए पूर्ण सतर्कता रखी गई है; फिर भी कहीं २ भूलें संभव हो सकती हैं। यदि पाठकगण इस सम्बन्धमें मुझे सूचना देंगे तो मैं उनका अत्यन्त आभारी होऊँगा।

मैं उन सर्व अनुवादकों, टीकाकारों तथा ग्रन्थकारों का अत्यन्त कृतज्ञ हूं जिनके अनुवादों व ग्रन्थोंसे सहायता ली गई तथा उन सर्व महानुभावोंका अत्यन्त आभारी हूं; जिनसे प्रत्यक्ष या परोक्ष-रूपसे पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है।

गांधी-जयन्ती
२, अक्टूबर १९५४

निवेदक :
मदनकुमार मेहता

भूमिका

अनेकान्त सिद्धान्त-द्वारा प्रत्येक विषय और पदार्थका निरूपण व विवेचन करने से जैन-दर्शन की दृष्टि अत्यन्त विशाल है। अतः विषयोंके प्रतिपादन में कहीं भी संकीर्णता उपलक्षित नहीं होती। जैन-ज्ञानियोंने दृष्टिकी इस अनेकान्तमयी विशालता के साथ सूक्ष्मता तथा गहनताको भी अपनाया है। उन्होंने प्रत्येक प्रतिपादित विषय की तहतक पहुंचने की चेष्टा की है। अतः ऊपरीरूपसे जैन-दर्शन जटिल तथा कठिन प्रतीत होता है परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं। सूक्ष्म तथा सर्व दृष्टियोंसे विवेचन करने से सिद्धान्त-प्रतिपादनमें स्वतः गहनता आ ही जाती है।

जैनागमों के अध्ययनसे ऐसा ज्ञात होता है कि प्रतिपादकों ने अनुभवसिद्ध वस्तुओंसे जैन-दर्शनका गठन किया है। भगवान् महावीरने स्थान-स्थानपर अत्यन्त ही दृढ़तापूर्वक कहा है—"सर्वज्ञोंने ऐसा जाना और देखा है"। अनुभवसिद्ध ज्ञान सदैव सत्य होता है।

भगवान् महावीरको विषय-प्रतिपादन में जहाँ कहीं भी उदाहरण देकर समझाने की आवश्यकता अनुभव हुई, वहाँ उन्होंने प्रत्येक उदाहरण दैनिक जीवन-धारासे उठा कर दिया है। किसी भी प्रश्नका उत्तर देनेके साथ ही साथ वे हेतुका निर्देश भी कर दिया करते थे। यदि एक ही प्रश्नके एकसे अधिक उत्तर-प्रत्युत्तर हों तो प्रश्नकर्ता की दृष्टि और भावनाको ग्रहण कर तदनुरूप प्रत्युत्तर दिया करते थे।

जैन-दर्शनमें सम्पूर्ण नियमतांत्रिकता है। जैन-ज्ञानियोंने अपने दर्शनको स्वाभाविक अर्थात् प्राकृतिक नियमोंके आधार पर खड़ा किया है। प्राकृतिक नियमोंकी ग्रन्थियां सम्पूर्ण दर्शनमें गूथी हुई हैं। ऐसा कोई भी प्रतिपादन नहीं, जो किसी नियमकी कसौटी पर चढ़ा हुआ न हो। उदाहरणार्थ— जीवका मोक्ष या निर्वाण भी प्राकृतिक नियमसे ही होता है ; किसीकी स्वतन्त्र इच्छासे नहीं। मोक्ष-प्राप्तिके लिये अक्रियता एक नियम है। उस नियमका पूर्णतः पालन कर ही जीव संसार से विमुक्त हो सकता है।

जैन-दर्शन ग्यारह अग और उपांगों ग्रथित है। बारहवां अंग दृष्टिवाद विलुप्त है। ग्यारह अंगोंका अपर नाम गणि-पिटक भी है। श्री भगवतीसूत्र उपलब्ध ग्यारह अंगोंमें सबसे बृहत् सूत्र है। इसमें जैनदर्शनके प्रायः सभी मूलभूत तत्त्वोंका विवेचन है या अन्य सूत्रोंके लिये निर्देश है।

निर्देश-पद्धतिसे ऐसा ज्ञात होता है कि जिन जैनाचार्योंने जैनागमोंको सर्वप्रथम कलमसे लिखा था, उन्होंने ग्रन्थकी अनावश्यक बृहद्ता कम करनेके लिये तथा अन्य सूत्रोंमें वर्णित विषयोंकी पुनरावृत्ति न करने के लिये मात्र निर्देश ही कर ग्रन्थ समाप्त कर दिया था। यह भी संभव है कि पश्चात्वर्ती लेखकों ने ग्रन्थके गुरुत्वको कम करने के लिये यह पद्धति अवलम्बित की हो। लेकिन इस निर्देश-पद्धतिके आधार पर ही यह निर्णय कर लेना अनुपयुक्त होगा कि यह सूत्र प्रथम ग्रथित है या वह सूत्र पश्चात् ग्रथित है।

भगवतीसूत्र में विषयोंका विवेचन प्रज्ञापना, स्थानांग, आदि ... तरह निश्चित् पद्धतिसे नहीं है और न गौतम गणधरके प्रश्नोंका संकलन ही निश्चित क्रमसे है। सूत्र पढ़नेसे ज्ञात होता है कि गौतम गणधरके मनमें जब किसी विषयके संबंधमें स्वतः अथवा किसी अन्यतीर्थिक अथवा स्वतीर्थिक व्यक्तिके वक्तव्यको सुनकर जिज्ञासा उत्पन्न हुई; उन्होंने भगवान् महावीरके पास जाकर अपनी जिज्ञासा प्रश्नके रूपमें रखी। संकलनकर्ता गणधरोंने प्रश्नोत्तर उसीरूपमें रख दिये।

भगवतीसूत्रमें प्रतिपादित विषयोंके संबंधमें स्वयं अनुवादक ने अपने निवेदनमें पर्याप्त प्रकाश डाल दिया है। अतः इस संबंधमें विशेष प्रकाश की आवश्यकता नहीं। जैन-दर्शनके मान्य विषयों या सिद्धान्तोंको आजका विज्ञान भी कहाँ तक स्वीकृत करने लगा है; इसपर कुछ लिखना उपयुक्त होगा। क्योंकि लोग विज्ञान द्वारा समर्थित, अनुमोदित या स्वीकृत तथ्य सत्य मानते हैं और अमान्य सिद्धान्तोंको कपोलकल्पना कहकर उड़ा देते हैं।

भगवतीसूत्र तथा अन्य जैनागमोंमें वर्णित अनेक विषयोंके प्रति अजैनोंको क्या आधुनिक जैन विद्वानोंको भी यथेष्ट शंकायें हैं। भूगोल-खगोलके सिद्धान्तोंको गलत समझनेमें वे प्रायः निश्चित से हैं। अन्य विषयोंमें, जो अभीतक आधुनिक विज्ञान द्वारा स्वीकृत नहीं हुए हैं; वे शंकाशील हैं। आधुनिक विज्ञानको ही यदि सत्यता की कसौटी स्वीकृत कर ली जाय तो हमें यह देखना होगा कि विज्ञानने विगत ५० वर्षोंमें कितने जैनीय सिद्धान्त स्वीकृत किये हैं।

विज्ञान ज्यों-ज्यों विकासकी ओर बढ़ रहा है तथा ज्यों-ज्यों अपने ज्ञानके आयतकी परिधि भी बढ़ा रहा है त्यों-त्यों जैनधर्मके मान्य सिद्धान्तों और विषयोंका भी प्रतिपादन हो रहा है। विज्ञान-स्वीकृत कुछ जैन सिद्धान्त इसप्रकार हैं :—

(१) जगत् का अनादित्व (२) वनस्पतिमें जीवत्वशक्ति (३) जीवत्व शक्तिके रूपक (४) पृथ्वीकायमें जीवत्व शक्तिकी संभावना (५) पुद्गल (Matter) तथा उसका अनादित्व

(१) जैन-दर्शन जगत्, जीव, अजीव द्रव्योंको अनादि मानता है। आधुनिक विज्ञान जगत्की कब सृष्टि हुई ; इस विषयमें अभी अनिश्चित है। पर प्रस्तुत विषयमें प्रसिद्ध प्राणीशास्त्रवेत्ता श्री जे० बी० एस० हालडेन का वक्तव्य उद्धरित किया जा रहा है, जिसमें वे कहते हैं—मेरे विचारमें जगत्की कोई आदि नहीं है :—

"Living organisms exist on our planet to-day, and have existed for over 500 million years."****
And when even the smallest organisms were found to be chemically very complicated, the problem of the origin of life become very acute, Most of the suggestions as to its origin can be classified as follows.

(1) Life has no origin. Matter and life have always existed.

(2) Life originated on our planet by supernatural event.

(3) Life originated from ordinary chemical reactions by a slow evolutionary process

(4) Life originated as the result of a very 'improbable event which however was almost certain to happen given

sufficient time, and sufficient matter of suitable composition in suitable state.

Hypothesis (1) does not seem to me impossible, in our present state of knowledge. The universe may have had no beginning. I DO NOT THINK IT HAD.

चौथी हाइपोथिसिस को एक अपेक्षासे जैनदर्शन मानता है। वह कहता है कि प्राणी जब पुराने जीवनको शेष करके, नया जीवन (career) प्रारम्भ करता है तब Sufficient matter of suitable composition in suitable state में मिलनेसे करता है।

इसप्रकारके matter को जैन-दर्शनमें "योनि" कहते हैं। यह योनि मृत-शरीर भी हो सकता है, जीवित प्राणीका अंग भी हो सकता है अथवा उपयुक्त अवस्था का अजीव पुद्गल भी हो सकता है। वैज्ञानिकोंने तीनों प्रकारके स्थानोंमें प्राणियों को उत्पन्न होते पाया है।

अध्यापक हैलडेन आगे कहते हैं कि कुछ वैज्ञानिक जैसे— Bendi, Hoyle Gold, Amberzumian आदि कहते हैं कि—

"Some parts of the universe conditions have always been similar to those Known to us"

इसपर अध्यापक हैलडेन अपना मन्तव्य प्रकट करते हैं :—

"On such a view life is presumably Co-eternal with matter."

(२) जैनदर्शन कहता है कि जीवमें ज्ञानकी विशेष शक्तियाँ हैं; जिनका उद्घाटन हो जानेपर प्राणी भावी घटनाओंको स्वतः ही जान जाता है। सामान्यतः जो बातें नहीं जानी जा सकतीं, वे बातें वह स्वतः ही बिना किसी आधारके जान लेता है।

इससम्बन्ध में सुप्रसिद्ध मानसवैज्ञानिक श्री डॉ० J B Rhinie विगत कई वर्षोंसे अन्वेषण कर रहे हैं। अपने अन्वेषणों-द्वारा उन्होंने अनेक आश्चर्यजनक तथ्य घोषित किये हैं। उन तथ्योंको Materialism के पक्षपाती कुछ आधुनिक वैज्ञानिक माननेमें संकोच कर रहे हैं परन्तु राइनके अन्वेषणों तथा उनकी प्रामाणिकता को देखकर उक्त तथ्योंको सर्वथा अमान्य भी नहीं कर रहे हैं। यदि वैज्ञानिकोंने ये तथ्य स्वीकार कर लिये तो आत्मा और सम्पूर्ण ज्ञान—जिसे हम केवलज्ञान कहते हैं, दोनोंकी स्वतः सिद्धि हो जायगी।

(३) जैन-मान्यतानुसार वनस्पति, पृथ्वी, पानी आदिमें चलनेवाले अन्य जीवोंके सदृश जीवत्व शक्ति है। आचारांग सूत्रमें वनस्पतिमें जीव होनेके संबन्धमे निम्न लक्षण दिये गये हैं :—

(१) इसका उत्पन्न होनेका स्वभाव है—जाइधम्मयं।

(२) इसके शरीरकी अभिवृद्धि होती है—वुढ्ढिधम्मयं।

(३) इसमें भी चैतन्य (सुख-दुखात्मक अनुभवशक्ति) है—चित्तमंतयं।

(४) इसको काटनेसे दुखके चिह्न (सूखना) प्रकट होते हैं—छिन्नंमिलति।

(५) इसको भी आहारकी आवश्यकता होती है—आहारगं।

(६) इसका भी शरीर अनित्य तथा अशाश्वत है—अणिच्चयं असासयं।

(७) इसके शरीरमें भी चय-उपचय होता है—चओवचइअं।

सुप्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक श्री जगदीशचन्द्र बसुने अपने परीक्षणों-द्वारा वनस्पतिमें उपर्युक्त सर्व लक्षण सिद्ध कर दिये हैं। वैज्ञानिक जगत् उनके इस अन्वेषणको स्वीकृत कर चुका है। श्री बसुके अनुसंधान-सम्बन्धी वक्तव्योंको उद्धरित करना अनावश्यक है।

पृथ्वी में भी जीवत्वशक्ति है; इस संभावना की ओर विज्ञान अग्रसर हो रहा है।

प्रसिद्ध भूगर्भ वैज्ञानिक फ्रांसिस अपने दश वर्षकी विकट भूगर्भ-यात्राके संस्मरण लिखते हुए अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तिका "Ten years under earth" में लिखते हैं "मैंने अपनी इन विविध यात्राओंके दौरानमें पृथ्वीके ऐसे २ स्वरूप देखे हैं, जो आधुनिक पदार्थ-विज्ञानके विरोधात्मक थे। वे स्वरूप वर्तमान वैज्ञानिक सुनिश्चित नियमों-द्वारा समझाये नहीं जा सकते"

इतना लिखनेके पश्चात् वे अपने हृदयके भावको अभिव्यक्त करते हैं :—

"तो क्या प्राचीन विद्वानोंने पृथ्वीमें जो जीवत्व-शक्तिकी कल्पना की थी, क्या वह सत्य है ?"

श्री फ्रांसिसके भूगर्भ-संबंधी अन्वेषण जारी हैं। एक दिन वैज्ञानिक जगत् पृथ्वीकी जीवत्व शक्तिको सुनिश्चित रूपसे स्वीकृत कर लेगा; ऐसी आशा की जा सकती है।

(४) जैन-दर्शन तथा इतर भारतीय दर्शनोंमें ध्यान व-योग-संबंधी तथ्य या सिद्धान्त बताये गये हैं। उनकी वास्तविकता माननेके सबंधमें आधुनिक विज्ञान भी अग्रसर हुआ है। इस

सम्बन्धमें प्रसिद्ध विद्वान डा० ग्रे वाल्टरकी The Living Brain पुस्तक जो विगत वर्ष ही प्रकाशित हुई है, उससे नीचे दो उद्धरण दिये जाते हैं। डॉ० वाल्टर ग्रेट ब्रिटेनके एक विख्यात ब्रेन सर्जन हैं, जो एक सर्जनकी अपेक्षा, ब्रेन सम्बन्धी अन्वेषणोंके लिये अधिक विख्यात हैं।

"Nobody has yet offered a plausible complete explanation of the hypnotic state. It has been suggested by those seeking a material basis for otherwise unaccountable behaviour that the electrical activity of the brain might be the mechanism whereby information could be transmitted from brain to brain, and that the electrical sensivity of the brain might be a means of communicating with some all-prevailing influence. Quite apart from philosophic objection there may be such argument, the actual scale and properties of the brain electrical mechanism offer no support for it. The size of electrical disterbances which the brain creates are extremely small. In fact, they are about the size, within the brain itself,of a received signal which is just intelligible on an average radio set.

The familiarity of radio signalling around the world has popularized the notion that may signal once generated may be propagated indefinitely through the chasms of space, so that all events have an eternal quality in some attentuated but identifiable form. This is not even approximately true; for any signal, however porpogated, weakens with its passage until its size falls below the level of noise and interference in some locality Beyond this point it can never be detected, however great the resolution and selectivity of the receiver If we consider the largest rhythms of the brain as casual radio signals, we can calculate that

they would fall below noise level within the few millimetres from the surface of the head.

Even if we ignore these physical characteristics, the observations reported on extra-sensory phenomena seem to exclude any such approach; for there is no evidence that screening of the subject, or the distance between sender and receiver, has any influence on the nature or abundance of the effects described. Furthermore, it seems to be one of the cardinal claims of workers in this field that A SIGNAL MAY BE RECEIVED BEFORE IT IS TRANSMITTED If we accept these observations for what they are said to be, we cannot fit them into the physical laws of the universe as we define them to-day. we may not accept them gladly as evidence of spiritual l ife; but it does not seem easy to explain them in terms of biological mechanism.

वे और कहते हैं :—

As new horizons open, we became aware of old landmarks. The experience of homeostasis, the perfect mechanical calm which it allows the brain, has been known for two or three thousand years under various appellations. It is the physiological aspect of all the perfectionist faiths - Nirvana, the abstraction of the Yogi, the peace that passeth understanding, the derided "happiness that lies within" it is state of grace in which disorder and disease are mechanical slips and errors.

डा० वाल्टर जब आधुनिक विज्ञान-द्वारा परीक्षित प्राणियों की Homeostasis अवस्था यानि—Maintenance of constancy in internal environment.

—अर्थात् डा० वाल्टरके शब्दोंमें The capacity of isolating in one section of the brain an automatic system of slabilisation for the vital functions of the onganism. पर विचार करते हैं। वे मानते हैं कि वे ध्यान और यौगिक क्रियायोंके समकक्ष उपस्थित हो गये हैं। डा० वाल्टर आगे कहते हैं—अब जो रोचक विचारणीय हेतु है वह यह है कि—with this arrangement other parts of the brain are left free for functions not immediately.

(५) जैन-दर्शनके अनुसार बिना नरसंयोगके भी मादाके गर्भ रह सकता है। स्थानांग सूत्र ५-२-३ में आता है कि मानव स्त्री शुक्र-पुद्गल स्वतः या अन्यसे योनिमें रखवा कर गर्भवती हो सकती है। आधुनिक विज्ञानवेत्ताओंने भी कृत्रिम गर्भाधान की धूम सी मचा रखी हैं। उन्होंने मानव, पशु आदि सभीपर इस अप्राकृतिक गर्भ-बीजारोपणके परीक्षण किये हैं और वे उसमें सफल हुए हैं। अब तो वे और भी आगे बढ़ रहे हैं तथा गर्भसे बाहर भी बीजारोपणकी क्रिया करके Test Tube में मानव-जननके परीक्षण कर रहे हैं।

(६) भगवान् वर्धमान महावीरके जन्म समयकी गर्भस्थानान्तरणकी घटनाको लेकर बहुत कुछ आक्षेप हुए हैं और कहा गया है कि यह असम्भव जैसी बात जैन भगवान्के जीवनको अन्य धर्मोंके भगवानोंके जीवनकी तरह चमत्कारमय बनानेके लिये ही पश्चात्वर्ती आचार्योंने जैनशास्त्रोंमें मिला दी है। जैनशास्त्रों में वर्णित गर्भस्थानान्तरणकी घटनामें सरल बात (या प्रश्न) यह है कि क्या एक स्त्रीके गर्भाशयसे गर्भबीजको पक्व या अपरिपक्व

अवस्थामें निकालकर अन्य स्त्रीके गर्भाशयमें आरोपित किया जा सकता है? और वह आरोपित बीज फिर स्वाभाविक रूपसे पैदा हो सकता है? आधुनिक वैज्ञानिकोंने अपनी बहुमुखी प्रगतिमें इस विषयको भी अछूता नहीं छोड़ा है। प्राणिशास्त्रवेत्ता डाक्टर चांगने वोस्टन विश्वविद्यालयके जैव रसायनशालामें इस सम्बन्धमें अर्थात् गर्भस्थानान्तरण सम्बन्धी परीक्षण किये हैं। इनमें उन्हें प्राथमिक सफलताएं मिली हैं। अमेरीकन हिरनीके गर्भबीजको एक अंग्रेजी हिरनी के गर्भाशयमें सफलतासे स्थानान्तरित किया गया है। जैव रसायनागार वोस्टन तथा कृषि कालेज केम्ब्रिजके पारस्परिक सहयोगसे गर्भस्थानान्तरण सम्बन्धी अन्वेषण जारी हैं और शीघ्र ही इस सम्बन्धमें सविस्तृत विवरण ज्ञात होगा।

(७) समस्त भारतीय दर्शनोंके विरोधमें भी जैनदर्शन शब्द, ज्योति, ताप और आतपको पुद्गल कहता आ रहा था। आधुनिक विज्ञानने अपने प्रथम मोड़में ही इन पदार्थोंको (matter) सिद्ध कर दिया है। अब यह निर्विवाद रूपसे माना जाता है कि शब्द, ज्योति, ताप, और आतप अजीव पुद्गल द्रव्यकी पर्याय-विशेष हैं।

(८) पदार्थविज्ञानका वर्णन करते हुए जैनदर्शनने असंदिग्ध शब्दोंमें घोषित किया है कि संसारमें जितने पुद्गल हैं, सदा उतने ही रहेंगे—न कोई द्रव्य विनष्ट होगा, न कोई घटेगा और न कोई बढ़ेगा। जिस पुद्गलको हम विनष्ट या उत्पन्न देखते हैं या समझते हैं, वह वास्तवमें विनष्ट या उत्पन्न नहीं होता

परन्तु अपनी पर्याय परिवर्तित करता है अर्थात् रूपान्तरित होता है।

आधुनिक विज्ञानने जैन-दर्शनके इस सिद्धान्तको निरपवाद रूपसे सत्य पाया है। वैज्ञानिकोंने अनगिनित परीक्षणों-द्वारा निरीक्षण किया है और पाया है कि कोई भी पुद्गल (Matter) नष्ट नहीं होता, केवल दूसरे Form (रूप) में बदल जाता है। यह सिद्धान्त विज्ञान-जगत्में Principle of conservation of mass and energy के नामसे परिचित है।

(६) जैन-दर्शनके अनुसार पुद्गलके Elements primary particles परमाणु हैं तथा ये परमाणु अनन्त प्रकारके है व अत्यन्त सूक्ष्म हैं। आधुनिक विज्ञान धीरे-धीरे इस सूक्ष्मताकी ओर अग्रसर हो रहा है। एक दिन वह elements को ही matter के primary particle मान रहा था लेकिन आणविक ज्ञानकी प्रगतिके साथ इसके प्राथमिक particles और भी सूक्ष्म हो गये हैं। वर्तमानमें विज्ञान १४ प्राइमरी कण मानता है। इसमे Photon आदि massless है। परन्तु दिन-प्रतिदिन वैज्ञानिक परीक्षणोंमें नवीन-नवीन तथ्य और भी सूक्ष्मतर कणोंकी ओर निर्देश करते हुए मिल रहे हैं। प्रसिद्ध आणविक वैज्ञानिक अध्यापक कार्ल डी० अंडरसनके शब्दोंमें कहता है—"सन् १९३२ के बादके आविष्कृत कोई भी कण स्थायी नहीं हैं तथा unstable हैं और कुछ समय उपरांत वे कण या तो विस्रसा परिणमन (natural decay) करते है या atomic nuclic के द्वारा आत्मसात हो जाते है।

कणोंकी elementary प्रकृति अनिश्चित है; क्योंकि वर्तमान विज्ञानकी विचारधारा में कण ऐसी "Virtual state" में रह सकते हैं जिनमें निरीक्षणयोग्य प्रभाव (effect) हो सकता है ; यद्यपि वे वास्तवमें निरीक्षण-योग्य स्वतन्त्र कण-रूपमें अवस्थित नहीं हैं।

संक्षिप्तमें मर्म यही है कि उन्होंने चौदह प्राइमरी पारटिकलका होना सिद्ध किया है और वे इतने सूक्ष्म हैं कि उनमेंसे अनेकोंको वे अपने सर्वशक्तिशाली यन्त्रोंसे भी नहीं देख सके हैं।

(१०) जैन-दर्शन कहता है कि पानीकी एक बूंदमें असंख्य प्राणी है तथा पानीकी बूंदसे सूक्ष्म वस्तुओंमें भी असंख्य और अनन्त प्राणियों का अस्तित्व है।

वर्तमान वैज्ञानिकोंने विविध प्रकारसे अपने microscope के द्वारा सूक्ष्म प्राणियोंका अस्तित्व देखा है तथा वे उनका अस्तित्व भी मानते हैं। इधरमें, "Beyond the microscope अर्थात् सर्वाधिक शक्तिशाली अनुविक्षणयन्त्रसे भी नहीं देखे जा सकते, ऐसे प्राणियोंका अस्तित्व विज्ञान स्वीकार करता है।

इस विषयमें हम High Nicol की "micropes by the million" (Penguin द्वारा १९४५में प्रकाशित) से उद्धरण देते है:

"The creatures dealt with in this book range in size from beings just visible to the naked eye, down to those that are about 1/20000th of an inch across and can only be seen with a powerful microscope But though small, they are alive. On a square millimetre, a million small bacteria measuring about one micron in diametre could be

laid without much overlapping in a single layer of a thousand rows having a thousand in each row. 1,00,00,000

(११) जैन-दर्शनके अनुसार, परमाणु पुद्गल कभी स्थिर रहता है या कभी चल रहता है। सूक्ष्मस्कध स्थिरसे चल या चलसे स्थिर एक समय अर्थात् समयकी सूक्ष्मतम unit में हो सकता है या असंख्येय समयमें भी हो सकता है। परमाणुकी यह चलता व अचलता एक क्षेत्र अवगाही (arial) भी हो सकती है, वृत्त या आयत रूप भी हो सकती है।

वैज्ञानिकोंने हाइड्रोजन अणुके एलेक्ट्रोन को वाहरी और भीतरी वृत्तमें अनिश्चित समय तक कूदते-फाँदते देखा है।

इस विषयमें हम Waldemor kaempffort के लेख 'Hydrogen sings a song' से उद्धरण देते हैं।

The hydrogen atom has a nucleus, called a proton, and around this nucleus revolves a single electron. Not only does the electron revolve around the nucleus, but it leaps from orbit to orbit... Ordinarily an electron stays in an orbit only for a hundred millionth of a second, but it may remain in one or two orbits which all but touch each other for eleven million years before it makes a leap.

(१२) भगवान् महावीरने भगवती सूत्रमें अपने शिष्य गौतमको कहा था कि विशिष्ट पुद्गलोंमें जैसे तैजस पुद्गलमें अग, वंग, कलिंग आदि १६ देशोंको विध्वंस करनेकी शक्ति विद्यमान है। पुद्गल यानी मैटरकी अपरिमेय शक्तिका इस प्रकार उन्होंने वर्णन किया था। आज आधुनिक विज्ञानने एटम बमसे हिरोसीमा नगरको ध्वंस करके मैटरकी असीम शक्तिको सिद्ध कर दिखाई है।

(१३) जैनदर्शनने जगत्में षड् द्रव्य घोषित किये हैं। वर्तमान वैज्ञानिक जगत्ने षड् द्रव्योंमें निम्न चार द्रव्य स्वीकृत कर लिये हैं:—जीव, पुद्गल, आकाश (Space) और काल (Time)। धर्मास्तिकाय जो हलचलनमें सहायता करता है; उसे कुछ समय पूर्व विज्ञानने ईथर तत्त्वके रूपमें स्वीकृत किया था परन्तु वर्तमान अनुसन्धानोंके अनुसार उन्होंने ईथरकी आवश्यकता आवश्यक नहीं समझी है ; क्योंकि उसके विना भी कार्य चल सकता है। पर एकान्ततः उसका निषेध नहीं किया है। क्योंकि नभमंडलके चल-अचल ग्रह उन्हें ईथरकी आवश्यकता अनुभव करनेके लिये प्रेरित कर रहे हैं।

इसप्रकार छोटे-बड़े ऐसे सैकड़ों तथ्य हैं जिन्हें विज्ञानने सिद्ध कर दिये हैं या वह ऐसे अनुसंधान कर रहा है जिनके सिद्ध होनेपर वे जैन-तथ्य सिद्ध हो जायेंगे।

अनुवाद व अनुवादक

श्री भगवतीसूत्र (हिन्दी) के अनुवादक श्री मदनकुमारजी मेहता एक सामाजिक व राष्ट्रीय कार्यकर्ता होनेसे मेरे निकट-सम्पर्कमें आये हुए है अतः मैं उनकी योग्यता एवं विद्वत्तासे पूर्ण अवगत हूं। वास्तवमें प्रस्तुत अनुवादको करनेमें उन्होंने जिस धैर्य और साहससे कार्य किया, वह प्रशंसीय है। रूक्ष व दार्शनिक विषयमें इतने लम्बे समय तक कार्य करना कठिन हो जाता है।

प्रस्तुत अनुवादमें भगवतीसूत्र में भगवान् महावीर द्वारा दिये गये उत्तरोंका शब्दः अनुवाद है। जैन-साहित्यमें इस शैलीसे सूत्र-प्रकाशनका यह प्रथम प्रयास है। इसकी सबसे बड़ी उपयोगिता

यह है कि पाठक पढ़ते हुए इसमें किसी प्रकारका व्यवधान नहीं पाता और उसे समस्त वर्ण्य विषयोंका ज्ञान हो जाता है।

अनुवादको यद्यपि सरल व सुगम्य बनानेका प्रयत्न किया गया है, फिर भी कठिन विषय होनेसे कुछ क्लिष्टता तो है ही।

यदि इसका आगामी संस्करण विषयानुसार सम्पादित होकर निकले तो जिज्ञासुओंके लिये अधिक उपयोगी होगा।

मैं प्रस्तुत ग्रन्थके विद्वान अनुवादक तथा श्रुतप्रकाशन-मन्दिर के संयोजक महोदयको धन्यवाद देता हूं, जिन्होंने यह स्तुत्य कार्यारंभ किया है। जिनवाणी का अधिकाधिक प्रसार हो, यही हार्दिक भावना है।

१६।१, डोवर लेन,
बालीगंज, कलकत्ता

मोहनलाल बांठिया बी० ए०

श्री भगवतीसूत्र (हिन्दी)

णमो अरिहन्ताणं ।

णमो सिद्धाणं ।

णमो आयरियाणं

णमो उवज्झायाणं ।

णमो लोए सव्व साहूणं ।

* * *

णमो बंभीए लिवीए

* * *

णमो सुअस्स ।

अर्हंतोंको नमस्कार हो, सिद्धोंको नमस्कार हो, आचार्योंको नमस्कार हो, उपाध्यायोंको नमस्कार हो, सर्व साधुओंको नमस्कार हो, [1]ब्राह्मी लिपिको नमस्कार हो और श्रुतको नमस्कार हो।

---

[1] विशिष्टप्रकारकी लिपि, जिसका आविष्कार भगवान् ऋषभदेवने किया था और अपनी पुत्री ब्राह्मीके नामसे उसका नामकरण किया था।

प्रथम शतक

प्रथम उद्देशक

प्रथम उद्देशक में वर्णित विषय

[चलमान चलित—निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण—एकार्थ हैं, अनेकार्थ हैं—उत्पन्नपक्ष-विगतपक्ष, सर्व जीव-स्थिति एवं आहारादि विचार—नैरयिकोसे वैमानिकों पर्यन्त, जीव आत्मारंभ, परारंभ, तदुभयारंभ या अनारंभ है—सर्व जीवदृष्टिसे विचार, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और संयम क्या इहभविक, पारभविक या उभयभविक हैं? संवृत अनगार, असंवृत अनगार, संवृत अनगारके सिद्ध होनेके कारण, असंवृत अनगारके सिद्ध न होनेके कारण, असंयत जीवोंके देव होने तथा न होनेके कारण, वाणव्यन्तर देवोंके निवासस्थान। प्रश्नोत्तर संख्या ६२]

(प्रश्नोत्तर नं० १-२)

[१]चलमान चलित, [२]उदीर्यमाण उदीरित, [३]वेद्यमान वेदित, [४]प्रहीयमाण प्रहीण, [५]छिद्यमान छिन्न, [६]भिद्यमान भिन्न, [७]दह्यमान दग्ध, [८]म्रियमाण मृत और [९]निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण कहा जाता है।

*चलमान चलित, उदीर्यमाण उदीरित, वेद्यमान वेदित, प्रहीयमाण प्रहीण—ये चार पद उत्पन्नपक्षकी अपेक्षासे एक अर्थवाले, अनेक घोष व व्यंजनवाले हैं।

१—चलत्—स्थितिके क्षयसे उदयमें आता हुआ कर्म चलितम्—चला इसप्रकार व्यपदेशित होता है।

२—भविष्य कालमें वेदेजानेवाले कर्म-दलिकको विशेष अध्यवसायरूपी करण द्वारा खींचकर उदयमें लाना उदीरणा कहा जाता है।

३—कर्मजन्य फलको अनुभव करना वेदन कहा जाता है।

४—जीव-प्रदेशोंसे संबद्ध कर्मका जीव-प्रदेशोंसे अलग होना प्रहीण—छूटना कहा जाता है।

५—कर्मकी दीर्घकालिक स्थितिको ह्रस्वकालिक करना छेदन कहा जाता है।

६—शुभ-अशुभ कर्मोंके तीव्र रसको अपवर्तना करण द्वारा मन्द करना और मन्द रसको उद्वर्तना करण द्वारा तीव्र करना भेदन—भिन्न करना कहा जाता है।

७—कर्म-दलिकको ध्यानरूपी अग्नि द्वारा नष्ट करना, दग्ध करना—जलाना कहा जाता है।

८—आयुष्य-कर्मके पुद्गलका क्षय मरण कहा जाता है।

९—क्षय होता हुआ कर्म निर्जीर्ण कहा जाता है।

*भगवान् महावीरके समयमें महावीरके भगिनिपुत्र जामालि भी एक दार्शनिकके रूपमें गिने जाते थे। वे महावीरके द्वारा ही दीक्षित हुए थे।

छिद्यमान छिन्न, भिद्यमान भिन्न, दह्यमान दग्ध, म्रियमाण मृत, निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण ये पांच पद विगतपक्षकी अपेक्षा अनेक अर्थवाले, अनके घोषवाले तथा अनके व्यंजनवाले हैं।

नैरयिक

(प्रश्नोत्तर नं० २ से १५)

(२) नैरयिकोंकी स्थिति—आयुष्य जघन्य—न्यूनतम दश हजार वर्ष और उत्कृष्ट—अधिकतम तैंतीस सागरोपम है।

नैरयिक कितने कालमें श्वास लेते है तथा निःश्वास छोड़ते हैं ; इस सम्बन्धमें [1]उच्छ्वासपद जानना चाहिये।

ये आहारार्थी हैं या नहीं, इस सम्बन्धमें प्रज्ञापना सूत्रके प्रथम-आहार उद्देशक में जैसा कहा गया है, वैसा ही यहाँ जानना चाहिये।

कालान्तरमें उनकी विचारधारामें परिवर्तन हो गया और वे महावीरके श्रमण-संघसे पृथक् हो गये। उनका यह मन्तव्य था कि कार्य जबतक सम्पूर्ण रूपसे सम्पन्न न हो तबतक वह कृत नहीं कहा जा सकता। महावीर ने उनकी इस विचारधारा को एकांगी बताया। उनका कहना था कि कार्य आरम्भ होनेके साथ ही उसको क्रिया कहा जा सकता है। जिसप्रकार कोई जुलाहा सूतसे कपड़ा बुनना आरम्भ करता है। यद्यपि कपड़ा पूर्ण नहीं बन गया फिर भी पूछने पर वह कहता है कि सूतका कपडा बनाया गया है। लोकव्यवहार मे यह बात सत्य मानी जाती है। निश्चय नयकी अपेक्षा कपड़ेका सूक्ष्म भाग निर्मित होने पर भी कपडा बना यह असत्य नहीं कहा जा सकता। जैन सिद्धान्तकी गम्भीरताको समझनेके लिए इस विचार-धाराको समझना अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिए इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नको इस महान् सूत्रके प्रारम्भमें ही उठाया गया है।

१—उच्छ्वासपद प्रज्ञापना सूत्रका सातवां पद है।

नैरयिक सर्व आत्मप्रदेशों द्वारा पुनः पुनः आहार करते हैं। वे सर्व आहारक द्रव्योंका आहार करते हैं तथा निम्न रूपसे परिणत करते हैं :—

नैरयिकोंको पूर्वाहारित पुद्गल व आहारित पुद्गल परिणत हुए तथा वर्तमानमें ग्रहित पुद्गल परिणत होते हैं। अग्रहित पुद्गल परिणत नहीं होते। जो पुद्गल भविष्यमें आहारित होंगे वे परिणत होंगे। अतीतमें जो पुद्गल ग्रहण नहीं किये गये तथा भविष्यमें जो ग्रहण नहीं किये जायेंगे, वे परिणत नहीं होंगे।

नैरयिकों को पूर्वाहारित पुद्गल जिसप्रकार परिणत होते हैं उसीप्रकार चित, उपचित, उदीरित, वेदित और निर्जीर्ण भी होते हैं।

गाथा

परिणत, चित, उपचित, उदीरित, वेदित और निर्जीर्ण, इन पदोंमें प्रत्येकके चार-चार प्रकारके पुद्गल होते हैं।

अनुभागभेदसे कर्मद्रव्य-वर्गणाश्रित दो प्रकारके पुद्गल नैरयिक भेदन करते हैं। वे इसप्रकार हैं—सूक्ष्म और बादर। ये ही कर्मवर्गणाश्रित भेद, चय, उपचय, उदीरणा, वेदना और निर्जराके भी होते हैं। ये वेदन होते हैं, निर्जिर्ण होते हैं। अपवर्तित हुए, अपवर्तित होते हैं और अपवर्तित होंगे। संक्रमित हुए, संक्रमण करते हैं और संक्रमण करेंगे, एकत्रित हुए, एकत्रित होते हैं और एकत्रित होंगे, निकाचित हुए, निकाचित होते हैं और निकाचित होंगे। ये समस्त भेद द्रव्यकर्म-वर्गणाश्रित समझने चाहिये।

गाथा

भेदाये, एकत्रित हुए, उपचित हुए, उदीरित हुए, वेदित हुए, निर्जीर्ण हुए, अपवर्तन हुए, संक्रमण हुए, निधत्त हुए और निकाचित हुए, इन पदोंमें तीनों प्रकारके काल कहने चाहिये।

नैरयिक जिन पुद्गलोंको तैजस्-कार्मण-शरीररूपमें ग्रहण करते हैं उन पुद्गलों को अतीत काल समयमें (विगत) ग्रहण नहीं करते है। वर्तमान काल समयमें ग्रहण करते हैं और भविष्य काल समयमें ग्रहण नहीं करते हैं।

नैरयिक अपने तैजसूकार्मण-शरीर द्वारा भूतकालमें ग्रहित पुद्गलोंकी उदीरणा करते है परन्तु वर्तमानमें ग्रहण किये जाते पुद्गलोंकी उदीरणा नहीं करते है। जिनका ग्रहण समय भविष्य में है, ऐसे पुद्गलोंकी भी उदीरणा नहीं करते हैं। इसी क्रमसे वे पुद्गल वेदन करते है तथा निर्जीर्ण करते है।

नैरयिक अपने आत्म-प्रदेशसे चलित[१] कर्मको नहीं बान्धते है परन्तु अचलित कर्मको बान्धते हैं। चलित कर्मको उदीरते नहीं परन्तु अचलित कर्मको उदीरते हैं।

इसीप्रकार वेदन करते हैं, अपवर्तन करते है, संक्रमण करते हैं, एकत्रित करते है और निकाचित करते हैं। उपर्युक्त पदोंमें अचलित शब्दका प्रयोग करना चाहिये चलित शब्दका नहीं।

नैरयिक अपने आत्मप्रदेश से चलित कर्मकी ही निर्जरा करते है अचलित कर्मकी नहीं।

१—आत्म-प्रदेशोंसे जिन कर्मोंका सम्बन्ध छूटनेवाला है उन्हें चलित कर्म कहते हैं, इनसे विपरीत कर्म अचलित हैं।

गाथा

बंध, उदय, वेदन, अपवर्तन, संक्रमण, निधत्तन एवं निकाचन अचलित कर्मके होते है परन्तु निर्जरा चलित कर्म की होती है।

* असुरकुमारादि

(प्रश्नोत्तर नं० १६ से २७)

(३) असुरकुमारोंकी स्थिति—आयुष्य जघन्य—न्यूनतम दश हजार वर्ष तथा उत्कृष्ट—अधिकतम एक सागरोपमसे कुछ अधिक है। ये कमसे कम सात स्तोक तथा अधिक से अधिक एक पक्षसे कुछ अधिक समय पश्चात् श्वास लेते हैं तथा छोड़ते हैं।

ये आहार के इच्छुक हैं। इनका दो प्रकार का आहार है— आभोगनिर्वर्तित और अनाभोगनिर्वर्तित। अनाभोगनिर्वर्तित— अज्ञानता से इप्सित आहार की अभिलाषा इनको निरन्तर होती है। आभोगनिर्वर्तित—ज्ञानपूर्वक आहार की अभिलाषा कमसे कम एक दिवसके पश्चात् और अधिकसे अधिक एक सहस्र वर्षसे अधिक समय पश्चात् होती है।

ये द्रव्यसे अनंत प्रदेशवाले द्रव्योंका आहार करते है इत्यादि क्षेत्र, काल और भावके सम्बन्ध में प्रज्ञापना के अनुसार जानना चाहिये।

असुरकुमारों द्वारा ग्रहित पुद्गल सुखरूप होते हैं परन्तु दुखरूप नहीं, ऊर्ध्वरूप होते है परन्तु निम्न रूप नही। यह परि-

---

* असुरकुमार देवताओंकी एक उपजाति है। जैन-सिद्धान्तके अनुसार देवता एक विशिष्ट प्रकारके जीव (Specie) हैं। इनका शरीर मनुष्यों की तरह स्थूल पुद्गल—हाड़, मांस, रक्त-मज्जाका न होकर वैक्रेय पुद्गलों (Subtle Gaseous) का होता है।

णमन इष्ट, मनोहर, उन्नत, इन्द्रियों को सुखदायक तथा सौन्दर्य-वर्द्धक होता है।

असुरकुमारोंको पूर्वाहारित पुद्गल परिणत हुए इत्यादि सर्व वर्णन नैरयिकोंकी तरह ही 'चलित कर्मकी निर्जरा करते हैं' तक जानना चाहिये।

नागकुमारों का आयुष्य जघन्य दश हजार वर्ष तथा उत्कृष्ट दो पल्योपमसे कुछ कम होता है। कमसे कम सात स्तोकमें तथा अधिकसे अधिक दो मुहूर्तसे नव मुहूर्तमें श्वास लेते हैं तथा छोड़ते हैं। नागकुमार आहारार्थी हैं। इनका दो प्रकार का आहार है। आभोगनिर्वर्तित और अनाभोग निर्वर्तित। अनाभोगनिर्वर्तित आहार की इच्छा इन्हें निरन्तर बनी रहती है। आभोगनिर्वर्तित आहार की अभिलाषा कमसे कम एक दिवस पश्चात् तथा अधिकसे अधिक दो दिनसे नव दिन पश्चात् होती है। शेष समस्त वर्णन असुरकुमारोंके सदृश ही है।

सुवर्णकुमारसे लेकर स्तनितकुमार तक का यही परिचय है।

पृथ्वीकायिकादि

(प्रश्नोत्तर २७ से ३४)

(४) पृथ्वीकायिक जीवोंकी स्थिति—आयुष्य जघन्य अन्तर्-मुहूर्त और उत्कृष्ट बावीस हजार वर्षकी है। श्वासोच्छ्वास लेनेकी इनकी मर्यादा नहीं। ये विमात्रा से श्वास लेते हैं तथा छोड़ते हैं। पृथ्वीकायिक जीव आहारके इच्छुक हैं तथा इनको निरन्तर आहारकी अभिलाषा बनी रहती है। 'ये द्रव्यसे अनन्त प्रदेशात्मक द्रव्योंका आहार करते हैं' इत्यादि सर्व वर्णन नैरयिकों के सदृश ही जानना चाहिये।

पृथ्वीकायिक जीव व्याघात न होने पर छओं दिशाओंसे आहार ग्रहण करते हैं। व्याघात होनेपर कभी तीन दिशाओं से, कभी चार दिशाओंसे, और कभी पांच दिशाओंसे आहार ग्रहण करते हैं। वर्णसे—काले, नीले, पीले, लाल केसरिया (हल्दिया) और श्वेत वर्णवाले द्रव्योंका, गन्धसे—सुरभित व दुरभित, रससे-तिक्तादि पांचों रसोंका, और स्पर्शसे—कर्कशादि आठों ही प्रकार के स्पर्शोंका आहार करते हैं। ये असंख्येय भागका आहार करते हैं तथा अनन्त भागको चखते हैं। ग्रहित पुद्गलों को वे स्पर्शेन्द्रिय रूपमें विषम मात्रा या विविध मात्रासे बारंबार परिणत करते हैं। 'ये अचलित कर्मकी निर्जरा नहीं करते हैं' इत्यादि समस्त वर्णन नैरयिकोंके सदृश ही जानना चाहिये।

जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक तथा वनस्पतिकायिक जीवोंका स्वरूप भी इसीप्रकार जानना चाहिये। इनमें मात्र स्थिति—आयुष्यकी भिन्नता है। जघन्य-न्यूनतम आयुष्य सबका अन्तर् मुहूर्त है और उत्कृष्ट निम्न प्रकार है :—

अप्कायिक जीवोंका सात हजार वर्ष, तैजस्कायिक जीवोंका तीन अहोरात्रि, वायुकायिक जीवोंका तीन हजार वर्ष और वनस्पतिकायिक जीवोंका दश हजार वर्ष है। श्वासोच्छ्वास सबका अमर्यादित है।[1]

१—अमर्यादित—पृथ्वीकायिक जीवोंकी उच्छ्वासादि क्रियायें विषम कालवाली हैं अतः कितने समय में होंगी, यह नही कहा जा सकता। इसलिये अमर्यादित शब्दका प्रयोग किया गया है।

द्वीन्द्रिय

(प्रश्नोत्तर नं ३४ से ३९)

द्वीन्द्रियका आयुष्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट बारह वर्षका है। श्वासोच्छ्वास अमर्यादित है। आहारके दो भेद हैं। आभोगनिर्वर्तित और अनाभोगनिर्वर्तित। द्वीन्द्रिय जीवोंको अनाभोगनिर्वर्तित आहार की इच्छा निरन्तर बनी रहती है। आभोगनिर्वर्तित आहार की अभिलाषा असंख्येय सामयिक अन्तर्मुहूर्त में होती है। 'ये मर्यादा रहित आहार करते हैं' आदि सर्व वर्णन अनन्तवें भाग को चखते हैं तक पूर्व-वत् जानना चाहिये।

द्वीन्द्रिय जीवोंका आहार दो प्रकार का होता है :—

रोमाहार—रोमद्वारा ग्रहित और प्रक्षेपाहार—मुखद्वारा ग्रहित। जिन पुद्गलोंका रोमाहार-रूपसे ग्रहण होता है वे सर्व अपरिशेष-बिना कुछ छूटे सम्पूर्णरूपसे [1]आहार में आते हैं। जिन पुद्गलोंका मुखद्वारा ग्रहण होता है उनका असंख्यातवां भाग ही आहार में आता है। शेष अनेक सहस्र भाग न चखने में आते हैं और न स्पर्शमें। वे विनष्ट हो जाते हैं। जिनका आस्वादन नहीं किया गया ऐसे पुद्गल सबसे कम है और अस्पर्शित पुद्गल उनसे अनन्त गुणित हैं। द्वीन्द्रिय जीव आहारित पुद्गल विविध प्रकारसे जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय रूपमें परिणत करते हैं। 'चलित कर्मकी ही निर्जरा करते है' यहाँ तक समस्त वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिये।

---

१ जो भोजन शरीर-निर्माणमें आए उसे आहार कहते हैं ।

त्रीन्द्रियादि

(प्रश्नोत्तर नं ४०-४१)

(६) त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंकी स्थितिमें अन्तर है। 'हजार भाग विना सूंघे, विना चखे तथा विना स्पर्श किये ही विनष्ट होते हैं' पर्यन्त सर्व वर्णन पूर्ववत् है। उन नहीं सूघाये, नहीं चखाये तथा नहीं स्पर्शित हुए पुद्‌गलोंमें सबसे कम अनुगंधित पुद्‌गल उनसे अनन्तगुणित अनास्वादित तथा उनसे अनन्त-गुणित अस्पर्शित पुद्‌गल है। त्रीन्द्रिय जीवोंद्वारा आहारित आहार नाक, जीभ व शरीर रूपमें हैं तथा चतुरिन्द्रियद्वारा आहारित आहार, आंख, नाक, जीभ तथा शरीर-रूपमें वारवार परिणत होता है।

मनुष्यादि

(प्रश्नोत्तर नं ४२-४३)

(७) पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों की स्थिति (जघन्य अन्तरमुहूर्त तथा उत्कृष्ट तीन पल्योयम की है) कही है। इनका श्वासोच्छ्वास अमर्यादित है। अनाभोगनिर्वर्तित आहार की इच्छा इन्हें निरन्तर होती है। आभोगनिर्वर्तित आहार की इच्छा जघन्य अन्तरमुहूर्तमें तथा उत्कृष्ट छट्ठभक्त—दो-दो दिवसके पश्चात् होती है। 'चलित कर्मको निर्जरते हैं' यहां तक शेष समस्त वर्णन चतुरिन्द्रिय के सदृश ही जानना चाहिये। आहारित आहार कान, आंख, नाक, जिह्वा तथा शरीर रूपमें वारवार विमात्रा से परिणत करते हैं।

मनुष्योंका वर्णन इसीप्रकार—तिर्यंच पंचेन्द्रिय योनिकोंकी

तरह ही समझना चाहिये। विशेष-अन्तर यह है कि इन्हें आभोगनिर्वर्तित आहार की इच्छा जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट अट्ठभक्त—तीन-तीन दिवसके अनन्तर होती है। कान, आख, नाक, जिह्वा तथा शरीररूपमें ग्रहित आहार ये अमर्यादित रूपसे बार-बार परिणत करते हैं। 'चलित कर्मकी निर्जरा करते हैं' यहाँ तक सर्व वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिये।

वाणव्यन्तरादि

(प्रश्नोत्तर नं ४४ से ४७)

(८) वाणव्यंतरों की स्थिति[1] में अन्तर है। शेष समस्त वर्णन नागकुमारों की तरह जानना चाहिये। ज्योतिष्क देवोंके संबंधमें भी यही बात है। ([2]स्थितिमें अन्तर है) विशेष अन्तर यह है कि इन्हें श्वासोच्छ्वास जघन्य व उत्कृष्ट मुहूर्त-पृथक्त्व के पश्चात् होता है। आहारकी इच्छा भी जघन्य व उत्कृष्ट दिवसपृथक्त्वसे होती है। वैमानिक देवोंके सम्बन्धमें भी यही है। [3]स्थितिमें अन्तर है। विशेष यह है कि इन्हें श्वासोच्छ्वास जघन्यमें मुहूर्तपृथक्त्वके पश्चात् तथा उत्कृष्ट में तैंतीस पक्ष पश्चात् होता है। आभोगनिर्वर्तित आहारकी इच्छा जघन्य में दिवसपृथक्त्व के पश्चात् तथा उत्कृष्टमें तैतीस हजार वर्ष पश्चात् होती है।

१—जघन्य दश हजार वर्ष तथा उत्कृष्ट एक पल्योपम।

२—जघन्य में एक पल्योपम का आठवां भाग उत्कृष्ट एक पल्योपम व एक लाख वर्ष अधिक।

३—जघन्य एक पल्योपम व उत्कृष्ट तैंतीस सागरोपम।

आत्मारम्भादि

(प्रश्नोत्तर नं ४७ से ५३)

(६) कितने ही जीव आत्मारम्भ—स्वतः घात करनेवाले और कितने ही परारम्भ—दूसरोंके द्वारा घात करानेवाले तथा कितने ही उभयारम्भ—स्वतः करनेवाले या दूसरोंके द्वारा कराने वाले भी हैं परन्तु अनारम्भ नहीं हैं। कितने ही जीव परारम्भ और उभयारम्भ भी नहीं हैं परंतु अनारम्भ हैं।

जीव दो प्रकारके हैं—संसार-समापन्नक और असंसारसमापन्नक। इनमें जो असंसारसमापन्नक हैं वे सिद्ध जीव हैं। सिद्ध जीव आत्मारम्भ, परारम्भ या उभयारंभ नहीं है परंतु अनारम्भ हैं। संसारसमापन्नक—संसारी जीव दो प्रकारके हैं-संयत और असंयत। उनमें जो संयत हैं वे भी दो प्रकारके हैं—प्रमत्त संयत और अप्रमत्त संयत। अप्रमत्त संयत जीव आत्मारम्भ, परारम्भ और उभयारम्भ नहीं हैं परंतु अनारम्भ हैं। प्रमत्तसंयत शुभयोग की अपेक्षासे आत्मारम्भ, परारम्भ अथवा उभयारम्भ नहीं हैं परंतु अनारम्भ हैं और अशुभयोगकी अपेक्षासे आत्मारम्भ, परारम्भ व उभयारम्भ हैं परंतु अनारम्भ नहीं।

जो असंयती हैं वे अविरतिकी अपेक्षासे आत्मारम्भ, परारम्भ व उभयारम्भ हैं परंतु अनारम्भ नहीं। हेतु या कारणके द्वारा ही इनका इसप्रकार विभाजन किया जाता है।

अविरतिकी अपेक्षासे नैरयिकोंसे असुरकुमार पर्यन्त सभी आत्मारम्भ, परारम्भ और उभयारम्भ हैं परन्तु अनारम्भ नहीं। सामान्य जीवोंकी अपेक्षासे पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्योंको जानना चाहिये—इनमें सिद्ध भगवान् व विभाजित

भांगोंमें अनुसार मनुष्योंको छोड़कर—सर्व उपर्युक्त प्रकारके हैं। नैरयिकों के सदृश ही वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क व वैमानिकों को जानना चाहिये।

सलेशी जीव सामान्य जीवोंके सदृश ही जानने चाहिये। कृष्णलेश्या व नीललेश्यावाले जीव भी सामान्य जीवोंके समान ही हैं परन्तु इनमें प्रमत्त और अप्रमत्त का कथन नहीं करना चाहिये। तेजोलेश्या, पद्मलेश्या व शुक्ललेश्यावाले जीव भी सामान्य जीवोंके समान ही है। इन जीवोंमें सिद्ध अलेशी होने से नहीं हैं।

ज्ञानादि

(प्रश्नोत्तर नं ५४-५५)

(१०) ज्ञान इहभविक, पारभविक और उभयभविक भी है। दर्शन भी इसीप्रकार है। चारित्र इहभविक है, पारभविक अथवा उभयभविक नहीं। तप और संयमको भी चारित्रके तरह ही समझना चाहिये।

असंवृत अनगार

(प्रश्नोत्तर नं ५६-५७)

(११) असंवृत अनगार सिद्ध नहीं होते, बोध नहीं पाते, कर्मविमुक्त नहीं होते, निर्वाण प्राप्त नहीं करते एवं समस्त दुःखों का अन्त भी नहीं करते है। क्योंकि असंवृत अनगार आयुष्य कर्मको छोड़कर शिथिल बन्धन से बन्धी हुई सात कर्म-प्रकृतियों को घन बन्धन में बान्धना प्रारम्भ करता है। ह्रस्व-अल्पकालिक स्थितिको दीर्घकालिक बनाता है, मन्द अनुभागवाली को तीव्र

द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम तथा सन्निवेशमें अकाम तृष्णा, अकाम क्षुधा, अकाम ब्रह्मचर्य, अकाम शीत, आताप, डांस तथा मच्छरोंसे होनेवाले दुख सहते हों तथा अस्नान, स्वेद, मेल, मल, पंक तथा परिदाहसे अल्पकाल या दीर्घकाल पर्यन्त आत्माको क्लेशित करते हैं तथा क्लेशित करते हुए मरणकाल में मरकर वाणव्यन्तर देवलोकोंके किसी भी देवलोक में देवता रूपसे उत्पन्न होते हैं।

वाणव्यन्तर देवावास

(प्रश्नोत्तर नं० ६२)

जिसतरह इस मनुष्य-लोकमें सदैव कुसुमित, मंजरीयुक्त, पुष्पगुच्छयुक्त, लतासमूहयुक्त, पत्रोंके गुच्छोंवाले, समान श्रेणि वाले, युगलवृक्षवाले, पुष्प और फलोंके भारसे नमित, पुष्प एवं फलोंके भारसे नमित होनेवाले तथा विभिन्न टहनियों और मंजरियोंके मुकुटको धारण करनेवाले अशोकवन, विटपवन, चंपकवन, आम्रवन, तिलकवन, अलंबुक (तुम्बा, वन, वटवृक्षवन, छत्रौघवन, अलसीवन, सर्सपवन, कुसुमवन, श्वेत सर्सपवन या बंधुकवन—दुपहरियावृक्षोंकावन, अत्यन्त शोभासे सुशोभित होते हैं उसीतरह ये जघन्य दशहजार वर्ष व उत्कृष्ट एक पल्योपमकी स्थितिवाले वाणव्यन्तर देव और देवियोंसे व्याप्त, विशेष व्याप्त, ऊपराऊपर आच्छादित, स्पर्शित व अवगाढित वाणव्यन्तर देवताओंके स्थान अत्यन्त सुशोभित रहते हैं।

प्रथम शतक

द्वितीय उद्देशक

द्वितीय उद्देशकमें वर्णित विषय

[एक जीव या अनेक जीव स्वयंकृत दुख तथा आयुष्य वेदन करते हैं या नहीं—विचार, समस्त नैरयिक समान आहार, समान शरीर, समान श्वासोच्छ्वास वाले हैं या नहीं; इस सम्बन्धमें सकारण विचार, पूर्वोपपन्नक-पश्चादुपपन्नक नैरयिक वर्ण, लेश्या, पीड़ा, क्रिया, आयुष्य आदिमें समान हैं या नहीं—सकारण विचार, नैरयिकोंकी तरह उपर्युक्त विषयों पर चौबीस दंडकके जीवों पर विचार—तुल्यता एवं विशेषता, संसार-संस्थानकाल—नैरयिक संसार-संस्थानकाल, तिर्यंच संसार-संस्थानकाल, मनुष्य एवं देव संसार-संस्थानकाल, जीव अन्त-क्रिया, चरकपरिव्राजक, किल्विषिक, तिर्यंच, आजीविक तथा सम्यक्त्व रहित आदि देवलोकमें जाते हैं या नहीं—क्रमशः विवेचन, असंज्ञी आयुष्य। प्रश्नोत्तर संख्या ४९]

(प्रश्नोत्तर नं० ६३-६५)

(१५) जीव स्वयंकृत दुख कितनाक वेदन करता है और कितनाक नहीं। क्योंकि वह उदीर्ण कर्म वेदन करता है, अनुदीर्ण कर्म नहीं। यह बात चौबीसों ही दंडक—वैमानिकपर्यन्त समझनी चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० ६६-६७)

(१६) अनेक जीव स्वयंकृत दुख कितनाक वेदन करते हैं और कितनाक नहीं। वे उदीर्ण कर्म वेदन करते हैं अनुदीर्ण कर्म नहीं। यह बात चौबीसों ही दंडक—वैमानिकपर्यन्त समझनी चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० ६८)

(१७) जीव स्वयंकृत आयुष्य कितनाक वेदन करता है और कितनाक नहीं। जिसप्रकार दुखके सम्बन्धमें दो दंडक—भेद कहे गये हैं; उसीप्रकार आयुष्यसम्बन्धी उक्त एकवचन और बहुवचनवाले दंडक समझने चाहिये। एकवचन व बहुवचनके लिये भी वैमानिक पर्यन्त कहने चाहिये।

नैरयिक

(प्रश्नोत्तर ६९-८२)

(१८) समस्त नैरयिक समान आहारवाले, समान शरीरवाले तथा समान श्वासोच्छ्वासवाले नहीं हैं। क्योंकि नैरयिक दो प्रकारके हैं। स्थूलशरीरवाले और लघुशरीरवाले। स्थूलशरीरवाले नैरयिक बहुत पुद्गलोंका आहार करते हैं, बहुत पुद्गलोंको परिणत करते हैं तथा बहुत श्वासोच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। वे पुनः पुनः आहार करते हैं, परिणत करते हैं और उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। लघुशरीरी नैरयिक अल्प पुद्गलोंका आहार व परिणमन करते हैं, अल्प श्वासोच्छ्वास लेते हैं। वे कदाचित् आहार करते हैं तथा कदाचित् उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं।

समस्त नैरयिक समान कर्म, समान वर्ण तथा समान लेश्यावाले नहीं हैं। क्योंकि नैरयिक दो प्रकारके हैं—पूर्वोपपन्नक—पूर्वोत्पन्न और पश्चाद्-उपपन्नक—पश्चात्-उत्पन्न। पूर्वोत्पन्न अल्प कर्मवाले, विशुद्ध वर्णवाले तथा विशुद्ध लेश्यावाले हैं तथा पश्चाद्-उत्पन्न महाकर्मवाले, अविशुद्ध वर्णवाले तथा अविशुद्ध लेश्यावाले हैं।

समस्त नैरयिक समान वेदनावाले नहीं हैं। क्योंकि नैरयिक

दो प्रकारके हैं—संज्ञीभूत और असंज्ञीभूत । संज्ञीभूत महावेदना-वाले हैं तथा असंज्ञीभूत अल्पवेदनावाले हैं ।

समस्त नैरयिक समान क्रियावाले भी नहीं हैं । क्योंकि नैर-यिक तीन प्रकारके हैं—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि व सम्यग्मिथ्या-दृष्टि । जो सम्यग्दृष्टि हैं उन्हें चार प्रकारकी क्रियायें होती हैं—आरंभिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया और अप्रत्याख्यानक्रिया । मिथ्यादृष्टियोंको पांच प्रकारकी क्रियायें होती हैं—आरंभिकी[1], पारिग्रहिकी[2], मायाप्रत्यया[3], अप्रत्याख्यानक्रिया[4] तथा मिथ्यादृष्टिप्रत्यया[5] । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंको भी उपर्युक्त पांच प्रकारकी क्रियायें होती हैं ।

समस्त नैरयिक समान वयस् तथा समोपपन्नक—साथमें उत्पन्न, नहीं होते । क्योंकि नैरयिक चार प्रकारके हैं—समायुपी समोपपन्नक, विपमायुपी तथा विपमोपपन्नक । इनमें कितनेक समायुपी—समानवयवाले, कितनेक समोपपन्नक-साथ २ उत्पन्न होनेवाले, कितनेके विपमायुपी—विपम आयुष्यवाले तथा कितनेक विपमोपपन्नक—विपम उत्पन्न हैं ।

असुरकुमारादि

(प्रश्नोत्तर नं० ८२-८३)

(१६) असुरकुमारोंके संबंधमें भी उपर्युक्त समस्त बातें नैरयिकों

---

१ जिस क्रियासे जीवोंका हनन हो, उसे आरंभिकी कहते हैं ।

२ परिग्रहके निमित्तसे होनेवाली क्रिया पारिग्रहिकी ।

३ जिस क्रिया का निदान माया हो, उसे मायाप्रत्यया कहते हैं ।

४ बिना किसी त्याग-प्रत्याख्यानके सर्वत्र प्रवृत्त हो जो क्रिया की जाती है, उसे अप्रत्याख्यानक्रिया कहते हैं ।

५ जिस क्रिया का कारण मिथ्यादर्शन हो, वह मिथ्यादृष्टिप्रत्यया ।

के सदृशही जाननी चाहिये। अन्तर यह है कि असुरकुमारोंके कर्म, वर्ण और लेश्यायें नैरयिकोंसे विपरीत हैं। जो असुरकुमार पूर्वोत्पन्न हैं, वे महाकर्मवाले, अविशुद्धवर्ण तथा अविशुद्धलेश्या-वाले है। जो पश्चादुत्पन्न है, वे प्रशस्त है। इसीप्रकार स्तनित-कुमारों तक जानना चाहिये।

पृथ्वीकायिकादि

(प्रश्नोत्तर नं० ८४-८८)

(२०) पृथ्वीकायिक जीवोंका आहार, कर्म, वर्ण और लेश्या-संबंधी सर्व वर्णन नैरयिकोंके सदृश ही जानना चाहिये। वेदनामें अन्तर है। समस्त पृथ्वीकायिक जीव समान वेदनावाले हैं। क्योंकि पृथ्वीकायिक [1]असंज्ञी हैं। असंज्ञी होनेसे [2]असंज्ञीभूत वेदना अनिर्धारितरूपसे वेदन करते हैं।

समस्त पृथ्वीकायिक जीव समानक्रियावाले हैं। क्योंकि सव पृथ्वीकायिक जीव मायावी व मिथ्यादृष्टि हैं। उनको आरंभिकीसे मिथ्यादृष्टिप्रत्यया तक पांचों क्रियायें नियमपूर्वक होती है। इसीकारण पृथ्वीकायिक जीव समानक्रियावाले है।

समस्त पृथ्वीकायिक जीव समायुषी या समोपपन्नक हैं या नहीं, इस विषयमें सर्व वर्णन नैरयिकोंके सदृश ही जानना।

द्वीन्द्रियादि

(प्रश्नोत्तर नं ८९-९२)

(२१) जिसप्रकार पृथ्वीकायिक कहे गये हैं उसीप्रकार, चतुरिन्द्रिय पर्यन्त सर्व जीवोंके संबंधमें जानना चाहिए।

१—जिन जीवोंके मन नहीं होता उन्हें असंज्ञी कहते हैं।

२—असंज्ञियोंको अनुभव होनेवाली वेदना असंज्ञीभूत कही जाती हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच-योनिकोंको नैरयिकोंके समान जानना चाहिये। मात्र क्रियाओंमें भेद है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच तीन प्रकारके हैं—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि। इनमें जो सम्यग्दृष्टि हैं वे दो प्रकारके हैं—असंयत और संयता-संयत। संयतासंयत जीवोंको आरंभिकी, पारिग्रहिकी और मायाप्रत्यया ये तीन प्रकारकी क्रियायें लगती हैं। असंयत जीवोंको चार, मिथ्यादृष्टिको पांच तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टिको भी पांच प्रकारकी क्रियायें लगती हैं।

मनुष्य

(प्रश्नोत्तर नं ९३-९५)

(२२) नैरयिकोंके सदृश ही मनुष्योंको जानना चाहिये। विशेष अन्तर यह है कि जो मनुष्य दीर्घ शरीरवाले हैं वे बहुत पुद्गलोंका आहार करते हैं तथा कदाचित्[1] आहार करते हैं। जो मनुष्य लघु शरीरवाले हैं वे अल्प पुद्गलोंका आहार करते हैं और बारंबार [2]आहार करते हैं। वेदना पर्यन्त शेष सर्व वर्णन नैरयिकोंकी तरह जानना चाहिये।

समस्त मनुष्य समान क्रियावाले नहीं हैं। क्योंकि मनुष्य तीन प्रकारके हैं—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टि। इनमें जो सम्यग्दृष्टि हैं, वे तीन प्रकारके हैं—संयत, संयतासंयत और असंयत। संयत सम्यग्दृष्टि दो प्रकारके हैं—सराग संयत और वीतराग संयत। वीतराग संयत विना क्रियाके हैं। सराग संयत दो प्रकारके हैं—प्रमत्त संयत और अप्रमत्त संयत। इनमें

१—देवकुरु-उत्तरकुरुके मनुष्योंकी अपेक्षा।

२—बालक व समूर्च्छिम मनुष्योंकी अपेक्षा ;

जो अप्रमत्त संयत हैं, उन्हें मात्र मायाप्रत्ययां क्रिया लगती है और जो प्रमत्तसंयत हैं उन्हें आरंभिकी और मायाप्रत्यया ये दो क्रियायें लगती हैं। संयतासंयत सम्यग्दृष्टिको तीन—आरंभिकी पारिग्रहिकी और मायाप्रत्यया, असंयतीको चार—आरंभिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया और अप्रत्याख्यानप्रत्यया, मिथ्या-दृष्टि तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टिको पाँच—आरंभिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया, अप्रत्याख्यानप्रत्यया तथा मिथ्यादर्शनप्रत्यया, क्रियायें लगती हैं।

देव

(प्रश्नोत्तर नं० ९६)

(२३) वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकोंको असुरकुमारों की तरह जानना चाहिये। वेदनामें अन्तर है। ज्योतिष्क और वैमानिकोंमें जो मायीमिथ्यादृष्टिसमुत्पन्न हैं, वे अल्प वेदना वाले होते हैं और जो अमायीसम्यग्दृष्टिसमुत्पन्न हैं, वे महा वेदनावाले होते हैं।

सलेशी जीव व लेश्या

(प्रश्नोत्तर नं ९७-९८)

(२४) लेश्यायुक्त समस्त नैरयिक समान आहारवाले हैं या नहीं, इस सम्बन्धमें औधिक—सामान्य, सलेश्य और शुक्ल-लेशी इन तीनोंका एक गम जानना चाहिये। कृष्णलेश्या और नीललेश्यावालोंका भी समान गम जानना परन्तु वेदनामें विभेद है। मायी और मिथ्यादृष्टिसमुत्पन्न अधिक वेदनावाले तथा अमायी व सम्यग्दृष्टिसमुत्पन्न अल्प वेदनावाले हैं। कृष्ण और नील लेश्यामें मनुष्यको सरागसंयत, वीतरागसंयत, प्रमत्त

संयत या अप्रमत्तसंयत नहीं कहना चाहिये। कापोत लेश्यामें भी यही गम जानना चाहिए परन्तु कापोत लेश्यावाले नैरयिकोंको औधिक दंडककी तरह जानना चाहिये। जिन्हें तैजस् एवं पद्म लेश्या है उन्हें औधिक दंडकके अनुसार कहना चाहिये। विशेषान्तर यह है कि मनुष्योंके सराग एवं वीतराग ये दो भेद इनमें नहीं आते।

गाथा

दुख—कर्म और आयुष्य यदि उदीर्ण हों तो वेदन होते हैं। आहार, कर्म, वर्ण, लेश्या, वेदना, क्रिया और आयुष्य इन सबोंके सम्बन्धमें पूर्ववत् जानना।

(२५) लेश्यायें छः हैं[1]। यहाँ प्रज्ञापना सूत्रमें कथित चार उद्देशकवाले लेश्यापदका द्वितीय उद्देशक—ऋद्धिकी वक्तव्यता तक जानना चाहिये।

संसारसंस्थानकाल

(प्रश्नोत्तर नं ९९ से १०६)

(२६) अतीत कालमें [2]आदिष्ट जीवका [3]संसारसंस्थानकाल चार प्रकारका है—नैरयिक संसारसंस्थानकाल, तिर्यंच संसारसंस्थानकाल, मनुष्य संसारसंस्थानकाल और देव संसार-

---

1 कृष्ण लेश्या, नील लेश्या कापोत लेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ल लेश्या।

२ नारक-तिर्यंचादि विशेषणविशिष्ट।

३ एक भवसे—एक जीवनसे अन्य भव अन्य जीवनमें ले जानेवाली क्रिया और उसके समयको संसारसंस्थानकाल कहते हैं। संक्षिप्तमें कौन जीव अतीतमें किन-किन गतियोंमें अवस्थित था, यह अर्थ ध्वनित होता है।

संस्थानकाल। इनमें नैरयिक संसारसंस्थानकाल तीन प्रकारका है—[1]अशून्यकाल, [2]मिश्रकाल और [3]शून्यकाल। तिर्यंच संसारसंस्थानकाल दो प्रकारका है—अशून्यकाल व मिश्रकाल। मनुष्य और देव संसारसंस्थानकाल नैरयिककी तरह तीन प्रकारका हैं। नैरयिक संस्थानकालके विभेदोंमें सबसे न्यून अशून्यकाल, उससे अनन्तगुणित मिश्रकाल और उससे अनन्तगुणित शून्यकाल है। तिर्यंचयोनिकसंस्थानकाल, मनुष्ययोनिकसंस्थानकाल तथा देवयोनिकसंस्थानकालके विभेदोंमें नैरयिक संसारसंस्थान-कालके विभेदोंकी तरह ही न्यूनाधिकता जाननी चाहिये। इन चार संस्थान कालोंमें मनुष्यसंसारसंस्थानकाल सबसे न्यून, उससे असंख्येय गुणित नैरयिकसंसारसंस्थानकाल, उससे असं-ख्येय गुणित देवसंसारसंस्थानकाल और उससे अनन्त गुणित तिर्यंचसंसारसंस्थानकाल है।

अन्तक्रिया

(प्रश्नोत्तर नं० १०७)

(२७) कोई जीव अन्तक्रिया* करते हैं कोई जीव नहीं। इस

१—अशून्यकाल—वर्तमानमें सातों ही नर्क भूमियों जितने भी नैरयिक अवस्थित हैं उनमेंसे जबतक कोई भी नैरयिक उद्वृत्त (मरे) न हो और न उनमें अन्य जीव ही समुत्पन्न हों, जितने हैं उतने ही रहे, वह काल अशून्यकाल कहा जाता है।

२—मिश्रकाल—उद्वर्तन होते हुए जहाँतक एक भी नैरयिक शेष रहे, वहांतक मिश्रकाल।

३—शून्यकाल—वर्तमान समयके समस्त नैरयिकोंका निर्लेप होना—शून्यकाल।

*कर्मनाश कर मोक्ष-प्राप्त करानेवाली क्रिया अन्तक्रिया कही जाती है।

सम्बन्धमें विशेष वर्णनके लिये प्रज्ञापना सूत्रका 'अन्तक्रिया' नामक पद (बीसवां) जानना चाहिये।

उपपात

(प्रश्नोत्तर नं १०८)

(२८) देवत्व प्राप्त करने योग्य संयमरहित, अखंडित संयमित, खंडित संयमित, अखंडित संयमासंयमित, असंज्ञी, तापस, कांदर्पिक चरकपरिव्राजक या चरक और परिव्राजक, किल्विपिक, तिर्यंचयोनिक, आजीविक, आभियोगिक तथा दर्शनभ्रष्ट वेषधारक जीवोंमें निम्न-निम्न लोकोंमें उत्पन्न होते हैं।

संयमरहित जीव जघन्य भवनपतिमें और उत्कृष्ट ऊपरके ग्रैवेयकमें, अखंडित संयमित जघन्य सौधर्मकल्पमें तथा उत्कृष्ट सर्वार्थसिद्धमें, खंडित संयमासंयमित जघन्य भवनपतिमें तथा उत्कृष्ट ज्योतिष्कमें और असंज्ञी जघन्य भवनपतिमें और उत्कृष्ट बाणव्यन्तरमें उत्पन्न होते हैं। शेष अन्य जीव जघन्य भवनपतिमें और उत्कृष्ट निम्न प्रकार उत्पन्न होते हैं।

तापस ज्योतिष्कमें, कांदर्पिक—कंदर्पकी कथा करनेवाले सौधर्मकल्पमें, चरकपरिव्राजक ब्रह्मलोकमें, किल्विषिक लांतक कल्पमें, तिर्यंच सहस्रारकल्पमें, आजीविक व आभियोगिक अच्युत् कल्पमें तथा दर्शनभृष्ट वेपधारक ऊपरके गैवेयक में।

असंज्ञी आयुष्य

(प्रश्नोत्तर नं० १०९-१११)

(२९) असंज्ञी जीवोंका आयुष्य चार प्रकारका है। नैरयिक असंज्ञी-आयुष्य, तिर्यञ्च असंज्ञी-आयुष्य, मनुष्य असंज्ञी-आयुष्य,

और देव असंज्ञी-आयुष्य। असंज्ञी जीव नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य और देवताओंका आयुष्य भी बान्धते हैं। नैरयिक के आयुष्यको बान्धते हुए असंज्ञी जीव जघन्य दश हजार वर्ष तथा उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्येय भागका आयुष्य बान्धते हैं। तिर्यंचका आयुष्य बान्धते हुए असंज्ञी जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्येय भागका आयुष्य बान्धते हैं। मनुष्यका तिर्यंचकी तरह तथा देवताका नैरयिककी तरह आयुष्य-काल जानना चाहिये।

नैरयिक असंज्ञी-आयुष्य, तिर्यञ्च असंज्ञी-आयुष्य, मनुष्य असंज्ञी-आयुष्य तथा देव असंज्ञी-आयुष्यमें अल्पत्व तुल्यत्व तथा विशेषाधिकत्वमें निम्न विभेद हैं :—

देव असंज्ञी-आयुष्य सबसे अल्प है, उससे मनुष्य असंज्ञी-आयुष्य असंख्येय गुणित है, उससे तिर्यञ्च असंज्ञी-आयुष्य असंख्येय गुणित है, उससे नैरयिक असंज्ञी आयुष्य असंख्येय गुणित उत्तरोत्तर अधिक है।

प्रथम शतक

तृतीय उद्देशक

तृतीय उद्देशक में वर्णित विषय

[कांक्षामोहनीय कर्म जीवकृत है—नैरयिकादि चौबीस ही दंडकोंके विषयमें विचार, कांक्षामोहनीयकर्म-वेदनकी रीति, जिनभाषित सत्य, जिनाज्ञाराधक, अस्तित्व एवं नास्तित्वके परिणामका विचार, कांक्षामोहनीय बंध,—बंधके प्रमाद-योगादि कारण, कांक्षामोहनीय कर्म-वेदन—चौबीस ही दंडकोंके विषयमें विचार, श्रमण-निर्ग्रन्थ कांक्षामोहनीय कर्म-वेदन करते हैं। प्रश्नोत्तर संख्या ३४]

(प्रश्नोत्तर नं० ११२-११८)

(३०) जीवों सम्बन्धी [1]कांक्षामोहनीयकर्म–मिथ्यात्वमोहनीय [2]क्रियानिष्पाद्य है। यह देशसे देशकृत, देशसे सर्वकृत और सर्वकृतसे देशकृत नहीं परन्तु सर्वकृतसे सर्वकृत है। नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवोंका कांक्षामोहनीय कर्म सर्वकृत है।

जीवोंने अतीतमें जो कांक्षामोहनीय कर्म किया, वर्तमानमें करते हैं और भविष्यमें करेंगे, वह सर्वसे सर्वकृत है।

वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये इसीप्रकार जानना।

१—अपने दर्शनमें विश्वास न रख, विभिन्न मतोंमें विश्वास करना तथा उनका अवलम्बन करना, कांक्षामोहनीय कर्म कहा जाता है।

२—कडे, त्ति—कृत है—जो कृत हो वही कर्म कहा जा सकता है। कांक्षामोहनीयकर्म भी किया जाता है अतः यह भी कर्म है।

कृतकी तरह ही चय, उपचय, उदीरित, वेदित और निर्जीर्ण के भी तीनों कालोंकी अपेक्षा अभिलाप—विभेद करने चाहिये। जैसे चय किया, उपचय करते हैं और उपचय करेंगे, उदीरित किया, उदीर्ण करते हैं और उदीर्ण करेंगे, वेदन किया, वेदन करते हैं तथा वेदन करेंगे, निर्जीर्ण किया, निर्जीर्ण करते हैं और निर्जीर्ण करेंगे।

गाथा

कृत, चित, उपचित, उदीरित, वेदित और निर्जीर्ण ये अभिलाप—विभेद यहाँ कहने चाहिये। इनमें आदिके तीनमें सामान्य सहित चार, और अन्तके तीनमें मात्र तीन कालकी क्रियायें है।

जीव कांक्षामोहनीय कर्म शंकित, कांक्षित विचिकित्सित, भेदसमापन्नक और कलुषसमापन्नक होकर वेदन करता है।

(प्रश्नोत्तर नं० ११९-१२०)

(३१) 'जो जिन भगवानने कहा, वह सत्य एवं निःशंक है'। इसप्रकारकी धारणा मनमें धारण करता हुआ, व्यवहृत करता हुआ और संवरण करता हुआ प्राणी आज्ञाराधक होता है।

अस्तित्व और नास्तित्व

(प्रश्नोत्तर नं० १२१ से १२५)

(३२) [1]अस्तित्व अस्तित्वमें और नास्तित्व [2]नास्तित्व में परिणत होता है। यह परिणमन प्रयोग—जीव-व्यापार तथा स्वभावसे होता है। जिसप्रकार मेरा अस्तित्व अस्तित्वमें परिणत होता है उसीप्रकार मेरा नास्तित्व-नास्तित्वमें परिणत होता है।

१—जो पदार्थ जिसरूपमें है उस पदार्थका उसीरूपमें रहना ही अस्तित्व कहा जाता है। अस्तित्व अर्थात् सत्। २—नास्तित्व—असत्।

जिसप्रकार मेरा नास्तित्व-नास्तित्वमें परिणत होता है उसीप्रकार मेरा अस्तित्व-अस्तित्वमें परिणत होता है।

अस्तित्व अस्तित्वमें और नास्तित्व नास्तित्वमें गमनीय है। जिसप्रकार परिणमनके दो आलापक—विभेद कहे हैं उसीप्रकार गमनीयके भी दो आलापक जानने चाहिये। 'मेरा अस्तित्व अस्तित्वमें गमनीय है' तक वही वर्णन जानना।

जैसा मेरा यहाँ गमनीय है वैसा मेरा वहाँ गमनीय है, जैसा मेरा वहाँ गमनीय है वैसा मेरा यहाँ गमनीय है।

कांक्षामोहबंधादि

(प्रश्नोत्तर नं० १२६-१४५)

(३३) प्रमादरूपी हेतु तथा योगरूपी निमित्तसे जीव कांक्षा-मोहनीय कर्म बांधते हैं। प्रमाद योग—मन-वचन-कायाके व्यापार से उत्पन्न होता है और योग वीर्यसे उत्पन्न होता है। वीर्य शरीरसे और शरीर जीवसे उत्पन्न होता है। इसप्रकार उत्थान, कर्म, बल वीर्य, पुरुषाकार पराक्रममें जीव ही कारण है।

जीव स्वयं ही कांक्षामोहनीयकर्मको उदीर्ण करता है, स्वयंही निन्दा करता है और स्वयंही संवरता है। वह उदीर्ण, अनुदीर्ण तथा उदयानन्तरपश्चात्कृत कर्मोंको नहीं उदीर्ण करता परन्तु अनुदीर्ण व उदीरणायोग्य कर्मोंको उदीर्ण करता है। वह अनुदीर्ण तथा उदीरणायोग्य कर्मोंको उत्थान, कर्म, बल, वीर्य व पुरुषाकार, पराक्रमसे उदीर्ण करता है परन्तु अनुत्थान, अकर्म, अबलं, अवीर्य तथा अपुरुषाकार पराक्रमसे नहीं। अतः जब ऐसा है, तो उत्थान, बल, वीर्य और पुरुषाकार पराक्रम भी हैं ही।

जीव स्वयं ही कांक्षामोहनीयकर्म उपशमित करता है, गर्हित करता है तथा संवरण करता है, वह अनुदीर्णको उपशमित करता है, शेष तीनोंको नहीं। वह उत्थान, कर्म, वीर्य व पुरुषाकार पराक्रमसे शमित करता है, अनुत्थान आदिसे नहीं।

जीव स्वयं ही कांक्षामोहनीय कर्मोंको गर्हित करता हैं तथा वेदन करता है। यहाँ भी पूर्वोक्त परिपाटी ही जाननी चाहिये। विशेषान्तर यह कि उदीर्णको वेदन करता है अनुदीर्णको नहीं।

नैरयिक सामान्य जीवोंकी तरह ही कांक्षामोहनीयकर्म वेदन करते हैं। इसीप्रकार स्तनितकुमारोंतक जानना चाहिये।

पृथ्वीकायिक जीव भी कांक्षामोहनीयकर्म वेदन करते हैं। उनके तर्क, संज्ञा, प्रज्ञा, मन और वचन नहीं है। वे 'हम कांक्षामोहनीयकर्म वेदन करते है' यह अनुभव नहीं करते, फिरभी वे वेदन तो करते ही हैं। शेष पूर्ववत्—'पुरुषाकार पराक्रमके द्वारा निर्जीर्ण करते हैं' तक जानना चाहिये।

चार इन्द्रियवाले प्रणियों, पंचेन्द्रिय तिर्यंच व वैमानिक देवताओं तक पूर्ववत् ही जानना।

श्रमण-निर्ग्रन्थ भी कांक्षामोहनीयकर्म ज्ञानान्तर, दर्शनान्तर, चारित्रान्तर, लिंगांतर, प्रवचनान्तर, प्रावचनिकांतर, कल्पान्तर, मार्गान्तर, भंगान्तर, नियमान्तर, प्रमाणान्तर द्वारा तथा शंकावाले, कांक्षावाले, विचिकित्सावाले, भेदसमापन्नक और कलुष समापन्नक होकर वेदन करते हैं। यह सत्य है तथा जिनों द्वारा प्ररूपित है। 'पुरुषाकार पराक्रम द्वारा कर्म निर्जरित्त करते है'—तक पूर्ववत जानना चाहिये।

गुणस्थानसे हीन गुणस्थानमें जाया, करता है। यह अपक्रमण बालवीर्य से होता है। कभी कभी बालपंडितवीर्यसे भी होता है परन्तु पंडितवीर्य से नहीं।

जिसप्रकार उदयके दो आलापक हैं, उसी प्रकार ही उपशान्तके दो आलापक हैं। विशेषान्तर यह है कि यहाँ पंडितवीर्यसे उपस्थान होता है और बालपंडितवीर्यसे अपक्रमण होता है। यह अपक्रमण आत्माद्वारा होता है परन्तु अनात्मा द्वारा नहीं।

मोहनीय कर्म वेदन करते हुए जीव इस-इस प्रकार परिवर्तित क्यों हो जाते हैं, इसका कारण अभिरुचिका अन्तर है। पहले उनको इस-इस प्रकारकी—पंडितवीर्यकी रुचि थी पर अब उनकों इस-इस प्रकारकी रुचि नहीं है।

(प्रश्नोत्तर नं १५४-१५५)

(३६) कृत पापकर्म वेदन किये विना नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य और देवोंकी विमुक्ति नहीं, अर्थात् उनको मोक्ष प्राप्त नहीं होता। क्योंकि कर्म दो प्रकारके हैं—प्रदेश कर्म और अनुभागकर्म। इनमें जो प्रदेशकर्म है, वह पूर्णरूपसे वेदन करना ही पड़ता है परन्तु अनुभाग कर्म कितनाक वेदन होता है और कितनाक नहीं।

अर्हतों द्वारा यह ज्ञात, स्मृत और विज्ञात है कि यह जीव इस कर्मको आभ्युपगमिक वेदना द्वारा वेदन करेगा अथवा औपक्रमिक वेदना द्वारा। यथाकर्म—बद्ध कर्मोंके अनुसार तथा निकरणोंके अनुसार जैसा २ उन्होंने देखा है वैसा-वैसा ही इनका विपरिणाम होगा।

पुद्गल

(प्रश्नोत्तर नं १५६-१५८)

(३७) पुद्गल अनन्त शाश्वत अतीतकालमें था, शाश्वत वर्तमान कालमें है तथा अनन्त शाश्वत भविष्यकालमें रहेगा। पुद्गल स्कंध तथा जीवोंके संबंधमें भी ये तीनों आलापक जानना।

छद्मस्थादि

(प्रश्नोत्तर सं १५९-१६३)

(३८) अनन्त शाश्वत अतीतकालमें छद्मस्थ मनुष्य केवल संयमसे, केवल संवरसे, केवल ब्रह्मचर्यसे व केवल आठ प्रवचन मातासे सिद्ध-बुद्ध नहीं हुए। मात्र अन्तकर या चरमशरीरियोंने ही सर्व दुखोंका नाश किया है, ये ही करते हैं तथा करेंगे भी। ये सर्व केवलज्ञान व केवलदर्शनके धारक जिन, अरिहंत और केवली होकर ही सिद्ध-बुद्ध तथा मुक्त हुए हैं, वर्तमानमें होते हैं तथा भविष्य में होंगे।

जिसतरह छद्मस्थके लिये कहा गया उसीप्रकार अवधि व परमावधि ज्ञानीके लिये जानना चाहिये।

व्यतीत अनन्त शाश्वत कालमें केवली मनुष्योंने ही सिद्ध-बुद्ध व मुक्त हो, सर्व दुखोंका नाश किया है। ये सिद्ध हुए, सिद्ध होते हैं तथा सिद्ध होंगे।

उत्पन्न ज्ञान-दर्शनके धारक अरिहंत, जिन और केवली पूर्ण—पूर्णज्ञानी कहे जा सकते हैं।

प्रथम शतक

पंचम उद्देशक

(पंचम उद्देशक में वर्णित विषय)

[सप्त नैरयिक भूमियां, वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवोंके आवास, नैरयिकोंकी स्थिति, अवगाहना, शरीर, संस्थान, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, अज्ञान, योग और उपयोगादि पर विचार, असुरकुमारस्थिति-स्थानादि, पृथ्वीकायिकादिस्थिति-स्थानादि, द्वीन्द्रियादि—पचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक—मनुष्य—वाणव्यन्तरादिके स्थितिस्थानादि विचार। प्रश्नोत्तर संख्या ३३]

नैरयिकादि आवास

(प्रश्नोत्तर नं० १६४-१६८)

(३६) रत्नप्रभासे तमतमाप्रभा पर्यन्त सात भूमियां हैं। रत्नप्रभा भूमिमें तीस लाख, शर्कराप्रभा भूमिमें पच्चीस लाख, वालुकाप्रभा भूमिमें पन्द्रह लाख, पंकप्रभा भूमिमें दश लाख, धूमप्रभा भूमिमें तीन लाख, तमप्रभा भूमिमें नीन्यान्वे हजार नव सो पीचानवे तथा तमतमाप्रभा भूमिमें पांच अनुत्तर निरयावास हैं।

असुरकुमारोंके चौंसठ लाख, नागकुमारोंके चौरासी लाख, सुवर्णकुमारोंके वहोत्तरलाख, वायुकुमारोंके छियानवे लाख, द्वीपकुमार, दिक्कुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार और अग्निकुमार, इन छओं युगलकोंके छीयत्तर लाख आवास हैं।

पृथ्वीकायिक जीवोंसे लेकर ज्योतिष्क तक समस्त जीवोंके असंख्येय लाख आवास हैं।

सौधर्ममें ३२ लाख, ईशानमें २८ लाख, सनत्कुमारमें १२ लाख, महेन्द्रमें ८ लाख, ब्रह्मलोकमें ४ लाख, लांतकमें ५० हजार, महाशुक्रमें ४० हजार, सहस्रारमें ६ हजार, आनत एवं प्राणतमें संयुक्त ४ सो, आरण व अच्युतमें संयुक्त ३ सो विमानावास हैं।

नवग्रैवेयकमें—१११ विमानावास अधःस्तन—प्रथम त्रिकूमें, १०७ मध्यम त्रिकूमें तथा १०० उपरिमकमें हैं। अनुत्तर विमान तो पांच ही है।

स्थितिस्थान

(प्रश्नोत्तर नं० १६९-१९६)

(४०) स्थिति, अवगाहना, शरीर, संहनन, संस्थान, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, योग और उपयोग इन दश स्थानोंका नैरयिकादि जीवोंमें विचार किया जाता है।

रत्नप्रभाभूमिके तीस लाख निरयावासोंमें रहनेवाले नैरयिकोंके असंख्येय स्थितिस्थान हैं। वे इसप्रकार हैं—नैरयिककी जघन्य स्थिति दशहजार वर्षकी है और उत्कृष्ट एक समय अधिक, दो समय अधिक, इसप्रकार क्रमशः असंख्येय समयाधिक है।

इन आवासोंमें निवास करनेवाले प्रत्येक निरयावासके न्यूनसे न्यून वयवाले नैरयिक क्रोधोपयुक्त, मानोपयुक्त, मायोपयुक्त और लोभोपयुक्त हैं या नहीं, इससम्बन्धमें निम्न भंग जानो।

ये सभी क्रोधोपयुक्त होते हैं अथवा इनमें क्रोधोपयुक्त बहुत और मानोपयुक्त एक-आध, या क्रोधोपयुक्त बहुत और मानोपयुक्त बहुत, या क्रोधोपयुक्त बहुत और मायोपयुक्त एक-आध, या क्रोधोपयुक्त बहुत और मायोपयुक्त बहुत, क्रोधोपयुक्त बहुत और लोभोपयुक्त एक-आध, या क्रोधोपयुक्त बहुत और लोभोपयुक्त

बहुत, या क्रोधोपयुक्त बहुत और एक-आध मान तथा मायोपयुक्त, या क्रोधोपयुक्त बहुत और एक-आध मानोपयुक्त व अधिक मायोपयुक्त, या क्रोधोपयुक्त बहुत और मानोपयुक्त बहुत व मायोपयुक्त एक-आध, अथवा क्रोधोपयुक्त बहुत, मानोपयुक्त बहुत और मायोपयुक्त बहुत। इसीप्रकार क्रोध, मान और लोभके साथमें दूसरे और चार भंग करने चाहिये। क्रोध, माया और लोभके साथ भी चार। पश्चात् मान, माया और लोभके साथ क्रोध-द्वारा भंग करने चाहिये। इस तरह क्रोधातिरिक्त ये सताईस भंग होते हैं।

जघन्य आयुष्यसे एक समयाधिक आयुष्यवाले नैरयिकोंमें एकाध क्रोधोपयुक्त, मानोपयुक्त मायोपयुक्त और लोभोपयुक्त है, या बहुत क्रोधोपयुक्त, मानोपयुक्त, मायोपयुक्त और लोभोपयुक्त हैं, अथवा एकाध क्रोधोपयुक्त और मानोपयुक्त अथवा एकाध—क्रोधोपयुक्त और बहुत मानोपयुक्त हैं—इसप्रकार इनके ८० भंग जानने चाहिये। ये ही भंग संख्येय समयाधिक स्थितिवाले नैरयिकोंके लिये भी जानने चाहिये। असंख्येय समयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले नैरयिकोंके लिये २७ भंग जानने।

रत्नप्रभाभूमिके तीस लाख निरयावासोंके एक-एक आवासमें निवास करनेवाले नैरयिकोंके अवगाहना-स्थान असंख्येय है।

इन नैरयिकोंकी जघन्य अवगाहना अंगुलकी असंख्येय भाग है। उत्कृष्ट एक प्रदेशाधिक, दो प्रदेशाधिक, इस क्रमसे असंख्येय प्रदेशाधिक पर्यंत है।

जघन्य अवगाहना-स्थानवाले नैरयिक क्रोधोपयुक्त, मानोपयुक्त, मायोपयुक्त और लोभोपयुक्त हैं। इनके और संख्येय

प्रदेशाधिक अवगाहनावाले नैरयिकोंके पूर्ववत् ८० भंग जानने। असंख्येय प्रदेशाधिक जघन्य अवगाहनावाले तथा उत्कृष्ट अवगाहनावाले नैरयिकोंके पूर्ववत् २७ भंग जानने।

इन निरयावासोंके एक २ वासमें निवास करनेवाले नैरयिकोंके तीन शरीर हैं—वैक्रिय, तैजस और कार्मण। इन तीनोंके भी पूर्ववत् २७ भंग जानने।

ये नैरयिक बिना संघयण—शरीरगठन के हैं। अर्थात् छः संघयणोंमेंसे इन्हें एक भी संघयण नहीं है। इनके शरीरोंमें हड्डियां, स्नायु और नसें नहीं हैं। अनिष्ट, अकांत, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ और अमनोरम पुद्गल नैरयिकोंके शरीर-संघातरूपमें परिणत होते हैं।

इन छः संघयणोंसे संघयणहीन नैरयिकोंके लिये भी उपर्युक्त २७ भंग जानने।

रत्नप्रभाभूमिके तीस लाख निरयावासोंमें रहनेवाले नैरयिक निम्न शरीरसंस्थानवाले हैं। इनका दो प्रकारका शरीर है—भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय। भवधारणीय—जीवितावस्था तक रहनेवाला और उत्तरवैक्रिय—विक्रयासे परिवर्तित होनेवाला। इन दोनोंका हुंड संस्थान है। इन हुंड संस्थानवाले नैरयिकोंके भी पूर्ववत् क्रोधादि चार कषायोंके २७ भंग होते हैं।

इन नैरयिकोंके कापोतलेश्या होती है। अतः कापोतलेश्यावाले जीवोंके भी क्रोधादि चार कषायोंके २७ भंग जानने चाहिये।

रत्नप्रभाभूमिके तीस लाख नैरयिक आवासोंमें रहनेवाले नैरयिक सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि, तीनों प्रकारके हैं। इन तीनोंके भी क्रोधादि चार कषायोंके २७ भंग

जानने। ये नैरयिक ज्ञानी और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं उन्हें तीन ज्ञान—मति, श्रुत, अवधि, नियमपूर्वक होते हैं तथा जो अज्ञानी हैं उनको भी तीन अज्ञान—मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान व विभंग विभाजनसे होते हैं। आभिनिबोधिक ज्ञानमें वसित और अनाभिनिबोधिक अज्ञानमें वसित नैरयिकोंके क्रोधादि चार कषायोंके २७ भंग जानने। इसीप्रकार शेष दो ज्ञान व अज्ञानके भी जानने चाहिये।

इन आवासोंमें रहनेवाले नैरयिक मनयोगी, बचनयोगी और काययोगी—तीनों प्रकारके हैं। क्रोधादि कषायोंके पूर्ववत् २७ भंग प्रत्येकके जानने चाहिये।

रत्नप्रभाभूमिके तीस लाख निरयावासोंमें रहनेवाले नैरयिक साकारोपयोगी और अनाकरोपयोगी—दोनों प्रकारके हैं। इन दोनोंके भी क्रोधादि कषायोंके २७ भंग अलग २ जानने।

रत्नप्रभाभूमिस्थित नारकियोंकी तरह ये दश स्थान सातों पृथ्वियोंमें जानने चाहिये। मात्र लेश्याओंमें अन्तर है जो इस प्रकार है :—

गाथा

प्रथम व द्वितीय भूमिमें कापोतलेश्या, तीसरीमें मिश्र लेश्या—कापोत और नील, चोथीमें नीललेश्या, पांचवीमें नील और कृष्ण लेश्या, छट्ठीमें कृष्णलेश्या और सातवीमें परम कृष्णलेश्या है।

असुरकुमारोंके चौसठ लाख आवासों निवास करनेवाले असुरकुमारोंके स्थितिस्थान असंख्येय है। जिसप्रकार नैरयिकोंके जघन्य स्थितिस्थान और एक समयाधिक और दो समयाधिक स्थितिस्थान कहे हैं उसीप्रकार इनके भी जानने चाहिये।

विशेषान्तर यह है कि क्रोधादि चार कषायोंके भंग उनसे इनके विपरीत जानने चाहिये ; अर्थात् असुरकुमारोंके भंगों में लोभ प्रथम कहना चाहिये। जैसे समस्त असुरकुमार लोभोपयुक्त हैं, लोभोपयुक्त बहुत और एकाध—मायोपयुक्त आदि।

स्तनितकुमारों तक इसीप्रकार जानना। विशेषान्तर—संघयण—संस्थान, लेश्या आदिकी जो विविध भिन्नताएं हैं, वे जाननी चाहिये।

पृथ्वीकायिक जीवोंके असंख्येय लाख आवासोंके प्रत्येक आवासमें स्थित पृथ्वीकायिक जीवोंके असंख्येय स्थितिस्थान हैं। जघन्य आयुष्यसे एक समय अधिक, दो समय अधिकसे उत्कृष्ट स्थिति तक ये स्थान जानने चाहिये। ये पृथ्वीकायिक जीव क्रोधोपयुक्त, मानोपयुक्त, मायोपयुक्त और लोभोपयुक्त हैं। पृथ्वीकायिक जीवोंके समस्त स्थान अभंगक हैं। मात्र तेजो लेश्याके ८०, ८० भंग कहने चाहिये। अप्कायिक, तेजस्कायिक वायुकायिक पृथ्वीकायिक तरह जानने चाहिये। विशेषान्तर यह कि इनके सर्व स्थान अभंगक हैं। वनस्पतिकायिक जीव पृथ्वीकायिककी तरह हैं।

जिन स्थानों के लिये नैरयिकोंके ८० भंग हैं उन स्थानोंके लिये द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंको भी जानना चाहिये। विशेषान्तर यह कि निम्न तीन स्थानोंमें इन जीवोंके निम्न ८० भंग होते हैं—सम्यक्त्व, आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान। जिन स्थानोंके लिये नैरयिकोंके २७ भंग है उन समस्त स्थानोंके लिये ये अभंगक हैं।

जिसप्रकार नैरयिकोंको कहा गया है, उसीप्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंचकोंको भी जानना चाहिये। विशेषान्तर यह है कि जिन स्थानोंके लिये नैरयिकोंके २७ भंग कहे गये हैं उन स्थानोंके लिये इन्हें अभंगक जानना। जहाँ नैरयिकोंके ८० भंग कहे गये है, वहां इनके भी ८० भंग जानने।

नैरयिकोंके जिन स्थानोंके लिये ८० भंग कहे गये हैं, उन स्थानोंके लिये मनुष्योंके भी ८० भंग जानने चाहिये। नैरयिकों में जिन स्थानोंके लिये २७ भंग कहे गये हैं, उन स्थानोंके लिये मनुष्य अभंगक हैं। विशेष—मनुष्योंकी जघन्य स्थितिमें तथा आहारक शरीरमें ८० भंग होते है।

जिसप्रकार भवनवासी देव कहे गये हैं, उसीप्रकार वाण-व्यन्तर ज्योतिष्क एवं वैमानिक जानने चाहिये। विशेषान्तर यह है—जिसका जो जो पृथक्त्व है वह वह भिन्नरूपसे जानना। इसीप्रकार अनुत्तर तक जानना चाहिये।

प्रथम शतक

षष्ठम उद्देशक

षष्ठम उद्देशकमें वर्णित विषय

[सूर्य जितनी दूरीसे उदय होता हुआ दिखाई देता है उतनी ही दूरी से अस्त होता हुआ आदि, जीवों द्वारा प्राणातिपात क्रियाकी जाती है—क्रिया-विचार, प्रथम लोक या अलोक, जीव या अजीव, भव्य या अभव्य, सिद्ध या असिद्ध, भवसिद्धिक या, अभवसिद्धिक, मुर्गी या अंडा, आदि प्रश्न, लोकस्थिति, जीव और पुद्गल परस्पर बद्ध हैं, सूक्ष्म अप्काय, प्रश्नोत्तर सं० ३४]

(प्रश्नोत्तर सं० १९७-२०१)

(४१) उदय होता हुआ सूर्य जितने अवकाशान्तर—आकाशके व्यवधान—दूरीसे दृष्टिगोचर होता है उतने ही अवकाशान्तरसे अस्त होता हुआ सूर्य भी।

उदय होता हुआ सूर्य अपने ताप द्वारा जितने क्षेत्रको चारों दिशाओं और विदिशाओंमें प्रकाशित करता है, उद्द्योतित करता है, तपित करता है और प्रभासित करता हैं उतने ही क्षेत्रको अस्त होता हुआ सूर्य भी।

सूर्य जितने क्षेत्रको प्रकाशित करता है, वह क्षेत्र सूर्यसे स्पार्शित है। सूर्य निश्चय ही उस क्षेत्रको छःओं दिशाओंमें प्रकाशित करता है, उद्द्योतित करता है, तपित करता है और प्रभासित करता है।

स्पर्शनकाल-समयमें जितने क्षेत्रको सर्व दिशाओंमें सूर्य स्पर्श करता है, वह क्षेत्र स्पर्शित क्षेत्र कहा जा सकता है। वह स्पर्शित क्षेत्रको स्पर्श करता है परन्तु अस्पर्शित क्षेत्रको नहीं। वह छओं दिशाओंमें स्पर्श करता है।

(प्रश्नोत्तर नं० २०२-२०५)

(४२) लोकका अन्त—छोर अलोकके अन्त—छोरको स्पर्श करता है और अलोकका छोर भी लोकके छोरको स्पर्श करता है। नियमतः ये छःओं दिशाओंमें स्पृष्ट हैं।

सागरका छोर द्वीपके छोरको और द्वीपका छोर समुद्रके छोरको छओं दिशाओंमें स्पर्श करता है। इसीप्रकार अभि-लाप द्वारा पानीका छोर पोतको, वस्त्रका छिद्र वस्त्रके छोरको और छायाका छोर धूपको छओं दिशाओंमें नियमतः स्पर्श करता है, जानना चाहिये।

क्रिया-विचार

(प्रश्नोत्तर नं० २०६-२१५)

(४३) जीवों द्वारा प्राणातिपात क्रिया की जाती है। वह क्रिया निर्व्याघात रूपसे छओं दिशाओं और व्याघातरूपसे कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पांच दिशाओंमें स्पृष्ट है। यह क्रिया कृत है, अकृत नहीं, स्वकृत है, पर परकृत या उभयकृत नहीं, अनुक्रमकृत है परन्तु अननुक्रमकृत नहीं। जो क्रियायें की जाती हैं या की जायगी वे समस्त अनुक्रमसे कृत होंगी परन्तु अननुक्रमसे नहीं।

नैरयिकों द्वारा प्राणातिपात क्रियाकी जाती है। वह पूर्वोक्त नियमसे छओं दिशाओंमें स्पृष्ट, कृत और अनुक्रमपूर्वक कृत

है। नैरयिकोंके सदृश एकेन्द्रियके अतिरिक्त वैमानिक-पर्यन्त समस्त जीवोंके लिये जानना। समुच्चय जीवोंकी तरह एकेद्रिय जानने चाहिये।

प्राणातिपातकी तरह ही मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन परिग्रह, क्रोध आदि १८ पाप-क्रियायें चौवीसों दंडकोंके लिये जाननी चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० २१६-२२३)

(४४) [1]लोक और अलोक पूर्व भी हैं और पश्चात् भी। ये दोनों शाश्वत हैं। इनमें अमुक पूर्व और अमुक पश्चात्, ऐसा क्रम नहीं। लोक और अलोककी तरह जीव और अजीव, भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक, सिद्ध और संसारी भी जानने।

अण्डा मुर्गीसे हुआ या मुर्गी अण्डेसे, इनमें कौन पहले या पीछे हैं, इससंबंधमें अण्डा और मुर्गी दोनों पहले भी है और पीछे भी। यह शाश्वत भाव है। इन दो में किसी प्रकारका क्रम नहीं।

लोकान्त और अलाकान्त में भी किसीप्रकारका—पूर्वापरका क्रम नहीं है। लोकान्त और सातवे अवकाशान्तरमें कौन पहले और कौन पीछेका, कोई क्रम नही। दोनों पहले भी हैं और पीछे भी। इसीप्रकार लोकान्त व सातवीं भूमिका तनुवात, घनवात, घनोदधि और सातवी पृथ्वीमें भी कोई क्रम नहीं। निम्न स्थान लोकान्तके साथ इसीप्रकार संयोजित करने चाहिये।

अवकाशान्तर, वात, घनोदधि, पृथ्वी, द्वीप, सागर वर्ष—क्षेत्र, नैरयिकादि जीव, अस्तिकाय, समय, कर्म, लेश्या, दृष्टि,

1—रोह अनगार द्वारा पूछे गये प्रश्नोंके उत्तर।

दर्शन, ज्ञान, संज्ञा, शरीर, योग, उपयोग, द्रव्यप्रदेश, पर्याय तथा काल।

जिसप्रकार लोकान्तके साथ उपर्युक्त स्थान जोड़े गये हैं उसीप्रकार काल-पर्यन्त सर्व स्थान अलोकान्तके साथ भी संयोजित करने चाहिये।

लोकस्थिति

(प्रश्नोत्तर नं० २२४-२२७)

(४५) [1]लोकस्थिति आठ प्रकारकी है। वायु आकाशके, उदधि वायुके, पृथ्वी उदधिके, त्रस और स्थावर प्राणी पृथ्वीके, अजीव जीवके और जीव कर्मके आधार पर प्रतिष्ठित है। अजीवोंको जीवोंने और जीवोंको कर्मोंने परिकर कर रखा है। उदाहरणार्थ कोई पुरुष वायुसे एक चर्म-मसकको फूलाए और उसका मुख बंद करदे। पश्चात् मसकके मध्यप्रदेशमें गांठ देकर मसकका मुख खोलदे और उसमें भरी हुई हवा निकालकर ऊपरके भागमें पानी भरदे। तदनन्तर मसकका मुख बांधकर वह मध्यवर्ती गांठ खोलदे। परिणामतः वह भरा हुआ पानी हवाके ऊपरी भागमें .ही रहेगा। अथवा कोई पुरुष चर्म-मसकको हवासे फूलाकर अपने कटिप्रदेशमें बांधे। पश्चात् पुरुष-प्रमाणसे अधिक गहरे पानीमें उतरे। इससे: वह पुरुष न डूबकर पानीके ऊपरी भागमें ही रहेगा। इन उदाहरणोंसे उपर्युक्त आठ प्रकारकी लोकस्थिति समझी जा सकती है।

जीव और पुद्गल परस्पर बद्ध, संस्पृष्ट, अवगाढित व स्नेह-प्रतिबद्ध—चिक्कणतासे बंधे हुए, है तथा परस्पर-एक दूसरेसे घट्ट

१—गौतम प्रश्न।

होकर रहते हैं। जिसप्रकार एक सरोवर, जो पानीसे परिपूर्ण अर्थात् लबालब भरा हुआ है। बढते हुए पानीके कारण उससे पानी छलक रहा हैं। भरे हुए घटकी तरह उसकी स्थिति है। उस सरोवरमें यदि कोई पुरुष सो छोटे और बड़े छिद्रों-वाली एक बडी नाव उतारे। परिणामस्वरूप निश्चय ही वह नाव अपने आश्रव-द्वारोंसे पानीसे भराती-भराती पूर्ण भर जायगी तथा उससे भी पानी छलकने लग जायगा। तब पानीसे [1]परि-पूर्ण घटकी तरह उसकी भी स्थिति हो जायगी। इसीप्रकार जीव और पुद्गल परस्पर घट्ट होकर रहते है।

स्नेहकाय

(प्रश्नोत्तर नं० २२८-२३०)

(४६) सूक्ष्म स्नेहकाय—अप्काय (एक प्रकारका पानी) सदा ही सपरिमाण गिरता है। यह ऊपर, नीचे व तिर्यक्में भी गिरता है। सूक्ष्म अप्काय स्थूल अप्कायकी तरह एकत्रित होकर चिरकाल तक नहीं टिकता परन्तु शीघ्र विनष्ट हो जाता है।

१—समभर घट्टताए, त्ति—जिसप्रकार पानीमें फेंका हुआ घडा पानीसे भरकर नीचे तलेमें बैठ जाता है उसीप्रकार छिद्रोंवाली वह नाव भी धीरे २ पानीमें बैठ जाती है। परिमाणामतः नाव व सरोवरका पानी परस्पर अवगाहपूर्वक रहता है। नाव व सरोवरके पानीकी तरह ही जीव व पुद्गल भी परस्पर अवगाहपूर्वक रहते हैं।

प्रथम शतक

सप्तम उद्देशक

सप्तम उद्देशकमें वर्णित विषय

[नैरयिकादि चौवीस दंडकीय जीवोंके उत्पाद, आहार, उद्वर्त्तन आदि पर विचार, विग्रहगति और अविग्रहगति, गर्भशास्त्र— विस्तृत विवेचन। प्रश्नोत्तर संख्या २८]

(प्रश्नोत्तर नं० २३१-२३६)

(४७) उत्पद्यमान नैरयिक एक देश-द्वारा एक देशको, एक देश-द्वारा सर्व देशको और सर्व देश-द्वारा एक देशको आश्रयकर उत्पन्न नहीं होता परन्तु सर्वभागको सर्वभाग-द्वारा आश्रयकर उत्पन्न होता है। वैमानिक पर्यन्त इसी तरह जानना चाहिए।

नैरयिकोंमें उत्पद्यमान नैरयिक एक देश-द्वारा एक देशको, एक देश-द्वारा सर्वदेशको और सर्वदेश-द्वारा एक देशको आश्रय कर आहार नहीं करता परन्तु सर्वदेशको सर्वदेश-द्वारा आश्रय-कर आहार करता है। इसीप्रकार वैमानिकों तक जानना चाहिए।

नैरयिकोंसे उद्वर्तमान नैरयिकके लिए भी उत्पद्यमानकी तरह उपर्युक्त सर्व वर्णन जानना चाहिए। उद्वर्तमान नैरयिक एक भाग-द्वारा एक भागको आश्रयकर आहार करता है या नहीं, यह सब भी पूर्ववत् ही जानना। नैरयिकोंमें उत्पन्न अनेक नैरयिक भी सर्वदेश-द्वारा सर्वदेशको आश्रय कर उत्पन्न होते हैं।

जिसप्रकार उत्पद्यमान तथा उद्वर्तमानके संबंधमें चार दंडक कहे गए हैं उसीप्रकार उपपन्न और उद्वृत्तके संबंधमें भी चार दंडक कहने चाहिए। 'सर्वभाग द्वारा सर्वभागको आश्रयकर उपपन्न' 'सर्वभाग द्वारा एक भागको आश्रयकर आहार' और 'सर्वभागको सर्वभाग द्वारा आश्रयकर आहार' इन अभिलापों द्वारा उपपन्न और उद्वृत्तके विषयमें भी समझना चाहिए।

नैरयिकोंमें उत्पद्यमान नैरयिक अर्द्ध भाग-द्वारा अर्द्धभागको, अर्द्धभाग-द्वारा सर्वभागको, सर्वभाग-द्वारा अर्द्धभागको या सर्वभाग-द्वारा सर्वभागको आश्रय कर उत्पन्न होता है या नहीं, इस संबंधमें जैसे प्रथमके साथ आठ दंडक कहे गए हैं वैसे ही अर्द्धके साथ भी आठ दंडक जानने। विशेषान्तर यह है कि जहां 'एकभाग द्वारा एक भागको आश्रयकर उत्पन्न' कहा गया है, 'वहां अर्द्धभाग-द्वारा अर्द्ध भागको आश्रयकर उत्पन्न' कहना। मात्र इतना ही अन्तर है। ये सब मिलाकर सोलह दंडक हुए।

विग्रहगति

(प्रश्नोत्तर नं० २३७-२३९)

(४८) जीव कदाचित् विग्रहगति और कदाचित् अविग्रह-गति प्राप्त है।

नैरयिक प्रायः समस्त अविग्रहगतिवाले हैं। अथवा अधिक अविग्रहगतिवाले हैं और एक-आध विग्रहगतिवाले, या बहुत अविग्रहगतिवाले और बहुत विग्रहगतिवाले हैं।

इसप्रकार वैमानिक पर्यन्त सर्वत्र तीन भंग जानने चाहिये। मात्र जीव और एकेन्द्रियके तीन भंग नहीं होते।

(प्रश्नोत्तर नं० २४०)

(४६) महान् ऋद्धिसम्पन्न, महान् द्युतिसम्पन्न महान् कीर्तवान, महान् बलवान्, महान् सामर्थ्यवान् महेश नामक देव अपने च्यवनकालके समय लज्जा, घृणा व परिषहके कारण कुछ कालतक आहार नहीं करता है। पश्चात् आहार करता है तथा ग्रहित आहार परिणत भी होता है। अन्तमें उस देवका आयुष्य सर्वथा नष्ट हो जाता हैं। इससे वह देव जहाँ उत्पद्यमान है वहांका आयुष्य अनुभव करता हैं। वह आयुष्य मनुष्य-तिर्यंच दोनोंका होता है।

गर्भशास्त्र

(प्रश्नोत्तर नं० २४१-२५८)

(५०) गर्भमें उत्पद्यमान जीव सइन्द्रिय और अनिन्द्रिय दोनों रूपमें उत्पन्न होता है। द्रव्येन्द्रियकी अपेक्षा वह अनिन्द्रिय और भावेन्द्रियकी अपेक्षा सइन्द्रिय है।

गर्भमें उत्पद्यमान जीव सशरीरी और अशरीरी भी उत्पन्न होता है। औदारिक, वैक्रिय और आहारक—स्थूल शरीरोंकी अपेक्षा अशरीरी और तैजस व कार्मण—सूक्ष्म शरीरोंकी अपेक्षा सशरीरी कहा गया है।

गर्भमें उत्पद्यमान जीव उत्पन्न होनेके साथही माताके आर्तव तथा पिताके वीर्यसे परस्पर मिश्रित कलुष एवं किल्विषका आहार करता है।

गर्भमें समुत्पन्न जीव माताके द्वारा खाए गये आहारके नानाप्रकारके रसविकारोंके एक भागके साथ माताके आर्तवका आहार करता है।

गर्भस्थ जीवको विष्टा, मूत्र, श्लेष्म, नासिकामैल, वमन और पित्त नही होता। क्योंकि वह जो आहार करता है, उसको एकत्रित कर कान, चमड़ी, हड्डी, मज्जा, वाल, दाढ़ी, रोम और नखरूपसें परिणत करता है।

गर्भस्थ जीव कवलरूपसे आहार नहीं करता। वह आत्माके द्वारा ही सव आहार ग्रहण करता है, परिणत करता है और श्वासोच्छ्वास लेता है अथवा कदाचित् आहार लेता है, कदाचित् परिणत करता है और कदाचित् श्वासोच्छ्वास लेता है। पुत्रके जीवको रस पहुँचानेमें तथा माताका रस खींचनेमें कारणभूत मातृजीवरस—हरणी नामक नाड़ी, माताके जीवसे संवद्ध है और पुत्रके जीवसे जुड़ी हुई है। इसके द्वारा पुत्रका जीव आहार ग्रहण करता है तथा परिणत करता है। दूसरी एक और नाड़ी है जो पुत्रके जीवसे संवद्ध है और माताके जीवसे जुड़ी हुई है, उससे पुत्रका जीव आहारका चय-उपचय करता है।

पुत्रमें माताके तीन अंग हैं—मांस, रुधिर और मस्तिष्कका भेजा। पिताके भी तीन अंग हैं—अस्थि, मज्जा—अस्थिकी मिज्जी, केश—दाढ़ी, रोम तथा नख। माता-पिताके ये अंग संतानके शरीरमें तवतक रहते हैं जबतक भवधारणीय शरीर—जन्मसे मृत्युपर्यन्त टीकनेवाला, टीका रहता है। जव यह भवधारणीय शरीर समय-समय हीन होता हुआ अन्तमें नष्ट हो जाता है, तो माता-पिताके ये अंग भी विनष्ट हो जाते हैं।

गर्भस्थ जीवोंमें कालकरके कोई नर्कमें उत्पन्न होता है और कोई उत्पन्न नहीं होता। क्योंकि संज्ञी, पंचेन्द्रिय, तथा सर्व

पर्याप्तियोंसे परिपूर्ण जीव वीर्यलब्धि व वैक्रियलब्धि-द्वारा शत्रुओंकी सेनाका आगमन जान-सुनकर आत्मप्रदेशोंको गर्भसे वाहर फेंकता है। फिर वैक्रियसमुद्घात-द्वारा समवहित हो चतुरंगिणी सेना विकुर्वित करता है और उस विकुर्वित सेनाके साथ शत्रुओंकी सेनासे युद्ध करता है। इसप्रकार धन, राज्य, भोग और कामका लोलुप, कांक्षी व पिपासुक वन जाता है। परिणामतः वह इन्हींमें चित्तवाला, मनवाला, आत्मपरिणामवाला, प्रयत्नशील, अध्यवसायवाला, सावधान व समर्पित हो जाता है। इन्हीं संस्कारोंसे परिपूर्ण वना हुआ यदि वह उस समय मरजाय तो नर्कमें जाता है।

गर्भमें समुत्पन्न जीव मरकरके स्वर्गमें जाता भी है और नहीं भी। क्योंकि संज्ञी पंचेन्द्रिय तथा सर्व पर्याप्तियोंसे परिपूर्ण जीव तथारूप श्रमण या ब्राह्मणके पाससे एक भी अर्थ--धार्मिक वचन, सुनकर व समझकर शीघ्र ही संवेगपूर्वक धर्ममें श्रद्धालु वन जाता है। धर्मके तीव्र अनुरागमें रंगाहुआ वह जीव—धर्म, पुण्य, स्वर्ग और मोक्षका कामुक, कांक्षी व पिपासुक वन जाता है। परिणामतः वह इन्हींमें चित्तवाला, मनवाला, आत्मपरिणाम वाला, अध्यवसित, अत्यन्त प्रयत्नशील, समर्पित व भावनाभावित वन जाता है। इन संस्कारोंसे परिपूर्ण हो यदि वह मृत्यु प्राप्त करता है तो स्वर्गमें जाता है।

गर्भस्थ जीव उत्तानक—छत्राकार व पार्श्वीय-पसलीकी तरह रहता है। आम्रकी तरह कुब्ज होता है। खड़ा रहता है, वैठा रहता है तथा सोया रहता है। जव माता सोती है तव सोता है। जव माता जागती होती है तव जागता होता है। जव माता

सुखी होती है तब वह भी सुखी होता है और जब माता दुखी होती है तब वह भी दुखी होता है। प्रसवकालमें यदि मस्तक-द्वारा या पांवद्वारा बाहर निकलता है तो ठीक तरह निकलता है। तिर्यक् निकलनेपर मृत्यु प्राप्त करता है।

जिन जीवोंके कर्म अशुभरूपसे संबद्ध, स्पृष्ट, निधत्त, कृत, प्रस्थापित, अभिनिविष्ट, अभिसमन्वागत और उदीर्ण हों परन्तु उपशान्त न हों, तो वे जीव कुरूप, दुर्वर्ण, दुर्गंधयुक्त, कुरसयुक्त, कुस्पर्शयुक्त, अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ, कटुस्वरयुक्त, हीनस्वरयुक्त, दीनस्वरयुक्त, अनिष्टस्वरयुक्त, अकांत, अप्रिय, अशुभ और अमनोज्ञ स्वरयुक्त, अमनोरमस्वरयुक्त, तथा अनादेय वचन होते हैं। यदि जीवके कर्म अशुभरूपसे सम्बद्ध न हों तो उपर्युक्त सर्व बातें प्रशस्त बन जाती हैं।

प्रथम शतक

अष्टम उद्देशक

अष्टम उद्देशकमें वर्णित विषय

[एकान्त बालक, एकान्त पंडित, बालपंडित, देवगतिके कारण, मृगंघातक पुरुष, पुरुषघातक पुरुष, जय-पराजयके कारण, वीर्य-विचार—चौबीस दंडकीय जीव। प्रश्नोत्तर संख्या २१]

(प्रश्नोत्तर नं० १४१-१४२)

(५१) एकान्त बाल मनुष्य नैरयिकका आयुष्य बान्धकर नैरयिकमें, तिर्यञ्चका आयुष्य बान्धकर तिर्यञ्चमें, मनुष्यका आयुष्य बान्धकर मनुष्यमें और देवताका आयुष्य बान्धकर देवलोकमें उत्पन्न होता है।

एकान्त पंडित मनुष्य कदाचित् आयुष्य बांधता है और कदाचित् नहीं। यदि वह आयुष्य बान्धता है तो नैरयिक, तिर्यञ्च और मनुष्यका नहीं बान्धता परन्तु देवायुष्य बान्धकर देवलोकमें उत्पन्न होता है। नैरयिक, तिर्यञ्च और मनुष्यके आयुष्यको बान्धे विना नर्क, तिर्यञ्च और मनुष्य गतिमें नहीं जाया जाता है।

एकान्त पंडित मनुष्यकी मात्र दो प्रकारकी गतियां हैं :—अन्तक्रिया—समस्त कर्मोंको क्षय करके मोक्ष प्राप्त करना, और कल्पोपपत्तिका—कल्प—अनुत्तर विमान पर्यन्त वैमानिक देव-

लोकोंमें उत्पन्न होता। अतः एकान्त पण्डित मनुष्य-नर्क-तिर्यञ्चादिका आयुष्य नहीं बान्धते हैं।

बालपंडित—श्रावक-नैरयिक-तिर्यञ्च और मनुष्यका आयुष्य नहीं बान्धकर देवायुष्य बान्धता है। क्योंकि वह तथारूप श्रमण या ब्राह्मणके पाससे एक भी आर्य और धार्मिक सुवचन सुनकर तथा समझकर अनेक प्रवृत्तियोंसे रुकता है और अनेकोंसे नहीं भी। कितनी ही प्रवृत्तियोंका वह प्रत्याख्यान करता है और कितनी ही का नहीं। देशरूप—आंशिक प्रवृत्तियोंकी रोक तथा प्रत्याख्यानसे वह उपर्युक्त आयुष्य नहीं बान्धता है।

मृगघातक पुरुष

(प्रश्नोत्तर नं० २६४-२७२)

(५७) मृगघात द्वारा जीविकोपार्जन करनेवाला कोई शिकारी तथा मृगोंके वधके लिये प्रयत्नशील कोई पुरुष, मृगोंके शिकारके लिये [1]कच्छ, [2]ह्रद, [3]उदक, [4]द्रव, [5]वलय, [6]नूम, गहन, गहनविदुर्ग, पर्वत, पर्वतविदुर्ग, वन या वनविदुर्गमें जाकर 'ये मृग हैं' ऐसा कह, उनके वधके लिये जाल बिछाये अथवा खड्डु खोदे तो वे पुरुष कदाचित् तीन, कदाचित चार और कदाचित् पांच क्रियावाले कहे जायंगे, क्योंकि जहांतक वे पुरुष जाल फैलाते हैं, परन्तु मृगोंको बान्धते या मारते नहीं, वहांतक उनको कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी—ये तीन क्रियायें लगती हैं। यदि वे जालमें पकड़ें परन्तु उन्हें नहीं मारें तो उन्हें चार—कायिकी,

---

१—नदीके पानी तथा वृक्षादिसे घिरा हुआ भूमिभाग। २—सरोवर, ३—जलयुक्त प्रदेश, ४—तृणादिके ढेर, ५—नदीका वर्तुलाकार प्रदेश, ६—अन्धकारयुक्त प्रदेश।

आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी और पारितापनिकी, जालमें पकड़कर मारने पर पांच—[1]कायिकी, [2]आधिकरणिकी, [3]प्राद्वेषिकी, [4]पारितापनिकी और [5]प्राणातिपात क्रियायें लगती हैं।

कच्छ यावत् वनविदुर्गमें यदि कोई पुरुष तृण एकत्रित कर उनमें आग लगाये तो वह पुरुष तीन, चार और पांच क्रियाओं-वाला कहा जायगा। जहाँतक वह तृणोंको एकत्रित करता है वहाँतक तीन क्रियावाला, आग लगाये परन्तु जलाये नहीं, वहाँ तक चार क्रियावाला और आग लगाये भी व जलाये भी, तब पांच क्रियावाला कहा जायगा।

मृगघात द्वारा अपनी आजीविका चलानेवाला या मृगोंके शिकारमें लीन कोई पुरुष जंगलमें जाकर, 'ये हिरन हैं' ऐसा कह, किसी एक मृगको मारनेके लिये यदि बाण फेंकता है तो वह पुरुष कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पांच क्रियावाला कहा जायगा। क्योंकि बाण फेंककर भी जबतक वह मृगको विद्ध नहीं करता वहाँतक तीन क्रियावाला; विद्ध करता है परन्तु मारता नही वहाँतक चार क्रियावाला और विद्ध करने व मारने पर, वह पांच क्रियावाला कहा जायगा।

पूर्ववत् कोई शिकारी पुरुष कच्छ यावत् वनविदुर्गमें वधके

१—कायिकी—जाना-आना आदि शरीर-चेष्टारूप क्रिया।

२—आधिकरणिकी—कूट-पाश आदि शस्त्रोंसे समुत्पन्न क्रिया।

३—प्राद्वेषिकी—दुष्ट भाव तथा प्रद्वेषसे समुत्पन्न क्रिया।

४—पारितापनिकी—जिस क्रियाका प्रयोजन परिताप देना हो।

५—प्राणातिपातक्रिया—जीवघातसे समुत्पन्न क्रिया।

लिये कर्णपर्यन्त प्रयत्नपूर्वक बाण खींचकर खड़ा है। इतनेमें पीछेसे कोई पुरुष आकर तलवारके द्वारा उस खड़े मनुष्यका मस्तक काट दे। पूर्व व्यपितके खिचावसे बाण उछलकर यदि मृगको विद्ध होता है तो वह प्रयत्नशील मनुष्य मृगके वैरसे स्पृष्ट है परन्तु मनुष्यको मारनेवाला मनुष्य नहीं। मनुष्यको मारनेवाला तो मनुष्य-वैरसे स्पृष्ट है। क्योंकि यह तो निश्चित है कि करतेको किया, संधातेको संधाया, खींचतेको खींचा और फेंकतेको फेंकाया कहा जाता है। इसीकारण मृगको मारनेवाला मृग-वैरसे स्पृष्ट कहा गया है। यदि मरनेवाला प्राणी छः मासके अन्दर मरता है तो वह मारनेवाला पुरुष कायिकी आदि पाचों क्रियाओंसे स्पृष्ट कहा जायगा। छः मासके पश्चात् मरने पर वह वधिक चार क्रियाओंसे स्पृष्ट होगा।

कोई एक पुरुष दूसरे पुरुषको भाले-द्वारा मारे या तलवार-द्वारा सिरच्छेद कर दे तो वह पुरुष पांचों क्रियाओं-द्वारा स्पृष्ट कहा जायगा। वे पुरुष—आसन्नवधक तथा दूसरोंके प्राणोंकी परवाह नहीं करनेवाला व्यक्ति, पुरुष-वैरसे स्पृष्ट हैं।

वीर्य-विचार

(प्रश्नोत्तर नं० २७३-२७९)

(५३) समान त्वचा-शरीर, समान वय, समान द्रव्य तथा समान उपकरणयुक्त दो पुरुष परस्पर युद्ध करते हैं। इनमें एक हारता है और एक जीतता है। जो पुरुष वीर्यवान् है वह जीतता है और जो वीर्यहीन है, वह हारता है। जिस पुरुषने वीर्यरहित कर्म संबद्ध, संस्पृष्ट और संप्राप्त नहीं किये हैं तथा जिसके

कर्म उदीर्ण नहीं होकर उपशान्त हैं, वह पुरुष जीतता है और जिस पुरुषने वीर्यरहित कर्म संबद्ध, संस्पृष्ट और संप्राप्त किये हैं, तथा उपशान्त न होकर जो उदयमें आये हुए हैं, वह पुरुष पराजय प्राप्त करता है।

जीव वीर्यसहित भी है और वीर्यरहित भी। क्योंकि जीव दो प्रकारके हैं—संसारसमापन्नक और असंसारसमापन्नक। असंसारसमापन्नक जीव सिद्ध हैं। ये वीर्यरहित हैं। संसारसमापन्नक जीवोंके दो भेद हैं—शैलेशीप्रतिपन्न और अशैलेशीप्रतिपन्न। शैलेशीप्रतिपन्न लब्धिवीर्यकी अपेक्षा सवीर्य और करणवीर्यकी अपेक्षा अवीर्य हैं। अशैलेशीप्रतिपन्न लब्धिवीर्यकी अपेक्षा सवीर्य और करणवीर्यकी अपेक्षा सवीर्य भी और अवीर्य भी हैं।

नैरयिक लब्धिवीर्यकी अपेक्षासे सवीर्य तथा करणवीर्यकी अपेक्षासे सवीर्य व अवीर्य दोनों हैं। जिन नैरयिकोंके उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषाकारपराक्रम हैं वे नैरयिक लब्धिवीर्यकी तथा करणवीर्यकी अपेक्षासे सवीर्य हैं। जो नैरयिक जीव उत्थान यावत् पुरुषाकारपराक्रम रहित हैं वे लब्धिवीर्यकी अपेक्षासे सवीर्य तथा करणवीर्यकी अपेक्षा अवीर्य हैं। नैरयिकोंकी तरह ही पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक पर्यन्त सर्वजीव, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक जानने चाहिये। मनुष्यको सिद्धोंके अतिरिक्त सामान्य जीवोंकी तरह जानना चाहिये।

प्रथम शतक

नवम उद्देशक

नवम उद्देशक में वर्णित विषय

[जीव गुरुत्व व लघुत्व कैसे प्राप्त करता है, अवकाशान्तर, सप्तम तनुवात आदि भारी या हल्के हैं, अक्रोधत्व निर्ग्रन्थोंके लिये श्रेयस्कर है, सवृत अनगार, अन्य मतावलम्बियोंकी जीवायुष्य-बंधन संबंधी धारणायें तथा खंडन, कालास्यवेशी अनगारके प्रश्नोत्तर, अप्रत्याख्यान और आधाकर्मादिदोष प्रश्नोत्तर संख्या २८]

गुरुत्व-लघुत्व

(प्रश्नोत्तर नं० २८०-२९१)

(५४) जीव प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान—(मिथ्यादोष), चुगली, रति-अरति, परपरिवाद और मिथ्यादर्शन-शल्यके द्वारा शीघ्रतासे गुरुत्व—कर्मोंसे बोझिल होना, प्राप्त करता है और उपर्युक्त पापोंसे अलग होनेपर लघुत्व।

प्राणातिपातादि क्रियाओंसे जीव संसारको वर्द्धित करता है तथा उसमें परिभ्रमण करता है। इनसे निवृत्त होकर वह संसारको ह्रस्व करता है और उल्लंघन कर जाता है। संसारको ह्रस्व करना, घटाना, लघु करना तथा समुल्लंघन करना, ये चार कार्य प्रशस्त हैं। संसारको भारी करना, बढाना, दीर्घकरना व परि-भ्रमण करना, ये चार कार्य अप्रशस्त है।

सातवां अवकाशान्तर गुरु, लघु या [1]गुरुलघु नहीं परन्तु [2]अगुरुलघु है।

सप्तम तनुवात गुरु या लघु नहीं परन्तु गुरुलघु है। यह अगुरुलघु नहीं है।

सप्तम घनवात, घनोदधि, सातवीं पृथ्वी और समस्त अवकाशान्तर सातवें अवकाशान्तरकी तरह अगुरुलघु जानने चाहिए। घनवात, घनोदधि, पृथ्वी, द्वीप, समुद्र, और क्षेत्र तनुवातकी तरह गुरुलघु जानने चाहिये।

नैरयिक गुरु या लघु नहीं परन्तु गुरुलघु और अगुरुलघु हैं। वैक्रिय एवं तैजस शरीरकी अपेक्षासे वे गुरुलघु और आत्मा व कर्मकी अपेक्षासे अगुरुलघु हैं।

इसीप्रकार वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए। मात्र शरीर का अन्तर है।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय व जीवास्तिकाय अगुरुलघु जानने चाहिये।

पुद्गलास्तिकाय गुरु या लघु नहीं परन्तु गुरुलघु और अगुरुलघु हैं। क्योंकि गुरुलघु द्रव्योंकी अपेक्षासे गुरु, लघु और अगुरुलघु नहीं हैं परन्तु गुरुलघु हैं और अगुरुलघु द्रव्योंकी अपेक्षासे गुरु, लघु और गुरुलघु नहीं है परन्तु अगुरुलघु हैं।

समय और कर्म अगुरुलघु हैं।

कृष्णलेश्या गुरु नहीं, लघु नहीं परन्तु गुरुलघु और अगुरुलघु है। द्रव्यलेश्याकी अपेक्षासे गुरुलघु और भावलेश्याकी अपेक्षासे

१—आठ स्पर्शयुक्त रूपी द्रव्य गुरुलघु कहे जाते हैं।

२—चार स्पर्शयुक्त अरूपी द्रव्य अगुरुलघु कहे जाते हैं।

अगुरुलघु है। कृष्णलेश्याकी तरह ही शुक्ललेश्या पर्यन्त जानना चाहिये। दृष्टि, दर्शन, ज्ञान, अज्ञान और संज्ञा अगुरुलघु, औदारिक, वैक्रिय, आहारक और तैजस शरीर गुरुलघु तथा कार्मण शरीर अगुरुलघु है।

मनयोग, वचनयोग, साकार उपयोग और निराकार उपयोग अगुरुलघु हैं। काययोग गुरुलघु है।

सर्व द्रव्यों, सर्व प्रदेशों और सर्व पर्यायोंको पुद्गलास्तिकायकी तरह जानना। अतीतकाल, अनागतकाल व सर्वकाल अगुरुलघु है।

निर्ग्रन्थ

(प्रश्नोत्तर नं० २९२-२९४)

(५५) श्रमण-निर्ग्रन्थोंके लिये लाघव, अल्पेच्छा, अमूर्च्छा, अगृद्धि, अप्रतिबद्धता, अक्रोधत्व, अमानत्व, असायत्व और अलोभत्व प्रशस्त हैं।

कांक्षाप्रदोष—मिथ्यात्व मोहनीयकर्म, क्षीण होनेपर श्रमण-निर्ग्रन्थ अन्तकर तथा चरमशरीरी होता है। अथवा पूर्वावस्थामें यदि बहुत मोहयुक्त भी हो परन्तु पश्चात् संवृत हो काल करे तो सिद्ध होता है तथा समस्त दुखोंका नाश करता है।

(प्रश्नोत्तर नं० २९५)

(५६) "एक जीव एक समयमें दो आयुष्य बांधता है—इस भवका और पर भवका। जिससमय इस भवका आयुष्य बांधता है उससमय पर भवका भी आयुष्य बांधता है। और जिससमय परभवका आयुष्य बांधता है उससमय इस भवका भी आयुष्य बांधता है। इस भवका आयुष्य बांधनेसे परभवका आयुष्य

और पर भवका आयुष्य बांधनेसे इस भवका आयुष्य बाधता है।"

अन्यतीर्थिक इसप्रकार जो प्ररूपण या ज्ञापन करते हैं, वह सब मिथ्या है। एक जीव एक समयमें एक आयुष्य बांधता है—इस भवका या परभवका। जिससमय इस भवका आयुष्य बांधतो है उस समय परभवका आयुष्य नहीं बांधता और जिससमय परभवका आयुष्य बाधता है उस समय इस भवका आयुष्य नहीं बांधता। इस भवका आयुष्य बांधनेसे परभवका आयुष्य और परभवका आयुष्य बांधनेसे इस भवका आयुष्य नहीं बांधता।

(प्रश्नोत्तर नं० २९६-३००)

(५७) [1]आत्मा ही सामायिक है, यही सामायिकका अर्थ है और यही व्युत्सर्ग है। संयमके लिये क्रोध, मान, माया और लोभका त्यागकर इनकी निन्दा की जाती है।

गर्हा संयम है और अगर्हा संयम नहीं। गर्हा समस्त दोषोंका नाश करती है। आत्मा सर्व मिथ्यात्वको जानकर गर्हा-द्वारा समस्त दोषोंका नाश करती है।

अप्रत्याख्यान और आधाकर्मादि

(प्रश्नोत्तर नं० ३०१-३०६)

(५८) [2]एक सेठ, एक दरिद्र, एक कृपण और एक क्षत्रिय (राजा), ये सब एक साथ अप्रत्याख्यान क्रिया करते हैं। अविरतिकी अपेक्षासे ऐसा कहा गया है।

१—कालास्यवेशीपुत्र अनगार और स्थविरोंके प्रश्नोत्तर २—गौतम प्रश्न

आधाकर्म आहार—दोषित आहारको खाता हुआ श्रमण-निर्ग्रन्थ आयुष्यकर्मको छोड़कर शिथिल बंधनमें बंधी हुई सात कर्म-प्रकृतियोंको कठिन बंधनमें बांधता है और संसारमें वार-वार भ्रमण करता है। क्योंकि आधाकर्म आहार खाकर श्रमण-निर्ग्रन्थ अपने धर्मका उल्लंघन कर जाता है। वह पृथ्वी-कायिक जीवोंसे लेकर त्रसकायिक तकके जीवोंके घातकी परवाह नहीं करता और जिन जीवोंके शरीरका वह भक्षण करता है उन जीवों पर अनुकंपा नहीं करता।

प्रासुक और निर्दोप आहारको खाता हुआ श्रमण-निर्ग्रन्थ "आयुष्यकर्मको छोड़कर कठिन बंधनमें बंधी हुई सात कर्म-प्रकृतियोंको शिथिल करता है" आदि सर्व वर्णन संवृत अनगारकी तरह जानना चाहिये। विशेपान्तर यह है कि कदाचित् आयुष्य कर्म वांधता है और कदाचित् नहीं बांधता। इसप्रकार अन्तमें संसारका समुल्लंघन कर जाता है। क्योंकि प्रासुक और निर्दोष आहारको खाता हुआ श्रमण-निर्ग्रन्थ अपने धर्मका उल्लंघन नहीं करता। वह पृथ्वीकायसे लेकर त्रसकायके जीवों का वचाव करता है। जिन-जिन जीवोंके मृत कलेवरोंका आहार करता है, उनपर भी अनुकम्पा करता है।

(प्रश्नोत्तर नं० ३०७)

(५६) अस्थिर पदार्थ परिवर्तित होता है और स्थिर पदार्थ परिवर्तित नहीं होता, अस्थिर पदार्थ टूटता है परन्तु स्थिर पदार्थ नहीं टूटता।

वालक शाश्वत है और बालपन अशाश्वत। पंडित शाश्वत है और पांडित्य अशाश्वत।

प्रथम शतक

दशम उद्देशक

दशम उद्देशक में वर्णित विषय

[चलमान अचलित, दो परमाणु परस्पर नहीं मिलते, तीन परमाणु मिलन और उनके भाग, पांच अणुओंका मिलन और कर्मरूपमें परिवर्तन, बोलनेसे पूर्वकी भाषा भाषा है आदि अन्य मतावलम्बियोंके मन्तव्य और उनका खंडन, एक जीव एक साथ दो क्रियायें करता है आदि अन्य तीर्थिकोंके मन्तव्य और उनका खंडन। प्रश्नोत्तर संख्या १९]

(प्रश्नोत्तर न० ३०८-३२४)

(६०) "चलमान चलित—निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण नहीं कहा जा सकता है। दो परमाणु पुद्गल एक-दूसरेके साथ नहीं चिपकते हैं, क्योंकि उनमें चिक्कणता नहीं है। तीन परमाणु पुद्गल एक दूसरेसे चिपक जाते हैं; क्योंकि उन पुद्गलोंमें चिकनाहट है। उनके दो और तीन भाग भी हो सकते है। यदि तीन परमाणु पुद्गलोंके दो भाग किये जायं तो एक ओर डेढ परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर भी डेढ परमाणु पुद्गल होगा। तीन भाग करनेपर एक-एक करके अलग होजायगें। इसीप्रकार चार पुद्गलोंके विषयमें भी जानना चाहिये। पांच परमाणु पुद्-गल परस्पर चिपक जाते हैं और दुखरूप—कर्मरूपमें परिणत होते हैं। ये दुखकर्म शाश्वत हैं। इनमें सदैव सम्यक्प्रकार से उपचय तथा अपचय होता रहता है।

बोलनेके समयकी भाषा अभाषा है और बोलनेसे पूर्वकी व बोली गई भाषा भाषा है। इस कारण वह भाषा बोलते हुए पुरुषकी नहीं परन्तु अनबोलते पुरुषकी है।

पूर्वकृत क्रिया दुखहेतु है परन्तु वर्तमानमें की जाती हुई क्रिया दुखहेतु नहीं। क्रिया-समय व्यतिक्रान्त होनेपर वह कृत-क्रिया दुखहेतु है। वह क्रिया अकरणसे दुखहेतु है, करणसे नहीं।

[1]अकृत्य दुख है, अस्पृश्य दुख है और अक्रियमाणकृत दुख है। इनको नहीं करके प्राणी, भूत, सत्त्व और जीव वेदना अनुभव करते हैं।"

अन्य तीर्थिकोंके उपर्युक्त मन्तव्य मिथ्या हैं। वस्तु-स्थिति निम्न प्रकार है :—

चलमान चलित-निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण कहा जायगा। दो परमाणु पुद्गल परस्पर चिपक जाते हैं, क्योंकि उनमें चिकनाहट है। उन दो परमाणु पुद्गलोंके दो भाग हो सकते हैं। दो भाग होने पर एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर दूसरा परमाणु पुद्गल होगा। तीन परमाणु पुद्गल परस्पर चिपक जाते हैं, क्योंकि इनमें चिकणता है। इन तीन परमाणु पुद्गलोंके दो तथा तीन भाग हो सकते हैं। दो भाग करनेपर एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर दो प्रदेशवाला एक स्कंध होगा। तीन भाग करनेपर एक २ करके तीनों अलग २ पुद्गल हो जायेंगें। इसीप्रकार चार परमाणु पुद्गलोंके संबंधमें जानना चाहिये। पांच परमाणु पुद्गल परस्पर चिपक जाते हैं और

---

१ भविष्यकाल की अपेक्षा से।

स्कंध रूप हो जाते हैं। वह स्कंध अशाश्वत होता है और उसमें सदैव सम्यक्‌रूपमें चय-उपचय होता रहता है।

बोलनेसे पूर्वकी भाषा अभाषा है, बोली जाती हुई भाषा, भाषा है। बोली गई भाषा भी अभाषा है। भाषा बोलते हुए पुरुषकी होती है परन्तु अन्‌बोलते पुरुषकी नहीं।

पूर्व-क्रिया दुखहेतु नहीं, इसको भी भाषाके सदृश ही जानना चाहिये। करणसे वह दुखहेतु है परन्तु अकरणसे नहीं।

कृत्य दुख है, स्पृश्य दुख है, क्रियमाणकृत दुख है। इनको कर-करके प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व वेदना अनुभव करते हैं।

(प्रश्नोत्तर नं ३२५)

(६१) "एक जीव एक समयमें दो क्रियायें करता है। ईर्यापथिकी और सांपरायिकी। जिससमय ईर्यापथिकी क्रिया करता है उस समय सांपरायिकी क्रिया भी करता है और जिस समय साम्परायिकी क्रिया करता है, उस समय ईर्यापथिकी भी।"

अन्यतीर्थिकोंका इसप्रकारका प्ररूपण-मिथ्या है। जीव एक समयमें एक क्रिया करता है। ईर्यापथिकी या साम्परायिकी। जिससमय ईर्यापथिकी क्रिया करता है, उससमय साम्परायिकी नहीं करता है और जिससमय साम्परायिकी करता है, उस समय ईर्यापथिकी नहीं।

(प्रश्नोत्तर नं० ३२६)

(६२) नर्कगति जघन्य एक समयपर्यन्त और उत्कृष्ट बारह मुहूर्तपर्यन्त उपपात-विरहित है। यहाँ पूरा व्युत्क्रातिपद[1] जानना चाहिये।

---

१ प्रज्ञापना सूत्र, व्युत्क्रान्तिपद।

द्वितीय शतक

प्रथम उद्देशक

प्रथम उद्देशकमें वर्णित विषय

[पृथ्वीकायिक, वायुकायिक आदि जीव श्वासोच्छ्वास लेते हैं। वायु-कायिक जीवोंका मरण व पुनर्जन्म, सकर्मक मृतादी अनगार, अकर्मक मृतादी अनगार, स्कन्दक चरित्र, लोकके प्रकार, लोक, जीव, सिद्धि और सिद्ध सान्त हैं या अनन्त; बालमरण व पंडितमरणके भेद। प्रश्नोत्तर संख्या १८]

(प्रश्नोत्तर नं० १–७)

(१-२) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंकी तरह पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीव भी श्वासोच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं तथा छोड़ते हैं। ये द्रव्यसे—अनन्त प्रदेशवाले द्रव्योंको. क्षेत्रसे—असंख्य प्रदेशमें रहे हुए द्रव्योंको. कालसे—किसी भी स्थितिवाले द्रव्योंको, भावसे—वर्ण-गंध-रस-स्पर्शयुक्त द्रव्योंको श्वासोच्छ्वास-निःश्वासरूपमें ग्रहण करते हैं तथा छोड़ते हैं। ये जीव भावसे जिन वर्णवाले द्रव्योंको श्वासोच्छ्वास-निःश्वास रूपमें ग्रहण करते है तथा छोड़ते हैं, वे द्रव्य एक वर्णवाले हैं या अधिक वर्णवाले; इस सम्बन्धमें आहारगम[1] जानना चाहिये।

नैरयिकोंके श्वासोच्छ्वास-निःश्वासके सम्बन्धमें भी पूर्ववत्[2]

१—प्रज्ञापना सूत्र २८ वां आहार पद,

२—पृथ्वीकायिकोंकी तरह।

जानना चाहिये। ये नियमपूर्वक छःओं दिशाओंसे श्वासोच्छ्वास-निःश्वासके द्रव्य ग्रहण करते हैं तथा छोड़ते हैं।

यदि कोई व्याघात न हो तो एकेन्द्रिय जीव समस्त दिशाओं से श्वास तथा निःश्वासके द्रव्योंको ग्रहण करते हैं। व्याघात होने पर वे छओं दिशाओंसे ग्रहण नहीं कर सकते। तब ये कभी तीन दिशाओंसे, कभी चार दिशाओंसे और कभी पांच दिशाओं से ग्रहण करते हैं।

वायु

(प्रश्नोत्तर नं० ८-१२)

(६४) वायुकायिक जीव वायुकायके जीवोंको ही श्वासोच्छ्वासनिःश्वासरूपमें ग्रहण करते हैं तथा छोड़ते हैं। ये वायुकायमें ही अनेक लाख बार मर-मर कर पुनः-पुनः वायुकायमें ही उत्पन्न होते हैं। ये स्वजातीय अथवा परजातीय जीवोंके संघर्षसे मृत्यु प्राप्त करते हैं परन्तु असंघर्षसे नहीं। मरणानन्तर दूसरी गतिमें वायुकायिक किसी अपेक्षासे सशरीर जाते हैं और किसी अपेक्षासे अशरीर। क्योंकि वायुकायिकोंके चार शरीर हैं—औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण। इनमें दो—औदारिक और वैक्रिय शरीर तो वे पीछे छोड़ जाते हैं और तेजस व कार्मण शरीर साथमें लेजाते हैं।

मृतादी अनगार

(प्रश्नोत्तर नं० १३-१७)

(६५) जिस [1]मृतादी—प्रासुकभोजी अनगारने संसार व

१—मंडाई णं भंते! नियठे—मृतादी निर्ग्रन्थ, मृत+अदी=मृतादी-मृत—निर्जीव, अदी—खानेवाला, अर्थात् प्रासुक आहार खानेवाला।

सांसारिक प्रपञ्चोंका निरोध नहीं किया, जिसने संसार क्षीण व व्युच्छिन्न नहीं किया, जिसका संसारवेदनीय कर्म क्षीण व व्युच्छिन्न नहीं हुआ और जो न कृतार्थ तथा प्रयोजनसिद्ध ही है; वह पुनः शीघ्र ऐसीस्थिति—मनुष्य-तिर्यंचादिमें जानेकी अवस्था अर्थात् संसार-भ्रमणकी परिस्थिति, प्राप्त करता है।

ऐसे निर्ग्रन्थका जीव [1]कदाचित् 'प्राण' कदाचित् 'भूत' कदाचित् 'जीव', कदाचित् 'सत्त्व', कदाचित् 'विज्ञ', कदाचित् 'वेद', और कदाचित् प्राण, भूत, जीव, सत्त्व, विज्ञ और वेद शब्दोंसे संज्ञित होता है। क्योंकि उस निर्ग्रन्थका जीव उच्छ्वास लेता है और निःश्वास छोड़ता है; इस अपेक्षासे 'प्राण', था, है और होगा; इस अपेक्षासे 'भूत', जीता है, जीवन तथा आयुष्य कर्मको अनुभव करता है, इस अपेक्षासे 'जीव', शुभाशुभ कर्मोंसे संवद्ध है; इस अपेक्षासे 'सत्त्व', कड़वे, कपायले, खट्टे और मीठे रसोंका अनुभव करता है; इस अपेक्षासे 'विज्ञ', सुख-दुख वेदन करता है; इस अपेक्षासे 'वेद' कहा जाता है।

जिस मृतादी अनगारने संसार व सांसारिक प्रपञ्चोंका निरोध किया है, जिसका संसार क्षीण व व्युच्छिन्न हो गया है, जिसने संसार-वेदनीय कर्म क्षीण व व्युच्छिन्न कर लिया है तथा जो कृतार्थ और प्रयोजन-सिद्ध है, वह पुनः ऐसी स्थिति—संसार-भ्रमणकी परिस्थिति, नहीं प्राप्त करता।

ऐसे निर्ग्रन्थका जीव कदाचित् 'सिद्ध', कदाचित् 'बुद्ध', कदाचित् 'मुक्त', कदाचित् 'पारंगत', कदाचित् 'परम्परागत', तथा

१—कदाचित्—किसी अपेक्षासे।

कदाचित् सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिवृत्त, अन्तकृत तथा सर्वदुख-प्रहीणके नामसे संज्ञित होता है—पुकारा जाता है।

*स्कन्दकप्रश्न

(प्रश्नोत्तर नं० १८)

(६६) लोक चार प्रकारका है—द्रव्यसे द्रव्यलोक, क्षेत्रसे क्षेत्रलोक, कालसे काललोक और भावसे भावलोक। इनमें द्रव्य लोक एक और सान्त है। क्षेत्रलोक असंख्य कोटाकोट्य योजन लम्बाई-चौड़ाईवाला है तथा इसकी परिधि असंख्य योजन कोटाकोट्य है। यह भी सान्त है। काललोक कोई दिवस नहीं था, नहीं है और नहीं होगा, ऐसा नहीं। यह सदैव था, सदैव है और सदैव रहेगा। यह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षत, अव्यय, अवस्थित और नित्य है। इसका अन्त नहीं है। भावलोक अनन्त वर्ण-पर्यायरूप, अनन्त गंध, रस और स्पर्श-पर्यायरूप, अनन्त संस्थान (आकार) पर्यायरूप, अनन्त गुरुलघु पर्यायरूप तथा अनन्त अगुरुलघु पर्यायरूप है, इसका अन्त नहीं।

इसप्रकार द्रव्यलोक और क्षेत्रलोक सान्त हैं। काललोक और भावलोक अनन्त हैं।

(६७) द्रव्यसे जीव एक और सान्त है। क्षेत्रसे जीव असंख्येय प्रदेशात्मक, असंख्य प्रदेशावगाढ़ित—व्याप्त तथा सान्त है। काल से जीव कोई दिवस नहीं था, नहीं है और नहीं होगा, ऐसा नहीं। यह सदैव था, सदैव है और सदैव रहेगा। यह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षत, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

---

* देखो परिशिष्ट चारित्रखंड।

इसका अन्त नहीं। भावसे जीव अनन्त ज्ञान-दर्शन-पर्यायरूप तथा अनन्त अगुरुलघु-पर्यायरूप है और इसका अन्त नहीं।

इसप्रकार द्रव्य-जीव और क्षेत्र-जीव सान्त हैं। कालजीव व भावजीव अनन्त हैं।

(६८) सिद्धि चार प्रकारकी है—द्रव्यसिद्धि, क्षेत्रसिद्धि कालसिद्धि और भावसिद्धि।

द्रव्यसे सिद्धि एक और सान्त है। क्षेत्रसे सिद्धिकी लंबाई पैंतालीस लाख योजन और परिधि एक करोड़ बैयालीस लाख तीस हजार दो सो उन्पचास योजनसे कुछ विशेषाधिक है यह सान्त है। कालसे. सिद्धि कोई दिवस न थी, न है; ऐसा नहीं। भावसिद्धि भावलोककी तरह जाननी चाहिये।

इसप्रकार द्रव्यसिद्धि और क्षेत्रसिद्धि सान्त तथा कालसिद्धि और भावसिद्धि अनन्त हैं।

(६९) सिद्ध चार प्रकारके हैं—द्रव्यसिद्ध, क्षेत्रसिद्ध, कालसिद्ध और भावसिद्ध।

द्रव्यसे सिद्ध एक और सान्त है, क्षेत्रसे सिद्ध असंख्येय प्रदेशात्मक, असंख्येय प्रदेशागाढित तथा सान्त है। कालसे सिद्ध सादि और अनन्त हैं। भावसे सिद्ध अनन्त ज्ञान-दर्शन-पर्यायरूप, यावत्-अगुरुलघु पर्यायरूप और अनन्त हैं।

इसप्रकार द्रव्यसिद्ध और क्षेत्रसिद्ध सान्त है और कालसिद्ध व भावसिद्ध अनन्त हैं।

(७०) मरण दो प्रकारका है :—वालमरण और पंडितमरण। बालमरणके बारह भेद हैं।

(१) बलन्मरण—तड़फते हुए मरना।

(२) वशार्तमरण—पराधीनतापूर्वक कन्द्रन करते हुए मरना।

(३) अन्तःशल्यमरण—शस्त्रादिकी चोटसे मरना।

(४) तद्भवमरण—मरजानेके पश्चात् पुनः उसी गतिमें जाना।

(५) गिरिपतन—पहाड़से गिरकर मरना।

(६) तरुपतन—वृक्षसे गिरकर मरना।

(७) जलप्रवेश—पानीमें डूबकर मरना।

(८) ज्वलनप्रवेश—अग्निमें जलकर मरना।

(९) विषभक्षण—विष खाकर मरना।

(१०) शस्त्रघात—शस्त्रादि-द्वारा घात करके मरना।

(११) वैहानस—वृक्षादिपर फांसी खाकर मरना।

(१२) गृद्धस्पृष्ट—गिद्ध अथवा जंगली जानवरोंके द्वारा मरना।

इन बारह प्रकारके मरणों-द्वारा म्रियमाण जीव अनन्त बार नर्क गतिमें जाता है। तिर्यंच, नर्क, मनुष्य और देवगतिरूप अनादि-अनन्त तथा चारगतिवाले इस संसाररूपी वनमें भटकता रहता है।

पंडित मरण दो प्रकारका है—पादोपगमन—वृक्षसदृश स्थिर रहकर मरना और भक्तप्रत्याख्यान--खानपानका त्यागकर मरना।

पादोपगमनमरण दो प्रकारका है :—निर्हारिम—(उपाश्रय आदि से मरनेवाले व्यक्तिका शव निकालकर संस्कार करनेमें आय तो निर्हारिम मरण) और अनिर्हारिम—(वन आदिमें ही देहोत्सर्ग कर मरना, जिसमें दाह-संस्कार न हो)।

यह दोनोंप्रकारका पादोपगमनमरण अप्रतिकर्म है।

भक्तप्रत्याख्यानमरण भी दो प्रकारका है—निर्हारिम और अनिर्हारिम। दोनोंप्रकारका भक्तप्रत्याख्यानमरण सप्रतिकर्म है।

उपर्युक्त दोनों प्रकारके पंडितमरणों-द्वारा म्रियमाण जीव नैरयिकोंके अनन्त भव नहीं प्राप्त करता तथा चारगतिरूप संसारारण्य को पार कर जाता है।

इसप्रकार इन दो मरणोंमें (बालमरण व पंडितमरण,) एकके द्वारा जीवका संसार घटता है और एकके द्वारा बढ़ता है।

द्वितीय शतक

द्वितीय–तृतीय–चतुर्थ उद्देशक

द्वितीय उद्देशक

द्वितीय उद्देशक में वर्णित विषय

[समुद्घात-भेद, भावितात्मा अनगार—समुद्घातपद-प्रज्ञापना सूत्र। प्रश्नोत्तर संख्या २]

(प्रश्नोत्तर नं० १९-२२)

(७१) [1]सात प्रकारके समुद्घात[2] हैं—वेदना-समुद्घात आदि। यहाँ प्रज्ञापना सूत्रका छत्तीसवां समुद्घातपद, छाद्मस्थिक समुद्-

---

१—वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मरणसमुद्घात, वैक्रियसमुद्घात, तैजससमुद्घात, आहारकसमुद्घात और केवलीसमुद्घात।

२—जैन दर्शनमें आत्मा और कर्म—ये मुख्य दो तत्त्व हैं। जीव चैतन्यस्वरूप है और कर्म जड़। कर्माणु आत्मासे आवेष्टित हो उसके मूल स्वरूपको प्रकट नहीं होने देते। जड़ कर्माणुओंकी तरह ही आत्माके भी अणु होते हैं, जिन्हें जैन-परिभाषामें प्रदेश कहा गया है। आत्मा अपने इन आत्म-प्रदेशोंको संकुचित एवं विस्तारित कर सकती है। कभी-कभी अपने आत्म-प्रदेशोंको शरीरके बाहर भी प्रसारित करती है और उन्हें पुनः संकोच लेती है। बाहर निकालने और संकोच करनेकी इस प्रक्रियाकों को जैन-परिभाषामें समुद्घात कहा है। आत्मा अपनेपर आवेष्टित कर्माणुओं को बिखेरनेके लिये यह समुद्घात नामक क्रिया करती है। जिसप्रकार पक्षी अपने पङ्खों पर जमी हुई धूलको उनसे अलग करनेके लिये अपनी पांखे फैलाकर झाड़ देता है उसीप्रकार आत्मा भी समुद्घात-क्रिया-द्वारा कर्माणुओंको झाड़ देती है।

घातको छोड़कर वैमानिकपर्यन्त जानना चाहिये। कषाय-समुद्घात तथा इनका अल्पत्व-बहुत्व भी जानना चाहिये।

भावितात्मा अनगारको केवली-समुद्घात यावत् शाश्वत अनागत काल-पर्यन्त रहता है या नहीं, इस सम्बन्धमें भी उप-र्युक्त समुद्घातपद जानना चाहिये।

तृतीय उद्देशक

तृतीय उद्देशक में वर्णित विषय

[रत्नप्रभा आदि सप्त भूमियां, सर्व जीव नर्कमें पूर्व अनेकवार उत्पन्न हुए हैं—जीवाभिगम सूत्र द्वितीय उद्देशक। प्रश्नोत्तर संख्या २]

(प्रश्नोत्तर नं० २१-२२)

(७२) पृथ्वियां कितनी हैं, इस सम्बन्धमें जीवाभिगम सूत्रमें कथित नैरयिकोंका द्वितीय उद्देशक जानना चाहिये। इस उद्देशकमें पृथ्वी, नर्क, संस्थान, पृथ्वीकी मोटाई आदि अनेक विषयोंका निरूपण है।

रत्नप्रभाभूमिके तीस लाख निरयावासोंमें समस्त जीव अनेकवार तथा अनन्तवार उत्पन्न हुए हैं। यहां (विस्तृत वर्णन के लिये) पृथ्वी उद्देशक तक सर्व वर्णन जानना चाहिये।

चतुर्थ उद्देशक

चतुर्थ उद्देशक में वर्णित विषय

[इन्द्रियोंके भेद, इन्द्रियोंके आकार तथा उनके विषय—प्रज्ञापना सूत्र इन्द्रिय उद्देशक। प्रश्नोत्तर संख्या १]

(प्रश्नोत्तर नं० २३)

(७३) [1]पांच इन्द्रियां हैं। यहां प्रज्ञापनासूत्रका इन्द्रिय उद्देशक-अलोकपर्यन्त जानना चाहिये। इन्द्रियोंकी बनावट, लम्बाई व मोटाई आदि भी तदनुसार जाननी चाहिये।

१—स्पर्श शरीर, जिह्वा, नाक, आँख व कान।

द्वितीय शतक

पंचम उद्देशक

पञ्चम उद्देशक में वर्णित विषय

[देवताओंके स्त्रियां नहीं होती—अन्य मतावलम्बियोंकी मान्यतायें और उनका खंडन, एक जीव एक समयमें एक ही वेदका अनुभव करता है, गर्भ-विचार, एक जीवके एक भवमें होनेवाली संतानोंकी संख्या आदि, मैथुन-परिणाम, साधुसेवा, शास्त्र-श्रवण, ज्ञान, विज्ञान, प्रत्याख्यान, संयम अनाश्रव, तप, विज्ञान, अक्रिया, और सिद्धिका फल, राजगृहके ऊष्ण कुण्डोके सम्बन्धमें अन्यतीर्थिकोंकी मान्यताका खण्डन और स्वमत निरूपण। प्रश्नोत्तरसंख्या २४]

(प्रश्नोत्तर नं० २४)

(७४) "कोई निर्ग्रन्थ मृत्युके पश्चात् देव होता है। वह देव अन्य देवताओं तथा अन्य देवांगनाओंके साथ परिचारणा—विषय-सेवन नहीं करता और न अपनी देवांगनाओंको वश करके ही उनके साथ विषय-सेवन करता है; प्रत्युत् स्वयं ही अपने देव-देवीके दो नवीन रूप विकुर्वित कर विषय-सेवन करता है। अतः एक जीव एक ही समयमें दो वेद—स्त्रीवेद और पुरुषवेद, का अनुभव करता है।"

अन्यतीर्थिकोंका यह कथन मिथ्या है। मैं तो इसप्रकार प्रज्ञापित और प्ररूपित करता हूँ।

प्रत्येक निर्ग्रन्थ मृत्युके पश्चात् देवलोकमें उत्पन्न होता है। जो देवलोक अधिक ऋृद्धिसम्पन्न, अधिक प्रभावसम्पन्न तथा चिरस्थितिसम्पन्न है, उनमें वह साधु महान् ऋृद्धिसम्पन्न, दशों दिशाओंको प्रकाशित एवं शोभित करनेवाला अनुपम स्वरूपवान देव होता है। वहाँ वह देव अन्य देवों व अन्य देवांगनाओं को वश करके विषय-सेवन करता है तथा अपनी देवांगनाओं वश करके भी। वह देव स्वयं अपने दो रूप बनाकर परिचारणा नहीं करता; क्योंकि एक जीव एक समयमें एक ही वेदका अनुभव करता है—स्त्रीवेद या पुरुष वेद। जिससमय स्त्रीवेद-वेदन करता है उससमय पुरुषवेद वेदन नहीं करता, जिससमय पुरुषवेद वेदन करता है उससमय स्त्रीवेद नही वेदन करता। स्त्रीवेदके उदयसे पुरुषवेदको नहीं वेदन करता और पुरुषवेदके उदयसे स्त्रीवेदको नहीं। अतः एक जीव एक समयमें एक ही वेद वेदन करता है, चाहे वह स्त्रीवेद हो या पुरुषवेद। जब स्त्रीवेदका उदय होता है तब स्त्री पुरुषकी इच्छा करती और जब पुरुषवेदका उदय होता है तब पुरुष स्त्रीकी इच्छा करता है। ये दोनों परस्पर एक दूसरेकी; अर्थात् स्त्री पुरुषकी और पुरुष स्त्रीकी, इच्छा करते हैं।

गर्भशास्त्र

(प्रश्नोत्तर नं० २५-३३)

(७५) [१]उदकगर्भ—जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छःमास पर्यन्त, तिर्यंचयोनिकगर्भ—जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट आठ

१—पानी-बरसनेमें कारणभूत पुद्गलोंका परिणाम—उदकगर्भ।

वर्ष तक, मनुष्यगर्भ—जघन्य अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट बारह वर्ष पर्यन्त, और [1]कायभवस्थगर्भ—जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट चौबीस वर्ष पर्यन्त, गर्भरूपमें रहते हैं।

मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकोंमें योनिगत बीज जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त पर्यन्त [2]योनिभूत रहता है।

एक जीव एक भवमें जघन्य--कमसे कम, एक, दो, तीन और उत्कृष्ट—अधिकसे अधिक, नवसो जीवोंका पुत्र[3] होता है।

एक जीव एक भवमें जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट नवलाख संतानोंका पिता होता है। ऐसा होनेका कारण स्त्री-पुरुषकी कर्मकृत (कामोत्तेजक) योनिमें मैथुनवृत्तिक नामक संयोग उत्पन्न होता है। इससे वे दोनों वीर्य और रजका संयोग

१—माताके गर्भाशयमें स्थित जीवका शरीर काय और उस शरीरमें समुत्पन्न जीव कायभवस्थ कहा जाता है। वह कायभवस्थ जीव माताके गर्भमें बारह वर्ष पर्यन्त रहता है और पुनः मरकर अन्य वीर्य द्वारा अपने पूर्व-रचित कायमें उत्पन्न हो, उसीमें फिर बारह वर्ष तक रहता है। इसप्रकार चौवीस वर्ष पर्यन्त कायभवस्थ गर्भरूपमें रहता है।

२—योनिभूत—योनि बननेमें कारणभूत—संतानोत्पत्तिके योग्य।

३—मनुष्य और तिर्यंचका वीर्य बारह मुहूर्त पर्यन्त योनिभूत रहता है अर्थात् तबतक उस वीर्यमें संतानोत्पादिका शक्ति रहती है। इस अवधिमें गाय आदिकी योनिमें दोसोसे नवसो सांढ़ोंका पडा हुआ वीर्य भी वीर्य ही कहा जायगा। उस वीर्य-समुदायसे जो सन्तान उत्पन्न होगी, वह सबोंका पुत्र कही जायगी। इसी अपेक्षासे ऐसा कहा गया है।

करते हैं। परिणामतः उपर्युक्त दो से [1]नवलाख पर्यन्त संतानें उत्पन्न हो सकती हैं।

जिसप्रकार कोई पुरुष रूतनालिका—रूईसे भरी हुई नली, बूरनालिका—बूरसे भरी हुई नली, में तप्त स्वर्णशलाका डालकर उसे जला देता है उसीप्रकार मैथुन-सेवमान—मैथुन करते हुए, पुरुषको [2]असंयम होता है।

(प्रश्नोत्तर नं० ३४-४६)

(७६) [3]आश्रवरहित होना संयमका फल है। कर्मका नाश करना तपका फल है।

पूर्वके तप-द्वारा, पूर्वके संयम-द्वारा, पूर्वके [4]कर्मिपनसे तथा पूर्वके [5]संगीपनसे देवता देवलोकमें उत्पन्न होते हैं।

(७७) तथाकथित श्रमण-निर्ग्रन्थोंकी पर्युपासना करनेवाले मनुष्योंको शास्त्रश्रवणका फल मिलता है। शास्त्रश्रवणका फल ज्ञान, ज्ञानका फल विवेचनपूर्ण ज्ञान, विवेचनपूर्ण ज्ञानका फल प्रत्याख्यान, प्रत्याख्यानका फल संयम, संयमका फल अनाश्रव, अनाश्रवका फल तप, तपका फल कर्मनाश, कर्मनाशका फल निष्कर्मता, और निष्कर्मताका फल मुक्ति—सिद्धि है।

१—मत्स्यादिकी अपेक्षा। २—इसप्रकार मैथुन-सेवन करता हुआ पुरुष अपने पुरुषचिह्न-द्वारा योनिगत जीवोंका नाश करता है।

२—तुंगिकाके श्रावकोंके द्वारा पूछे गये और पार्श्वपत्य श्रमणों द्वारा दिये गये उत्तर।

३—'कम्मियाए' त्ति—कर्मयुक्त-कर्मी—कर्मोंके शेष रहनेसे भी देवलोक मे जाया जाता है। ५—संगियाए त्ति—सराग संयमसे।

(प्रश्नोत्तर नं० ४७)

(७८) "राजगृहनगरके बाहर वैभार पर्वतके नीचे एक बड़ा पानीका सरोवर है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई अनेक योजन है। इसका अग्रप्रदेश अनेक प्रकारके वृक्षोंसे सुशोभित है। उसकी बाह्य शोभा नयनानन्दकर है। उस सरोवरपर अनेक उदार मेघ मंडराते और बरसते हैं। वहांसे गर्म २ पानीके स्रोत झरते रहते हैं।"

अन्यतीर्थिकोंका उपर्युक्त कथन मिथ्या है। मैं इसप्रकार प्रज्ञापित तथा प्ररूपित करता हूं :—

राजगृहनगरके बाहर वैभार पर्वतके पासमें महातपोपतीर-प्रभव नामक सरोवर है। उसकी लंबाई-चौड़ाई पांचसो धनुष है। उसका अग्रप्रदेश अनेक वृक्षोंसे सुशोभित, रमणीय, दर्शनीय, आनन्ददायक व आह्लादजनक है। उस सरोवरमें अनेक उष्णयोनिक जीव और पुद्गल पानीरूपमें चय-उपचय होते रहते हैं। अतः सरोवरसे सदैव गर्म२ पानी झरता रहता है।

द्वितीय शतक

षष्ठम, सप्तम, अष्टम व नवम उद्देशक

षष्ठम उद्देशक

षष्ठम उद्देशकमें वर्णित विषय

[भाषा अवधारिणी है—प्रज्ञापनासूत्र—भाषापद प्रश्नोत्तर संख्या १]

(प्रश्नोत्तर नं० ४८)

(७६) भाषा अवधारिणी है, इस संबंधमें प्रज्ञापनासूत्रका सम्पूर्ण भाषापद जानना चाहिये।

सप्तम उद्देशक

सप्तम उद्देशकमें वर्णित विषय

[देवताओंके चारप्रकार—भवनवासी देवोंके आवास—प्रज्ञापना स्थानपद, स्वर्गोंके आधार, विमानोंकी ऊँचाई, आकार आदि—जीवाभिगम सूत्रका वैमानिक उद्देशक। प्रश्नोत्तर संख्या २]

(प्रश्नोत्तर नं० ४९-५०)

(८०) देवता चारप्रकारके हैं—भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक। भवनवासी देवताओंके स्थान रत्नप्रभा-भूमिके नीचे हैं इत्यादि [1]स्थानपदमें वर्णित देवताओं संबंधी सर्व वर्णन यहां जानना चाहिये। 'उनका उपपात लोकके असंख्य भागमें होता है"—यह समस्त वर्णन सिद्धगंडिका पर्यन्त जानना

१—प्रज्ञापनासूत्र द्वितीय स्थानपद।

चाहिये। कल्पोंका प्रतिष्ठान तथा संस्थान—आकार आदि जीवाभिगमसूत्रके वैमानिक उद्देशकको तरह जानना चाहिये।

अष्टम उद्देशक

अष्टम उद्देशकमें वर्णित विषय

[चमरकी सुधर्मा सभा, जिनगृह, सभा, अलंकार, विजयदेव, चमरकी समृद्धि, प्रश्नोत्तर संख्या १]

(प्रश्नोत्तर नं० ५१)

(८१) जम्बूद्वीप नामक द्वीपमें स्थित सुमेरुपर्वतकी दक्षिण दिशासे तिर्यक् असंख्य द्वीप और समुद्रोंके समुल्लंघनके पश्चात् अरुणवर नामक द्वीप आता है। उस द्वीपकी बाह्य वेदिकासे आगे बढने पर अरुणोदयनामक समुद्र आता है। अरुणोदय समुद्रमें ४२ लाख योजन गहरे उतरनेके पश्चात् असुरोंके इन्द्र और असुरोंके राजा चमरका तिगिच्छकूट नामक उत्पातपर्वत आता है। उस पर्वतकी ऊँचाई १७२१ योजन और उद्वेध ४३० योजन और एक कोस है। इस पर्वतका माप गोस्तुभनामक आवास पर्वतके मापकी तरह जानना चाहिये। विशेषान्तर यह कि गोस्तुभके ऊपरके भागका जो माप है वह इसके मध्यभागके लिये समझना चाहिये। तिगिच्छकूटका विष्कंभ मूलमें १०२२ योजन; मध्यमें ४२४ योजन और ऊपरका विष्कंभ ७२३ योजन है। उसका परिक्षेप मूलमें ३२३२ योजन तथा कुछ अधिक, मध्यमें १३४१ योजन तथा कुछ अधिक तथा ऊपरमें २२८६ योजन व कुछ अधिक है। वह मूलमें विस्तृत है, मध्यमें संकड़ा तथा ऊपरमें विशाल है। उसका मध्यप्रदेश उत्तम वज्र तथा महामुकुन्दके

संस्थानके सदृश है। वह सारा ही पहाड़ रत्नमय है, सुन्दर है तथा यावत् प्रतिरूप है।

यह पर्वत उत्तम कमलकी एक वेदिका तथा एक वन-खंड द्वारा सम्यकरूपसे चारों ओरसे वेष्टित है। (यहाँ वेदिका तथा वन-खंडका वर्णन जानना चाहिये) पर्वतका ऊपरीभाग समतल तथा मनोहर है (उसका वर्णन भी जानना चाहिये) उस समतल तथा सुन्दर ऊपरके भागके मध्यमें एक विशाल प्रासाद है। उस महलकी ऊँचाई २५० योजन तथा उसका विष्कंभ १२५ योजन है। (यहाँ महल तथा उसके ऊपरीभागका वर्णन भी जानना चाहिये।) (यहाँ आठ योजनकी पीठिका, चमरका सिंहासन व परिवार भी जानना चाहिये।)

इस तिगिच्छकूट पर्वतके दक्षिण अरुणोदय समुद्रसे ६५५ करोड़ ३५ लाख ५५ हजार योजन तिर्यक् जानेके पश्चात् तथा वहाँसे रत्नप्रभाभूमिका ४० हजार योजन प्रदेश अवगाहित करनेके अनन्तर असुरेन्द्र तथा असुरोंके राजा चमरकी चमरचंचा नामक नगरी आती है। उस राजधानीका आयाम और विष्कंभ एक लाख योजनका है। वह जम्बूद्वीप जैसी है। उसका किला १५० योजन ऊँचा है। किलेके मूलका विष्कंभ ५० योजन तथा ऊपरका विष्कंभ १३॥ योजन है। उसके कंगुरोंकी ऊँचाई अर्द्ध योजनसे कुछ न्यून है।

किलेके एक २ बाहुमें पाच-पाचसो दरवाजे हैं और उनकी ऊँचाई २५० योजन और चौड़ाई लम्बाई से अर्द्ध है। उवा-रियल (घरका पीठबंध) का आयाम और विष्कंभ सोलह हजार

योजन और परिक्षेप ५०५९७ योजनसे कुछ विशेषकम है। वैमानिकोंकी अपेक्षा यहाँ सर्व अर्द्ध प्रमाण--माप, जानना चाहिये।

सुधर्मासभा, उत्तर एवं पूर्वके जिनगृह, उपपात, सभा, ह्रद, अभिषेक और अलंकार [1]विजयदेवकी तरह जानने चाहिये।

गाथा

उपपात, संकल्प, अभिषेक, विभूषणा, व्यवसाय, अर्चनिका और सिद्धायतन संबंधी गम, चमरका परिवार व ऋद्धिसम्पन्नता (इन सबका वर्णन विजयदेवके अनुसार जानना चाहिये।)

नवम उद्देशक

नवम उद्देशकमें वर्णित विषय

[समयक्षेत्र—ढाई द्वीप और समुद्र—जीवाभिगमसूत्र। प्रश्नोत्तर संख्या १]

(प्रश्नोत्तर नं० ५२)

(८३) ढाई द्वीप और दो समुद्रका क्षेत्र [2]समयक्षेत्र कहा जाता है। समयक्षेत्रमें जम्बूद्वीप सर्व द्वीप-समुद्रोंके मध्य स्थित है, आदि समस्त वर्णन जीवाभिगमके अनुसार आभ्यन्तर पुष्करार्ध तक जानना चाहिये। इसमें ज्योतिषिकका वर्णन नहीं जानना।

१—जीवाभिगनसूत्रमें विजयदेवके संबंधमें विस्तृत वर्णन है।

२—जिस क्षेत्रमें समयका दिन, मास, वर्षादि रूपमें माप चलना हो उसे समयक्षेत्र कहते हैं। समयक्षेत्रका दूसरा नाम मनुष्यक्षेत्र भी है। समय-गणना मात्र मनुष्यलोकमें ही है।

द्वितीय शतक

दशम उद्देशक

दशम उद्देशकमें वर्णित विषय

[पंचास्तिकाय-स्वरूप—भेद-प्रभेद, लोकाकाश और अलोकाकाश, जीव-लक्षण, अजीव और उसके भेद, रूपी अजीवके चार और अरूपी अजीव के पांचप्रकार, धर्मास्तिकायका आकार, लोकाकाश और सर्व अस्तिकाय। धर्मास्तिकायका अधोलोकको स्पर्श आदि। प्रश्नोत्तर सं० २३]

पंचास्तिकाय

(प्रश्नोत्तर नं० ५३-६२)

(८४) धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्‌गलास्तिकाय—ये पांच अस्तिकाय हैं।

धर्मास्तिकाय अरूपी, अजीव, शाश्वत तथा अवस्थित लोक-द्रव्य है। इसमें रंग, गंध, रस और स्पर्श नहीं है।

संक्षिप्तमें धर्मास्तिकायके पांच विभेद हैं—द्रव्यधर्मास्तिकाय, क्षेत्रधर्मास्तिकाय, कालधर्मास्तिकाय, भावधर्मास्तिकाय और गुणधर्मास्तिकाय।

धर्मास्तिकाय द्रव्यापेक्षासे एकद्रव्य, क्षेत्रापेक्षासे लोकप्रमाण, कालापेक्षासे यावत् शाश्वत-नित्य, भावापेक्षासे वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-रहित और गुणापेक्षासे गतिगुणयुक्त है।

अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकायके संबंधमें भी धर्मास्तिकायकी तरह जानना चाहिये। किन्तु इनमें निम्न विशेषतायें हैं–

अधर्मास्तिकाय गुणापेक्षासे स्थिति-गुणयुक्त है। आकाशास्तिकाय क्षेत्रापेक्षासे लोकालोक-प्रमाण यावत् अनन्त व गुणापेक्षासे अवगाहना-गुणयुक्त है।

जीवास्तिकाय अरूपी, सजीव, शाश्वत तथा अवस्थित लोक-द्रव्य हैं। इसमें वर्ण-गंध-रस-स्पर्श नहीं है।

संक्षिप्तमें जीवास्तिकायके भी पांच विभेद हैं—द्रव्यजीवास्तिकाय, क्षेत्रजीवास्तिकाय, कालजीवास्तिकाय, भावजीवास्तिकाय और गुणजीवास्तिकाय। जीवास्तिकाय द्रव्यापेक्षासे अनन्त जीवद्रव्यरूप, क्षेत्रापेक्षासे लोकप्रमाण, कालापेक्षासे यावत् शाश्वत व नित्य, भावापेक्षासे वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-रहित व गुणापेक्षासे उपयोग-गुणयुक्त है।

पुद्गलास्तिकाय रूपी, अजीव, शाश्वत व अवस्थित लोक-द्रव्य है। इसमें पांच रंग, पांच रस, दो गंध व आठ स्पर्श हैं।

संक्षिप्तमें पुद्गलास्तिकायके भी पांच भेद हैं—द्रव्यपुद्गलास्तिकाय, क्षेत्रपुद्गलास्तिकाय, कालपुद्गलास्तिकाय, भावपुद्गलास्तिकाय व गुणपुद्गलास्तिकाय। पुद्गलास्तिकाय द्रव्यापेक्षासे अनन्त द्रव्यरूप, क्षेत्रापेक्षासे लोक-प्रमाण, कालापेक्षासे यावत् शाश्वत-नित्य, और भावापेक्षासे वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-सहित व गुणापेक्षासे ग्रहणगुणयुक्त है।

धर्मास्तिकायके एक, दो, तीन, चार, पांच, छः, सात, आठ, नव और दश प्रदेश—इस क्रमसे, संख्येय और असंख्येय प्रदेश भी धर्मास्तिकायरूपमें नहीं कहे जा सकते। धर्मास्तिकायप्रदेश

क्या एक प्रदेश न्यून धर्मास्तिकाय भी धर्मास्तिकायरूपमें नहीं कहे जा सकते। उदाहरणार्थ—जिसप्रकार चक्र—पहिये, का एक भाग चक्र—पहिया, नहीं कहा जाता है; वरन् अखंडित चक्र ही चक्र कहा जाता है उसीप्रकार एकप्रदेश धर्मास्तिकायसे लेकर एक प्रदेश-न्यून धर्मास्तिकाय भी धर्मास्तिकाय नहीं कहे जाते। छत्र, शरीर, दंड, वस्त्र, शस्त्र और मोदक भी अन्य उदाहरणोंके रूपमें लिये जा सकते हैं। ये सर्व सम्पूर्ण होने पर ही अपने नामसे संज्ञित होते हैं, खंडितावस्थामें नहीं।

धर्मास्तिकायमें असंख्येय प्रदेश हैं। जब ये समस्त प्रदेश कृत्स्न—सम्पूर्ण--पूरे-पूरे, प्रतिपूर्ण—अशेप—एक भी न्यून नहीं, हों तथा एक शब्द-द्वारा ही ग्रहणीय हों; तब धर्मास्तिकाय रूपमें कहे जा सकते हैं। अधर्मास्तिकाय आदि शेप चार द्रव्योंके लिये भी इसीप्रकार जानना चाहिये। विशेपान्तर यह है कि आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय व पुद्गलास्तिकाय—इन तीन द्रव्योंमें अनन्त प्रदेश हैं।

जीव

(प्रश्नोत्तर नं० ६३-६४)

(८५) उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुपाकार-पराक्रमयुक्त जीव [1]आत्म-भाव-द्वारा [2]जीव-भावको दिखाता है। क्योंकि जीव आभिनिबोधिकज्ञान—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, विभंगअज्ञान,

---

१—सोना, उठना-बैठना, आना-जाना, भोजन करना आदि क्रियायें आत्मभाव कही जाती हैं। २—चैतन्यत्व।

चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शनकी पर्यायोंका उपयोग करता है। जीवका उपयोग लक्षण भी इसी अपेक्षासे किया गया है।

आकाश

(प्रश्नोत्तर नं० ६५-६८)

(८६) आकाश दो प्रकारका है—लोकाकाश और अलोकाकाश। लोकाकाशमें जीव, जीव-देश, जीव-प्रदेश, अजीव, अजीव-देश और अजीव-प्रदेश भी हैं। इसमें जो जीव हैं वे निश्चिय ही एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, व अनिन्द्रिय—सिद्ध हैं। जीवदेश व जीवप्रदेश भी नियमतः इन्हीं जीवोंके हैं। अजीव भी दो प्रकारके हैं—रूपी और अरूपी। रूपी चारप्रकारके है—स्कंध, स्कन्धदेश, स्कन्धप्रदेश और परमाणु पुद्गल। अरूपी भी पांच प्रकारके हैं—धर्मास्तिकाय, धर्मास्तिकाय-प्रदेश, अधर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय-प्रदेश, तथा अद्धा-समय। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकायके देश नहीं हैं।

अलोकाकाशमें जीव, जीवदेश, जीवप्रदेश, अजीव, अजीव देश और अजीवप्रदेश भी नहीं हैं। मात्र एक [1]अजीव द्रव्य-देश—आकाश है। अलोकाकाश अगुरुलघु, अगुरुलघुरूप अनन्त गुणोंसे युक्त तथा सर्वाकाशका अनन्तभाग है।

(८७) धर्मास्तिकाय लोकरूप, लोकप्रमाण और लोकस्पृष्ट है। यह लोकको ही स्पृष्टकर स्थित है।

१—'एगे अजीव द्रव्यदेसे' त्ति—एक अजीव द्रव्य देश अर्थात आकाश है। क्योंकि आकाशके लोकाकाश और अलोकाश दो विभाग हैं। अलोकाकाशका आकाश भी आकाशका ही एक भाग है।

अधर्मास्तिकाय, लोकाकाश, जीवास्तिकाय व पुद्गलास्तिकाय भी धर्मास्तिकायकी तरह जानने चाहिये।

अधोलोक धर्मास्तिकायका अर्द्धसे अधिक भाग, तिर्यक् लोक धर्मास्तिकायका असंख्येय भाग व ऊर्ध्वलोक कुछ न्यून अर्द्ध-भागको स्पर्श करता है।

रत्नप्रभाभूमि धर्मास्तिकायके असंख्येय भागको स्पर्श करती है परन्तु संख्येय भाग, असंख्येय भागों या सर्वभागको स्पर्श नहीं करती। रत्नप्रभाभूमिका घनोदधि, घनवात तथा तनुवात भी रत्नप्रभाभूमिकी तरह ही असंख्येय भागको स्पर्श करते हैं।

रत्नप्रभाभूमिका अवकाशान्तर धर्मास्तिकायके संख्येय भाग को स्पर्श करता है परन्तु असंख्येयभाग, संख्येय भागों, असंख्येय भागों या सर्वभागको स्पर्श नहीं करता। इसीप्रकार सर्व अव-काशान्तर जानने चाहिये।

रत्नप्रभाभूमिके अनुसार सातों भूमियां, जम्बूद्वीपादि द्वीप, लवणसमुद्रादि समुद्र, सौधर्म-कल्प, और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी-पर्यन्त जानना चाहिये। ये सर्व धर्मास्तिकायके असंख्येय भागको स्पर्श करते हैं।

धर्मास्तिकायकी तरह ही अधर्मास्तिकाय व लोकाकाशके स्पर्शके विषयमें जानना चाहिये।

गाथा

पृथ्वी, उदधि, घनवात, तनुवात, कल्प, ग्रैवेयक, अनुत्तर व सिद्धि, इन सबोंके अवकाशान्तर धर्मास्तिकायके संख्येय भागको स्पर्श करते हैं। शेष सर्व असंख्येय भागको ही स्पर्श करते हैं।

तृतीय शतक

प्रथम उद्देशक

प्रथम उद्देशकमें वर्णित विषय ,

[असुरराज चमरेन्द्रकी ऋद्धि तथा विकुर्वण शक्ति, चमरेन्द्रके त्रायस्त्रिंशकों, सामानिकों और अग्रमहिषियोंकी समृद्धि व विकुर्वण शक्ति, वैरोचनराज वली, नागराज धरणेन्द्र, देवराज शक्रेन्द्र, देवराज ईशान आदिकी समृद्धि व विकुर्वणशक्ति, उत्तरार्द्ध और दक्षिणार्द्धके इन्द्रोंका मिलाप, वार्तालाप व विवाद आदि, सनत्कुमारकी समृद्धि तथा भव्यत्व । प्रश्नोत्तर सं० ३५]

असुरराज चमरेन्द्र

(प्रश्नोत्तर नं० १-८)

(८८) [1]असुरेन्द्र, असुरराज चमर महान् ऋद्धिसम्पन्न, महान् कान्तिसम्पन्न, महान् बलसम्पन्न, महान् सुखसम्पन्न महान् कीर्तिसम्पन्न और महान् प्रभावसम्पन्न है। वह चालीस लाख भवनावासों, चौंसठ हजार सामानिक देवों और तैंतीस लाख त्रायास्त्रिंशक देवताओं पर शासन करता है।

जिसप्रकार कोई युवक किसी युवतीका हाथ अपने हाथमें पकड़े या चक्रकी नाभिके छिद्रमें आरा डाला जाय, उसीप्रकार असुरराज चमर वैक्रियसमुद्घात-द्वारा समवहित होता है। वह

१—भगवान् महावीरके द्वितीय शिष्य अग्निभूति अनगार द्वारा पूछे गये प्रश्नोत्तर ।

संख्येय योजनके लंबे दंड करता है और उनके द्वारा रत्नों यावत् रिष्ट रत्नोंके सदृश स्थूल पुद्गलोंको बिखेरकर व झाड़ कर सूक्ष्म पुद्गलोंको ग्रहण करता है। दूसरीबार पुनः वैक्रियसमुद्घातद्वारा समवहित होता है (वांछितरूप बनानेके लिये)।

इसप्रकार असुरराज चमर अनेक असुरकुमार देवताओं और अनेक असुरकुमार देवियोंके रूप विकुर्वित कर अखिल जम्बूद्वीपको आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उपस्तीर्ण, संस्तीर्ण, स्पृष्ट और अवगाढावगढ कर सकता है। वह तिर्यक् लोकमे भी असंख्येय द्वीपों और समुद्रोंपर्यन्त क्षेत्र अनेक देवताओं और देवियों द्वारा आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उपस्तीर्ण, संस्तीर्ण स्पृष्ट और अवगाढावगाढ कर सकता है।

असुरेन्द्र असुरराज चमरकी उपर्युक्त इतने रूप-निर्माण करनेकी मात्र शक्ति है परन्तु कभी भी उसने इसप्रकारके रूप विकुर्वण किये नहीं, करता नहीं और करेगा नहीं।

असुरेन्द्र असुरराज चमरके सामानिक देव भी महान् ऋद्धि-सम्पन्न, महान् कान्तिसम्पन्न, महान् बलसम्पन्न, महान् सुख-सम्पन्न, महान् कीर्तिसम्पन्न और महान् प्रभावसम्पन्न हैं। वे अपने-अपने भवनों, सामानिकों और पटरानियों पर शासन करते हुए दिव्य भोगोंका उपभोग करते हैं।

जिसप्रकार कोई युवक किसी युवतीका हाथ पकड़े या चक्र

१—नैरयिक, देव, पवन, कितने ही मनुष्य तथा पंचेंद्रिय तिर्यंच अपने शरीरोंको विविध रूपोंमें परिवर्तित कर सकते हैं। रूप-परिवर्तनकी इस प्रक्रियाको जैन-परिभाषामें विक्रया कहा जाता है। विक्रया-द्वारा निर्मित शरीरको वैक्रिय कहते हैं।

की नाभिके छिद्रमें आरा डाला जाय, उसीप्रकार सामानिक देव वैक्रिय समुद्‌घात द्वारा समवहित होते हैं। और (पूर्ववत्) दूसरीवार भी समवहित होते हैं।

सामानिक देव सम्पूर्ण जम्बूद्वीपको अनेक असुरकुमार देवों तथा देवियों द्वारा आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उपस्तीर्ण, संस्तीर्ण, स्पृष्ट और अवगाढावगाढ कर सकते हैं।

तिर्यक्‌लोकमें भी असंख्य द्वीप-समुद्रों तकका क्षेत्र अनेक असुरकुमार देवों तथा देवियोंके द्वारा एक-एक सामानिक देव आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उपस्तीर्ण, संस्तीर्ण, स्पृष्ट और अवगाढावगाढ कर सकता है।

सर्व सामानिक देवोंमें इसप्रकारकी विकुर्वण करनेकी शक्ति है परन्तु उन्होंने प्रयोगरूपमें कभी भी विकुर्वण नही किया, न वे करते हैं और न करेंगे ही।

असुरेन्द्र असुरराज चमरके त्रायस्त्रिंशक देव भी सामानिकोंके समान ही ऋद्धिसम्पन्न है। लोकपालोंके संबंधमें भी इसीतरह जानना चाहिये। विशेषान्तर यह है कि ये अपने द्वारा निर्मित रूपों—असुरकुमारों व असुरकुमारियोंसे संख्येय द्वीप-समुद्रोंको आकीर्ण-व्यतिकीर्ण कर सकते हैं।

असुरेन्द्र असुरराज चमरेन्द्रकी पटरानियां महान् ऋृद्धिसम्पन्न तथा यावत् प्रभावसम्पन्न हैं। वे अपने-अपने भवनों, तथा अपने-अपने हजार सामानिक देवों, अपनी-अपनी महत्तारिकाओं और अपनी-अपनी परिपदोंका स्वामीत्व भोगती रहती हैं। लोकपालोंके सदृश इनमें भी विकुर्वण करनेकी शक्ति है।

वैरोचनराज बली

(प्रश्नोत्तर नं० ८)

(८६) [1]वैरोचनेन्द्र वैरोचराज बली महान् ऋद्धिसम्पन्न यावत् महान् प्रभावसम्पन्न है। वह तीस लाख भवनों तथा साठ हजार सामानिकोंका अधिपति है।

चमरेन्द्रकी तरह बलीके विषयमें भी जानना चाहिये। विशेषान्तर यह है कि वह अपनी विकुर्वण-शक्तिसे अखिल जम्बूद्वीपसे अधिक प्रदेशको अपने नाना रूपों द्वारा आकीर्ण कर सकता है।

नागराज धरणेन्द्र

(प्रश्नोत्तर नं ९)

(९०) [2]नागकुमारोंका राजा धरणेन्द्र महान् ऋद्धिसम्पन्न यावत् महान् प्रभावसम्पन्न है। वह चौवालीस लाख भवन-वासों, छः हजार सामानिक देवों, तैतीस त्रायस्त्रिंशक देवों, चार लोकपालों, और सपरिवार छः अग्रमहिषियोंका अधिपति है।

जिसप्रकार कोई युवक किसी युवतीका हाथ पकड़े या चक्रकी नाभिके छिद्रमें आरा डाल जाय उसीप्रकार धरणेन्द्र भी वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहित होता है और पुनः दूसरी बार समवहित होता है। अनेक नागकुमारों व नागकुमारियोंके रूप विकुर्वित कर जम्बूद्वीपको तथा तिर्यक्लोकमें संख्येय द्वीप-समुद्रोंको आकीर्ण

१—तृतीय गणधरकी वायुभूति अनगार द्वारा पूछा गया प्रश्नोत्तर।

२—अग्निभूति अनगार द्वारा पूछा गया प्रश्नोत्तर।

कर सकता है। परन्तु इसप्रकारकी विक्रया कभी भी की नहीं, करता नहीं और करेगा नहीं।

धरणेन्द्रके सामानिकों, त्रायस्त्रिंशकदेवों, लोकपालों और अग्रमहिषियोंके संबंधमें चमरके सदृश जानना चाहिये। विशेषान्तर यह है कि ये संख्येय द्वीप-समुद्र तक विकुर्वण कर सकते हैं।

स्वर्णकुमारसे, स्तनितकुमार तक, वाणव्यन्तर तथा ज्योतिषिकोंके विषयमें भी इसीतरह जानना चाहिये।

देवराज शक्रेन्द्र

(प्रश्नोत्तर नं० १०)

(६१) देवेन्द्र देवराज शक्र महान् ऋद्धिसम्पन्न यावत् महान् प्रभावसम्पन्न है। वह बत्तीस लाख विमानावासों, चौरासी हजार सामानिक देवों, तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देवों व अन्य देवों पर शासन करता है। उसकी विकुर्वण शक्ति चमरके सदृश ही जाननी चाहिये। वह इतने रूप विकुर्वण कर सकता है कि जिनसे अखिल दो जम्बूद्वीप आकीर्ण हो सकते हैं परन्तु देवेन्द्र-देवराजशक्रका यह विषयमात्र है अर्थात् उसकी इतनी शक्ति है। प्रयोगरूपसे उसने कभी ऐसा विकुर्वण किया नहीं, करता नहीं व करेगा भी नहीं।

(प्रश्नोत्तर न० ११-१२)

(६२) स्वभावसे भद्र, विनीत, सदैव छट्ट तप-द्वारा अपनी आत्माको भावित करनेवाले, तिष्यक अनगार आठ वर्ष-पर्यन्त साधुत्वका पालन करके व मासिक संलेषना-द्वारा आत्माको सँजोकर, साठ टँक पर्यन्त अनशन, आलोचन तथा प्रतिक्रमणकर

समाधिके साथ मृत्युवेलामें काल करके सौधर्मकल्पमें देवेन्द्र-देवराज शक्रके सामानिकके रूपमें उत्पन्न हुआ है। वह तिष्यक देव महान् ऋद्धिसम्पन्न तथा प्रभावसम्पन्न है। वह अपने विमान, चार हजार सामानिक देवों, परिवारयुक्त चार अग्रमहिषियों, तीन सभाओं, सात सेनाओं, सात सेनाधिपतियों, सोलह हजार अंगरक्षक देवों तथा अन्य अनेक वैमानिक देव-देवियों पर शासन करता हुआ रहता है। वह शक्रेन्द्रकी तरह विकुर्वणशक्ति-सम्पन्न है परन्तु यह उसका विषयमात्र अर्थात् शक्तिमात्र है। प्रयोगरूपसे कभी विकुर्वण किया नहीं, करता नहीं करेगा नहीं।

देवेन्द्र-देवराज शक्रके अन्य समस्त सामानिक देव भी तिष्यक की तरह ही जानने चाहिये।

शक्रेन्द्रके त्रायस्त्रिंशक देवों, लोकपालों और पटरानियों के संबंधमें चमरके सदृश ही जानना चाहिये। विशेषान्तर यह है कि इनकी विकुर्वण-शक्ति अखिल दो जम्बूद्वीप जितनी है।

देवराज ईशानेन्द्र

(प्रश्नोत्तर नं १३-१४)

(९३) देवेन्द्र-देवराज ईशानके संबंधमें देवराज शक्रकी तरह ही जानना चाहिये। ईशानकी विकुर्वण-शक्ति दो जम्बूद्वीपसे भी अधिक है। शेष पूर्ववत्।

स्वभावसे भद्र, विनीत, सदैव अट्ठ तप तथा पारणमें आयंबिल ऐसे कठिन तप-द्वारा अपनी आत्माको भावित करने-वाला, सूर्यके समक्ष ऊँचे हाथ कर खड़ा हो आतापनभूमिमें आतापना लेनेवाला व गर्मीको सहनेवाला कुरुदत्त नामक अनगार

सम्पूर्ण छः मास-पर्यन्त साधुत्वका पालन कर व पन्द्रह दिवसकी संलेषना द्वारा अपनी आत्माको सँजोकर, तीस टँक पर्यन्त अनशनकर, आलोचन तथा प्रतिक्रमण कर समाधिके साथ मृत्युवेला में काल कर ईशान-कल्पमें अपने विमानमें ईशानेन्द्रके सामानिक देवरूपमें उत्पन्न हुआ है। वह कुरुदत्तपुत्र तिष्यकदेवकी तरह ही महान् ऋद्धिसम्पन्न व प्रभावसम्पन्न है। उसकी विकुर्वण-शक्ति भी दो जम्बूद्वीप जितनी है।

कुरुदत्तकी तरह ईशानेन्द्रके अन्य सामानिकों, त्रायस्त्रिंशक देवों, लोकपालों तथा पटरानियोंके संबंधमें जानना चाहिये।

(६४) सनत्कुमार देवेन्द्रके संबंधमें भी इसीतरह जानना चाहिये। इनकी विकुर्वण-शक्ति अखिल चार जम्बूद्वीप जितनी है। तिर्यक् लोकमें इनकी विकुर्वण-शक्ति असंख्येय द्वीप-समुद्र पर्यन्त है।

सनत्कुमारके सामानिक देवों, त्रायस्त्रिंशक देवों, लोकपालों तथा पटरानियोंके संबंधमें भी इसीप्रकार जानना चाहिये। ये समस्त असंख्येय द्वीप-समुद्रों पर्यन्त विकुर्वित हो सकते हैं।

(६५) माहेन्द्र देवताओंकी चार जम्बूद्वीपसे अधिक, ब्रह्मलोकके देवताओंकी आठ जम्बूद्वीप जितनी, लांतकके देवताओंकी आठ जम्बूद्वीपसे अधिक, महाशुक्रके देवताओंकी सोलह जम्बूद्वीप जितनी, सहस्रारके देवताओंकी सोलह जम्बूद्वीपसे अधिक, प्राणतके देवताओंकी बत्तीस जम्बूद्वीप जितनी और अच्युतके देवताओंकी बत्तीस जम्बूद्वीपसे अधिक विकुर्वण करनेकी शक्ति है।

देवराज ईशान

(प्रश्नोत्तर नं० १५-३१)

(६६) [1]देवेन्द्र देवराज ईशान महान् ऋद्धिसम्पन्न यावत् महाप्रभाव सम्पन्न है। उनकी स्थिति--आयुष्य, दो सागरोपमसे कुछ अधिक है। अपने आयुष्यके क्षय होने पर देवलोकसे च्युत् हो महाविदेहक्षेत्रमें उत्पन्न हो सिद्ध होगा तथा अपने समस्त दुखोंका अन्त करेगा।

(६७) देवेन्द्र देवराज शक्रके विमानोंसे देवेन्द्र देवराज ईशान के विमान किञ्चित् ऊँचे तथा उन्नत है और देवेन्द्र देवराज ईशान के विमानोंसे देवेन्द्र देवराज शक्रके विमान किञ्चित् नीचे व निम्न हैं। जिसप्रकार करतल—हथेली, एक भागमें उन्नत तथा, एक भागमें विशेष उन्नत एक भागमें निम्न और एक भागमें विशेष निम्न होता है, उसीप्रकारकी स्थिति इनके विमानोंकी जाननी चाहिये।

देवेन्द्र देवराज शक्र देवेन्द्र देवराज ईशानके पास प्रगट हो सकता है। जब वह उसके पास जाता है तो आदर करता हुआ जाता है, अनादर करता हुआ नहीं।

देवेन्द्र देवराज ईशान देवेन्द्र देवराज शक्रके पास जानेमें समर्थ है। जब वह उसके पास जाता है तब आदर करता हुआ भी जाता है और अनादर करता हुआ भी।

देवेन्द्र देवराज शक्र देवेन्द्र देवराज ईशानके चारों ओर देखनेमें समर्थ है या नहीं, इससंबंधमें पास आनेकी पद्धति की तरह ही देखनेकी पद्धति भी जाननी चाहिये।

१—देवराज ईशानेन्द्रकी पूर्व जन्मकी कथा परिशिष्टमें देखें।

देवेन्द्र देवराज शक्र देवेन्द्र देवराज ईशानके साथ वार्तालाप करनेमें समर्थ हैं। पासमें आनेके सदृश ही बातचीतकी पद्धति भी जाननी चाहिये।

देवेन्द्र देवराज शक्र और देवेन्द्र देवराज ईशानके मध्य विधेय--प्रयोजनीय, कार्य होते हैं। जब देवेन्द्र देवराज शक्रको कार्य हो तब वह देवेन्द्र देवराज ईशानके पास प्रादुर्भूत होता है और जव देवेन्द्र देवराज ईशानको कार्य हो तव वह देवेन्द्र देवराज शक्रके पास जाता है। उनमें परस्पर वोलनेकी पद्धति इस प्रकार है :—हे दक्षिण लोकार्धके स्वामी देवेन्द्र देवराज शक्र! और हे उत्तर लोकार्धके स्वामी देवेन्द्र देवराज ईशान! इसप्रकार परस्पर संबोधितकर वे अपना २ कार्य करते रहते हैं।

दोनों देवेन्द्र—शक्र और ईशानके मध्य विवाद भी उत्पन्न होजाते है। जव इन दोनोंके बीचमें विवाद होता है तब देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार सुनते हैं। विवाद सुनते ही वे देवराज शक्र और ईशानके पास आते हैं। वे आकर जो कुछ कहते हैं उसको दोनों इन्द्र मानते हैं। दोनों ही इन्द्र उनकी आज्ञा, सेवा और आदेश-निर्देशमें रहते हैं।

देवराज सनत्कुमार

(प्रश्नोत्तर नं० ३२-३५)

(६८) देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार भवसिद्धिक है परन्तु अभव-सिद्धि नहीं। सम्यग्दृष्टि है परन्तु मिथ्या दृष्टि नहीं, परितसंसारी है परन्तु अनन्त संसारी नहीं, सुलभवोधि है परन्तु दुर्लभवोधि नहीं, आराधक है परन्तु विराधक नहीं और चरम है परन्तु

अचरम नहीं। सनत्कुमारेन्द्र अनेक साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओंका हितैषी, सुखेच्छु व पथ्येच्छु है। वह उन पर अनुकम्पा करनेवाला है तथा उनके श्रेय, हित, सुख व मोक्षका-अभिलाषी है। अतः वह सम्यग्दृष्टि व चरमशरीरी है।

देवेन्द्र देवराज सनत्कुमारकी स्थिति सात सागरोपमकी है। अपनी स्थितिको पूर्णकर वह देवलोकसे च्युत् हो महाविदेहक्षेत्रमें जन्म ले सिद्ध होगा तथा अपने समस्त दुखोंका अन्त करेगा।

८

तृतीय शतक

द्वितीय उद्देशक

द्वितीय उद्देशकमें वर्णित विषय

[असुरकुमार देवताओंके आवास, असुरकुमारोंकी ऊर्ध्वलोक, तिर्यक्लोक और अधोलोकमें जानेकी शक्ति, पुद्गल गति, शक्र, चमर और वज्रकी गमनशक्ति आदि। प्रश्नोत्तर संख्या २९]

(प्रश्नोत्तर नं० ३६–६५)

(६६) असुरकुमार देव रत्नप्रभाभूमि या सप्तमभूमि पर्यन्त नर्क-भूमियोंके नीचे नहीं रहते हैं; न ये सौधर्मकल्प या अन्य कल्पोंके अथवा ईषत्प्राग्भारा पृथ्वीके नीचे ही रहते हैं। ये एक लाख अस्सी हजार योजनकी मोटाईवाली रत्नप्रभाभूमिके मध्यभागमें (एक-एक योजन ऊपर-नीचेके भागको छोड़कर) रहते हैं। यहाँ असुरकुमारोंके आवास-निवास और भोगों-संबंधी सम्पूर्ण वर्णन प्रज्ञापनासूत्रके अनुसार जानना चाहिये।

असुरकुमारोंकी अधोलोकमें जानेकी शक्ति निम्नप्रकार है :—

ये अपने स्थानसे सप्तमभूमि पर्यन्त नीचे जा सकते हैं परन्तु वहाँतक ये न कभी गये हैं, न जाते हैं और न जायेंगे ही। यह इनकी शक्ति मात्र है। असुरकुमार तृतीयनर्कभूमि तक जाते हैं। वहाँतक ये गये हैं, जाते है और जायेंगे। तृतीयभूमि तक गमन का कारण किसी पूर्वभवस्थ वैरीको दुख देना अथवा अपने किसी पूर्व मित्रको वेदना-विमुक्त करना है।

असुरकुमार अपने स्थानसे असंख्येय द्वीप-समुद्र-पर्यन्त तिर्यक्लोकमें भी जा सकते हैं। ये नंदीश्वरद्वीप पर्यन्त गये हैं, जाते हैं और जायेंगे। अरिहंत भगवतोंके जन्म, दीक्षा, ज्ञानोत्पत्ति और परिनिर्वाण-उत्सवोंमें ये नंदीश्वर द्वीपमें जाते हैं, गये हैं और जायेंगे। वहाँ जानेका मात्र यही कारण है।

असुरकुमार अपने स्थानसें अच्युतकल्प-पर्यन्त ऊपर जा सकने हैं। परन्तु वे कभी गये नहीं, जाते नही और जायेंगे नहीं। सौधर्मकल्प तक गये हैं, जाते हैं और जायेंगे। उनके ऊपर जानेका कारण भवप्रत्ययिक वैर है। वैक्रियरूप बनाते हुए व भोगों को भोगते हुए ये आत्मरक्षक देवोंको त्रासित करते हैं और लघु रत्नोंको लेकर एकान्तमें भाग जाते हैं। उन देवोंके पास अनेक लघु रत्न होते हैं। रत्नोंको चुरानेके कारण वैमानिक देवोंसे इन्हें शारीरिक पीड़ा सहन करनी पड़ती है।

ऊपर गये हुए असुरकुमार देव तत्रस्थित अप्सराओंके साथ दिव्य भोग नहीं भोग सकते हैं। वे वहाँ जाते है और पुनः लौट आते हैं। इस आवागमनमें कदाचित् तत्रस्थ अप्सरायें उनका आदर करें और उन्हें स्वामीरूपमें स्वीकृत करें तो वे उनके साथ भोग भोग सकते हैं, अन्यथा नहीं।

अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी व्यतीत होनेके पश्चात् लोकमें आश्चर्यजनक यह समाचार सुना जाता है कि असुर-कुमार ऊपर जाते हैं और सौधर्मकल्प तक जाते हैं। जिसप्रकार [1]शबर, बब्बर, ढंकण, भुत्तुअ, पण्ह और पुलिन्द जातिके मनुष्य किसी घने जंगल, खाई, जलदुर्ग, स्थलदुर्ग, गुफा या सघन वृक्ष-

१—शब्बर, बब्बर आदि उस समयकी अनार्य जातियां थीं।

पुंजका आश्रय लेकर एक सुव्यवस्थित विशाल अश्ववाहिनी, गजवाहिनी, पदाति और धनुर्धारियोंकी सेनाको छिपाने की हिम्मत करते हैं उसीप्रकार असुरकुमार देव भी अरिहंत, अरिहंत-चैत्यों तथा भावितात्मा अनगारोंका आश्रय ले, सौधर्म-कल्प तक ऊपर जाते हैं परन्तु विना आश्रयसे नहीं जा सकते।

समस्त असुरकुमार देव ऊपर नहीं जाते है किन्तु दिव्य ऋद्धिसम्पन्न असुरकुमार देव ही सौधर्मकल्प तक जाते हैं। [1]असुरेन्द्र चमर भी सौधर्मकल्प तक गया हुआ है।

(१००) महान् ऋद्धिसम्पन्न, महान् कान्तिसम्पन्न व महान् प्रभावसम्पन्न देव पहले फेंके हुए पुद्गलको पीछेसे जाकर ला सकता है। क्योंकि पुद्गल जब फेंका जाता है तब प्रारंभमें उसकी शीघ्र गति होती है और पश्चात् मंद गति। ऋद्धिसम्पन्न देव पूर्व भी पश्चात् भी शीघ्रगतिवाला होता है। अतः फेंके हुए पुद्-गलको पीछेसे जाकर ला सकता है।

(१०१) असुरकुमारोंकी गति नीचेकी ओर शीघ्र और शीघ्रतर होती है और ऊपरकी ओर अल्प और क्रमशः मंद-मंद। वैमा-निक देवोंकी गति ऊपरकी ओर शीघ्र व शीघ्रतर तथा नीचेकी ओर अल्प व क्रमशः मंद-मंद होती है। एक समयमें देवराज शक्र जितना ऊँचा जा सकता है उतनी ऊँचाई पर जानेमें वज्रको दो समय और चमरेन्द्रको तीन समय लगते हैं; अर्थात् देवेन्द्र, देवराज शक्रका ऊर्ध्वलोककंडक—ऊपर जानेका कालमान, सबसे अल्प तथा अधोलोककंडक—अधोलोकमें जानेका काल-मान, ऊर्ध्वकी अपेक्षासे संख्येयगुणित अधिक है। एक समयमें

[1]—चमरेन्द्रकी सौधर्मकल्पमें जानेकी कथा परिशिष्टमें देखिये।

असुरेन्द्र असुरराज चमर जितना नीचे जा सकता है उतना ही नीचे जानेमें शक्रको दो समय और वज्रको तीन समय लगते हैं। असुरेन्द्र असुरराज चमरका अधोकंडक—सबसे अल्प है और ऊर्ध्वकंडक अधोकंडककी अपेक्षासे संख्येय गुणित अधिक है।

देवेन्द्र देवराज शक्रकी ऊर्ध्वगति-शक्ति, अधोगति-शक्ति और तिर्यक्‌गति-शक्तिका न्यूनाधिकत्व—अल्पत्व तथा बहुत्व इसप्रकार है—वह एक समयमें सबसे अल्प नीचेकी ओर जाता है, उससे संख्येय गुणित अधिक तिर्यक् दिशामें व उससे संख्येय गुणित अधिक ऊपरकी ओर जाता है। नीचे-ऊपर जाने के कालमानोंमें ऊपर जानेका कालमान सबसे अल्प, और नीचे जानेका कालमान उससे संख्येयगुणित अधिक है।

असुरेन्द्र असुरराज चमरके ऊर्ध्वगतिविषय, अधोगतिविषय और तिर्यक्‌गतिविषयमें अल्पत्व तथा बहुत्व इसप्रकार है—वह एक समयमें सबसे अल्प ऊपरमें, उससे संख्येय गुणित अधिक तिर्यक् दिशामें और उससे संख्येय गुणित अधिक नीचेकी ओर जाता है। नीचे-ऊपर जानेके इन दो कालमानों में नीचे जानेका कालमान सबसे अल्प और ऊपर जानेका कालमान उससे संख्येयगुणित अधिक है।

वज्रके ऊपर जानेका काल सबसे अल्प तथा नीचे जानेका काल विशेषाधिक है।

- वज्र, वज्राधिपति शक्रेन्द्र और असुरेन्द्र असुरराज चमरके ऊपर-नीचे जानेके कालकी न्यूनधिकता व समानता निम्न प्रकार है :—

शक्रके ऊपर जानेका कालमान और चमरेन्द्रके नीचे जानेका कालमान समान है और सबसे अल्प है। शक्रके नीचे जानेका कालमान और वज्रके ऊपर जानेका कालमान समान है और संख्येय गुणित है। चमरके ऊपर जानेका कालमान और वज्रके नीचे जानेका कालमान समान और विशेषाधिक है।

(१०२) [1]असुरकुमारोंके सौधर्मतक जानेका एक और यह भी कारण है:—नव समुत्पन्न या च्यवनकालप्राप्त असुर देवोंको इसप्रकार संकल्प उत्पन्न होते हैं—"हमने इस-इसप्रकारकी दिव्य देवलब्धि-लब्ध की है, संप्राप्त की है तथा अपने सम्मुख उपस्थित की है। जिसप्रकारकी दिव्य ऋद्धि हमने प्राप्त की है उसीप्रकारकी दिव्य देवऋद्धि देवेन्द्र देवराज शक्रने भी संप्राप्त की है और जैसी दिव्य देवऋद्धि शक्रेन्द्रने प्राप्त की है वैसी ही हमने भी प्राप्त की है। अतः हमें जाना चाहिये तथा देवेन्द्र देव-राज शक्रके सम्मुख प्रकट होना चाहिये तथा उसकी दिव्य देव-ऋद्धिको देखना चाहिये। देवेन्द्र देवराज शक्रभी हमारी संप्राप्त दिव्य देवऋद्धिको देखे व जाने तथा हम भी उसकी दिव्य ऋद्धिको जान सकें व देख सकें।" इन्हीं प्रेरणाओंसे असुरकुमार सौधर्मकल्प तक ऊपर जाते हैं।

१—पूर्व असुरकुमारोंके ऊपर जानेका एक कारण वैरानुबंध बताया गया था अब दूसरा कारण 'किंपत्तियं' णं,—कुतूहल व जिज्ञासा है।

तृतीय शतक

तृतीय उद्देशक

तृतीय उद्देशक में वर्णित विषय

[पांचप्रकारकी क्रियायें और उनके प्रभेद, क्रिया और वेदना, प्रमाद—योग और एजनादियुक्त जीव मुक्त नहीं होते, प्रमाद—योगादि रहित निर्ग्रन्थ विमुक्त होते हैं ; कारण व उदाहरण, प्रमत्तकाल और अप्रमत्तकाल । प्र०सं०१८]

पांच क्रियायें

(प्रश्नोत्तर न० ६६-७१)

(१०३) [1]पांच प्रकारकी क्रियायें [2]हैं—कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपातक्रिया।

कायिकी क्रिया दो प्रकारकी है—[3]अनुपरतकायक्रिया और [4]दुष्प्रयुक्तकायक्रिया।

आधिकरणिकी क्रिया दो प्रकारकी है—[5]संयोजनाधिकरणक्रिया और [6]निर्वर्तनाधिकरण क्रिया।

१—मंडितपुत्र प्रश्न। २—देखो पृष्ठ संख्या ५३।

३—त्यागवृत्ति रहित प्राणियोंकी शारीरिक क्रिया।

४—दुरुपयोगपूर्वक की जानेवाली शरीरिक क्रिया।

५—जीवघात करनेवाले शस्त्रोंका संयोजन तथा विविध सामग्रियोंको एकत्रित कर जीव-हिंसाके साधन प्रस्तुत करना।

६—तलवार, बन्दूक आदि अस्त्रोंके निर्माणसे समुत्पन्न क्रिया।

प्राद्वेषिकी क्रिया दो प्रकारकी है—जीवप्राद्वेषिकीक्रिया और अजीवप्राद्वेषिकी क्रिया।

पारितापनिकी क्रिया दो प्रकारकी है—स्वहस्तपारितापनिकी और परहस्तपारितापनिकी।

प्राणातिपातक्रिया दो प्रकारकी है—स्वहस्त प्राणातिपातक्रिया और परहस्तप्राणातिपातक्रिया।

क्रिया और वेदना

(प्रश्नोत्तर नं० ७२-७४)

(१०४) प्रथम क्रिया होती है और पश्चात् वेदना होती है परन्तु पहले वेदना हो और पश्चात् क्रिया हो, यह संभव नहीं।

प्रमाद और योग—शरीरादिकी प्रवृत्तिके कारण श्रमण—निर्ग्रन्थोंको भी क्रिया होती है।

जीव-एजनादि

(प्रश्नोत्तर नं० ७५-८०)

(१०५) जीव (सयोगी) सदैव प्रमाणपूर्वक तथा विविधरूपसे भी प्रकंपित होता है, चलता है, स्पंदित होता है, समस्त दिशाओंमें जाता है, सर्वदिशाओंको स्पर्श करता हैं, क्षोभ पाता है, उदीरित करता है तथा उन २ भावोंका परिणमन करता है।

जहाँतक जीव (सयोगी) सदैव प्रमाणपूर्वक प्रकंपन्न आदि उपर्युक्त क्रियायें करता है वहाँतक मुक्त नहीं होता। क्योंकि वह आरंभ, संरंभ व समारंभ करता है और इनमें ही संलग्न रहता है। आरंभ, संरम्भ व समारंभमें संलग्न जीव अनेक प्राणों, भूतों, जीवों और सत्त्वोंको दुख देने, शोक

कराने, आकुल-व्याकुल करने, आक्रंदित करने, पिटवाने, त्रासोत्पन्न करने और परितापित करनेमें कारण होता है। अतः ऐसे जीवकी मुक्ति नहीं हो सकती।

जो जीव (अयोगी) उपर्युक्त क्रियायें नहीं करते हैं उन जीवों की अन्तक्रिया—मृत्युसमयमें विमुक्ति होती है। क्योंकि वे आरंभ, संरंभ व समारंभ नहीं करते हैं और न उनमें संलग्न ही रहते हैं। आरंभ, संरंभ व समारंभमें संलग्न नहीं रहनेसे अनेक प्राणों, भूतों, सत्त्वों और जीवोंको दुःख देने या दुःख—परिताप उत्पन्न करनेमें निमित्त नहीं होते। अतएव उनकी विमुक्ति हो जाती है। उदाहरणार्थ—

जिसप्रकार कोई पुरुष सूखे घासके पूलेको अग्निमें रखे तो वह तत्क्षण जलजाता है या तप्त लोह-कड़ाहपर पानीके बिन्दु डाले तो वे तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं अथवा एक सरोवर जो पानी से परिपूर्ण अर्थात् लबालब भरा हुआ है, बढते हुए पानीके कारण उससे पानी छलक रहा है। भरे हुए घटकी तरह उसकी स्थिति है। उस सरोवरमें कोई पुरुष सौ छोटे और बड़े छिद्रोंवाली एक बड़ी नाव उतारे। परिणामस्वरूप निश्चय ही वह नाव अपने आश्रव-द्वारों-द्वारा पानीसे भराती-भराती पूर्ण भर जायगी तथा उससे भी पानी छलकने लगेगा। तब पानीसे परिपूर्ण घटकी तरह उसकी भी स्थिति हो जायगी। यदि कोई पुरुष उस नावके सर्व छिद्रोंको बंद करदे तथा नौकामें भराहुआ पानी उलीच दे तो वह नाव तुरन्त ही पानी के ऊपर आजायगी। उसीप्रकार आत्मामें संवृत, ईर्यासमिति आदि पंचसमितियोंसेयुक्त मनगुप्ति आदि गुप्तियोंसे गुप्त,

ब्रह्मचारी, यत्नपूर्वक गमन करनेवाले, खड़े रहनेवाले, बैठनेवाले, सोनेवाले, तथा सावधानीपूर्वक वस्त्र, पात्र, कंबल और रजोहरण ग्रहण करनेवाले, रखनेवाले अनगारोंको उन्मेप-निमेषमात्र ईर्यापथिकी क्रिया विमात्रासे लगती है। वह प्रथम समयमें बद्ध व स्पृष्ट, दूसरे समयमें वेदित तथा तीसरे समयमें निर्जीर्ण हो जाती है। इसप्रकार बद्ध-स्पृष्ट, वेदित और निर्जीर्ण क्रिया आगामीकालमें अकर्म हो जाती है।

प्रमत्त और अप्रमत्त संयमकाल

(प्रश्नोत्तर नं० ८१-८२)

(१०६) एक जीवकी अपेक्षासे प्रमत्तसंयमीका प्रमत्तसंयम-काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट-देशोनपूर्वकोटि है। अनेक जीवोंकी अपेक्षासे सर्वकाल प्रमत्त-संयमकाल है। प्रमत्त संयमकालकी तरह ही एक जीव तथा अनेक जीवकी अपेक्षासे अप्रमत्त संयमकाल जानना चाहिये।

ज्वार-भाटा

(प्रश्नोत्तर नं० ८३)

(१०७) लवणसमुद्र चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या व पूर्णिमाको क्यों घटता-बढ़ता है, इस संबंधमें जीवाभिगम सूत्रमें जिसप्रकार लवणसमुद्रके वर्णनमें कहा गया है उसीप्रकार जानना चाहिये।

तृतीय शतक

चतुर्थ उद्देशक

चतुर्थ उद्देशक में वर्णित विषय

[भावितात्मा अनगार यानरूपमें गमन करते हुए देव-देवीको देख सकते हैं या नहीं ––चतुर्भंगी, वृक्षके अन्दरके भागको भावितात्मा अनगार देख सकते हैं या नहीं, —चतुर्भंगी, मूल, कंद, स्कंध, छाल, डाल, पत्र, फूल, फल तथा बीज आदिके विषयमें प्रश्न, वायुकाय और उसकी विकुर्वण-शक्ति, मरणसमयके लेश्या-पुद्गलोंके ग्रहणानुसार आगामी जीवन में लेश्यायें प्राप्त होना—चौवीस दण्डकीय जीव, बाह्य पुद्गल ग्रहण किये बिना विकुर्वण नहीं किया जा सकना—मायी अनगार विकुर्वण करते हैं अमायी अनगार नहीं—कारण, विराधक-आराधक। प्रश्नोत्तर संख्या २४]

(प्रश्नोत्तर नं० ८४)

(१०८) वैक्रियसमुद्घातसे समवहित यानरूपमें गमन करते हुए देवको [1]भावितात्मा अनगार देख तथा जान सकते है या नहीं, इस संबंधमें निम्न चतुर्भंगी जाननी चाहिये :—

(१) कोई देवको देखते है परन्तु यानको नहीं, (२) कोई यानको देखते है परन्तु देवको नही, (३) कोई देव और यान दोनोंको देखते है, (४) कोई देव और यान, दोनोंको नहीं देखते।

१—संयम और तप द्वारा जिनकी आत्मा निर्मल हो उन्हें भावितात्मा कहते हैं परन्तु यहाँपर उन अनगारोंके लिये कहा गया है जिन्हें अवधि-ज्ञानादि लब्धियाँ संप्राप्त हैं।

देवांगना तथा देव-देवांगनाके लिये भी उपर्युक्त चतुर्भंगी जाननी चाहिये।

भावितात्मा अनगार वृक्षके अन्दरका भाग—लकड़का मध्यवर्ती गर्भ, देख सकते हैं या नहीं, इस संबंधमें भी उपर्युक्त चतुर्भंगी जाननी चाहिये। मूल, कंद और स्कंधके लिये भी यही चतुर्भंगी जाननी चाहिये। इसीप्रकार [1]मूलके साथमें बीज पर्यन्त, कंदके साथमें बीज पर्यन्त यावत् पुष्प और बीजतक सर्व पदोंको संयोजित करना चाहिये।

भावितात्मा अनगार वृक्षके फूल और बीजको देख सकते हैं या नहीं, इस संबंधमें भी उपर्युक्त चतुर्भंगी जाननी चाहिये॥

वायु और वैक्रियसमुद्घात

(प्रश्नोत्तर नं० ८९-९४)

(१०६) वैक्रियसमुद्घात-द्वारा समवहित वायुकाय एक विशाल स्त्री, पुरुष, हाथी, यान, युग्म—धूसरा, गिल्ली—हाथीकी अंबारी, थिल्ली—ऊँटकी काठी, शिविका, स्पन्दमानिका—रथ आदिका रूप नहीं बना सकता परन्तु विकुर्वित वायुकाय एक विशाल पताकाका रूप बनाकर अनेक योजन पर्यन्त गति करनेमें समर्थ है। वह आत्मऋद्धिसे गमन करता है परन्तु परऋद्धिसे नहीं। जिसप्रकार आत्मऋद्धिसे गमन करता है उसीप्रकार आत्मकर्म तथा आत्मप्रयोगसे भी गति करता है। वह उन्नत और निम्न-झुकी हुई, दोनों प्रकारकी पताकाओंके रूपमें गति करता है।

१—मूल, कंद, स्कंध, छाल, शाखा, प्रवाल (अंकूर), पत्र, पुष्प, फल और बीज, इन दश विभागोंके द्विकसंयोगी ४५ भंग होते हैं।

वह एक दिशोन्मुखी पताकाकी तरह रूप विकुर्वित कर गति करता है परन्तु दो दिशोन्मुखी पताकाकी तरह नहीं। पताका-रूपमें विकुर्वित वायुकाय पताका नहीं है परन्तु वायुकाय है।

(प्रश्नोत्तर नं० ९५-९८)

(११०) [1]मेघ, स्त्री, पुरुष, हाथी, यान, युग्ग, गिल्ली, थिल्ली, शिविका और स्पंदमानिका के रूप परिणत कर अनेक योजन पर्यन्त जा सकता है। वह आत्मऋद्धिसे गमन नहीं करता पर परऋद्धिसे गमन करता है। आत्मप्रयोग या आत्मकर्मसे भी गति न कर परप्रयोग और परकर्मसे गति करता है। वह उन्नत ध्वजा या झुकी हुई ध्वजाके सदृश भी गति करता है। मेघ स्त्रीरूप में होने से स्त्री नहीं परन्तु मेघ ही है। इसीप्रकार पुरुष, हाथी तथा यान-रूपोंके संबंधमें जानना चाहिये। यान-रूपमें गति करने पर एक पहियेसे भी चलता है और दोनों पहियोंसे भी चलता है। जुग्ग, गिल्ली, थिल्ली शिविका और स्पंदमानिकाके लिये इसीप्रकार जानना चाहिये।

लेश्याद्रव्य

(प्रश्नोत्तर नं० ९९-१०१)

(१११) नैरयिकोंमें समुत्पन्न होने योग्य जीव अपने मरण

१—रूप बदलनेकी प्रक्रियाका प्रकरण है अतः मेघके संबंधमें भी प्रश्न पूछ लिया गया, उसीका यह प्रत्युत्तर है। मेघ अजीव है अतः उसमें विकुर्वण-शक्ति नहीं है परन्तु परिणमन शक्ति है अत. विकुर्वणके स्थान पर परिणमन शब्द प्रयोग किया गया है। अचेतन होनेसे वह स्वयं रूप-निर्माण तथा गति नहीं करता परन्तु दूसरोंके द्वारा प्रेरित होनेसे ही करता है इसलिये परऋद्धि और परकर्म शब्दोंका प्रयोग किया गया है।

समयमें जैसे लेश्या-द्रव्योंको ग्रहण कर मृत्यु प्राप्त करते हैं वैसे ही लेश्या-द्रव्योंके अनुसार कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले नैरयिकोंमें उत्पन्न होते हैं।

ज्योतिष्कों और वैमानिकोंमें समुत्पन्न होने योग्य जीव अपने मरण-समयमें जैसे लेश्या-द्रव्योंको ग्रहण कर मृत्यु-प्राप्त करते हैं वैसे ही लेश्या-द्रव्योंके अनुसार तेजोलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और शुक्ललेश्यावाले देवोंमें समुत्पन्न होते हैं। ज्योतिष्कोंमें तेजोलेश्यावाले ही और वैमानिकोंमें तीनों प्रकारकी लेश्यावाले है।

विकुर्वण और मायी अनगार

(प्रश्नोत्तर नं० १०२-१०६)

(११२) भावितात्मा अनगार बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण किये बिना [1]वैभारपर्वतको समुल्लंघित (वैक्रिय शरीर द्वारा) और प्रल्लंघित करनेमें समर्थ नहीं परन्तु बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण कर उल्लंघन व [2]प्रल्लंघन कर सकता है।

भावितात्मा अनगार बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण किये बिना राजगृह नगरके समस्त रूप विकुर्वित कर वैभार पर्वतमें प्रविष्ट हो, समको विषम और विषमको सम नहीं कर सकता परन्तु बाह्य पुद्गलोंको ग्रहण कर ऐसा कर सकता है।

(११३) विविधप्रकारके रूप मायी (प्रमत्त) मनुष्य विकुर्वित करता है परन्तु अमायी (अप्रमत्त) मनुष्य नहीं। क्योंकि मायी मनुष्य प्रणीत (घृत आदि स्निग्ध पदार्थ) पदार्थोंको खाता-पीता है, वमन-विरेचन (वलवृद्धिके लिये) करता है।

१—राजगृहका क्रीड़ा-पर्वत। २—बार-बार उल्लंघन करना।

स्निग्ध खान-पानसे उसकी हड्डियां तथा हड्डियोंमें स्थित मज्जा सघन होती है और मांस व शोणित पतले पड़ते हैं। भोजनके [1]यथाबादर पुद्गल श्रोत्र, चक्षु, घ्राण रसना व स्पर्शेन्द्रियके रूपमें तथा अस्थि, मज्जा, केश, दाढी, रोम, नख, वीर्य और लोहित रूपमें परिणत होते है।

अमायी मनुष्य रूक्ष भोजन करता है। वमन-विरेचन नहीं करता। रूक्ष खानपानसे उसकी हड्डियां तथा मज्जा पतली पड़ती हैं और मांस व लोहित प्रगाढ़ होते हैं। भोजनके यथा-बादर पुद्गल मात्र मल-मूत्र, श्लेश्म, कफ, वमन, पित्त या रुधिर रूपमें परिणत होते हैं।

इसीकारण मायी मनुष्य विकुर्वण करता है और अमायीनहीं।

मायी मनुष्य कृत-प्रवृत्तिका विना आलोचन और प्रति-क्रमण करके काल करता है अतः उसे आराधना नही होती।

अमायी मनुष्य अपनी कृत प्रवृत्तियोंकी आलोचना व प्रति-क्रमण कर मृत्यु प्राप्त होता है, अतः उसको आराधना होती है।

१—अहाबायर त्ति—यथोचित बादर अर्थात् आहार पुद्गल।

तृतीय शतक

पंचम, षष्ठम, व सप्तम उद्देशक

पंचम उद्देशक

पञ्चम उद्देशक में वर्णित विषय

[अनगार बाह्य पुद्गलोंको ग्रहण किये बिना स्त्री आदि रूप विकुर्वित नहीं कर सकते, मायी अनगार और अमायी अनगार । प्रश्नोत्तर सख्या १९]

(प्रश्नोत्तर नं० १०७-१२५)

(११४) भावितात्मा अनगार बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण किये बिना स्त्री यावत् शिविकारूप विभिन्न रूपोंका विकुर्वण नहीं कर सकते है परन्तु बाह्य पुद्गलोंको लेकर कर सकते हैं ।

युवक और युवती, गाड़ी और आरा डालनेके उदाहरणोंकी तरह भावितात्मा अनगार वैक्रिय समुद्घातसे समवहित हो अखिल जम्बूद्वीपको अनेक स्त्रीरूपोंसे आकीर्ण कर सकता है परन्तु यह तो भावितात्मा अनगारकी मात्र विकुर्वण-शक्तिका माप है। इसप्रकार की कभी भी रूप-विक्रया हुई नहीं, होती नहीं और होगी नहीं। इसीप्रकार क्रमशः शिविका आदि के संबंधमें जानना चाहिये ।

हाथमें ढाल-तलवार लेकर चलते हुए पुरुषके सदृश, एक दिशोन्मुखी पताका लिये हुए अथवा दो दिशोन्मुखी पताका लिये हुए पुरुषके सदृश, एक ओर या दोनों ओर उपवीत धारण

किये हुए पुरुषके सदृश, पलांठी मार कर या दोनों ओर पलांठी मारकर बैठे हुए पुरुषके सदृश, एक ओर पर्यंकासनसे बैठे हुए या दोनों ओर पर्यंकासनसे बैठे पुरुषके सदृश आदि विभिन्न अनेक रूप विकुर्वण कर भावितात्मा अनगार आकाशमें उड़ सकते है तथा अखिल जम्बूद्वीपको आकीर्ण कर सकते है परन्तु यह तो भावितात्मा अनगारकी विक्रया-शक्तिका माप है। इसप्रकार की विकुर्वणा कभी हुई नहीं, होती नही और होगी नहीं।

बाहरके पुद्‌गलोंको बिना ग्रहण किये भावितात्मा अनगार अश्व, गज, सिंह, व्याघ्र, चीत्ता, रीछ, शरभ आदिके रूपोंको विकुर्वित नहीं कर सकते हैं परन्तु बाहरके पुद्‌गलोंको ग्रहण कर विकुर्वित कर सकते है। वे अश्वका रूप बनाकर अनेक योजन पर्यन्त जानेमें समर्थ है। ये आत्म-ऋद्धिसे जाते है पर पर-ऋद्धिसे नहीं। आत्म-प्रयोगसे जाते हैं परन्तु पर-प्रयोगसे नहीं। ये सीधे भी जा सकते हैं और विपरीत भी जा सकते हैं। अश्वरूपमें विकुर्वित अनगार अनगार है, अश्व नहीं। इसीप्रकार गज और शरभ आदिके संबंधमें भी जानना चाहिये।

इसप्रकारकी रूप-विकुर्वणा मायी अनगार करते हैं अमायी अनगार नहीं। विकुर्वणानन्तर आलोचन या प्रतिक्रमण किये बिना भी यदि मायी साधु काल कर जाय तो [1]आभियोगिक देवलोकोंमें देवतारूपसे उत्पन्न होते है। प्रतिक्रमण व आलोचनके पश्चात् अमायी अनगार काल करके अनाभियोगिक देव-लोकोंमें देवरूपसे उत्पन्न होते है।

१—एक प्रकारके दास देवता। ये देवता ऋद्धिसम्पन्न देवताओंकी आज्ञामें रहते हैं। अच्युत-कल्पपर्यन्त ये देवता होते हैं।

षष्ठम उद्देशक

षष्ठम उद्देशक में वर्णित विषय

[मिथ्यादृष्टि अनगारका राजगृह, वाराणसी आदिका विकुर्वण, विकुर्वण स्वाभाविक माननेका भ्रम तथा अन्यथाज्ञान, सम्यग्दृष्टि अनगारका विकुर्वण, विकुर्वण-शक्ति तथा वस्तुरूपसे ज्ञान, चमरके आत्मरक्षकदेव आदि। प्रश्नोत्तर संख्या १६]

(प्रश्नोत्तर नं० १२६-१४०)

(११५) राजगृहस्थित मिथ्यादृष्टि व मायी भावितात्मा अनगार वीर्यलब्धि, वैक्रियलब्धि और विभंगज्ञानलब्धि-द्वारा वाराणसी नगरीका विकुर्वण कर उसके विविध दृश्योंको जान सकता है और अवलोकन कर सकता है परन्तु वह तथाभाव से न जानकर अन्यथाभावसे जानता तथा देखता है। क्योंकि उस साधुके मनमें यह परिकल्पना होती है कि वह वाराणसी नगरीके समस्त वास्तविक दृश्योंको देखता है तथा जानता है परन्तु विकुर्वित दृश्योंको नहीं ; यहीं उसका यह दर्शन—ज्ञान; विपरीत हो जाता है। अतः वह तथाभावसे न जानकर अन्यथाभावसे जानता है।

राजगृहस्थित मिथ्यादृष्टि मायी अनगारकी तरह वाराणसी-स्थित मिथ्यादृष्टि मायी अनगारके लिये भी उपर्युक्त सर्व वर्णन जानना चाहिये। मात्र नामोंका अन्तर है।

मायी मिथ्यादृष्टि भावितात्मा अनगार वीर्यलब्धि, वैक्रिय-लब्धि और विभंगज्ञानलब्धि द्वारा राजगृह व वाराणसीके मध्य एक विशाल जनपदकी विकुर्वणाकर उस जनपदको जान व देख सकता है परन्तु तथाभावसे न जानकर अन्यथाभावसे जानता

है। क्योंकि उस साधुके मनमें इसप्रकार विचार आते हैं—"यह राजगृह है और यह वाराणसी है। इन दोनोंके मध्य आया हुआ यह विशाल जनपद है। यह जनपद मेरी वीर्यलब्धि, वैक्रियलब्धि और विभंगज्ञानलब्धि तथा संप्राप्त, लब्ध तथा अभिनिविष्ट ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य या पुरुषाकारपराक्रम द्वारा विकुर्वित नहीं ; अपितु वास्तविक है।" उस साधुका दर्शन यहीं विपरीत हो जाता है। विपरीततासे वह तथाभावसे न जानकर अन्यथाभावसे जानता है।

अमायी सम्यग्दृष्टि भावितात्मा अनगारके लिये इसके विपरीत समझना चाहिये। वह तथाभावसे जानता है और देखता है। क्योंकि उस साधुके मनमें इसप्रकार कल्पना होती है—"राजगृहस्थित या वाराणसीस्थित मैं, राजगृह या वाराणसीको विकुर्वण करके देखता हूं तथा जानता हूं।" अतः उसका दर्शन विपरीततारहित होता है। विपरीततारहित होने से वह तथाभावसे जानता है तथा देखता है।

राजगृह और वाराणसीके मध्य विशाल जनपदके संबंधमें भी यही समझना चाहिये। सम्यग्दृष्टि साधुके मनमें यह विचार होता है—"यह राजगृह नगर नहीं, यह वाराणसी नगरी नहीं। इन दोनोंके मध्य यह विशाल जनपद भी नहीं परन्तु ये मेरी वीर्यलब्धि, वैक्रियलब्धि और अवधिज्ञानलब्धि और लब्ध, संप्राप्त तथा अभिसम्मुख ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य और पुरुषाकारपराक्रम हैं।" अतः वह साधु तथाभावसे जानता है तथा देखता है।

भावितात्मा अनगार बाह्य पुद्गलोंको ग्रहण किये बिना

किसी ग्राम, नगर अथवा सन्निवेशका विकुर्वण नहीं कर सकता परन्तु बाहरके पुद्गलोंको ग्रहणकर कर सकता है। युवक और युवती, चक्र व आरा डालनेके दृष्टांतोंके सदृश भावितात्मा अनगार अनेक ग्राम-नगरों और सन्निवेशोंकी विकुर्वणा कर सम्पूर्ण जम्बूद्वीपको उन रूपों द्वारा व्याप्त कर सकता है। यह मात्र शक्तिका माप है। आज तक कभी ऐसा हुआ नहीं, होता नहीं और होगा नहीं।

(प्रश्नोत्तर नं० १४२)

(११६) असुरेन्द्र चमरके २५६ हजार आत्म-रक्षक देव हैं। ऐसे ही भवनपति और अच्युत तक भिन्न २ आत्मरक्षक देव जानने।

सप्तम उद्देशक

सप्तम उद्देशक में वर्णित विषय

[सोम, यम, वरुण और वैश्रमणादि शक्रके चार लोकपाल, सोम महाराजका विमान, सोमके आज्ञानुवर्ती देव, सोमके अधिकारकी औत्पातिकी आदि प्रवृत्तियां, यम महाराजका विमान, यमके आज्ञानुवर्ती देव, यमके अधिकारके रोग आदि, वरुण महाराजका विमान, वरुणके आज्ञानुवर्ती देव, वरुणकी अधिकारवर्ती पानीकी प्रवृत्तियां आदि, वैश्रमण महाराजका विमान, वैश्रमणके आज्ञानुवर्ती देव व धन आदिकी प्रवृत्तियां। प्रश्नोत्तर स० ६]

(प्रश्नोत्तर नं० १४१-१४६)

(११७) देवेन्द्र देवराज शक्रके चार लोकपाल हैं—सोम, यम, वरुण और वैश्रमण। इन चार लोकपालोंके चार विमान हैं—संध्याप्रभ, वरशिष्ट, स्वयंज्वल और वल्गु।

सोम

जम्बूद्वीप द्वीपके सुमेरुपर्वतकी दक्षिण दिशामें रत्नप्रभाभूमिके

बहुसम रमणीय भूभागसे बहुत ऊँचे चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारे हैं। वहाँसे बहुत योजन दूर पांच अवतंसक हैं— अशोकावतंसक, सप्तपर्णावतंसक, चंपकावतंसक, चूतावतंसक और सौधर्मावतंसक। सौधर्मावतंसक इनके मध्यमें है। सौधर्मा-वतंसक महाविमानके पूर्वमें सौधर्मकल्प है। उसमें असंख्य योजन दूर जाने पर देवराज शक्रके लोकपाल सोम महाराजाका संध्याप्रभ नामक महाविमान है। इस विमानकी लंबाई और चौड़ाई साढे बारह लाख योजन है। उसकी परिधि उन्चालीस लाख, बावन हजार आठसौ अड़तालीस योजनसे कुछ अधिक है। सूर्याभदेवके विमानके वर्णनके सदृश सर्व वर्णन जानना चाहिए। मात्र सूर्याभके स्थानपर सोम देव समझना चाहिये।

संध्याप्रभ विमानके नीचे बराबर असंख्येय योजन आगे जाने पर सोमदेवकी सोमप्रभा नामक राजधानी है। इस राज-धानीका क्षेत्रफल एकलाख योजनका है। वह जम्बूद्वीपके समान है। इस राजधानीमें स्थित दुर्ग आदिका प्रमाण वैमानिकोंके वर्णित प्रमाणसे अर्द्ध है। इसीप्रकार घरके विमानों का आयाम और विष्कंभ सोलह हजार योजन है। उनकी परिधि पचास हजार पांच सौ सित्तानवे योजनसे कुछ अधिक है। प्रासादोंकी चार पद्धतियां हैं।

सोमकायिक, सोमदेवकायिक, विद्युत्कुमार-विद्युत्कुमा-रियां, अग्निकुमार-अग्निकुमारियाँ, वायुकुमार-वायुकुमारियाँ, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारे और इसीप्रकारके अन्य देवगण आदि सोम महाराजाकी आज्ञामें, उपपातमें और आदेश-निर्देशमें रहते हैं।

ये सब देव उसकी भक्ति करते हैं, उसका पक्ष लेते तथा उसके आधीन रहते हैं।

जम्बूद्वीपके मेरुसे दक्षिणमें जब ग्रहदण्ड—मंगल आदि तीन-चार ग्रहोंका एक श्रेणी पर तिरछे आना, ग्रहमूसल—मंगल आदि ग्रहोंका ऊँची श्रेणीपर जाना, ग्रहगर्जन—ग्रहोंकी गतिसे जो गर्जन हो, ग्रहयुद्ध—एक नक्षत्रमें उत्तर-दक्षिण-ग्रहोंका समश्रेणी रूपसे रहना, गृहशृङ्गाटक—सिंघाड़ेके आकारके ग्रह होना, ग्रह प्रतिकूल गमन, अभ्रवृक्ष--वृक्षोंके आकारके वादल, संध्या, गांधर्व-नगर, उल्कापात, दिग्दाह, गर्जन, तड़ित्, धूलवृष्टि, युपोक--शुक्लपक्ष के पूर्वके तीन दिन, चन्द्रदर्शन, धूमिका—पीतवर्ण संध्याका फूलना, महिका—श्वेतवर्ण संध्याका फूलना, रजोद्घात—धूमर, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, सूर्यपरिवेश--सूर्यके चारोंओर गोलचक्र, चन्द्र-परिवेश—चन्द्रमाके चारोंओर गोलचक्र, दो चन्द्र, दो सूर्य, इन्द्र-धनुष, उदकमत्स्य--खंडित इन्द्रधनुष, कपिहसन--आकाशमें बादल न हो परन्तु विजली चमके या हँसते हुए वन्दरके मुख जैसा आकाशमें मुख दिखाई दे, अमोघ--सूर्योदय और सूर्यास्तके समय किरणोंके विकारसे अन्धकार हो, पूर्व और पश्चिमसे पवन प्रवाहित होना, ग्रामदाह, सन्निवेशदाह आदि लक्षण हों तो प्राणक्षय, जनक्षय, धनक्षय, कुलक्षय होता है, आपदायें आती हैं, अनार्योंका आगमन होता है तथा अनेक प्रकारके उपद्रव होते है। ये सब काम सोम महाराजासे अज्ञात नहीं, अदर्शित नहीं, अनसुने अथवा अविज्ञात नहीं। सोम महाराजा इन सब वातोंको जानते तथा देखते हैं। सोम महाराजाकी आज्ञा माननेवाले अपत्यवत् निम्न देव हैं :—

मंगल, केतु, लोहिताक्ष, शनि, सूर्य, चन्द्र, बुध बृहस्पति, और राहु।

सोम महाराजाकी स्थिति एक पल्योपम तथा पल्योपमके तिहाई भागसे कुछ अधिक है। अपत्यरूप देवोंका आयुष्य एक पल्योपमका है।

यम

सौधर्मावतंस महाविमानके दक्षिणमें सौधर्मकल्प है, उससे असंख्येय.हजार योजन सुदूर देवेन्द्र देवराज शक्रके यम महाराजाका वरिष्ट नामक महाविमान है। उसकी लम्बाई और चौड़ाई साढ़े बारह लाख योजन है आदि बातें सोमके विमानके सदृश ही जाननी चाहिये। अभिषेक, राजधानी और प्रासादोंके संबंधमें भी उसीप्रकार जानना चाहिये। यम महाराजाके यमकायिक, यमदेवकायिक, प्रेतकायिक, प्रेतदेवकायिक, असुरकुमार, असुरकुमारियां, कन्दर्प, नरकपाल, आभियोगिक और इतर जातीय अन्य देवगण भक्त, पक्षलेनेवाले तथा आधीन रहनेवाले हैं। ये सब उसके आदेश-निर्देशमें रहते हैं।

जम्बूद्वीपके मेरु पर्वतकी दक्षिणमें यदि विघ्न, राजकुमारादि के उपद्रव, कलह, महाध्वनि, मात्सर्य, महायुद्ध, महासंग्राम, महाशस्त्रनिपात, महापुरुषका मरण, महारुधिरका गिरना, दुर्भूत, कुलरोग, ग्रामरोग, मंडलरोग, नगररोग, सिरदर्द, आँखकी पीड़ा, कानकी वेदना, नखरोग, दन्तरोग, इन्द्र-ग्रहादिके उपद्रव, स्कंद देवादिके उपद्रव, कुमारग्रह, यक्षग्रह, भूतग्रह, एकान्तर ज्वर, दो दिनानन्तर ज्वर, तीन दिनानन्तर ज्वर, चार दिनानन्तर ज्वर, उद्वेग, खाँसी, श्वास, दम, बलनाशक ज्वर, दाह, कच्छ, कोढ़,

अजीर्ण, पांडुरोग, अर्स (मसा), भगंदर, हृदयशूल, मस्तिष्कशूल, योनिशूल, पसलीशूल, कांखकाशूल, ग्राम-महामारी, खेट-कर्वट, द्रोणमुख, मंडव, पट्टन आश्रम; संवाध और सन्निवेश-महामारी आदिसे प्राणक्षय, जनक्षय, कुलक्षय हो, अनार्योंका आगमन या अन्य अनेक प्रकारके उपद्रव हों तो ये यम महाराजसे अथवा यमकायिक देवोंसे अज्ञात नहीं। निम्न देव यम महाराजाको अपत्यवत् प्रिय हैं :—

अंव, अंबरीष, श्याम, सवल, रुद्र, उपरुद्र, काल, महाकाल, असिपत्र, धनुष, कुंभ, वालु, वैतरणी, खर, महास्वर औरमहाघोष।

यम महाराजकी स्थिति एक पल्योपम तथा एक पल्योपमके तृतीयांशसे कुछ अधिक है। अभिमत देवोंकी स्थिति एक पल्योपम की है।

वरुण

सौधर्मावतंसक महाविमानके पश्चिममें सौधर्मकल्प है। उससे असंख्येय हजार योजन दूर देवेन्द्र देवराज शक्रके वरुण महाराजाका स्वयंज्वल नामक महाविमान है। यहाँ समस्त वर्णन पूर्ववर्णित सोम महाराजाकी तरह ही जानना चाहिये।

विमान, राजधानी और प्रासादोंके विषयमें भी उसीप्रकार जानना चाहिये।

वरुणकायिक, वरुणदेवकायिक, नागकुमार, नागकुमारियां, उदधिकुमार, उदधिकुमारियां, स्तनितकुमार, स्तनितकुमारियां और दूसरे भी तज्जातीय अनेक देव वरुण महाराजाकी आज्ञा में रहते हैं। ये उनके भक्त, आधीन तथा पक्षलेनेवाले हैं और उन्हींके आदेश-निर्देशमें रहते हैं।

जम्बूद्वीपके सुमेरु पर्वतके दक्षिणमें यदि अतिवृष्टि, मंदवृष्टि, सुवृष्टि, दुःवृष्टि, पहाड़की तलहटियोंसे पानीका बहना, तालाब आदिका भरजाना, अनेक धाराओंमें पानी प्रवाहित होना, बाढ़ आना, ग्राम-सन्निवेश आदिका बह जाना आदि कार्य हों, जिनके फलस्वरूप प्राणक्षय, धनक्षय आदि हो तो ये सब कार्य वरुण महाराजासे या वरुणकायिक देवोंसे अज्ञात नहीं है ; वे सब पूर्व ही जानते हैं।

कर्कोटक, कर्दमक, अंजन, शंखपाल, पुंड, पलाश, मोद, जय, दधिमुख, अयंपुल और कातरिक नामक देव वरुण महाराजाको अपत्यवत् इष्ट हैं। ये विनयवान् हैं और उसके आदेश-निर्देशमें रहते हैं।

वरुण महाराजाकी स्थिति दो पल्योपमसे कुछ कम तथा अपत्यवत् वरुणकायिक देवोंकी एक पल्योपम है।

वैश्रमण

सौधर्मावतंसक महाविमानके उत्तरमें सौधर्मकल्प है उससे असंख्येय हजार योजन दूर वैश्रमण महाराजाका वल्गुनामक विमान है। इस संबंधमें सारा वर्णन सोम महाराजाकी तरह ही जानना चाहिये।

वैश्रमणकायिक, वैश्रमणदेवकायिक, सुवर्णकुमार, सुवर्णकुमारियाँ, द्वीपकुसार, द्वीपकुमारिया, दिक्कुमार, दिक्कुमारिया बाणव्यन्तर और बाणव्यंतरिया तथा इस श्रेणीके अन्य देव वैश्रमण महाराजाकी आज्ञामें तथा आदेश-निर्देशमें रहते हैं। ये उनके भक्त, समर्थक तथा आज्ञानुवर्ती हैं।

जम्बूद्वीपके सुमेरुपर्वतके दक्षिणमें यदि लोह-स्वर्णादिकी खानें मिलें, रत्न, वज्र, आभरण, पत्र, पुष्प, फल, बीज, माल्य, वर्ण, चूर्ण, गंध व वस्त्रकी वर्षा हो, हिरण्य-सुवर्ण, रत्न, वज्र, आभरण, वस्त्र-भाजनकी वर्षा हो, क्षीरकी वर्षा हो, दुष्काल, मंदी व तेजी हो, सुभिक्ष-दुर्भिक्ष, क्रय-विक्रय, संचय-संग्रह, निधि, निधान, चिर-कालिक संचित धन, स्वामित्वरहित धन, सेवकरहित द्रव्य, प्रहीण-मार्ग, नष्टगोत्री, विच्छिन्नस्वामी व विच्छिनगोत्रीका धन, तीन राहों, चौराहों, चौक, चत्वर, चतुर्मुख, राजमार्ग, नगरकी नालियों, श्मशान, गिरिगुफा, गिरिगृह शान्तिगृह व शैलोपस्थान भवनों आदिमें रखा हुआ, छिपा हुआ द्रव्य, वैश्रमण महाराज या वैश्रमण-कायिक देवोंसे अज्ञात, अनदेखा या अनसुना नहीं है। वैश्रमण महाराजाको निम्न देव अपत्यवत् इप्सित हैं।

पूर्णभद्र, मणिभद्र, शालिभद्र, सुमनोभद्र, चक्ररक्ष, पूर्णरक्ष, सद्वान, सर्वयश, सर्वकाम, समृद्ध, और असंभ। ये सभी उसके भक्त, समर्थक तथा आदेश-निर्देशमें रहनेवाले हैं।

वैश्रमण महाराजाकी स्थिति दो पल्योपमकी है तथा अपत्य-वत् देवोंकी एक पल्योपम है।

अष्टम उद्देशक

अष्टम उद्देशकमे वर्णित विषय

[असुरकुमार, नागकुमार आदि दश भवनपतियों, पिशाच, वाणव्यतरादि व्यन्तरों, ज्योतिष्कों और सौधर्मादिके अधिपतिदेव। प्रश्नोत्तर स० ४]

(प्रश्नोत्तर नं० १४७-१५०)

(११८) असुरकुमार देवताओं पर निम्न दश देव अधि-पति रूपसे हैं :—

(१) असुरेन्द्र असुरराज चमर, (२) सोम, (३) यम, (४) वरुण, (५) वैश्रमण, (६) वैरोचनेन्द्र वैरोचराज बली (७) सोम, (८) यम, (९) वरुण (१०) वैश्रमण (दक्षिण दिशाका चमर और उसके चार लोकपाल, उत्तर दिशाका वैरोचनराज बली और उसके चार लोकपाल।)

नागकुमार देवताओं पर निम्न दश देव अधिपति रूपसे है :

(१) नागकुमारेन्द्र नागराज धरण, (२) कालवाल, (३) कोलवाल; (४) शैलपाल, (५) शंखपाल, (६) नागकुमारेन्द्र नागराज भूतानन्द (७) कालवाल; (८) कोलवाल (९) शैलपाल, (१०) शंखपाल।

सुवर्णकुमार देवताओं पर निम्न दश देव अधिपतिरूपमें है—

वेणुदेव और वेणुदाल और इनके चित्र, विचित्र, चित्रपक्ष और विचित्रपक्ष चार-चार लोकपाल।

विद्युतकुमार देवताओं पर निम्न दश देव अधिपतिरूपसे हैं :

हरिकांत और हरिसह दो इन्द्र और प्रत्येकके प्रभ, सुप्रभ, प्रभकान्त और सुप्रभकान्त—चार-चार लोकपाल।

अग्निकुमार देवताओं पर निम्न दश देव अधिपति रूपसे है :

अग्निसिह और अग्निमानव (इन्द्र) तेज, तेजसिंह, तेजःकान्त, तेजप्रभ—प्रत्येक इन्द्रके चार-चार लोकपाल।

द्वीपकुमार देवताओं पर निम्न दश देव अधिपति रूपसे हैं :

पूर्ण व विशिष्ठ (इन्द्र) प्रत्येकके रूप, रूपांश, रूपकांत और रूपप्रभ चार २ लोकपाल।

उदधिकुमार देवताओं पर निम्न दश देव अधिपतिरूपसे हैं :

जलकान्त और जलप्रभ (इन्द्र) प्रत्येकके जल, जलस्वरूप, जलकांत व जलप्रभ ; चार २ लोकपाल ।

दिक्कुमार देवताओंके निम्न दश अधिपति हैं :

अमितगति और अमितवाहन (इन्द्र) त्वरितगति, क्षिप्रगति, सिहगति और सिंहविक्रमगति । प्रत्येक के ये चार चार लोकपाल ।

वायुकुमार देवताओंके निम्न दश देव अधिपति रूपसे है :—

वेलंब और प्रभंजन (इन्द्र) काल, महाकाल, अंजन व रिष्ट । प्रत्येकके चार चार लोकपाल।

स्तनितकुमार देवोंके निम्न दश देव अधिपति रूपसे हैं :

घोष और महाघोष (इन्द्र) आवर्त, व्यावर्त, नन्दिकावर्त, और महानन्दिकावर्त । प्रत्येकके चार २ लोकपाल ।

दक्षिण भवनपतिके इन्द्रोंके प्रथम लोकपालोंके नाम इस-प्रकार है :—सोम, कालवाल, चित्र, प्रभ, तैजस, रूप, जल, त्वरितगति, काल और आयुक्त।

पिशाचादि व्यन्तरोंके क्रमशः दो-दो देव अधिपति हैं:—पिशाचोंके—काल और महाकाल, भूतोंके—सुरूप-प्रतिरूप यक्षोंके—पूर्णभद्र और अमरपति मणिभद्र, राक्षसोंके—भीम, महाभीम, किन्नरोंके—किन्नर और किंपुरुष, किम्पुरुषोंके—सत्पु-रुष और महापुरुष, महोरगोंके—अतिकाय, महाकाय, गंधर्वोंके—गीतरति और गीतयश ।

ज्योतिषिक देवों पर निम्न दो देव अधिपति हैं : सूर्य और चन्द्र ।

सौधर्म और ईशानकल्पमें निम्न दश देव अधिपति रूपसे है :

सौधर्म—शक्रेन्द्र, सोम, यम, वरुण, वैश्रमण।

ईशान—ईशानेन्द्र, सोम, यम, वरुण, वैश्रमण।

यही वक्तव्य शेष कल्पोंके लिये जानना चाहिये। इन्द्रोंके नामोंमें अन्तर है।

नवम उद्देशक

नवम उद्देशकमें वर्णित विषय

[इन्द्रियोंके विषय—जीवाभिगमसूत्र । प्रश्नोत्तर संख्या १]

(प्रश्नोत्तर नं० १५१)

(११६) इन्द्रियोंके पांच प्रकारके विषय हैं। यहाँ जीवाभिगम सूत्रका सम्पूर्ण ज्योतिषिक उद्देशक जानना चाहिये।

दशम उद्देशक

दशम उद्देशकमें वर्णित विषय

[चमरेन्द्रकी सभायें—शमिता, चंडा जाता—अच्युत् पर्यन्त। प्रश्नोत्तर सं० १]

(प्रश्नोत्तर नं० १५२)

(१२०) असुरेन्द्र असुरराज चमरके शमिता, चंडा और जाता, ये तीन सभायें हैं।

इसीप्रकार क्रमपूर्वक अच्युतृकल्प पर्यन्त जाननी चाहिये।

चतुर्थ शतक

उद्देशक १ से १० पर्यन्त

उद्देशक १ से ८

एक से आठ उद्देशकमें वर्णित विषय

[ईशानके लोकपाल और उनकी राजधानियां, स्थिति, चार विमानोंके चार और चार राजधानियोंके चार उद्देशक। प्रश्नोत्तर संख्या ४]

(प्रश्नोत्तर नं० १-४)

देखो तृतीय शतक सप्तम उद्देशक प्रश्नोत्तर नं० १४३-१४६

नवम उद्देशक

नवम उद्देशकमें वर्णित विषय

[नैरयिक नैरयिकोंमें उत्पन्न होते हैं या अनैरयिक—प्रज्ञापना लेश्यापद ३ उद्देशक, प्रश्नोत्तर संख्या १]

(प्रश्नोत्तर नं० ५)

(१२१) नैरयिक—नरकायुका जिन्होंने बंधन कर रखा है वे नैरयिकोमें उत्पन्न होते हैं, अनैरयिक नहीं। इस संबंधमें प्रज्ञापनासूत्रके लेश्यापदका तृतीय उद्देशक ज्ञानोंके वर्णनतक जानना चाहिये।

दशम उद्देशक

दशम उद्देशकमें वर्णित विषय

[कृष्णलेश्या नीललेश्याका संयोग प्राप्तकर नीललेश्यारूपमें परिवर्तित हो जाती है, प्रज्ञापनासूत्र लेश्यापद-चतुर्थ उद्देशक । प्रश्नोत्तर सं० १]

(प्रश्नोत्तर नं ६)

(१२२) कृष्णलेश्या नीललेश्याका संयोग प्राप्तकर तद्रूप तथा तद्वर्ण में [1]परिणत होजाती है। इस संबंधमें प्रज्ञापना सूत्रके लेश्यापदका चतुर्थ उद्देशक जानना चाहिये। परिणाम, वर्ण, रस, गंध, शुद्ध, अप्रशस्त, संकलिष्ट, ऊष्ण, गति, परिणाम, प्रदेश, अवगाहना, वर्गणा, स्थान और अल्पत्व-बहुत्व यह सब इन लेश्याओंके साथ जानने चाहिये।

१—कृष्णलेश्या नीललेश्याका संयोग प्राप्तकर उसके वर्ण, गंध और रस रूपमें परिणत हो सकती है। जिसप्रकार दूध तक्रका संयोग पाकर तक्रके वर्ण, गंध रस और स्पर्श रूपमें परिणत हो जाता है उसीप्रकार कृष्णलेश्या भी साधनवश नीललेश्यामें परिवर्तित हो जाती है।

पंचम शतक

प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम उद्देशक

प्रथम उद्देशक

प्रथम उद्देशकमें वर्णित विषय

[जम्बूद्वीपमें सूर्योदय—दिवस-रात्रिविचार—जम्बूद्वीपके दक्षिणार्ध एवं उत्तरार्धमें तथा मंदराचलपर्वतके उत्तरार्ध और दक्षिणार्धमें रात्रिदिवस, माप, घट-वढ आदि, वर्षादि ऋतुएं। लवणसमुद्रादि समुद्र और धातकीखंड आदि द्वीप-समुद्रोंके रात्रि-दिवस। प्रश्नोत्तर संख्या २१]

(प्रश्नोत्तर नं० ७-१५)

(१२३) जम्बूद्वीप नामक द्वीपमें सूर्य उत्तर और पूर्व—ईशान कोणसे उदित हो अग्निकोणमें अस्त होता है, नैऋत्यकोणसे उदित हो वायव्यकोणमें अस्त होता है और वायव्यकोणसे उदित हो ईशानकोणमें अस्त होता है।

जब जम्बूद्वीपके दक्षिणार्धमें दिन होता है तब उत्तरार्धमें भी दिन होता है। उससमय मंदराचलके पूर्व-पश्चिम भागमें रात्रि होती है। मंदराचलके पूर्वमें जब दिन होता है तब पश्चिममें भी दिन होता है। उससमय उत्तर-दक्षिणमें रात्रि होती है।

जब दक्षिणार्धमें अठारह मुहूर्तका सबसे बड़ा दिन होता है तब उत्तरार्धमें भी इतना ही बड़ा दिन होता है। उससमय पूर्व-पश्चिममें बारह मुहूर्तकी सबसे छोटी रात्रि होती है।

जब मंदराचलके पूर्वार्धमें सबसे बड़ा अठारह मुहूर्तका दिन होता है तब पश्चिममें भी अठारह मुहूर्तका दिन होता है उस समय उत्तरार्धमें छोटीसे छोटी वारह मुहूर्तकी रात्रि होती है।

जब दक्षिणार्धमें अठारह मुहूर्तसे कुछ न्यून दिवस होता है तब पूर्व-पश्चिममें वारह मुहूर्तसे कुछ अधिक रात्रि होती है।

जब पूर्वार्धमें अठारह मुहूर्तसे कुछ न्यून दिवस होता है तव पश्चिमार्धमें भी अठारह मुहूर्तसे कुछ न्यून दिन होता है और उस समय उत्तर-दक्षिणार्धमें वारह मुहूर्तसे कुछ अधिक रात्रि होती है।

इस क्रमसे दिवसका माप न्यून और रात्रिका माप वढाना चाहिये। जैसे - जव सत्रह मुहूर्तका दिन हो तव तेरह मुहूर्तकी रात्रि, सत्रह मुहूर्तसे कुछ न्यून दिन हो तव तेरह मुहूर्तसे कुछ अधिक रात्रि आदि।

जब दक्षिणार्धमें छोटेसे छोटा बारह मुहूर्तका दिन हो तव उत्तरार्धमें भी १२ मुहूर्तका दिन होता है। उससमय पूर्व-पश्चिमार्ध में अठारह मुहूर्तकी रात्रि होती है।

जब पूर्व-पश्चिमार्धमें छोटेसे छोटा १२ मुहूर्तका दिन हो तब दक्षिण-उत्तरार्धमें १८ मुहूर्तकी रात्रि होती है।

ऋतु

(प्रश्नोत्तर नं० १६-२०)

(१२४) जब दक्षिणार्धमें चातुर्मास—वर्षाका प्रथम समय होता है तब उत्तरार्धमें भी प्रथम समय होता है। उससमय मंदराचलपर्वतके पूर्व-पश्चिमार्धमें एक समय अनन्तर वर्षाका समय होता है।

जब पूर्वार्धमें वर्षाका प्रथम समय होता है तब पश्चिमार्धमें भी प्रथम समय होता है। उससमय उत्तरार्ध व दक्षिणार्धमें एक समय-पूर्व वर्षा प्रारंभ होती है।

जिसप्रकार वर्षाके प्रथम समयके लिये कहा गया है उसी प्रकार वर्षारंभकी प्रथम [1]आवालिका, आनप्राण, स्तोक, लव, मुहूर्त, अहोरात्रि, पक्ष, मास व हेमन्तादि ऋतुओं लिये भी जानना चाहिये। इसप्रकार इनके ३० आलापक होते हैं।

समयकी तरह ही अयन, संवत्सर, युग, शताब्दी, सहस्राब्दी शतसहस्राब्दी, [2]पूर्वांग, पूर्व, त्रुटिताग, त्रुटित्त, अटटांग, अटर, अववांग, अवव, हूहूकांग, हूहूक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनूपुरांग, अर्थनूपुर, अयुताग, अयुत, नयुतांग, नयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्पप्रहेलिकांग, शीर्षप्रहेलिका, पल्योपम व सागरोपमके संबंधमें समझना चाहिये।

जब जम्बूद्वीपके दक्षिणार्धमें प्रथम अवसर्पिणी हो तब उत्त-

१—कालके उस सूक्ष्म भागको समय कहते हैं जिसका कोई विभाजन न हो। असंख्यात समयोंकी एक आवलिका होती है। उच्छ्वास और निश्वासका एक आनप्राण होता है। सात आनप्राणोंका एक स्तोक, सात स्तोकका एक लव, सित्योत्तर ७७ लवका एक मुहूर्त और ३० मुहूर्तका एक रात्रिदिवस होता है। पन्द्रह रात्रिदिवसका एक पक्ष, दो पक्षका एक मास और दो मासकी एक ऋतु होती है।

२—चौरासी लाख वर्षका एक पूर्वाङ्ग होता है। पूर्वाङ्गकी संख्याको चौरासी लाख गुणित करने पर एक पूर्व होता है। एक पूर्वको चौरासी लाख गुणित करनेपर एक त्रुटितांग, एक त्रुटितांगको चौरासी लाख गुणित करनेपर एक त्रुटित होता है। इसप्रकारसे उत्तरोत्तर सर्व मापोको जानना चाहिये।

रार्धमें भी प्रथम [1]अवसर्पिणी होती है। उससमय मंदराचलके पूर्व और पश्चिमार्धमें अवसर्पिणी न होकर सदा अवस्थितकाल रहता है।

[2]अवसर्पिणीकी तरह ही उत्सर्पिणीके लिये जानना चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० १५-२१)

(१२५) लवणसमुद्र, कालोदधि, समुद्र, धातकीखंड और वाह्य आभ्यन्तर पुष्करार्धके सूर्योदय, रात्रिदिन, उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके संवंधमें जम्बूद्वीपकी तरह ही सर्व वर्णन जानना चाहिये। मात्र नामोंमें विभेद है।

लवणसमुद्र, कालोदधिसमुद्र धातकीखण्ड और आभ्यन्तर पुष्करार्धके सूर्योदय, रात्रि-दिन, उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके संवंधमें जम्बूद्वीपकी तरह ही जानना चाहिये। मात्र वर्णनमें नामोंका परिवर्तन हो।

द्वितीय उद्देशक

द्वितीय उद्देशक में वर्णित विषय

[ईषत्पुरोवात, पथ्यवान, मदवात और महावातादि वायु, द्वीप और समुद्रोंमें प्रवाहित वायु, हवाओंके प्रवाहित होनेके कारण, ओदन, कुल्माष और सुराके अणु, लोहा, तांवा, शीशा, कलई आदि धातुओंके अणु, हड्डी, चमड़ी, नख, सींग आदिके अणु, अंगारे, राख, भूसा आदिके अणु किन जीवोंके शरीर कहे जा सकते हैं विस्तृत विवेचन ; लवणसमुद्रका चक्रवाल। प्रश्नोत्तर संख्या १९]

१—जिस कालमें पदार्थ अपने मूल स्वभावमें क्रमशः हीन होते जायं उसे अवसर्पिणी कहते हैं। २—जिस कालमें पदार्थ अपने स्वभावमें क्रमशः प्रकर्षयुक्त हों उसे उत्सर्पिणी कहते हैं। अवसर्पिणी का प्रथमकाल प्रथम अवसर्पिणी कहा गया है।

(प्रश्नोत्तर नं० २२-३५)

(१२६)[1]ईषत्पुरोवात, [2]पथ्यवात, [3]मंदवात और [4]महावात पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ईशानकोण, अग्निकोण, नैऋत्यकोण और वायव्यकोणमें प्रवाहित होती हैं। जब पूर्वमें ये हवायें प्रवाहित होती हैं तब पश्चिममें भी बहती हैं और जब पश्चिम में प्रवाहित होती हैं तब पूर्वमें भी बहती हैं। इसीप्रकार अन्य दिशाओंके लिये भी समझना चाहिये। ये हवायें द्वीप और समुद्रमें भी प्रवाहित होती हैं परन्तु परस्पर विपर्ययरूपसे। जब द्वीपकी हवायें प्रवाहित होती हैं तब समुद्रकी हवायें प्रवाहित नहीं होतीं और जब समुद्रकी हवायें प्रवाहित होती हैं तब द्वीपकी हवायें नहीं चलतीं। ये हवायें लवणसमुद्रकी वेलाको अतिक्रमण नहीं करतीं हैं।

इषत्पुरोवात, पथ्यवात, मंदवात, और महावात ये हवायें हैं। जब वायुकाय अपने स्वाभाविक रूपमें गति करता है, जब वायुकाय उत्तर-क्रियापूर्वक--वैक्रिय शरीर बनाकर गति करता है और जब वायुकुमार और वायुकुमारियां अपने लिये, दूसरोंके लिये, अथवा अपने और दूसरोंके लिये वायुकायको उदीरित करते हैं तब ईषत्पुरोवात आदि ये हवायें प्रवाहित होती हैं।

वायुकाय वायुकायको ही श्वासनिःश्वास रूपमें ग्रहण करता है, इस संबंधमें [4]स्कंदक उद्देशकके वायुके वर्णनके अनुसार सर्व वर्णन जानना चाहिये।

१—अल्प चिकनाहट तथा भीगापन ली हुई हवा, २—वनस्पति आदिको लाभप्रद हवा, ३—मंद-मंद गतिसे प्रवाहित हवा, ४-तूफान, बवंडर।

४—देखो, पृष्ठ संख्या ६५ प्रश्नोत्तर नं० ८-१२

(प्रश्नोत्तर नं ३६-३९)

(१२७) ओदन, कुल्माष और मदिराके घन द्रव्य [1]पूर्वभाव-प्रज्ञापनाकी अपेक्षासे वनस्पतिकायिक जीवोंके शरीर हैं और जब ये ओदनादि द्रव्य शस्त्रादिसे कूटे जाकर या शस्त्रादिके द्वारा काटे जाकर नवीन आकार धारण कर लेते हैं और अग्निके द्वारा तपित हो अपने पूर्व आकारको छोड़कर नवीन रूप प्राप्त करते हैं ; तब ये अग्निकायिक जीवोंके शरीर कहे जाते हैं।

मदिरामें रहा हुआ तरल पदार्थ पूर्वभाव-प्रज्ञापनाकी अपेक्षासे पानीके जीवोंका शरीर है और अग्नि-द्वारा तपित होने पर तथा भिन्न रंग-रूप ग्रहण करलेने पर अग्निकायिक जीवोंका शरीर कहा जायगा।

लोहा, तांबा, कलई, शीशा, उपल, कोयला और काठ, आदि सर्व द्रव्य पूर्वभाव-प्रज्ञापनाकी अपेक्षासे पृथ्वीकायिक जीवोंके शरीर हैं और शस्त्रादिके द्वारा छेदित होने पर और अग्नि-द्वारा रूप परिवर्तित होने पर अग्निकायिक जीवोंके शरीर हैं।

हड्डी, अग्निसे विकृत हड्डी, चर्म, अग्निसे विकृत चर्म, रोम, अग्निसे विकृत रोम, सींग, खुर, नख, और आगसे विकृत सींग, खुर और नख ये सब पूर्वभाव-प्रज्ञापनाकी अपेक्षासे त्रस जीवोंके शरीर कहे जाते हैं और अग्नि आदिके द्वारा विकृत-जलने पर और शस्त्रपरिणत होने पर अग्निके शरीर कहे जाते हैं।

अंगारा, राख, भूसा, उपला आदि पदार्थ, पूर्वभाव-प्रज्ञापनाकी अपेक्षासे एकेन्द्रिय जीवसे पंचेन्द्रिय जीवोंके शरीर कहे जायेंगे

१—पुराने आकार—देहकी अपेक्षा।

और शस्त्रादि-द्वारा संघटित होने और आग आदिके द्वारा रूप परिवर्तित होने पर अग्निकायिक जीवोंके शरीर कहे जायेंगे।

(प्रश्नोत्तर नं० ४०)

(१२८) लवणसमुद्रका चक्रवाल-विष्कंभ तथा परिधि कितनी है ; इस संबंधमें लोकस्थिति और लोकानुभाव तक पूर्व वर्णित वर्णनके अनुसार जानना चाहिये ।

तृतीय उद्देशक

तृतीय उद्देशक में वर्णित विषय

[जालग्रन्थियोंके उदाहरण—अन्यतीर्थिकोंकी मान्यता और खंडन, नरक में जानेवाला जीव नैरयिकायुष्य पूर्व ही बांधता है—चउवीस दंडकीय जीव । प्रश्नोत्तर संख्या ४]

(प्रश्नोत्तर नं० ४१)

(१२९) "एक जाल जिसमें अनुक्रमसे गांठे दी हुई हैं। जो क्रमशः एकके बाद एक—बिना अन्तरसे गूंथी हुई हैं। इसप्रकार क्रमशः एक दूसरेसे आबद्ध व ग्रथित होकर वह जाल लंबी-चौड़ी तथा वजनदार हो जाती है तथा विभिन्न गांठे परस्पर बंधकर एक ही समुदायमें रहती हैं।

ग्रन्थिजालकी तरह ही अनेक जीव अनेक जन्मोंके आयुष्यों से संबद्ध हैं। इससे वे एक समयमें दो आयुष्योंका अनुभव करते हैं। जिस समय इस जन्मके आयुष्यका अनुभव करते हैं उस समय परभवके आयुष्यका भी अनुभव करते हैं।"

अन्यतीर्थिकोंका यह प्ररूपण असत्य है। मैं इसीको इस प्रकार प्ररूपित करता हूँ :—

१—लवण समुद्रका दो लाखयोजनका चक्रवाल-विष्कंभ तथा परिधि पन्द्रह लाख इकासी हजार एकसो उन्चालीस योजनसे अधिक है।

ग्रन्थिजालके सदृश एक जीवके अनेक आयुष्य परस्पर अनुक्रमसे ग्रथित रहते हैं। इससे एक जीव एक समयमें एक आयुष्य का अनुभव करता है। जिस समय इस भवका आयुष्य अनुभव करता है, उस समय परभवका आयुष्य अनुभव नहीं करता और जिस समय परभवके आयुष्यका अनुभव करता है उस समय इस भवके आयुष्यका अनुभव नहीं करता। वर्तमान भवका आयुष्य वेदन होनेसे परभवका आयुष्य वेदन नहीं होता और परभवका आयुष्य वेदन करते हुए वर्तमान भवका आयुष्य वेदन नहीं किया जाता।

नैरयिकादि और आयुष्य

(प्रश्नोत्तर न ४२-४४)

(१३०) नैरयिक जीव नर्कका आयुष्य बांधकर यहांसे नर्क में जाता है परन्तु विना आयुष्य बांधे नहीं। नैरयिकने नर्कायुष्य अपने पूर्व जन्ममें बांधा तथा आयुष्य-बंधनके कार्य भी पूर्व-भव में ही किये। इसीप्रकार वैमानिक तक जानना चाहिये। जो जीव जिस योनिमें उत्पन्न होनेके योग्य है, वे जीव उसी योनिसंबंधी आयुष्य बांधते हैं। नर्कके योग्य नर्कायु, तिर्यञ्चके योग्य तिर्यञ्चायु, मनुष्यके योग्य मनुष्यायु और देवके योग्य देवायु। यदि जीव नर्कका आयुष्य बांधे तो सात प्रकारके नर्कमेंसे किसी एक नर्कका, तिर्यञ्चका बांधे तो पांच प्रकारके तिर्यञ्चमेंसे किसी एक तिर्यञ्चका, मनुष्यका बांधे तो दो प्रकारके मनुष्योंमेंसे किसी एक मनुष्यका, देवका बांधे तो चार प्रकारके देवोंमेंसे किसी एक प्रकारके देवताका आयुष्य बांधता है।

पंचम शतक

चतुर्थ, पंचम उद्देशक

चतुर्थ उद्देशक

चतुर्थ उद्देशकमें वर्णित विषय

[छद्मस्थ मनुष्यकी श्रवण-शक्ति, केवली सब-कुछ जानते तथा देखते हैं, व्यक्ति हँसता क्यों है ? हँसनेका परिणाम — कर्मप्रकृतियोंका बंधन, निद्रा कौन लेता है ? निद्रासे कर्म-बंधन, हिरण्यगमेशी देवकी गर्भापहरणकी पद्धति, महावीरके सिद्ध होनेवाले अन्तेवासी-शिष्योंकी संख्या, देवता नो संयत है, देवताओंकी भाषा, केवली अन्तकरको जानता है तथा देखता है, छद्मस्थ मनुष्य स्वतः नहीं जानता परन्तु दूसरोंसे सुनकर जानता है, प्रमाण और उसके भेद, केवली चरम कर्म तथा चरम निर्जराको जानते हैं, केवलीके मन एवं वचनको वैमानिक जानते हैं, वैमानिकोंके भेद, अनुत्तरोपपातिक देव, केवली-द्वारा आकाश-प्रदेशोंका अवगाहन, चौदह पूर्वीकी शक्ति आदि। प्रश्नोत्तर संख्या ३९]

(प्रश्नोत्तर न० ४५-४९)

(१३१) छद्मस्थ मनुष्य बजानेमें आते हुए शंख, शृंग, लघुशंख, खरमुखी (बाँका) बड़ी खरमुखी, खुरई, मसक, ढोल, नगारा, बांजे, झालर, दुन्दुभी, वीणा, सितार, घनवाद्य, ढोलक, होरंभ और ताल आदि वाद्योंके शब्द सुनते है। ये शब्द कानोंको स्पर्शित होनेके पश्चात् ही श्रवण होते हैं परन्तु बिना अस्पर्शित हुए नहीं। शब्द छओं दिशाओंमें स्पर्शित होने पर ही सुने जाते है। छद्मस्थ मनुष्य निकटस्थ--इन्द्रिय शक्तिके अनुकूल, शब्दोंको सुनते हैं परन्तु दूरस्थ--इन्द्रिय शक्तिसे परे, शब्दोंको नहीं सुन सकते हैं।

केवली इन्द्रियोंको स्पर्शित या अस्पर्शित, निकटस्थ या दूरस्थ, आदि या अनादि, सब प्रकारके शब्दोंको जानते तथा देखते हैं। वे पूर्वादि छओं दिशाओंमें स्थित मित व अमित पदार्थोंको जानते तथा देखते हैं। वे सबकुछ देखते हैं तथा सबकुछ जानते हैं। वे सब ओर देखते हैं तथा सब ओर जानते हैं। वे सर्वकालिक सर्व पदार्थोंको जानते तथा देखते हैं। केवलीको अनन्त ज्ञान-दर्शन है। उनके ज्ञान-दर्शनमें किसी भी प्रकारका आवरण नहीं है। अतएव वे सब कुछ जानते तथा देखते हैं।

छद्मस्थ और केवली-हास

(प्रश्नोत्तर नं० ५०-५५)

(१३२) छद्मस्थ मनुष्य हँसते है तथा किसी वस्तुको पानेके लिये उतावले भी हो जाते हैं। छद्मस्थ मनुष्यकी तरह केवली न हँसते हैं और न उतावले होते हैं। क्योंकि छद्मस्थ जीव चारित्र-मोहनीय कर्मके उदयसे हँसता है तथा उतावला होता है। केवलियोंको चारित्रमोहनीय कर्मका उदय नहीं होता।

हँसता हुआ व उतावला जीव सात प्रकारके या आठ प्रकारके कर्म बांधता है। यह बात वैमानिकों पर्यन्त जाननी चाहिये। अनेक जीवोंकी अपेक्षासे कर्म-बंधनके [1]तीन भंग होते हैं। इस विभाजनमें [2]एकेन्द्रिय जीव नहीं आते।

दर्शनावाणीय कर्मके उदयसे छद्मस्थ जीव निद्रा लेता है

१—प्रथम भग-सब सात प्रकारके कर्मबंधक, द्वितीयभंग-सर्व सात प्रकारके कर्मबंधक पर एक आठ प्रकारका कर्मबंधक, तृतीय भग—सर्व सात प्रकारके कर्मबंधक तथा सर्व आठप्रकारके कर्मबंधक। २—पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीव अपनी वर्तमान स्थितिमें नहीं हँस सकते।

और केवलीके दर्शनावाणीय कर्मका उदय नहीं होता अतः वे निद्रा नहीं लेते। निद्रा लेता हुआ या खड़ा-खड़ा ऊँघता हुआ जीव कितने कर्मबंधन करता है ; इस संबंधमें हँसनेकी तरह ही कर्मबंधनसंबंधी उपर्युक्त वर्णन जानना चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० ५६-५७)

(१३३) इन्द्रका दूत हरिनैगमेषी स्त्रीके गर्भका संहरण करते हुए गर्भको गर्भाशयसे निकाल कर सीधा गर्भाशयमें नहीं रखता, गर्भाशयसे निकालकर योनिमार्गसे गर्भाशयमें नहीं रखता, योनि-मार्गसे निकाल कर योनिमार्गसे नहीं रखता परन्तु योनिमार्गसे निकालकर गर्भाशयमें रखता है। गर्भ-संहरण करते हुए गर्भको किसीप्रकारका कष्ट नहीं होता।

[1]हरिनैगमेशी देव स्त्रीके गर्भको नखद्वारा या रोममार्गसे अन्दर रखने या निकालनेमें समर्थ है। इसकार्यमें वह गर्भको किञ्चित् भी पीड़ा नहीं होने देता। वह प्रथम छविच्छेद (Operation) करता है और पश्चात् गर्भको अत्यन्त सूक्ष्मतासे निकालता या रखता है।

१—इस प्रश्नके साथ ही भगवान् महावीरकी गर्भापहरणकी घटनाका स्मरण हो जाता है। हो सकता है ; परोक्षरूपसे उसी घटनाको लक्ष्य कर यह प्रश्न किया गया हो। परम्परासे हम महावीरके गर्भापहरणकी घटनाको मानते आ रहे हैं परन्तु आधुनिक कुछ विशिष्ट विद्वानोंने यह घटना काल्प-निक तथा असंभव कही है। गर्भापहरणकी यह घटना वस्तुतः हुई या नहीं, यह तो विश्वासकी वस्तु है परन्तु वर्तमान वैज्ञानिक संसार गर्भापहरणकी प्रक्रियामें विश्वास रखता है। वैज्ञानिकोंने गर्भ अपहरण करके दूसरे जीवके गर्भाशयमें रखकर बच्चे उत्पन्न किये हैं। अतः गर्भापहरण संबंधी प्रक्रियाका विरोध तो नहीं किया जा सकता।

(प्रश्नोत्तर नं० ५८)

(१३४) [1]मेरे (महावीरके) सात सो शिष्य सिद्ध होंगे तथा समस्त दुखोंका नाश करेंगे।

(प्रश्नोत्तर नं० ५९-६२)

(१३५) देव संयत हैं ; यह उपयुक्त नहीं। असंयत हैं ; यह निष्ठुर वचन हैं, असंयतासंयत हैं—यह असत्‌भूतको सद्‌भूत करने जैसा है। अतः देवता नोसंयत हैं।

(प्रश्नोत्तर नं० ६३)

(१३६) देवता अर्द्धमागधी भाषा बोलते हैं। देवताओंके द्वारा बोली जानेवाली भाषओंमें अर्द्धमागधी विशिष्ट रूपसे बोली जाती है।

(प्रश्नोत्तर नं० ६४-६६)

(१३७) केवली मनुष्य चरमशरीरीको जानते हैं तथा देखते हैं। केवली मनुष्यकी तरह चरमशरीरीको छद्मस्थ मनुष्य स्वतः नहीं जानते तथा नहीं देखते। हाँ, वे किसी केवली या केवलीकी श्रावक-श्राविका, उपासक-उपासिकासे या किसी केवलीपाक्षिक-स्वयंबुद्ध या स्वयंबुद्धके श्रावक-श्राविका व उपासक-उपासिका से सुनकर जान सकते हैं।

(प्रश्नोत्तर नं० ६७)

(१३८) प्रमाण चार प्रकारके हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम। जिसप्रकार अनुयोगद्वारमें प्रमाणके संबंधमें कहा

१—महाशुक्र विमानके देवों द्वारा पूछे गये प्रश्नका यह प्रत्युत्तर है। उनका प्रश्न था हे भगवन्! आपके कितने शिष्य सिद्ध होंगे तथा सर्व दुखोंका अंत करेंगे?

गया है उसीप्रकार यहाँ भी नो आत्मागम, नो अनन्तरागम और परम्परागम तक जानना चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० ६८)

(१३९) केवली मनुष्य चरम कर्म व चरम निर्जराको जानते है तथा देखते हैं। छद्मस्थके लिये चरमशरीरीकी तरह जानना चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० ६९-७१)

(१४०) केवली मनुष्य उत्कृष्ट मन और वचनको धारण करते है। केवली-द्वारा धारित प्रकृष्ट मन और वचनको कितने ही वैमानिक देव जानते है तथा देखते है; कितने ही नहीं। वैमानिक देव दो प्रकारके है—मायीमिथ्यादृष्टिसमुत्पन्न और अमायीसम्यगृदृष्टिसमुत्पन्न। अमायीसम्यगृदृष्टिसमुत्पन्न देव भी दो प्रकारके हैं--अनन्तरोपपन्नक और परम्परोपपन्नक। परम्परोपपन्नक देव भी दो प्रकारके हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। इनमें पर्याप्त अमायीसम्यगृदृष्टिसमुत्पन्न देव ही जान सकते है, शेष मायीमिथ्यादृष्टि और अपर्याप्त परम्परोपपन्नक अमायी-सम्यगृदृष्टि नही।

(प्रश्नोत्तर नं० ७२-७६)

(१४१) अनुत्तर विमानमें उत्पन्न देव अपने विमानमें बैठे हुए ही केवलीके साथ आलाप-संलाप करनेमें समर्थ हैं। अपने स्थानसे वे जिस किसी अर्थ, हेतु, प्रश्न या व्याकरणको पूछते है उसका प्रत्युत्तर यहाँ रहे हुए केवली दे देते है। उस प्रत्युत्तरको वे देव ग्रहण कर लेते हैं। क्योंकि वैमानिक देवताओंको अनन्त

मनोद्रव्य-वर्गणायें प्राप्त व लब्ध हैं। अतः वे केवली-द्वारा दिये गये उत्तरको जानते तथा देखते हैं।

अनुत्तरवैमानिक देव उपशान्तमोहयुक्त हैं किन्तु उदीर्ण-मोहयुक्त या क्षीणमोहयुक्त नहीं हैं।

(प्रश्नोत्तर नं० ७७-७८)

(१४२) केवली इन्द्रियोंके द्वारा न जानते हैं और न देखते हैं। वे पूर्वादि सर्व दिशाओंमें स्थित मित-अमित पदार्थोंको जानते तथा देखते हैं। क्योंकि केवलीको अनन्त ज्ञान-दर्शन प्राप्त है। उनके ज्ञान-दर्शनमें किसीप्रकारका आवरण नहीं है। अतएव वे इन्द्रियोंके द्वारा जानते अथवा देखते नहीं हैं।

(प्रश्नोत्तर नं० ७९-८०)

(१४३) केवली जिस समयमें जिन आकाश-प्रदेशोंमें हाथ, पांव, बाहु, उरु आदिको अवगाहित कर रहते हैं उस समयके अनन्तर आगामी समयमें उन्हीं आकाशप्रदेशोंको अवगाह कर नहीं रह सकते। क्योंकि केवलीको वीर्यप्रधान योगयुक्त जीव-द्रव्य होता है। इससे उनके हस्तादि अंग संचालित होते हैं। अंग-संचालन होते रहनेसे आगामी समयमें उन्हीं आकाश-प्रदेशोंमें हस्तादिको अवगाहित कर नहीं रह सकते।

(प्रश्नोत्तर नं० ८१-८२)

(१४४) चौदह पूर्वके ज्ञाता श्रुतकेवली एक घड़ेसे हजार घड़े, एक पटसे हजार पट, एक चटाईसे हजार चटाइयाँ, एक रथसे हजार रथ, एक छत्रसे हजार छत्र, एक दण्डसे हजार दण्ड, कर दिखानेमें

समर्थ हैं। क्योंकि चौदह पूर्वधारियोंको [1]उत्करिका भेद-द्वारा भेदित अनन्त द्रव्य ग्रहित, लब्ध तथा संप्राप्त हैं। इसलिये वे उन द्रव्योंको अनेक रूपोंमें परिणत कर दिखा सकते हैं।

पंचम उद्देशक

पंचम उद्देशकमें वर्णित विषय

[मात्र संयमसे सिद्धि होती है ? अन्यतीर्थिक मान्यता और खंडन, एवभूत और अनेवभूत वेदना, कुलकर तथा तीर्थंकरोंके माता पिता आदि। प्रश्नोत्तर संख्या ६]

(प्रश्नोत्तर नं० ८३)

[देखो पृष्ठ संख्या ३२, प्रथम शतक चतुर्थ उद्देशक, प्रश्नोत्तर नं० १५९-१६३।]

(प्रश्नोत्तर नं० ८४-८७)

(१४५) "सर्व प्राणों, सर्व भूतों, सर्व जीवों और सर्व सत्त्वोंने जिसप्रकारसे कर्मबंधन किये है उसीप्रकारसे वेदना अनुभव करते हैं।"

अन्यतीर्थिकोंका यह कथन असत्य है। मैं इसप्रकार कहता हूँ तथा प्ररूपित करता हूँ—

१—पांच प्रकारके भेद हैं :—खड-भंद, प्रतर-भेद, चूर्णिका-भेद, अनुतटिका-भेद और उत्करिका-भेद। खंड-भेद—लोहा, तांवा शीशे आदिके टुकड़े २ करना। प्रतरभेद—वांस, अभ्रपटल, भोजपत्र आदि प्रतरयुक्त चीजोंका भेदन। चूर्णिका भेद—वेसन आदिकी तरह पदार्थ पीस देना। अनुतटिका भेद—कूप, सरोवर, पहाड़ी नदियों आदिकी दरारोंकी तरह भेदन। उत्करिका भेद—तिल, उड़द अथवा एरण्डकी फलियोंकी तरह पदार्थों—पुद्गलोंका भेदन।

कितने ही प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व अपने कर्मानुसार वेदना का अनुभव करते हैं और कितने ही जीव नहीं। जो प्राणी भूत, जीव और सत्त्व कृत-कर्मके अनुसार वेदना अनुभव करते हैं वे एवंभूत वेदनाका अनुभव करते हैं और जो प्राणी कृतकर्मके अनुसार वेदना अनुभव नहीं करने हैं वे अनेवंभूत वेदनाका अनुभव करते हैं।

(१४६) नैरयिक एवंभूत वेदनाका अनुभव करते हैं और अनेवंभूत वेदनाका भी। जो नैरयिक कृत-कर्मानुसार वेदना अनुभव करते हैं वे एवंभूत वेदना वेदन करते हैं और जो कृत-कर्मानुसार वेदना वेदन नहीं करते वे अनेवंभूत वेदना वेदन करते हैं।

कुलकर आदि

(प्रश्नोत्तर नं० ८८)

(१४७) जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें इस अवसर्पिणी कालमें [1]सात कुलकर हुए है। तीर्थंकरोंकी माताओं, पिताओं, शिष्यों, चक्र-वर्तीकी माताओं, स्त्रीरत्न, बलदेव, वासुदेव, वासुदेवकी माताओं, पिताओं, और प्रतिवासुदेवोंके जिसक्रमसे समवायांग सूत्रमें नाम कहे गये हैं उसीक्रमसे यहाँ भी जानने चाहिये।

१—विमलवाहन, चक्षुमान, यशोमान, अभिचन्द, प्रसेनजित, मरुदेव और नाभि।

पंचम शतक

षष्ठम उद्देशक

षष्ठम उद्देशकमें वर्णित विषय

[जीवोंके अल्पायुष्यबंधके कारण, जीवोंके दीर्घ-आयुष्यबंधके कारण, किराना व्यापारी तथा खरीददारको लगनेवाली क्रियायें, अग्निकायकी अल्प-क्रिया और महाक्रिया, धनुष और पुरुष, अन्यतीर्थिकोंका मत तथा खंडन, आधाकर्म आहारसे होनेवाली हानियां, आचार्य व उपाध्यायकी गति, मृषावादीको बंधनेवाले कर्म। प्रश्नोत्तर संख्या १८]

(प्रश्नोत्तर नं० ८९-९२)

(१४८) जीव निम्न तीन कारणोंसे अल्पायुष्य बांधता है :—

(१) प्राणी-हिंसा

(२) असत्य भाषण

(३) तथारूप श्रमण या ब्राह्मणको अनेषणीय अशन, पान, खादिम-स्वादिम आदि पदार्थोंका देना।

जीव निम्न तीन कारणोंसे चिर-आयुष्य बांधता है :—

(१) अहिंसा-पालन

(२) सत्य भाषण

(३) तथारूप श्रमण या ब्राह्मणको प्रासुक अशन, पान, खादिम स्वादिम आदि पदार्थों का देना।

जीव निम्न कारणोंसे चिरकाल पर्यन्त अशुभरूपसे जीनेका आयुष्य बांधता है।

(१) प्राणी-हिंसा

(२) असत्य भाषण

(३) तथारूप श्रमण या ब्राह्मणकी निन्दा व हीलना, करना, लोकके समक्ष उनकी फजिहत करना, उनकी गर्हा-निन्दा व अपमान करना तथा अमनोज्ञ—खराब अशनादि देना।

निम्न कारणोंसे जीव चिरकाल तक शुभ रूपसे जीनेका आयुष्य बांधता है।

(१) अहिंसा-पालन

(२) सत्य भाषण

(३) तथारूप श्रमण-ब्राह्मणको वंदना तथा पर्युपासना करना तथा उनको मनोज्ञ—प्रीतिकारक अशन, पान, खादिम व स्वादिम आदि देना।

व्यापारी और किराना

(प्रश्नोत्तर नं० ९३-९६)

(१४६) किसी किरानेका व्यापारीका यदि कोई पुरुष किराना चुराले, उसकी यदि वह व्यापारी खोज करता है तो उसको आरंभिकी पारिग्रहिकी, मायाप्रत्ययिकी और अप्रत्याख्यान-प्रत्ययिकी क्रियायें लगती हैं। मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया कदाचित् लगती है और कदाचित् नहीं भी लगती है। खोज करते हुए यदि चोरा हुआ किराना मिल जाय तो समस्त क्रियायें (पतली) हल्की हो जाती हैं।

किराना-विक्रेतासे खरीददारने किराना खरीदा और उसके लिये सत्यंकार—बयाना, देदिया परन्तु किराना दुकानसे उठाया नहीं गया ; इसस्थितिमें विक्रेता गृहपतिको आरंभिकि, पारिग्रहिकी मायाप्रत्ययिकी और अप्रत्याख्यानप्रत्ययिकी क्रियायें लगती हैं।

मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया कदाचित् लगती है और कदाचित् नहीं लगती। खरीददारको ये समस्त क्रियायें हल्की होती हैं। विक्रेताके यहाँसे अपना भंड—किराना, अपने यहाँ ले लेने पर खरीददारको उक्त चारों क्रियायें लगती हैं। मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया कदाचित् लगती है और कदाचित् नहीं लगती। विक्रेताको ये समस्त क्रियायें हल्की हो जाती हैं।

गाथापतिके द्वारा माल वेच दिया गया परन्तु खरीददारके यहाँसे उसका मूल्य नहीं आया। इस स्थितिमें जहांतक खरीददारके यहाँसे मूल्य न आय वहाँतक विक्रेताको धन व माल दोनोंकी क्रियायें हल्की लगती हैं और खरीददारको विशेष। मूल्य दे-देने पर ग्राहकको धनकी क्रिया हल्की लगती है और विक्रेताको विशेष लगती है।

अग्निकाय

(प्रश्नोत्तर नं० ९७)

(१५०) सद्य (अभी २ जलायी गयी) प्रज्वलित अग्निकाय महाकर्मयुक्त, महाक्रियायुक्त, महाआश्रवयुक्त और महावेदना युक्त होती है। समय-समयमें—क्रमशः बुझती हुई और अंगारे, मुर्मुर तथा भस्मादिमें परिणत होती हुई अग्नि अल्पकर्मयुक्त, अल्प क्रियायुक्त, अल्प आश्रवयुक्त तथा अल्प वेदनायुक्त होती है।

(प्रश्नोत्तर नं० ९८-९९)

(१५१) एक पुरुष धनुष पर वाण चढा तथा आसन लगाकर कर्णपर्यन्त वाण खींचकर छोड़ देता है। वह छूटा हुआ वाण आकाशस्थ जीवों, प्राणों और सत्त्वोंका हनन करता है, उनको

संकुचित करता है, उनको अधिक या न्यून मात्रामें संस्पर्श करता है, संघटित करता है, परितापित व क्लांत करता है और स्थानान्तरित करके प्राण रहित भी कर देता है, ऐसीस्थितिमें उस पुरुषको धनुष उठाया और छोड़ा, वहांतक प्राणातिपात आदि पांचों क्रियायें लगती हैं। जिन जीवोंके शरीरों-द्वारा धनुष, वाण, प्रत्यंचा, पंख, फल आदि बने है, उन जीवोंको भी अलग २ पांचों क्रियायें लगती हैं।

अपनी गुरुता—भार, के कारण वह बाण जब स्वभावतः नीचे गिरता है तब उस पुरुषको कायिकी आदि चार क्रियायें लगती हैं और जिन जीवोंके शरीर-द्वारा धनुष, प्रत्यंचा, फल, पंख आदि बने है, उनको भी चार क्रियायें लगती है। नीचे गिरते हुए वाणके अवग्रहमें जो जीव आते है उनको भी कायिकी आदि पांचों क्रियायें लगती है।

(प्रश्नोत्तर नं० १००)

(१५२) "जिसप्रकार कोई युवक युवतीके हाथको पकड़कर खड़ा हो अथवा चक्रकी नाभिमें आरा सटा हुआ हो, उसीप्रकार चारसो यावत् पांचसो योजन पर्यन्त मनुष्यलोक मनुष्योंसे भरा हुआ है।"

अन्यतीर्थिकोंका यह प्ररूपण, असत्य है। मैं इसप्रकार कहता हूँ तथा प्ररूपित करता हूँ।

निरयलोक चारसो यावत् पांचसो योजन तक नैरयिकोंसे खचा-खच भरा हुआ है परन्तु मनुष्यलोक नहीं।

(प्रश्नोत्तर नं० १०१)

(१५३) नैरयिक वैक्रिय रूप धारण करते हुए एक रूप विकुर्वित

करते हैं अथवा अनेक रूप विकुर्वित करते हैं; इस संबंधमें जीवाभिगमसूत्रके अनुसार जानना चाहिये।

आधाकर्म आहार

(प्रश्नोत्तर नं० १०२-१०४)

(१५४) आधाकर्म—अनवद्य—दूषित नहीं है; इसप्रकार जो साधु मनमें समझता हो, वह यदि आधकर्म-संबंधी आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही मर जाय तो उसको आराधना नहीं होती। आलोचना व प्रतिक्रमणके अनन्तर काल करने पर आराधना होती है। यही बात क्रीतकृत—साधुके लिये खरीदकर लाया हुआ भोजन, स्थापित—साधुके लिये रखा हुआ भोजन, रचित—साधुके लिये वनाया हुआ, कांतारभक्त—जंगलमें साधु के निर्वाह-निमित्त निर्मित, दुर्भिक्षभक्त—दुष्कालमें साधुके निर्वाहके लिये कृत भोजन, वार्दलिकभक्त—वर्षा आदिके कारण साधुके लिये बनाया हुआ भोजन, ग्लानभक्त—रोगी आदिके लिये वनाया हुआ भोजन, शैय्यातरपिण्ड, राजपिंड आदि दोषयुक्त आहारोंके संबंधमें जाननी चाहिये।

"आधाकर्म आहार निष्पाप है" इसप्रकार जो साधु अनेक मनुष्योंके मध्य कहता है तथा आधाकर्म आहार खाता है उस साधुको आराधना नहीं होती। इस संबंधमें उपर्युक्त राजपिंड तक सर्व वर्णन जानना चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० १०५)

(१५५) अपने गण तथा अपने कर्तव्यको विना किसी ग्लानिसे स्वीकार करनेवाले तथा विना किसी क्लेशसे शिष्योंकी सहायता करनेवाले आचार्यों व उपाध्यायोंमें कितने ही आचार्य

व उपाध्याय उसी भवमे, कितने ही दो भवोंमें और कितने ही तीन भवोंमें सिद्ध होते हैं परन्तु तृतीय भवका अतिक्रमण नहीं करते।

(प्रश्नोत्तर नं० १०६)

(१५६) जो दूसरोंको असत्यसे, असद्भूत वचन तथा झूठे दोषारोपणसे दूषित करते है—कलंकित करते हैं, उन्हें उसी प्रकारके कर्मोंका बंधन होता है। वे जहाँ भी जायं, वहां इन कर्मोंका वेदन करते हैं। वेदनानन्तर ही उनकी निर्जरा होती है।

पंचम शतक

सप्तम उद्देशक

सप्तम उद्देशक में वर्णित विषय

[परमाणु प्रकंपन, परमाणुपुद्गल और असिधार, परमाणु पुद्गलोंके विभाग, परमाणु पुद्गलोंका परस्पर स्पर्शन, परमाणु पुद्गलोंकी संस्थिति, परमाणु पुद्गल और अन्तर्काल, नैरयिकादि जीवोंका परिग्रह, हेतु। प्रश्नोत्तर संख्या ३४]

(प्रश्नोत्तर नं० १०७-११०)

(१५७) परमाणु पुद्गल कदाचित् कंपित होते हैं, कदाचित् विशेष कंपित भी होते हैं और कदाचित् परिणत होते हैं। कदाचित् कंपित व परिणत नहीं भी होते हैं।

दो प्रदेशवाला स्कंध कदाचित् कंपित व परिणत नहीं होता है और कदाचित् होता है, कदाचित् उसका एक भाग कंपित होता है और दूसरा भाग नहीं होता।

तीन प्रदेशवाला स्कंध कदाचित् कंपित होता है कदाचित् कंपित नहीं होता। कदाचित् एक भाग कंपित होता है और कदाचित् एक भाग नहीं। कदाचित् एक भाग प्रकंपित हो और बहु प्रदेश प्रकंपित न हो और कदाचित् बहु प्रदेश प्रकंपित हों और एक प्रदेश प्रकंपित न हो।

चार प्रदेशवाला स्कंध कदाचित् कंपित होता है और कदाचित कंपित नहीं होता, कदाचित् एक भाग कंपित हो और एक

भाग नहीं। कदाचित् एक भाग प्रकंपित हो और बहु प्रदेश प्रकंपित न हों और बहु प्रदेश प्रकंपित हों और एक भाग प्रकंपित न हो, कदाचित् बहुत भाग प्रकंपित हों और कदाचित् बहुत भाग नहीं।

जिसप्रकार चार प्रदेशवाले स्कंधके लिये कहा गया है उसी प्रकार पांच प्रदेशवालेसे लेकर अनन्त प्रदेशवाले प्रत्येक स्कंधके लिये समझना चाहिये।

परमाणु पुद्गल और असिधार

(प्रश्नोत्तर नं० १११-११४)

(१५८) परमाणु पुद्गल तलवार या क्षुरकी धार पर रह सकते हैं। धार पर रहे हुए परमाणु पुद्गल न छेदित होते हैं और न भेदित होते हैं। क्योंकि परमाणु पुद्गलोंका शस्त्रादि द्वारा भेदन नहीं किया जा सकता। एक परमाणुसे लेकर असंख्य प्रदेशी स्कंध शस्त्र-द्वारा नहीं छेदे जा सकते।

अनन्तप्रदेशी स्कंध तलवार या क्षुरकी धार पर ठहरते है। वे स्थित पुद्गल कदाचित् छेदित व भेदित होते हैं और कदाचित् नहीं भी।

परमाणु पुद्गलसे लेकर अनन्तप्रदेशी स्कंध अग्निकायके मध्य प्रवेश कर सकते हैं या नहीं, पुष्करसंवर्त नामक मेघके मध्य प्रवेश कर सकते है या नहीं, गंगा महानदीके प्रतिस्रोत में प्रविष्ट हो सकते हैं या नहीं, उदकावर्तमें प्रविष्ट हो सकते हैं या नहीं, आदि इसीप्रकार समझने चाहिये। मात्र छेदित-भेदित शब्दोंके स्थानपर क्रमशः जलना, गीला होना, प्रतिस्खलित होना और नाश प्राप्त होना शब्द प्रयुक्त करने चाहिये।

परमाणु पुद्गलके विभाग और परस्पर स्पर्शन

(प्रश्नोत्तर नं० ११५-१२१)

(१५९) परमाणु पुद्गल अनर्ध, अमध्य और अप्रदेशी हैं परन्तु सार्ध, समध्य और सप्रदेशी नहीं।

दो प्रदेशवाला स्कंध सार्ध—अर्धभाग सहित, सप्रदेशी और अमध्य हैं परन्तु अनर्ध, समध्य और अप्रदेशी नहीं।

तीन प्रदेशवाले स्कंध अनर्ध, समध्य और सप्रदेशी है परन्तु सार्ध अमध्य, और अप्रदेशी नहीं।

समसंख्यात प्रदेशोंवाले स्कंधोंके लिये दो प्रदेशोंवाले स्कंध की तरह ही सार्ध आदि विभाग जानने चाहिये और विषम स्कंध – असमसंख्यात स्कंधको तीन प्रदेशवाले स्कंधकी तरह जानने चाहिये।

संख्येय, असंख्येय और अनन्त प्रदेशवाले स्कंध कदाचित् सार्ध, अमध्य और सप्रदेशी होते हैं और कदाचित् अनर्ध, समध्य और सप्रदेशी होते है।

(१६०) परमाणु पुद्गलको स्पर्श करता हुआ परमाणु पुद्गल (१) एक देशसे एक देशको (२) एक देशसे अनेक देशोंको (३) एक देशसे सर्व देशोंको, (४) अनेक देशोंसे एक देशको, (५) अनेक देशोंसे अनेक देशोंको, (६) अनेक देशोंसे सर्व देशोंको, (७) सर्व देशोंसे एक देशको, (८) सर्व देशोंसे अनेक देशोंको स्पर्श नहीं करता है परन्तु (९) सर्व से सर्वको स्पर्श करता है।

दो प्रदेशवाले स्कंधको स्पर्श करता हुआ परमाणु पुद्गल उक्त नव विकल्पोंमेंसे सातवें और नववें विकल्प-द्वारा स्पर्श करता

है। तीन प्रदेशवाले स्कंधको स्पर्श करता परमाणु पुद्गल सातवें, आठवें और नववें विकल्पसे स्पर्श करता है। तीन प्रदेशवाले स्कंधकी तरह ही संख्येय, असंख्येय और अनन्त प्रदेशवाले स्कंधोंके लिये जानना चाहिये।

परमाणु पुद्गलको स्पर्श करता हुआ दो प्रदेशवाला स्कंध तीसरे और नववें विकल्प-द्वारा स्पर्श करता है। दो प्रदेशवाले स्कंधको स्पर्श करता हुआ द्विप्रदेशी स्कंध प्रथम, तृतीय, सप्तम और नवम विकल्प-द्वारा स्पर्श करता है। तीन प्रदेशवाले स्कंधको स्पर्श हुआ करता द्विप्रदेशी स्कंध आदिके तीन और अन्तके तीन विकल्पों-द्वारा स्पर्श करता है।

जिसप्रकार दो-तीन प्रदेशवाले स्कंधको द्विप्रदेशी स्कंव स्पर्श करता है उसीप्रकार संख्येय, असंख्येय और अनन्त-प्रदेशी स्कंधों के संबंधमें जानना चाहिये।

परमाणु पुद्गलको स्पर्श करता हुआ तीन प्रदेशी स्कंध तीसरे छट्ठे और नववें विकल्प-द्वारा स्पर्श करता है। द्विप्रदेशीको स्पर्श करता हुआ तीन प्रदेशी स्कंध पहले, तीसरे, चौथे, छट्ठे, सातवें और नववे विकल्प-द्वारा स्पर्श करता है। तीन प्रदेशवाले स्कंधको स्पर्श करता हुआ तीन प्रदेशी स्कंध सर्व विकल्पों-नवों ही विकल्पों द्वारा स्पर्श करता है। तीन प्रदेशीसे तीन प्रदेशीकी तरह ही, संख्येय, असंख्येय और अनन्त प्रदेशी स्कंधोंके लिये जानना चाहिये।

परमाणु पुद्गलादिकी संस्थिति

(प्रश्नोत्तर नं० १२२-१२६)

(१६१) परमाण पुद्गल न्यूनसे न्यून एक समय तक और

अधिकसे अधिक असंख्येय काल तक स्पर्शित रहता है। इसी प्रकार अनन्त प्रदेशी स्कंध तकके स्कंधोंके लिये जानना चाहिये।

एक आकाशप्रदेशमें स्थित पुद्गल जहाँ भी हो, वहाँ या अन्यत्र, कालसे जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिकाके असंख्येय भाग पर्यन्त निष्कंप रहता है। इसीप्रकार आकाशके असंख्येय प्रदेशोंमें स्थित पुद्गलोंके लिये जानना चाहिये।

एक आकाश-प्रदेशमें अवगाढ़ पुद्गल कालसे जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्येय काल तक निष्कंप रहता है। इसीप्रकार असंख्येय प्रदेशावगाढ़ पुद्गलोंके लिये जानना चाहिये।

एक गुण कृष्णवर्ण पुद्गल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक रहता है। इसीप्रकार अनन्त गुण कृष्ण-वर्ण पुद्गलोंके लिये जानना चाहिये।

एक गुण कृष्णवर्णकी तरह शेष वर्ण, गंध, रस और स्पर्श वाले, अनन्त प्रदेशी, रूक्ष, सूक्ष्मपरिणत और बादर-परिणत पुद्गलोंके लिये जानना चाहिये।

कालसे शब्दपरिणत पुद्गल जघन्यमें एक समय और उत्कृष्ट में आवलिकाके असंख्येय भाग तक रहते हैं। शब्दपरिणत पुद्गल एक गुण काले पुद्गलकी तरह जानने चाहिये।

परमाणु पुद्गल और अन्तरकाल

(प्रश्नोत्तर न० १२७-१३३)

(१६२) स्कंध-रूपमें परिणत परमाणु पुद्गलका पुनः स्कंधसे परमाणुरूपमें परिवर्तित होनेका अन्तरकाल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्येय काल है। द्विप्रदेशी स्कंधसे अनन्तप्रदेशी

स्कंध तकका अन्तर्काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकाल है।

एक प्रदेशमें स्थित स्थिर पुद्गलोंका अन्तर्काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्येय काल है। इसीप्रकार असंख्य प्रदेशस्थित स्कंधों तक जानना चाहिये।

एक प्रदेशमें स्थित स्थिर पुद्गलोंका अन्तर्काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिकाका असंख्येय भाग है। इसी प्रकार असंख्येय प्रदेशस्थित स्कंध-पर्यन्त जानना चाहिये। वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, सूक्ष्मपरिणत और बादरपरिणतका जो स्थितिकाल है वही इनका अन्तर्काल है।

शब्द-परिणत पुद्गलका अन्तर्काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्येय काल है। अशब्द परिणत पुद्गलका अन्तर्काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिकाका असंख्येय भाग है।

[1]द्रव्यस्थानायु, [2]क्षेत्रस्थानायु, अवगाहनास्थानायु, भावस्थानायु, इन सबोंमें सबसे कम आत्मक्षेत्रस्थानायु है, उससे असंख्येय गुणित अवगाहनास्थानायु, उससे असंख्येय गुणित द्रव्यस्थानायु, उससे भावस्थानायु असंख्येय गुणित है।

नैरयिकादि जीवोंका परिग्रह व आरंभ

(प्रश्नोत्तर नं० १३४-१३९)

(१६३) नैरयिक आरंभी और परिग्रही हैं परन्तु अनारंभी और अपरिग्रही नहीं। क्योंकि वे पृथ्वीकायसे त्रसकाय तकके

१—परमाणु पुद्गल दो प्रदेशी रूपमें जबतक स्थित रहता है; उस कालको द्रव्यस्थानायु कहते हैं। २—आकाशका पुद्गलोंके अवगाहनसे समुत्पन्न भेद और उनका उसमें स्थिन रहनेका काल क्षेत्रस्थानायु।

जीवोंका समारंभ करते हैं इसलिये आरंभी है। उन्होंने शरीर, कर्म, सचित्त, अचित्त और सचित्ताचित्त पदार्थ परिगृहीत कर रखें हैं इसलिये वे परिग्रही हैं।

नैरयिकोंकी तरह असुरकुमार भी आरंभी और परिग्रही हैं— ये अनारंभी और अपरिग्रही नहीं हैं। क्योंकि ये पृथ्वीकायसे लेकर त्रसकाय तकके जीवोंका समारंभ करते हैं। इन्होंने शरीर, कर्म, देव-देवियाँ, मनुष्य-मानुषियां, तिर्यञ्च-तिर्यञ्चनियां आसन, शयन, वर्तन आदि उपकरण, सचित्त, अचित्त और सचित्तासचित्त पदार्थ परिगृहीत किये है, अतः ये परिग्रही हैं।

इसीप्रकार स्तनितकुमार तक समझना चाहिये।

नैरयिकोंकी तरह एकेन्द्रिय जीवोंके लिये जानना चाहिये। द्वीन्द्रियसे लेकर चतुरिन्द्रिय तकके जीव भी पूर्ववत् परिग्रही और आरंभी हैं परन्तु अनारंभी और अपरिग्रही नहीं; क्योंकि इन्होंने पूर्ववत् शरीर व वाह्य वर्तन आदि उपकरण परिगृहीत कर रखे है।

इसीप्रकार पंचेन्द्रिय-तिर्यंचके लिये भी जानना चाहिये। ये पर्वत, शिखर, शैल, शिखरयुक्त पहाड़, पहाड़ियां, जल, स्थल विल, गुहायें, गुहागृह, जलप्रपात, निर्झर, गंदे तालाव, सरोवर, हौज, कूए, तालाव, नदियां, चौखंडी वावडियां, गोल वावडियां पुष्करणिया, सरोवर-श्रेणी, छोटे तालावोंकी श्रेणी, विलश्रेणी उद्यान, आराम, कानन, वन, वनखंड, वनराजि, प्राकार, दुर्ग, अट्टालक, घर, दरवाजे, गजस्थान, देवकुल, वाजार, प्रासाद, घर, झोंपड़ियां, गुहागृह, हाट, शृंगाटक—तीन मार्ग जहाँ एकत्रित हों, चतुष्पथ, चौक, गाड़ियां, यान, युग, गिल्ली—अंवाड़ी, थिल्ली-

पलान, शिविका, डोली, लोढ़ी, कड़ाह, कड़छुआ, भवनपतिके आवास, देव-देवियां, मनुष्य-मानुषियां, तिर्यंच-तिर्यंचनियां, आसन, शयन, वर्तन, सचित्त, अचित्त, सचित्तासचित्त पदार्थ आदि परिगृहीत किये है। इसकारण ये आरंभी और परिग्रही हैं।

तिर्यंचोंकी तरह मनुष्य भी परिग्रही और आरंभी हैं।

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक भवनवासी देवोंकी तरह परिग्रही और आरंभी हैं।

*हेतु (१)

(प्रश्नोत्तर नं० १४०)

(१६४) पांच प्रकारके [१]हेतु है—हेतुको जानता है, हेतुको देखता है, हेतुको सम्यक्रूपसे हृदयंगम करता है, हेतुको अभिसम्मुख करता है तथा हेतुको छद्मस्थ मरता है।

पांच प्रकारके हेतु हैं—हेतुसे जानता है, हेतुसे देखता है, हेतुसे हृदयंगम करता है, हेतुसे अभिसम्मुख होता है तथा हेतुसे छद्मस्थ मरता है।

पांच प्रकारके हेतु हैं :—हेतुको नहीं जानता है, हेतुको नहीं देखता है, हेतुको हृदयंगम नहीं करता है, हेतुको अभिसम्मुख नहीं करता परन्तु हेतुयुक्त अज्ञान मृत्यु प्राप्त करता है।

पांच हेतु हैं—हेतुसे नहीं जानता है, हेतुसे नहीं देखता है,

---

*यहाँ हेतुओंका मात्र शब्दार्थकी दृष्टिसे ही अर्थ किया गया है। इनका वास्तविक भावार्थ क्या है, कुछ कहा नहीं जा सकता। आचार्य अभयदेवसूरिके सदृश, महान् समर्थ आचार्यने भी इनका वास्तविक भावार्थ बहुश्रुतगम्य है, कहकर छोड़ दिया है।

हेतुसे हृदयंगम नहीं करता है, हेतुसे अभिसम्मुख नहीं होता है परन्तु हेतुसे अज्ञान मृत्यु प्राप्त करता है।

पांच अहेतु हैं—अहेतुको जानता है, अहेतुको देखता है, अहेतुको हृदयंगम करता है, अहेतुको अभिसम्मुख करता है और अहेतुको केवली मृत्यु प्राप्त करता है।

पांच अहेतु है—अहेतुसे जानता है, अहेतुसे देखता है, अहेतुसे हृदयंगम करता है, अहेतुसे अभिसम्मुख होता है और अहेतुसे केवली मृत्यु प्राप्त करता है।

पांच अहेतु है—अहेतुको नहीं जानता है, अहेतुको नहीं देखता है, अहेतुको हृदयंगम नहीं करता है, अहेतुको अभिसम्मुख नहीं करता है तथा अहेतुयुक्त छद्मस्थ मृत्यु प्राप्त करता है।

पांच अहेतु हैं—अहेतुसे नहीं जानता है, अहेतुसे नहीं देखता है, अहेतुसे हृदयंगम नहीं करता है, अहेतुसे अभिसम्मुख नहीं करता है तथा अहेतुसे छद्मस्थ मृत्यु प्राप्त करता है।

पंचम शतक

अष्टम उद्देशक

अष्टम उद्देशकमें वर्णित विषय

[महावीरके अंतेवासी नारदपुत्र और निर्ग्रन्थीपुत्र—पुद्गल सार्ध है ? समध्य है ? सप्रदेश है ? नारदपुत्रकी धारणा और निर्ग्रन्थीपुत्र-द्वारा खण्डन, जीवसंख्या—जीव घटते नहीं, बढते नहीं परन्तु अवस्थित हैं, चउवीस दण्डकीय जीव, सिद्ध तथा नैरयिक आदि चउवीस दण्डकीय जीवोंके घटने-बढ़ने संबंधी विषय पर विचार, जीव सोपचय या सापचय हैं—सिद्ध तथा चउवीस दण्डकीय जीवोंकी दृष्टिसे विचार। समय-ज्ञान और चउवीस दण्डकीय जीव। प्रश्नोत्तर संख्या २०]

(प्रश्नोत्तर नं० १४१-१४३)

(१६५) [1] सर्व पुद्गल, सार्ध, समध्य, सप्रदेश भी हैं और अनर्ध, अमध्य और अप्रदेश भी है।

१—महावीरके अन्तेवासी नारदपुत्र और निर्ग्रन्थीपुत्रकी पुद्गलके संबंध में परस्पर चर्चा है। निर्ग्रन्थीपुत्रने नारदपुत्रसे पूछा—'क्या पुद्गल, सार्ध, समध्य और सप्रदेश है अथवा अनर्ध, अमध्य और अप्रदेश है। नारदपुत्र जिन्हें इस संबंधमें पूर्ण निश्चयात्मक ज्ञान न था ; उन्होंने तत्क्षण प्रत्युत्तर दे दिया—पुद्गल सार्ध, समध्य और सप्रदेश है परन्तु अनर्ध, अमध्य और अप्रदेश नही है। निर्ग्रन्थीपुत्रने उसका खण्डन किया। नारदपुत्रने अपनी भूल स्वीकृत की और उनसे वास्तविक बात बतानेके लिये कहा। पुद्गलों के सार्धत्व और समध्यत्वके संबंधमें यह वर्णित वर्णन निर्ग्रन्थीपुत्रका प्रत्युत्तर है।

(१६६) पुद्गल अनन्त हैं। [1]द्रव्यापेक्षासे सर्व पुद्गल *सप्रदेश भी हैं और अप्रदेश भी। [2]क्षेत्र, [3]काल और [4]भावापेक्षासे भी ये सप्रदेश और अप्रदेश दोनों हैं। जो पुद्गल द्रव्यापेक्षासे अप्रदेश है वे नियमतः क्षेत्रापेक्षासे भी अप्रदेश होते हैं। काल और भावापेक्षासे कदाचित् अप्रदेश होते हैं। जो पुद्गल क्षेत्रसे अप्रदेश हैं वे द्रव्यसे कदाचित् सप्रदेश होते हैं और कदाचित् अप्रदेश। जो पुद्गल द्रव्यसे सप्रदेश हैं वे क्षेत्रसे कदाचित् सप्रदेश और कदाचित् अप्रदेश होते है। काल और भावसे भी इसी तरह जानना चाहिये। जो पुद्गल क्षेत्रसे सप्रदेश हैं वे द्रव्यसे नियमतः सप्रदेश होते है। काल और भावसे विभाजन पूर्वक होते हैं। जैसा द्रव्यके लिये कहा गया है वैसा ही काल और भावके लिये भी जानना चाहिये।

द्रव्यापेक्षासे, क्षेत्रापेक्षासे, कालापेक्षासे और भावापेक्षासे सप्रदेश और अप्रदेश पुद्गल इसप्रकार न्यूनाधिक या विशेषाधिक हैं—भावापेक्षासे अप्रदेश पुद्गल सबसे न्यून है। इनसे कालापेक्षा, द्रव्यापेक्षा और क्षेत्रापेक्षासे अप्रदेश पुद्गल क्रमशः

१—परमाणु आदिकी अपेक्षासे, २—एक प्रदेशावगाढत्व-एक प्रदेशमें रहना आदि, ३—एक समय पर्यन्त स्थित रहना आदि, ४—एक गुण कृष्ण वर्ण आदि।

*सर्व पुद्गलोंको सार्ध, समध्य, सप्रदेश, अनर्ध, अमध्य और अप्रदेश कहकर मात्र यहाँ सप्रदेश और अप्रदेश पुद्गलोंका ही प्ररूपण किया गया है। इसका कारण यह है कि सप्रदेश और अप्रदेशके प्ररूपणमें सार्धत्व आदिका प्ररूपण भी आ गया है अतः अलग न कहकर अन्तर्गत ही कह दिया गया है। क्योंकि जो सप्रदेश है वह सार्ध और समध्य भी है। जो अप्रदेश है वह अनर्ध एवं अमध्य भी है।

उत्तरोत्तर असंख्येय गुणित अधिक हैं। क्षेत्रापेक्षासे अप्रदेश पुद्गलोंकी अपेक्षा सप्रदेश पुद्गल असंख्येय गुणित है। इनसे द्रव्यापेक्षा, कालापेक्षा और भावापेक्षासे सप्रदेश पुद्गल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेषाधिक है।

(प्रश्नोत्तर नं १४४-१६०)

(१६७) [1]जीव न बढते हैं, न घटते हैं परन्तु अवस्थित रहते है—उनमें न्यूनाधिकता नही होती।

नैरयिक बढ़ते भी हैं, घटते भी है तथा अवस्थित भी रहते हैं। नैरयिकोंकी तरह ही वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना चाहिये।

सिद्ध जीव बढ़ते है परन्तु घटते नहीं। वे अवस्थित भी रहते हैं।

सर्वकाल-पर्यन्त जीव अवस्थित रहते हैं।

नैरयिक जघन्य एक समय पर्यन्त तथा उत्कृष्ट आवलिका के असंख्येय भाग पर्यन्त बढ़ते हैं। इसी परिमाणसे घटते भी हैं। नैरयिक जघन्य एक समय और उत्कृष्ट *२४ मुहूर्त पर्यन्त अवस्थित रहते हैं।

१—गौतम-प्रश्न :

*सर्व नैरयिकोंकी अपेक्षासे नैरयिकका उत्कृष्ट अवस्थानकाल २४ मुहूर्त कहा है। सातों पृथ्वियोंमें बारह मुहूर्त पर्यन्त किसी नैरयिकका न मरण होता है और न जन्म ही। इस उत्कृष्ट विरहकालमें नैरयिक अवस्थित रहते हैं। बारह मुहूर्त पर्यन्त जितने जीव नैरयिकोंमें उत्पन्न होते हैं उतने ही पुनः मर जाते हैं। यह भी नैरयिकोंका अवस्थानकाल ही है। इस प्रकार २४ मुहूर्त पर्यन्त नैरयिक न घटते और न बढ़ते हैं।

इसीप्रकार सातों पृथ्वियोंमें घटने-बढ़नेका परिमाण जानना चाहिये। अवस्थितिके अपेक्षासे इनमें निम्न विभेद है :—

रत्नप्रभामें ४८ मुहूर्त, शर्कराप्रभामें चौदह रात्रि-दिवस, वालुकाप्रभामें एक मास, पंकप्रभामें दो मास, धूमप्रभामें चार मास, तमप्रभामें आठमास और तमतमःप्रभामें बारह मास।

नैरयिकोंकी तरह असुरकुमार भी घटते और बढते हैं। जघन्य एक समय और उत्कृष्ट ४८ मुहूर्त-पर्यन्त अवस्थित रहते हैं। इसीप्रकार शेष भवनपति देव जानने चाहिये।

एकेन्द्रिय बढ़ते है; घटते है और अवस्थित भी रहते हैं। जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिकाके असंख्येय भाग-पर्यन्त ये घटते-बढ़ते और अवस्थित रहते हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय भी बढ़ते हैं और घटते हैं। इनके अवस्थानकालमें निम्न विभेद है :—

द्वीन्द्रिय—		जघन्य	एक	समय	और उत्कृष्ट	दो	मुहूर्त
त्रीन्द्रिय—		”	”	”	”	”	”
चतुरिन्द्रिय—		”	”	”	”	”	”
समूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक		”	”	”	”	”	”
गर्भज	”	”	”	”	”	२४	”
समूर्च्छिम मनुष्य		”	”	”	”	४८	”
गर्भज मनुष्य		”	”	”	”	२४	”

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क, सौधर्म और ईशान देवलोकमें अवस्थान-काल उत्कृष्ट अड़तालीस मुहूर्त, सनत्कुमारमें अठारह रात्रि-दिवस और चालीस मुहूर्त, माहेन्द्रमें चौबीस रात्रि-

दिवस और वीस मुहूर्त, ब्रह्मलोकमें पैंतालीस रात्रिदिवस, लांतक में नव्वे रात्रिदिवस, महाशुक्रमें एक सो साठ रात्रिदिवस, सहस्रार और प्राणतमें संख्येय मास, आरण और अच्युत्में संख्येय वर्ष, ग्रेवेयक, विजय, वैजयन्त, जयंत और अपराजितमें असंख्येय हजार वर्ष तथा सर्वार्थसिद्धमें पल्योपमके संख्येय भागका अवस्थान काल है। ये सर्व जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिकाके असंख्येय भाग-पर्यन्त घटते और बढ़ते है।

सिद्ध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आठ समय पर्यन्त बढ़ते हैं। इनका जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छः मासका अवस्थानकाल हैं।

(प्रश्नोत्तर नं० १६१-१६९)

(१६८) सब जीव न [1]सोपचय है, न [2]सापचय है, न [3]सोपचयसापचय हैं परन्तु [4]निरुपचय और [5]निरपचय भी हैं।

एकेन्द्रिय जीव सोपचय और सापचय है। शेष अन्य जीव चारों पदोंके द्वारा विभाजित करने चाहिये। सिद्ध सोपचय, निरुपचय और निरपचय हैं। सापचय और सोपचयसापचय नहीं हैं।

सर्वकाल पर्यन्त जीव अवस्थित हैं।

नैरयिक जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिकाके

१—वृद्धि सहित—पहले जितने जीव हैं उतने बने रहे और नवीन जीवोंकी उत्पत्तिसे संख्या वढ़ जाना। २—हानिसहित—स्थित जीवोंमेंसे कितने ही जीवोंकी मृत्युसे संख्या घटना। ३—वृद्धि और हानि सहित—उत्पाद और मरणसे घटना-वढ़ना। ४-५—न बढना और न घटना, सदा अवस्थित रहना।

असंख्येय भाग-पर्यन्त सोपचय हैं। इसी काल परिमाणके अनुसार सापचय, सोपचयसापचयके लिये जानना चाहिये। जघन्य एक समय व उत्कृष्ट बारह मुहूर्त-पर्यन्त ये निरुपचय और निरपचय हैं।

सर्व एकेन्द्रिय जीव सर्वकाल पर्यन्त सोपचय व सापचय हैं। शेष सर्व जीव जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिकाके असंख्येय भाग-पर्यन्त सोपचय, सापचय, सोपचयसापचय, निरुपचय और निरपचय भी हैं।

सिद्ध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आठ समय तक सोपचय हैं। जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छः मास-पर्यन्त निरुपचय और निरपचय हैं।

पंचम शतक

नवम तथा दशम उद्देशक

नवम उद्देशक

नवम उद्देशकमें वर्णित विषय

[राजगृह क्या कहा जाय? दिनमें प्रकाश और रात्रिमें अंधकारके कारण, किन २ जीवोंको प्रकाश प्राप्त है और किन २ जीवोंको अंधकार, समयका माप कहां है? रात्रिदिवस और पार्श्वपत्य श्रमणोंके प्रश्न। देवलोकोंकी संख्या। प्रश्नोत्तर संख्या १७]

(प्रश्नोत्तर नं० १७०-१७१)

(१६९) राजगृह नगर पृथ्वी, जल यावत् वनस्पति, सचित्त, अचित्त, और सचित्ताचित्त द्रव्योंका पिंड, [1]कूट और शैल आदि भी कहा जा सकता है। क्योंकि पृथ्वी आदि जीव भी, अजीव भी तथा जीव-अजीव भी हैं।

(प्रश्नोत्तर नं० १७२-१७९)

(१७०) दिनमें प्रकाश और रात्रिमें अंधकार होता है। दिनमें शुभ पुद्गल होते हैं जिनका परिणाम शुभ होता है, रात्रिमें अशुभ पुद्गल होते हैं जिनका परिणाम अशुभ होता है।

१—पंचम शतकके सातवें उद्देशकमें कूट, शैल शिखर आदि पंचेन्द्रिय-तिर्यंचोंके परिग्रहके कारणभूत जो पदार्थ गिनाये गये हैं वे यहां गिनाने चाहिये।

नैरयिकोंको प्रकाश नहीं परन्तु अंधकार है। क्योंकि नर्कों में अशुभ पुद्गल हैं, जिनका परिणाम अशुभ है।

असुरकुमारोंको प्रकाश है; क्योंकि उनके आवासोंमें शुभ पुद्गल हैं जिनका परिणाम शुभ है। इसीप्रकार स्तनिकुमारों तक जानना चाहिये।

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों तक इसीप्रकार जानना चाहिए।

नैरयिकोंकी तरह पृथ्वीकायिकसे लेकर त्रीन्द्रिय-पर्यन्त जीवोंके लिये भी जानना चाहिये।

चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक व मनुष्योंको प्रकाश और अंधकार है; क्योंकि यहां (मनुष्य-लोकमें) शुभ तथा अशुभ पुद्गल होते हैं। शुभ-अशुभ पुद्गलोंका परिणाम प्रकाश और अंधकार है।

(प्रश्नोत्तर नं० १८०-१८३)

(१७१) नैरयिकोंको समय, आवलिका, उत्सर्पिणी, और अवसर्पिणीका ज्ञान नहीं है; क्योंकि समय आदिका यह मान मनुष्यलोकमें हैं। अतः मनुष्यलोकमें ही समयका प्रमाण है। यहां ही इसप्रकारका समय-ज्ञान होता है।

यही बात पंचेन्द्रिय तिर्यंच तक जाननी चाहिए।

मनुष्योंको समयका ज्ञान है; क्योंकि मनुष्यलोकमें समयादिका मान और प्रमाण है।

नैरयिकोंकी तरह ही वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों के लिये जानना चाहिये।

*असंख्यलोक और रात्रिदिवस

(प्रश्नोत्तर नं० १८८-१६५)

(१८२) [1]असंख्य लोकमें [2]अनन्त रात्रि दिवस हुए, होते हैं व होंगे। विगत हुए, विगत होते हैं, विगत होंगे। [3]परित्त—नियत परिमाणवाले रात्रि-दिवस हुए, होते हैं व होंगे, विगत हुए, विगत होते हैं और विगत होंगे। क्योंकि लोक शाश्वत, अनादि और

---

* पार्श्वपत्य स्थविरों द्वारा पूछा गया प्रश्न तथा श्रमण भगवान महावीर-द्वारा किया गया समाधान।

१—असंख्येय प्रदेशोंकी अपेक्षा। २—'अणता राइन्दिय' त्ति, अनन्त रात्रिदिवस हुए, होते हैं और होंगे? इस प्रश्नको पूछते हुए स्थविरोंके मनमें यह कुतूहल होता है कि असंख्य लोकमें अनन्त रात्रिदिवस कैसे संभव हो सकते हैं? क्योंकि लोकरूप आधार असंख्य होनेसे लघु है और रात्रि-दिवस रूपी आधेय अनन्त होनेसे विशाल है। अतः लघु आधारमें विशाल आधेय कैसे रह सकता है?

३—'परित्ता राइन्दिय' त्ति, परित्त—मर्यादित—सीमित—नियत संख्यायुक्त रात्रिदिवस। यहां यह शंका होती है कि एक ओर तो अनन्त रात्रिदिवस कहा जा रहा है और दूसरी ओर परित्त। यह तो परस्पर विरोधी बात है। अनन्त है तो सीमित कैसे और सीमित है तो अनन्त कैसे? इसका स्पष्टीकरण अनन्त जीवघन और परित्त जीवघनके द्वारा किया गया है। जिसप्रकार एक कमरेमें हजारो दीपकोंकी प्रभा समाविष्ट हो सकती है उसीप्रकार असंख्येय प्रदेशरूप लोकमें अनन्त जीव समुत्पन्न होते और मरते रहते हैं। एक समयमें अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं तथा मरते हैं। वह समय साधारण—अनन्तकायी जीवोंकी अपेक्षासे अनन्त जीवोंमें तथा प्रत्येक शरीरवाले जीवोंकी अपेक्षासे सीमित जीवोंमें विद्यमान है। इस दृष्टिसे काल अनन्त और परित्त भी कहा जाता है। इसीलिये असंख्य लोकमें रात्रिदिवस अनन्त भी हैं और परित्त भी।

अनन्त है। यह चारों ओरसे अलोकसे घिरा हुआ है। इसका आकार नीचेमें पल्यंककी सदृश विस्तीर्ण, मध्यमें उत्तम वज्रकी सदृश संकीर्ण और ऊपरमें—खड़े मृदंगके आकारके सदृश विशाल है। ऐसे लोकमें अनन्त जीवघन तथा परित्त—मर्यादित, जीवघन उत्पन्न हो हो कर मरते रहते हैं। इस दृष्टिसे लोक भूत, उत्पन्न, विगत और परिणत है। लोक अजीवादि पदार्थों-द्वारा पहचाना जाता है तथा जाना जाता है। जो लोकित हो—जाना जाय, वह लोक कहा जाता है। असंख्य लोकोमें भी यही वात जाननी चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० १८६)

(१७३) चार प्रकारके देवलोक हैं—भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषिक और वैमानिक। इनमें दश प्रकारके भवनवासी, आठ प्रकारके वाणव्यन्तर, पांच प्रकारके ज्योतिषिक और दो प्रकारके वैमानिक देव हैं।

दशम उद्देशक

दशम उद्देशक में वर्णित विषय

[चन्द्र—पंचम शतक प्रथम उद्देशक। प्रश्नोत्तर संख्या १]

(प्रश्नोत्तर नं० १८७)

(१७४) इसी पंचम शतकके प्रथम उद्देशककी तरह ही यह उद्देशक जानना चाहिये। विशेषान्तर यह है कि यहां सूर्यके स्थान पर चन्द्र कहना चाहिये।

षष्ठम शतक

प्रथम उद्देशक

प्रथम उद्देशकमें वर्णित विषय

[महावेदनायुक्त महानिर्जरायुक्त है अथवा महानिर्जरायुक्त महावेदनायुक्त है ?—उदाहरण सहित विवेचन, जीव और करण—चउवीस दंडकीय जीव, महावेदना-महानिर्जरा, महावेदना-अल्पनिर्जरा, अल्पवेदना-महानिर्जरा, अल्पवेदना और अल्पनिर्जरायुक्त जीवोंके उदाहरण। प्रश्नोत्तर संख्या १३]

वेदना और निर्जरा

(प्रश्नोत्तर नं० १-४)

(१७५) जो महावेदनायुक्त है वह महानिर्जरायुक्त है और जो महानिर्जरायुक्त है वह महावेदनायुक्त है। महावेदनायुक्त और अल्पवेदनायुक्त जीवोंमें वह जीव श्रेष्ठ है जो प्रशस्त निर्जरायुक्त है।

छट्ठी और सातवीं नर्कभूमिके नैरयिक महावेदनायुक्त हैं; फिर भी श्रमण-निर्ग्रन्थोंकी अपेक्षा वे महानिर्जरायुक्त नहीं हैं, क्योंकि प्रशस्तताका अन्तर है। जिसप्रकार कोई दो वस्त्र है। इनमें एक कर्दम--कीचड़के रंगमें रंगा हुआ है और दूसरा खंजन रंगमें रंगा हुआ है। कीचड़से रंगा हुआ वस्त्र धोनेमें अत्यन्त कठिन, लगे हुए दागोंको उतारनेमें कठिन तथा चमकदार व वेलबूटे योग्य बनानेमें कठिन होता है। खंजन रंगमें रंगा हुआ

वस्त्र धोनेमें सरल, राग--धब्बे उतारनेमें सरल तथा चमकदार व बेलबूटेके योग्य बनानेमें सरल होता है। उसीप्रकार नैरयिकोंके पाप-कर्म प्रगाढ़, चिक्कण, श्लिष्ट और निकाचित हैं अतः वे महा-वेदनायुक्त होने पर भी महानिर्जरायुक्त तथा महापर्यवसानयुक्त नहीं हैं। अथवा जैसे कोई पुरुष महान् गर्जन करते हुये निरन्तर एरण पर चोट करता है परन्तु वह एरणके स्थूल पुद्गलोंको परि-शाटित करनेमें—झाड़नेमें, समर्थ नहीं होता उसीप्रकार नैरयिक भी महावेदना अनुभव करनेपर भी महानिर्जरा नहीं कर सकते।

खंजनके रंगे हुए वस्त्रके सदृश साधुओंके—श्रमण-निर्ग्रन्थों के स्थूलतर स्कन्धरूपकर्म मंद विपाकवाले, सत्तारहित और विपरिणामवाले है अतः वे शीघ्र ही विनष्ट हो जाते हैं और अल्प वेदना भोगते हुए भी वे महानिर्जरावाले तथा महा पर्यवसानवाले होते हैं। दूसरे रूपमें जिसप्रकार घासकी सूखी पूली धधकती हुई अग्निमें फेंकने पर शीघ्र ही जल जाती है या तप्त लोहेके गोले पर पानीका बिन्दू डाला जाय तो वह तत्क्षण विनष्ट हो जाता है उसीप्रकार श्रमण-निर्ग्रन्थोंके कर्म भी अल्पवेदना होने पर भी शीघ्र निर्जीर्ण हो जाते हैं।

जीव और करण

(प्रश्नोत्तर नं० ५-११)

(१७६) [1]करण चार प्रकारके हैं—मनकरण, वचनकरण, कायकरण और कर्मकरण।

---

१ – जीव अपने जिस निमित्तभूत वीर्य-द्वारा सुख-दुखात्मक वेदनाका वेदन करता है उसे करण कहते हैं।

नैरयिकों व सर्व पंचेन्द्रिय जीवोंके उपर्युक्त चार प्रकारके करण होते हैं। एकेन्द्रिय जीवोंके दो—कायकरण और कर्म-करण। विकलेन्द्रिय जीवोंके तीन—वचन, काय और कर्म।

नैरयिक करणसे अशातावेदना[1]—दुखःद कष्ट, वेदन करते है परन्तु अकरणसे नहीं। क्योंकि नैरयिकोंके चारों प्रकारके करण अशुभ हैं। अशुभ करण होनेसे आशातावेदनाका अनुभव करते हैं।

असुरकुमार करण-द्वारा सुखरूप वेदनाका अनुभव करते हैं परन्तु अकरण द्वारा नहीं। इनके करण शुभ है अतः सुखरूप वेदना अनुभव करते है। इसीप्रकार स्तनितकुमार तक समझना चाहिए।

पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीव तथा औदारिक शरीर-वाले सर्व जीव विविध रूपसे कभी दुखरूप और कभी सुखरूप वेदना अनुभव करते है। क्योंकि इनके शुभाशुभ करण हैं। शुभकरण-द्वारा सर्व देवता सुखरूप वेदना अनुभव करते हैं।

वेदना और निर्जराका साहचर्य

(प्रश्नोत्तर नं० १२-१३)

(१७७) कितने ही जीव महावेदनायुक्त और महानिर्जरायुक्त, कितने ही महावेदनायुक्त और अल्पनिर्जरायुक्त, कितने ही

१—जैनदर्शनमें वेदना शब्द अनुभूति रूपमें प्रयोग हुआ है। वह अनुभूति चाहे सुखरूप हो या दुखरूप। सुखरूप होने पर सुख-वेदना, और दुखरूप होने पर दुख-वेदना कही जाती है। वेदनाका प्रचलित अर्थ पीड़ा यहां नहीं होता।

अल्पवेदनायुक्त और महानिर्जरायुक्त और कितने ही अल्प-वेदनायुक्त और अल्पनिर्जरायुक्त है।

प्रतिमाधारी साधु महावेदनायुक्त और महानिर्जरायुक्त हैं। छट्ठी और सातवीं पृथ्वीमें रहनेवाले नैरयिक महावेदनायुक्त और अल्पनिर्जरायुक्त हैं। शैलेशी अनगार अल्पवेदनायुक्त और महानिर्जरायुक्त हैं। अनुत्तरोपपातिक देव अल्पवेदना-युक्त और अल्पनिर्जरायुक्त हैं।

षष्ठम शतक

द्वितीय व तृतीय उद्देशक

द्वितीय उद्देशक

द्वितीय उद्देशक में वर्णित विषय

[प्रज्ञापनासूत्र—आहार उद्देशक । प्रश्नोत्तर सं० १]

(प्रश्नोत्तर नं० १४)

(१७६) जीवोंके आहारके संबंधमें प्रज्ञापना सूत्रका [1]आहार-उद्देशक जानना चाहिये ।

तृतीय उद्देशक

तृतीय उद्देशकमें वर्णित विषय

[महाकर्म और अल्पकर्म—वस्त्रोदाहरण, जीव व वस्त्रके साथ पुद्गलों का चय-उपचय, वस्त्र और जीव सादि हैं या अनन्त—विभाजनपूर्वक विचार, अष्ट कर्म और उनकी स्थिति, कर्मबंधक कौन? स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक, नपुसकवेद और अवेदक वेदकोंका अल्पत्व-बहुत्व । प्रश्नोत्तर सं० ३३]

महाकर्म अल्पकर्म

(प्रश्नोत्तर नं० १५-१८)

(१७८) यह सुनिश्चित है कि महाकर्मयुक्त, महाक्रियायुक्त, महाआश्रवयुक्त और महावेदनायुक्त जीवको सर्व दिशाओंसे—

१—आहार उद्देशक प्रज्ञापनासूत्रके २८ वें आहार पदमें प्रथम है । इसमें सर्व जीवोंकी आहार-संबंधी विविध बातें विस्तारके साथ कही गई हैं ।

सब ओरसे, सर्व प्रकारके पुद्गलोंका सदैव निरन्तर बंध, चय और उपचय होता रहता है। परिणामतः उसकी आत्मा निरन्तर कद्रूप, दुष्वर्ण, दुर्गंध, दुषूरस, दुःस्पर्श रूपमें, अनिष्ट, अकान्त, अमनोज्ञ, असहनीय, अनभिप्सित और अनभिधेय स्थितिमें तथा निम्न, अनुन्नत, दुखरूप और असुखरूप अवस्थामे बार २ परिणत होती रहती है।

जिसप्रकार नवीन और उपयोगमें नहीं आया हुआ या धुला हुआ अथवा जुलाहेके करघेसे अभी-अभी उतरा हुआ वस्त्र जब उपयोगमें लाया जाता है तब क्रमशः उसके चारों ओर पुद्गल आबद्ध तथा चय-उपचय होने लगते हैं। कालान्तरमें वह वस्त्र मसोतेकी तरह मेला व दुर्गंधपूर्ण हो जाता है। उसीप्रकार महाकर्मयुक्त, महाश्रवयुक्त जीवकी भी उपर्युक्त स्थिति हो जाती है।

यह बात सुनिश्चित है कि अल्पआश्रवयुक्त, अल्पकर्मयुक्त, अल्पक्रियायुक्त और अल्पवेदनायुक्त जीवके कर्म-पुद्गल सदैव-निरन्तर सब ओरसे छेदित और भेदित होते रहते है। वे विध्वंसित होते हैं और सर्वथा विनष्ट भी हो जाते है। परिणामतः उसकी आत्मा निरन्तर सुरूप आदि गुणोंमें परिवर्तित होती जाती है (यहाँ महाकर्मयुक्तमे वर्णित सर्व अप्रशस्त गुणोंको प्रशस्त जानना चाहिये)।

जिसप्रकार मेला और धूलभरा वस्त्र क्रमशः शुद्ध होता हो तथा शुद्ध पानीसे धोया जाता हो तो उससे आवद्ध पुद्गल सब ओरसे कटते जाते हैं और अन्तमें वह वस्त्र सर्वथा निर्मल हो

जाता है उसीप्रकार अल्पक्रियायुक्त जीवकी आत्मा भी कर्म-रजसे विमुक्त हो निर्मल हो जाती है।

पुद्गलोपचय और कर्म

(प्रश्नोत्तर नं० १९-२१)

(१७९) वस्त्रको पुद्गलोंका उपचय—मेल लगना पर-प्रयोग—दूसरोंके द्वारा भी होता है और स्वाभाविक भी। जीवोंको कर्म-पुद्गलोंका उपचय प्रयोगसे होता है किन्तु स्वाभाविक नहीं। जीवोंके तीन प्रकारके प्रयोग हैं—मन-प्रयोग, वचन-प्रयोग और कायप्रयोग। इन तीन प्रकारके प्रयोगों-द्वारा ही जीवोंको कर्मोपचय होता है। सर्व पंचेन्द्रिय जीवोंके तीन—मन-प्रयोग, वचन-प्रयोग और काय-प्रयोग, पृथ्वीकायिक आदि एकन्द्रिय जीवोंके एक—कायप्रयोग और विकलेन्द्रिय जीवोंके दो—वचनप्रयोग और कायप्रयोग होते हैं।

कर्मोपचय सादि या अनन्त ?

(प्रश्नोत्तर नं० २२-२४)

(१८०) वस्त्रको पुद्गलोपचय—लगा हुआ मेल, सादि तथा सान्त है परन्तु सादि अनन्त, अनादि सांत और अनादि अनन्त नहीं, वस्त्रकी तरह जीवोंके कर्मोपचयके संबंधमें निम्न भंग जानने चाहिये :—

(१) कितने ही जीवोंका कर्मोपचय सादि व सान्त, (२) कितने ही जीवोंका अनादि व सान्त, और (३) कितने ही जीवोका अनादि अनन्त है।

जीवोंको कर्मोपचय सादि तथा अनन्त नहीं होता।

जीव सादि या सान्त ?

(प्रश्नोत्तर नं० २५-२७)

(१८१) वस्त्र सादि और 'सान्त है परन्तु सादि-अनन्त, अनादि-सांत और अनादि-अनन्त नहीं है।

जीव सादिसान्त, अनादिसान्त और अनादिअनन्त है परन्तु सादिअनन्त नहीं। नैरयिक, तिर्यंचयोनिक, मनुष्य और देव गति-अगतिकी अपेक्षा से सादिसान्त हैं। सिद्ध-गतिकी अपेक्षासे सिद्ध सादिअनन्त, भवसिद्धिक लब्धिकी अपेक्षासे अनादिसान्त और अभवसिद्धिक संसारकी अपेक्षासे अनादिअनन्त हैं।

अष्टकर्म और उनकी स्थिति

(प्रश्नोत्तर नं २८-२९)

(१८२)आठ कर्म-प्रकृतियां है—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय।

ज्ञानावरणीयकर्मकी बंध-स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीस सागरोपम कोटिकोट्य व तीन हजार वर्ष [1]अबाधाकाल है। उस अबाधाकालसे कर्म-स्थिति व [2]कर्म-निषेक कम होता है।

१—कर्म बंध हुए और पश्चात् उदयमें आये। बंध और उदयका अन्तर्काल अबाधकाल है, जबतक अबाधाकाल रहता है तबतक एक भी कर्मदलिक अनुभवमें नहीं आ सकता।

२—कर्म-निषेक—उदययोग्य कर्मदलिकोंको को कर्मनिषेक कहा गया है। जिस जिस कर्मका जितना-जितना अबाधाकाल है उतना कम करनेके पश्चात् शेष रहे हुए कर्म—कर्मस्थिति-कालके अन्तिम समयको कर्म-निषेक कहा जाता है।

इसीप्रकार दर्शनावरणीयकर्मके सम्बन्धमें जानना चाहिये। वेदनीयकर्मकी जघन्य स्थिति दो समय और उत्कृष्ट ज्ञानावरणीय कर्मकी तरह है। मोहनीयकर्मकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट ७० कोटिकोट्य सागरोपम व सात हजार वर्ष अवाधाकाल है। आयुष्यकर्मकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट—कर्मनिषेक तेतीस सागरोपम व कोटिपूर्वका तृतीय भाग अधिक है। नाम व गोत्रकर्मकी जघन्य स्थिति आठ अन्तर् मुहूर्त और उत्कृष्ट बीस कोटिकोट्य सागरोपस व दो हजार वर्ष आवाधाकाल है। अन्तरायकर्मकी जघन्य स्थिति अन्तमुंहूर्त और उत्कृष्ट तीस कोटिकोट्य सागरोपम व तीन हजार वर्ष अवाधाकाल है।

कर्मबन्धक

(प्रश्नोत्तर नं० ३०-४६)

(१८३) ज्ञानावरणीयकर्म-बंध स्त्री, पुरुष और नपुंसक तीनों ही करते हैं परन्तु जो स्त्री पुरुष और नपुंसक नहीं हैं; ऐसे [1]अवेदी जीव कदाचित् बंध करते हैं और कदाचित् नहीं।

आयुष्यकर्मको छोड़कर शेष कर्म-प्रकृतियोंके लिये भी इसीप्रकार समझना चाहिये।

आयुष्य-कर्मका बंध तीनों ही वेदवाले कदाचित् करते है और कदाचित् नहीं करते। अवेदी आयुष्यकर्मका बंध नहीं करते हैं।

ज्ञानावरणीयकर्मका बंधन संयत कदाचित् करते हैं और कदाचित् नहीं। असंयत और संयतासंयत ज्ञानावरणीय कर्मका

१—जो जीव शरीरसे कदाचित् स्त्री, पुरुष या नपुसक हो परन्तु स्त्री, पुरुष या नपुंसकोंको होनेवाले विकारोंसे (वेद) रहित हो उसे अवेदी कहते हैं।

इसप्रकार आयुष्यको छोड़कर सातों कर्म-प्रकृतियोंके लिये जानना चाहिये। संयत, असंयत और संयतासंयत आयुष्य-कर्मका कदाचित् बंधन करते है और कदाचित् नहीं। सिद्ध आयुष्य-कर्म नहीं बांधते हैं।

सम्यग्दृष्टि ज्ञानावरणीयकर्म कदाचित् बांधते है और कदाचित् नहीं। मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हैं।

इसीप्रकार आयुष्यको छोड़कर शेष कर्म-प्रकृतियोंके बांधनेके लिये समझना चाहिये। आयुष्यकर्मका सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि कदाचित् बंधन करते हैं और कदाचित् नहीं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं बांधते है। (सम्यग्मिथ्यादृष्टिकी स्थितिमें)।

संज्ञी ज्ञानावरणीयकर्मका [1]कदाचित् बंधन करते हैं और कदाचित् नहीं। असंज्ञी बंधन करते है परन्तु सिद्ध जीव नहीं बांधते। इसीप्रकार आयुष्य और वेदनीयको छोड़कर शेष छः कर्मप्रकृतियोंके लिये जानना चाहिये।

वेदनीयकर्म संज्ञी व असंज्ञी बांधते है परन्तु नो संज्ञी व नो असंज्ञी कदाचित् नहीं भी। आयुष्यकर्म संज्ञी व असंज्ञी कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं परन्तु सिद्ध जीव नहीं बांधते हैं।

ज्ञानावरणीयकर्म भवसिद्धिक कदाचित् बांधते है और कदाचित् नहीं। अभवसिद्धिक बांधते है और नो भवसिद्धिक व नोअभवसिद्धिक—सिद्ध जीव नहीं बांधते है।

१—कदाचित् शब्द प्रयोग वीतराग और सराग की अपेक्षामें किया गया है। यदि: मनःपर्याप्तियुक्त संज्ञी जीव वीतराग हो तो ज्ञानावरणीय कर्म नहीं बांधता है और सराग हो तो बांधता है।

इसीप्रकार आयुष्यके अतिरिक्त शेष कर्म-प्रकृतियोंके लिये जानना चाहिये।

आयुष्य-कर्म भवसिद्धिक व अभवसिद्धिक कदाचित् बाधते हैं और कदाचित् नहीं। नोभवसिद्धिक व नोअभवसिद्धिक सिद्ध जीव नहीं बाधते है।

चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी, ये तीनों ही कदाचित् ज्ञानावरणीय कर्म बाधते हैं और कदाचित् नहीं। केवल-दर्शनी नहीं बांधते है।

इसीप्रकार वेदनीयके अतिरिक्त सर्व कर्मप्रकृतियों के लिये जानना चाहिये।

वेदनीय-कर्म उपर्युक्त तीनों ही बाधते है। केवलदर्शनी कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं।

पर्याप्त जीव कदाचित् ज्ञानावरणीयकर्म बांधते है और कदाचित नहीं भी। अपर्याप्त जीव बांधते है व नोपर्याप्त तथा नो अपर्याप्त जीव अर्थात् सिद्धजीव नहीं बांधते है।

इसीप्रकार आयुष्यको छोड़कर शेष कर्म-प्रकृतियोंके लिये जानना चाहिये। आयुष्यकर्म पर्याप्त व अपर्याप्त जीव कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते हैं। नो पर्याप्त व नो अपर्याप्त—सिद्ध जीव आयुष्यकर्म नहीं बांधते है।

ज्ञानावरणीयकर्म भाषक व अभाषक दोनों ही कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं। वेदनीयकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंके लिये इसीप्रकार जानना चाहिये। वेदनीयकर्म भाषक बांधते हैं और अभाषक कदाचित् बांधते है और कदाचित् नहीं।

परित्त (अल्प संसारी) जीव कदाचित् ज्ञानावरणीय-कर्म

बांधते हैं और कदाचित् नहीं । अपरित्त जीव (अनन्त संसारी) बांधते है तथा नोपरित्त तथा नोअपरित्त अर्थात् सिद्ध जीव नहीं बांधते है।

इसीप्रकार आयुष्यको छोड़कर शेप कर्म-प्रकृतियोंके लिये जानना चाहिये। परित्त तथा अपरित्त दोनों ही कदाचित् आयुष्यकर्म बांधते हैं और कदाचित् नहीं। नोपरित्त तथा नोअपरित्त अर्थात् सिद्ध जीव नहीं बांधते हैं।

मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी तथा मनःपर्ययज्ञानी कदाचित् ज्ञानावाणीय कर्म बांधते हैं और कदाचित् नहीं। केवलज्ञानी नहीं बाधते हैं। इसीप्रकार वेदनीयको छोड़कर शेप कर्मोंके लिये समझना चाहिये। वेदनीय-कर्म चारों ज्ञान-वाले बाधते हैं और केवलज्ञानी कदाचित् बाधते हैं और कदाचित् नहीं बाधते हैं।

मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी तथा विभंगज्ञानी आयुष्यकर्मको छोड़कर शेप ज्ञानावरणादि कर्म-प्रकृतियोंको बांधते हैं तथा आयुष्यको कदाचित् बांधते है और कदाचित् नहीं।

मनयोगी, वचनयोगी काययोगी और अयोगी इनमें पूर्वके तीन कदाचित् ज्ञानावरणीयकर्म बांधते हैं और कदाचित् नहीं। अयोगी नहीं बांधते हैं। वेदनीयकर्म तीनों ही बांधते हैं और अयोगी नहीं बांधते है।

साकार उपयोगी और अनाकार उपयोगी कदाचित् आठों कर्म-प्रकृतियोंको बांधते हैं और कदाचित् नहीं।

आहारक जीव और अनाहारक जीव वेदनीय और आयुष्यको छोड़कर शेष कर्म-प्रकृतियोंको कदाचित् बांधते है

और कदाचित् नहीं। वेदनीय-कर्म आहारक जीव बांधते हैं तथा अनाहारक जीव कदाचित् बांधते है और कदाचित् नही बांधते है। आयुष्य-कर्मको अहारक जीव कदाचित् बांधते है कदाचित् नही। अनाहारक जीव नहीं बाधते है।

सूक्ष्मजीव, बादरजीव, नोसूक्ष्म-नोबादर जीवोंमें [1]सूक्ष्मजीव आयुष्यकर्म छोड़कर शेष ज्ञानावरणादि सातों कर्म-प्रकृतियों को बांधते हैं। बादर जीव कदाचित् बांधने है और कदाचित् नही बांधते है। नोसूक्ष्म और नोबादर—सिद्ध जीव, नहीं बाँधते है।

आयुष्यकर्मको सूक्ष्म व बादर दोनों कदाचित् बाधते है कदाचित् नहीं बाधते हैं। नोसूक्ष्म-नोबादर अर्थात् सिद्ध नही बांधते हैं।

चरम जीव तथा अचरम जीव दोनों ही आठों कर्म-प्रकृतियों को बांधते हैं।

वेदकोंका अल्पत्वबहुत्व

(प्रश्नोत्तर नं० ४७)

(१८४) स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक, नपुंसकवेदन और अवेदक जीवोंमें सबसे कम पुरुषवेदक जीव हैं, इनसे संख्येयगुणित स्त्रीवेदक जीव हैं। स्त्रीवेदक जीवोंसे अवेदक जीव अनन्त-गुणित है और इनसे नपुंसक वेदक जीव अनन्तगुणित हैं।

[1]उपर्युक्त जीवोंमें सबसे अल्प अचरम जीव हैं और चरम जीव अचरमसे अनन्त गुणित है।

१—यहां संयतसे लेकर चरम पर्यन्त—चौदह द्वारोंकी अपेक्षासे अल्पत्वबहुत्व जानना चाहिये। (प्रज्ञापना सूत्र—तृतीय अल्पत्वबहुत्व पद।)

षष्ठम शतक

चतुर्थ उद्देशक

चतुर्थ उद्देशक में वर्णित विषय

[जीव कालकी अपेक्षासे सप्रदेश है या अप्रदेश ?—सिद्ध व चउवीस दण्डकीय जीवों की अपेक्षासे विचार, एक जीव तथा अनेक जीवोंकी दृष्टिसे विचार, आहारक, अनाहारक, भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक आदि सप्रदेश और अप्रदेश की दृष्टिसे विचार तथा भंग, जीव प्रत्याख्यानी भी हैं और अप्रत्याख्यानी भी - चउवीस दण्डकीय जीवोंकी अपेक्षासे विवेचन, प्रत्याख्यान सम्बन्धी चार दण्डक। प्रश्नोत्तर संख्या १०]

(प्रश्नोत्तर न ४८-५२)

(१८५) कालकी अपेक्षासे जीव नियमतः [1]सप्रदेश है अप्रदेश नहीं। सिद्ध-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये यही नियम है। अनेक जीवोंकी अपेक्षासे भी इसीप्रकार जानना चाहिये।

नैरयिक कालकी अपेक्षासे कदाचित् सप्रदेश और कदाचित् [2]अप्रदेश हैं। अनेक नैरयिकों की अपेक्षासे उनका इसप्रकार

१—आत्मा अनादि है। अनादित्व की अपेक्षासे जीवकी अनन्त समय की स्थिति है। अतः कालकी अपेक्षासे जीव सप्रदेश नियमपूर्वक है ही। जो एक समय की स्थितियुक्त हो वह कालापेक्षासे अप्रदेश कहा जाता है। एक समयसे अधिक दो-तीन-चार समयकी स्थितिवालेको सप्रदेश कहा जाता है। निम्न गाथा इसी भावको व्यक्त करती है।

" जो जस्स पढम समए वट्टइ भावस्स सो उ अपएसो,
अणम्मि वट्टमाणो कालाएसेण सपएसो।"

१—पूर्वोत्पन्न नैरयिकोंमें जब कोई अन्य नैरयिक उत्पन्न हो तब प्रथम समय समुत्पन्न की अपेक्षासे वह अप्रदेश कहा जाता है। उसके अतिरिक्त अन्य सब नैरयिक सप्रदेश ही हैं।

विभाजन हो सकता है—१ सर्व सप्रदेश, २ अनेक सप्रदेश और एक-आध अप्रदेश, ३ अनेक सप्रदेश और अनेक अप्रदेश।

इसीप्रकार स्तनितकुमार-पर्यन्त जीवोंके लिये जानना चाहिये। पृथ्वीकायिक से वनस्पतिकायिक-पर्यन्त सर्व जीव सप्रदेश भी हैं और अप्रदेश भी। नैरयिकों की तरह ही, द्वीन्द्रिय से सिद्ध-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना चाहिये।

जीव और एकेन्द्रियों को छोड़कर समस्त आहारक जीवोंके तीन भंग तथा अनाहारक जीवोंके छः भंग होते है :—१ अनेक सप्रदेश, २ अनेक अप्रदेश, ३ एक-आध सप्रदेश और एक-आध अप्रदेश, ४ एक-आध सप्रदेश और अनेक अप्रदेश, ५ अनेक सप्रदेश और एक-आध सप्रदेश, ६ अनेक सप्रदेश और अनेक अप्रदेश। सिद्धोंके तीन, भव्य और अभव्य के—सामान्य जीवोंके सदृश, ४ नोभव्य—भव्य भी नहीं, नो अभव्य—अभव्य भी नहीं, जीवोंमें सिद्धोंके तीन भंग, संज्ञियोंमें तीन भंग, असंज्ञियोंमें एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग, नैरयिक, देव व मनुष्योंमें छः भंग, नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी—जीव, मनुष्य और सिद्धोंमें तीन भंग, सलेश्यजीव—सामान्य जीव की तरह, कृष्णलेश्या नीललेश्या और कापोतलेश्या युक्त—आहारक की तरह, तेजोलेश्यायुक्त—जीवादिके तीन भंग परन्तु पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय जीवोंमें छः भंग, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या-युक्त जीवोंके तीन भंग, अलेशी जीवोंमें—जीव व सिद्धोंमे तीन, अलेश्य मनुष्योंमें छः, सम्यग्दृष्टियोंमें जीवादिके तीन, विकलेन्द्रियोंमें छः, मिथ्यादृष्टिमें—एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन, सम्यक्मिथ्यादृष्टियोंमें छः, संयतोंमें—जीवादिक तीन, असं-

यतोंमें—एकेन्द्रियको छोड़कर तीन, संयतासंयतोंमें—जीवादिक तीन, नोसंयत, नोअसंयत, नोसंयतासंयत—जीव व सिद्धोंमें तीन, सकषायीमें—जीवादिक तीन, एकेन्द्रियोंका अभंग, क्रोध-कषायियोंमें—जीव और एकेन्द्रियके छोड़कर तीन, देवोंमें छः, मानकषाय व माया कषायवालोंमें एकेन्द्रिय और जीवको छोड़कर तीन, नैरयिक और देवोंमें छः, लोभकषायवालोंमें—जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन, नैरयिकोंमें छः, अकषा-यियोंमें - जीव, मनुष्य और सिद्धोंमें तीन, औधिक ज्ञान, मति-ज्ञान और श्रुतज्ञानयुक्तमें—जीवादिक तीन, विकलेन्द्रियोंमें छः, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञानमें—जीवादिक तीन औधिक—सामान्य अज्ञान, मतिअज्ञान, और श्रुतअज्ञानमें—एकेन्द्रियको छोड़कर तीन, विभंगज्ञानमें—जीवादिक तीन, सयोगीके सामान्य जीवकी तरह, मनयोगी, वचनयोगी और काययोगी में—जीवादिक तीन परन्तु काययोगी एकेन्द्रिय जीवों का एक भंग, अयोगी अलेशीकी तरह, साकारोपयोगी और निराकारोपयोगी में जीव तथा एकेन्द्रियको छोड़कर तीन, सवेदक—सकषायी की तरह, स्त्रीवेदक पुरुषवेदक और नपुंसक-वेदकोंमें—एकेन्द्रियको छोड़कर जीवादिक तीन, अवेदक—अकषायी की तरह, सशरीरी—सामान्य जीवोंकी तरह, औदा-रिक व वैक्रिय शरीरवालोंमे एकेन्द्रियको छोड़कर तीन, आहारक शरीरमें—जीव व मनुष्यके छः, तैजस और कार्मण शरीरमें—सामान्य जीव की तरह, अशरीरीमें—तीन, आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति और श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिमें—जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन, भाषापर्याप्ति और मनः

पर्याप्तिमें—संज्ञी जीवोंकी तरह, आहार अपर्याप्तिमें—अनाहारक जीवोंकी तरह, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वासमें—जीव और एकेन्द्रियको छोड़कर तीन भंग, मनुष्य, देव और नैरयिकों में छः, तथा भाषा अपर्याप्ति व मन-अपर्याप्तिमें—जीवादिक तीन और नैरयिक, देव व मनुष्यमें छः भंग जानने चाहिये।

गाथा

सप्रदेश, आहारक, भव्य, संज्ञी ,लेश्या, दृष्टि, संयत, कषाय, ज्ञान, योग, उपयोग, वेद, शरीर और पर्याप्तिमें दश द्वार हैं।

प्रत्याख्यान और आयुष्य

(प्रश्नोत्तर न० ५३-५७)

(१८६) जीव [1]प्रत्याख्यानी [2]अप्रत्याख्यानी और [3]प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी भी हैं।

नैरयिक से चतुरिन्द्रिय-पर्यन्त जीव अप्रत्याख्यानी हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी हैं। मनुष्य उपर्युक्त तीनों प्रकारके हैं। वैमानिक-पर्यन्त शेष जीव अप्रत्याख्यानी हैं।

[4]पंचेन्द्रिय जीव तीनों ही प्रकारके प्रत्याख्यानोंको जानते हैं। शेष अन्य जीव नहीं। अनेक जीव प्रत्याख्यान करते

१—विरत २—अविरत ३—किसी अंशमें विरत और किसी अंशमें अविरत अर्थात् देशविरत। ४—पंचेन्द्रिय जीव समनस्क—मनसहित होते हैं यदि सम्यग्दृष्टित्व हो तो वे प्रत्याख्यानादिको जान सकते हैं। पंचेन्द्रिय जीवोंमें-पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक, मनुष्य, देवता व नैरयिक आते हैं। विकलेन्द्रिय और एकेन्द्रिय जीव अमनष्क—मन रहित होनेसे नहीं जानते हैं।

हैं, अनेक जीव प्रत्याख्यान नहीं भी करते है और अनेक जीव प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान करते हैं।

प्रत्याख्यान, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान-द्वारा जीव आयुष्यका बंध करते हैं। वैमानिक जीव भी तीनों ही कारणों द्वारा वैमानिकका आयुष्य बंध करते हैं। शेष अन्य जीव अप्रत्याख्यानसे आयुष्यका बंध करते है।

षष्ठम शतक

पंचम उद्देशक

पंचम उद्देशकमें वर्णित विषय

[तमस्काय-स्वरूप, तमस्कायका आदि स्रोत, तमस्कायका वर्ण आदि— विस्तृत विवेचन, आठ कृष्णराजियोका स्वरूप व विस्तृत विवेचन लोकान्तिक देव और उनके विमान । प्रश्नोत्तर संख्या ४५]

तमस्काय

(प्रश्नोत्तर नं० ५८-७३)

(१८७) पृथ्वी [1]तमस्काय-तमिस्र पुद्गलोंका समूह नहीं है परन्तु पानी तमस्काय है। क्योंकि अनेक पृथ्वीकाय इतने शुभ—श्वेत, होते हैं कि अपनी प्रभासे एक देश—एक भागको, प्रकाशित करते हैं और कुछ ऐसे भी पृथ्वीकाय है जो एकदेशको प्रकाशित तो नहीं करते परन्तु प्रभायुक्त होते है।

जम्बूद्वीप नामक द्वीपके बाहर तिर्यक्‌दिशामें असंख्येय द्वीप-समुद्रोंको समुल्लंघित करनेके पश्चात् अरुणवर द्वीप आता है। उस अरुणवरद्वीपकी बाहरकी वेदिकासे अरुणोदय समुद्रमें ४२ हजार योजन दूर ,अवगाहनके पश्चात् ऊपरितन जलान्त आता है। इस ऊपरितन जलान्तकी एक प्रदेश-श्रेणीसे तमस्काय समुत्थित होता है। वह वहाँसे १७२१ योजन ऊपर जाकर तिर्यक् विस्तृत होता हुआ सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार और माहेन्द्र इन

१—तमिस्र—अंधकारके पुद्गल—अंधकार पुद्गलराशि।

चार कल्पोंको आच्छादित कर ब्रह्मलोकमें रिष्ट नामक विमानके प्रस्तर तक पहुँचा है और वहाँ यह सन्निविष्ट है।

तमस्कायका संस्थान नीचेमें मल्लकमूल—कोड़ीके नीचेके भाग के आकारका और ऊपरमे कुक्कुट-पिंजर जैसा है।

तमस्काय दो प्रकारका है संख्येयविस्तृत और असंख्येय-विस्तृत। संख्येयविस्तृत विष्कंभकी दृष्टिसे संख्येय सहस्र योजन और परिक्षेपसे असंख्येय सहस्र योजन है। असंख्येय-विस्तृत तमस्कायक असंख्येय सहस्र योजन विष्कंभसे और असंख्येय सहस्र योजन परिक्षेपसे है।

आकारकी दृष्टिसे तमस्काय कितना बड़ा है, इस संबंधमें कल्पना की जा सकती है—सर्व द्वीप-समुद्रोंमें यह जम्बूद्वीप बहुत छोटा व आभ्यन्तर है। इसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सो अठाईस योजन है। कोई महान् ऋद्धिसम्पन्न यावत् महानुभाव देव जो "यह चला" कह, तीन ताली बजाने जितने समयमें इक्कीस बार सम्पूर्ण जम्बूद्वीपकी परिक्रमा कर लौट आता है, वह देव यदि अपनी उत्कृष्ट त्वरापूर्ण गतिसे चले तो एक दिन, दो दिन और तीन दिन और अधिकसे अधिक छः मास-पर्यन्त चले तो भी किसी एक तमस्काय तक पहुँच सकता है परन्तु दूसरी तमस्काय तक नहीं पहुँच सकता है। इस उदाहरणसे पता लगसकता है कि तमस्काय कितना बड़ा है।

तमस्कायमें गृह, ग्राम या सन्निवेश नहीं है परन्तु उदार और विशाल मेघ मँडराते रहते है, बनते है तथा बरसते है। यह वर्षा देव, असुर व नाग तीनों ही करते हैं।

तमस्कायमें बादर स्तनित शब्द—गर्जन, ध्वनि और [1]बादर बिजली है जिन्हें तीनों ही प्रकारके देव उत्पन्न करते हैं।

तमस्कायमें बादर पृथ्वीकाय और बादर अग्निकाय नहीं है। विग्रहगतिसमापन्न बादर पृथ्वी और अग्निके जीव हो सकते है।

तमस्कायमें चंद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारे नहीं हैं परन्तु चन्द्रादि ज्योतिषचक्र उसके आसपास है। वहाँ चन्द्र या सूर्यकी प्रभा प्रभारूपमें नहीं है। वहाँ इनकी प्रभा दूषित है, अर्थात् सूर्य-चन्द्रादिकी प्रभा भी तमस्काय रूपमें परिणत हो जाती है।

तमस्कायका वर्ण कृष्ण, कृष्णकान्तियुक्त, घोर, रोमाचित करनेवाला, भयंकर प्रकंपन उत्पन्न करनेवाला और परम कृष्ण है। उस तमस्कायको देखने मात्रसे ही कितने ही देव क्षोभ पाते हैं। कदाचित् कोई देव उसमें प्रवेश करता है तो भयभीत हो शरीर और मनकी त्वरासे शीघ्र ही बाहर निकल आता है।

तम, तमस्काय, अंधकार, महांधकार, लोकाधकार, लोकतमिस्र, देवांधकार, देवतमिस्र, देवारण्य, देवव्यूह, देवपरिघ, देवप्रति-क्षोभ और अरुणोदक समुद्र; तमस्कायके ये तेरह नाम हैं।

तमस्काय पृथ्वीका परिणाम नहीं परन्तु पानी, जीव और पुद्गलोंका परिणाम है। उसमें सर्व प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व पृथ्वीकायमें लेकर त्रसकाय रूपमें अनेक बार तथा अनन्त बार उत्पन्न हुए हुए हैं परन्तु बादर पृथ्वीकायिक और बादर अग्निकायिक रूपमें उत्पन्न नहीं।

१—स्थूल बिजली शब्दसे तेजस्कायिक जीव नहीं समझने चाहिए परन्तु देवोंके प्रभावसे उत्पन्न प्रकाशमय पुद्गलोंको यहाँ बादर बिजली समझनी चाहिए।

कृष्णराजियां

(प्रश्नोत्तर नं० ७७-९२)

(१८८) आठ [1]कृष्णराजियाँ है। ये सनत्कुमार व माहेन्द्रके ऊपर ब्रह्मलोकमें रिष्ट विमानके प्रतर तक फैली हुई है। ये अखाड़ेकी तरह समचतुरस्र—चतुष्कोणवाली है। दो कृष्णराजियां पूर्वमें, दो पश्चिममें, दो दक्षिणमें और दो उत्तरमें हैं। पूर्वाभ्यन्तर कृष्ण-राजि दक्षिणबाह्य कृष्णराजिको, दक्षिणाभ्यन्तर पश्चिमबाह्य कृष्णराजिको, पश्चिमाभ्यन्तर उत्तरबाह्यकृष्णराजिको और उत्तराभ्यन्तर पूर्वबाह्यकृष्णराजिको छुई हुई है। पूर्व व पश्चिम की दो बाह्य कृष्णराजियाँ षड्कोणी, उत्तर और दक्षिणकी त्रिकोणी, पूर्व और पश्चिमकी चतुष्कोणी और उत्तर व दक्षिणकी भी चतुष्कोणी है।

कृष्णराजियोंका आयाम—लंबाई, असंख्येय सहस्र योजन, विष्कंभ--चौड़ाई, संख्येय सहस्र योजन व परिधि असंख्येय सहस्र योजन है। कृष्णराजियाँ कितनी विशाल हैं; इस संबंधमें इस प्रकार कल्पना की जा सकती है :—एक विपल जितने समयमे इक्कीस बार सम्पूर्ण जम्बूद्वीपकी परिक्रमा करके आनेवाला महान् ऋद्धिसम्पन्न देव यदि अपनी शीघ्रतम गतिसे लगातार पन्द्रह दिन तक चलता रहे तो किसी एक कृष्णराजि तक वह पहुँच सकता है और किसी कृष्णराजी तक नहीं।

कृष्णराजियोंमें गृह, आवास, ग्राम या सन्निवेश नहीं है। वहां उदार और विशाल मेंघ मँडराते हैं, बनते है तथा बरसते

१—कृष्णराजि—काले पुद्गलोकी रेखायें।

है। यह वर्षा देव करते हैं असुर या नाग नहीं। कृष्णराजियोंमें वादर स्तनित शब्द—गर्जन और वादर विद्युत् हैं और इनको देवता उत्पन्न करते हैं।

कृष्णराजियोंमें वादर अप्काय, वादर अग्निकाय और वादर वनस्पतिकाय नहीं है। यह बात विग्रहगतिसमापन्न जीवोंको छोडकर शेष जीवोंके संबंधमें जाननी चाहिये। उनमें चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारे नहीं हैं और न सूर्य व चन्द्रका प्रकाश ही है। वर्णकी दृष्टिसे ये तमस्कायके सदृश घोर भयंकर हैं। अतः प्रवेश करने पर देवता शीघ्र ही भयभीत हो निकल आते हैं। कृष्णराजियों के निम्न आठ नाम हैं :—

कृष्णराजि, मेघराजि, मघा, माघवती, वातपरिघा, वातपरिक्षोभा, देवपरिघा, देवपरिक्षोभा।

ये कृष्णराजियाँ पृथ्वी, जीव और पुद्गलोंका परिणाम हैं परन्तु पानीका नहीं। इसमें सर्व भूत, जीव और सत्त्व अनेक अथवा अनन्तवार उत्पन्न हुए हैं परन्तु वादर अप्काय, वादर अग्निकाय और वादर वनस्पति काय रूपमें नहीं।

लोकान्तिक देव

(प्रश्नोत्तर नं० ९३-१०२)

(१८८) आठ कृष्णराजियोंके आठ अवकाशान्तरोंमें निम्न आठ लोकान्तिक विमान हैं :—

१ अर्ची, २ अर्चीमाली, ३ वैरोचन, ४ प्रभंकर, ५ चन्द्राभ, ६ सूर्याभ, ७ शुक्राभ और ८ सुप्रतिष्ठाभ।

इनके मध्यमें रिष्टाभ विमान है। उत्तर और पूर्वके मध्यमें

अर्ची, पूर्वमें अर्चीमाली विमान है। इसीप्रकार क्षेत्रके संबंधमें जानना चाहिये। बहुमध्य भागमें रिष्ट विमान है।

इन आठ लोकान्तिक विमानोंमें आठ जातिके लोकान्तिक देव रहते हैं। वे इसप्रकार है :—१ सारस्वत, २ आदित्य, ३ वह्नि, ४ वरुण, ५ गर्दतोय, ६ तुषित, ७ अव्यावाध, और ८ आग्नेय,। इनके मध्यमें रिष्ट जातीय देव रहते है।

सारस्वत देव अर्ची विमानमें, आदित्यदेव अर्चीमालीमें। इसीक्रमसे शेष देवोंके लिये जानना चाहिये। रिष्टदेव रिष्ट विमानमें रहते हैं।

सारस्वत और आदित्यमें सात देव अधिपति है। प्रत्येकके सो-सो देवोंका परिवार है। अतः सात २ सो देवोंका परिवार सारस्वत और आदित्यमे, वह्नि और वरुणमें चौदह-चौदह देव अधिपति है। प्रत्येक देवके एक हजार देवोंका परिवार है अतः इनमें चौदह २ हजार देव है। गर्दतोय और तुषितमें सात-सात अधिपति और सात २ हजार देव परिवार, अव्यावाध और आग्नेयमें नव अधिपति और नव २ हजार देवोंका परिवार है।

लोकान्तिक विमान वायुप्रतिष्ठित हैं। विमानोंका प्रतिष्ठान विमानोंका बाहुल्य, ऊँचाई और संस्थान आदि जीवाभिगम सूत्रमें वर्णित ब्रह्मलोककी तरह जानना चाहिये। उपर्युक्त देव-लोकोंमें अनन्त वार जीव उत्पन्न हुए हैं परन्तु लोकान्तिक विमानोंमें अनन्त वार उत्पन्न नहीं हुए हैं। लोकान्तिक विमानोंमें देवोंकी स्थिति आठ सागरोपमकी है।

लोकान्त लोकान्तिक विमानोंसे असंख्येय हजार योजन दूर है।

षष्ठम शतक

षष्टम उद्देशक

षष्ठम उद्देशकमें वर्णित विषय

[सात नर्क भूमियां और पांच अनुत्तर विमान, मारणान्तिक समुद्घात और जीव–चउवीस दंडकीय जीवोंकी दृष्टिसे विवेचन । प्रश्नोत्तर संख्या ८]

(प्रश्नोत्तर नं० १०३-१०४)

(१८९) सात पृथ्वियां है—रत्नप्रभा से तमतमःप्रभा आदि ये एक-एकके नीचे है आदि सर्व पूर्ववत् वर्णन जानना चाहिये।

पांच अनुत्तर विमान है विजयसे सर्वार्थसिद्ध-पर्यन्त।

मारणान्तिक समुद्घात और जीव

(प्रश्नोत्तर नं० १०५-११२)

(१९०) जो जीव मारणातिक समुद्घातसे समवहित हो रत्नप्रभाभूमिके तीस लाख निरयावासोंमें उत्पन्न होने योग्य हैं उनमेंसे कितने ही जीव वहां जाकर ही आहार करते है, परिणत करते है और शरीर-निर्माण करते हैं। कितने ही जीव पुनः लौट आते है और आकर पुनः समुद्घात-द्वारा समवहित हो रत्नप्रभाभूमिके आवासोंमें किसी एक आवासमें नैरयिकरूपमें उत्पन्न होते है। पश्चात् आहार करते हैं, परिणत करते है और शरीर-निर्माण करते है। इसीप्रकार सातवी पृथ्वी तक समझना चाहिये।

मारणांतिक समुद्घातसे समवहित जो जीव असुरकुमारोंके चौंसठ लाख आवासोंमेंसे किसी एक आवासमें उत्पन्न होने-योग्य हैं वे वहां जाकर ही आहार करते हैं या नहीं; इस संबंधमें नैरयिकोंकी तरह ही उपर्युक्त सर्व वर्णन जानना चाहिये। इसीप्रकार स्तनितकुमार तक जानना चाहिये।

मारणान्तिक समुद्घातसे समवहित जीव असंख्येय लाख पृथ्वीकायके आवासोंमेंसे किसी एक आवासमें पृथ्वीकायिक रूपमें उत्पन्न होने योग्य है वे मन्दरपर्वतके पूर्वमें लोकान्त तक जाते हैं और लोकान्तको प्राप्त करते हैं। उनमें से कितने ही जीव वहाँ जाते ही आहार करते हैं, परिणत करते है और शरीर-निर्माण करते है। कितने ही पुनः शीघ्र लौट आते हैं और पुनः समुद्घातसे समवहित हो मंदरपर्वतकी पूर्वमें अंगुलके असंख्येय भाग मात्र, संख्येय भाग मात्र, बालाग्र, बालाग्रपृथकत्व लिक्षा, युका, यव, अंगुल यावत् कोटिकोट्य योजन, संख्येय योजन, असंख्येय योजन तथा लोकान्तकतक (एक प्रदेशश्रेणीको छोड़कर) असंख्येय लाख पृथ्वीकायके आवासोंमें पृथ्वीकाय-रूपमें उत्पन्न होते हैं। पश्चात् आहार करते है, परिणत करते है तथा शरीरोंका निर्माण करते हैं। मंदरपर्वतकी पूर्व दिशाके सदृश दक्षिण पश्चिम, उत्तर, और अधोदिशाओंके लिये जानना चाहिये।

पृथ्वीकायिककी तरह सर्व एकेन्द्रिय जीवोंके लिये तथा द्वीन्द्रियसे लेकर अनुत्तरोपपातिक व अनुत्तरविमानोंतक नैरयिकोंके सदृश ही समुद्घातके संबंधमें जानना चाहिये।

षष्ठम शतक

सप्तम उद्देशक

सप्तम उद्देशक में वर्णित विषय

[विविध धान्यों व बीजोंकी योनिभूत रहनेकी स्थिति, कालगणना—गणितकाल और औपमेयिककाल। सुषमसुषमाकालमें भारतवर्ष की स्थिति। प्रश्नोत्तर नं० ७]

(प्रश्नोत्तर न० ११३-११९)

(१६१) यदि शाली, व्रीहि, गेहूं, यव (जौ) ज्वार आदि धान्य कोष्ठ, पल्य—खणु, मंच व मालमें रखे जाकर चारों ओरसे लीप दिये गये हों, सम्यकरूपसे ढक दिये गये हों, राख आदिसे अवलिप्त और मिट्टी आदिसे मुद्रित किये गये हों तो इनकी योनि--अंकुरकी उत्पत्तिमें हेतुभूतशक्ति, जघन्य अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट तीन वर्ष-पर्यन्त बनी रहती है। तदनन्तर योनि म्लान व प्रध्वंस हो जाती है। बीज अबीज हो जाते हैं। उस योनिका नाश हो गया, ऐसा कहा जा सकता है।

कलाय, मसूर, मूग, तिल, उडद, वाल, कूलथी, चवला तुवर-चना, मटर आदि धान्य उपर्युक्त विधिसे रक्षित होने पर इनकी जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पाच वर्ष-पर्यन्त योनि बनी रहती है। शेष पूर्ववत्।

अलसी, कुसंभ, कोद्रव, कांगड़ी, अन्यप्रकारका कोद्रव शण, सरसों आदि उपर्युक्त विधिसे रक्षित होने पर इनकी जघन्य एक मुहूर्त और उत्कृष्ट सात वर्ष पर्यन्त योनि बनी रहती है। शेष पूर्ववत्।

काल गणना

(प्रश्नोत्तर नं० ११६-११८)

(१६२) असंख्येय समयोंके समुदायसे जितना काल होता है उसे आवलिका कहते हैं। संख्येय आवलिकाओंका एक उच्छ्‌वास और एक निःश्वास होता है।

हृष्ट-पुष्ट व्याधिरहित एक जंतुका एक उच्छ्‌वास और एक निःश्वास एक प्राण कहा जाता है। सात प्राणोंका एक स्तोक, सात स्तोकोंका एक लव, ७७ लवोंका एक मुहूर्त और एक मुहूर्तमें ३७७३ उच्छ्‌वास अनन्त ज्ञानियोंने देखे हैं।

तीस मुहूर्तोंका एक रात्रिदिन, पन्द्रह रात्रिदिनोंका एक पक्ष, दो पक्षोंका एक मास, दो मासकी एक ऋृतु, तीन ऋृतुओं का एक अयन, दो अयनका एक वर्ष, पांच वर्षका एक युग, बीस युगके सो वर्ष, दस सो वर्षके एक हजार वर्ष, सो हजार वर्षके एक लाख वर्ष, चौरासी लाख वर्षका पूर्वांग, चौरासी लाख पूर्वांगका एक पूर्व, इसीप्रमाणसे त्रुटितांग, त्रुटित, अडडांग, अडड अववांग, अवव, हूहूआंग, हूहूअ, उत्पलाग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनुपूरांग, अर्थनुपूर, अयुतांग, अयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, नयुताग, नयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग और शीर्षप्रहेलिका है। यहीं तक गणित या गणितका विषय है। पश्चात् उपमाके द्वारा अर्थात् औपमेयिक रूपमें काल जाना जा सकता है परन्तु गणना-द्वारा नहीं।

औपमेयिककाल दो प्रकारका है—पल्योपम और सागरोपम।

किसी सुतीक्ष्ण शस्त्र द्वारा भी जो छेदित या भेदित नहीं हो सकते ऐसे परम अणुओंको सर्वज्ञ सर्व प्रमाणोंका आदिभूत

प्रमाण कहते हैं। अनन्त परमाणुओंके समुदायोंके समागम से एक उच्छ्लक्ष्णश्लक्ष्णिका, श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका, ऊर्ध्वरेणु, त्रसरेणु, रथरेणु, वालाग्र, लिक्षा, यूका, यवमध्य और अंगुल होता है। आठ उच्छ्लक्ष्णश्लक्ष्णिकाके मिलनेसे एक श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका होती है। आठ श्लक्ष्णश्लक्ष्णिकासे एक ऊर्ध्वरेणु, आठ ऊर्ध्वरेणुओंसे एक त्रसरेणु, आठ त्रसरेणुओंसे एक रथरेणु और आठ रथरेणुओंसे देवकुरु और उत्तरकुरुके मनुष्योंका एक वालाग्र होता है। इसीप्रकार देवकुरु और उत्तरकुरुके मनुष्योंके आठ वालाग्रोंसे हरिवर्ष और रम्यकके मनुष्योंका एक वालाग्र, हरिवर्ष और रम्यकके मनुष्योंके आठ वालाग्रोंसे हैमवत व ऐरावतके मनुष्योंका एक वालाग्र, हैमवत और ऐरावतके मनुष्योंके आठ वालाग्रोंसे पूर्व विदेहके मनुष्योंका एक वालाग्र होता है। पूर्व विदेहके मनुष्योंके आठ वालाग्रोंसे एक लिक्षा, आठ लिक्षासे एक यूका, आठ यूकासे एक यवमध्य, आठ यवमध्यसे एक अंगुल बनता है। छः अंगुलका एक पाद, बारह अंगुलकी एक वितस्ति—बेंत, चौबीस अंगुलका एक हाथ,—अड़तालीस अंगुलकी एक कुक्षि, छियानवे अंगुलका एक दंड, धनुष, युग, नालिका, अक्ष या मूसल होता है। दो हजार धनुषका एक कोस होता है, चार कोसका एक योजन होता है।

इस योजन-प्रमाणसे एक योजनके लंबे, एक योजनके चौड़े और एक योजनके गहरे, तीगुनीसे अधिक परिधिवाले पल्यमें देवकुरु-उत्तरकुरुके एक दिनसे सात दिनकी वयवाले बच्चोंके करोड़ों वालाग्र मुंहतक ठूंसठूंस कर भरे जायं। वालाग्र इसतरह भरे जायं कि उन वालाग्रोंको न अग्नि जला सके, न वायु हर सके और न वे सड़ सकें या नष्ट हो सकें। सो-सो वर्षके अनन्तर

उस पल्यमें से एक-एक बालाग्र निकाला जाय। इस क्रमसे जितने समयमें वह पल्य खाली हो, निष्ठित—निर्लेप, अपहृत और विशुद्ध हो, उतने कालमानको पल्योपम कहते है।

दस कोटिकोट्य पल्योपमका एक सागरोपम होता है। चार कोटिकोट्य सागरोपमका एक सुषमसुषमा, तीन कोटिकोट्य सागरोपमका एक सुषमा, दो कोटिकोट्य सागरोपमका एक सुषमादुषमा, एक कोटिकोट्यमें ४२ हजार वर्ष न्यूनका एक दुषमा-सुषमा, इक्कीस हजार वर्षका दुषमा और इक्कीस हजार वर्षका दुषमादुषमाकाल होता है। इन छ: आरोंका एक अवसर्पिणी होता है। पुनः उत्सर्पिणीमें इक्कीस हजार वर्षका दुषमादुषमा, इक्कीस हजार वर्षका दुषमा, ४२ हजार न्यून एक कोटिकोट्य सागरोपमका दुषमासुषमा, दो कोटिकोट्य सागरोपमका एक सुषमादुषमा, तीन कोटिकोट्य सागरोपमका सुषमा और चार कोटिकोट्य सागरोपमका सुषमासुषमाकाल होता है।

इसप्रकार दस कोटिकोट्य सागरोपमका अवसर्पिणी काल और दस कोटिकोट्य सागरोपमका उत्सर्पिणीकाल होता है। इन दोनोंको मिलानेसे २० कोटिकोट्यका एक कालचक्र बनता है।

सुषमसुषमाकालका भारतवर्ष

(प्रश्नोत्तर नं० ११९)

(१९३) सुषमसुषमाकालमें भारतवर्षका भूमि भाग बहुरूप होनेसे रमणीय था।[1] उस समय छः प्रकारके मनुष्य होते थे—पद्मसमान गंधवाले, कस्तूरीसमान गंधवाले, अममत्वी, तेजस्वी, स्वरूपवान्, सहनशील और गंभीर।

१—जीवाभिगम सूत्रमें वर्णित उत्तर कुरुक्षेत्रका वर्णन जानना चाहिये।

षष्ठम शतक

अष्टम उद्देशक

अष्टम उद्देशकमें वर्णित विषय

[रत्नप्रभादि नर्क भूमियों तथा सौधर्मादि कल्पोंके नीचे गृह, गृहापण, सन्निवेशादि नहीं हैं—विस्तृत विवेचन, आयुष्यबंध और उसके प्रकार, लवण-समुद्र और अन्य द्वीप-समुद्रों-संबंधी विचार। प्रश्नोत्तर सख्या २०]

(प्रश्नोत्तर न० १२०-१३३)

(१६४) रत्नप्रभादि सात पृथ्वियोंमें गृह, गृहापण, ग्राम, सन्निवेश आदि नही हैं। वहां उदार और विशाल मेघ मंडराते रहते हैं, बनते हैं और बरसते है। यह वर्षा असुर, नाग और देवता करते है। तीसरी नैरयिक भूमि तक तीनों ही करते है। चौथीसे शेष भूमियोंमें देव ही वर्षा करते हैं असुरकुमार या नागकुमार नहीं। रत्नप्रभादि पृथ्वियोंमें बादर स्तनित शब्द है। ये शब्द तीसरी भूमि-पर्यन्त तीनों ही प्रकारके देव और शेष भूमियों में देवता करते हैं। वहां बादर अग्निकाय नही है। यह निषेध विग्रहगतिसमापन्नक जीवोंको छोड़कर शेष जीवोंके लिये जानना चाहिये। इन भूमियोंमें चन्द्र, सूर्य तारादि नहीं है और न इनका प्रकाश ही है।

सौधर्मकल्प तथा ईशानकल्पके नीचे गृह, गृहापण, ग्राम या सन्निवेश नहीं हैं। वहां उदार और विशाल मेघ मंडराते रहते हैं, बनते है और बरसते हैं। वहां बादर स्तनित शब्द भी हैं। यह वर्षा और स्तनित ध्वनि असुर और देव करते हैं परन्तु नाग नहीं। वहाँ न बादर पृथ्वीकाय और न बादर तेजसकाय हैं पर, यह निषेध विग्रहगतिसमापन्नक जीवोंको छोड़कर शेष जीवोंके लिये जानना चाहिये। वहा चन्द्र, सूर्य ग्रह, नक्षत्र और तारों आदिका प्रकाश नहीं है।

प्रस्तुत वर्णनके सदृश ही सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोकके लिये जानना चाहिये। अन्तर यह है कि वहां मात्र देव ही मेघ आदिकी विकुर्वणा करते है। इसीप्रकार ब्रह्मलोक तथा उससे ऊपरके अच्युतादि देवलोकोंके लिये जानना चाहिये इन सर्व-स्थानोंमें बादर अपकाय, बादर अग्निकाय और बादर वनस्पति-काय नहीं है परन्तु यह निषेध विग्रहगतिसमापन्नक जीवोंको छोड़कर शेष जीवोंके संबंधमें जानना चाहिये।

आयुष्य-बंध

(प्रश्नोत्तर न० १३४-१३७)

(१६५) आयुष्य-बंध छः प्रकारका है—[1]जातिनामनिधत्तायु,

१—एकेन्द्रियादि पांच प्रकारकी जातियां। इन जातियोंका सूचक नाम ही जातिनाम कहा जाता हैं। जातिनाम नामकर्मकी एक प्रकारकी उत्तर प्रकृति अथवा जीवका एक प्रकारका परिणाम है। जाति-नामकर्मके साथ निषिक्त आयु जातिनामनिधत्तायु कहा जाता हैं। प्रति समय अनुभवके लिये कर्म-पुद्गलोंकी रचनाको निषेक कहा जाता हैं।

[1]गतिनामनिधत्तायु, [2]स्थितिनामनिधत्तायु, [3]अवगाहनानाम-निधत्तायु [4]प्रदेशनामनिधत्तायु और [5]अनुभक्तनामनिधत्तायु। वैमानिक-पर्यन्त चउवीस दंडकीय जीवोंको इन छओं प्रकारके आयुष्योंका वंध होता है। एक जीव और बहुत जीवकी अपेक्षा से निम्न वारह भेद वनते हैं :—

(१) जातिनामनिधत्त, (२) जातिनामनिधत्तायुष्क, (३) जातिनामनियुक्त, (४) जातिनामनियुक्तायुष्क, (५) जातिगोत्र-निधत्त, (६) जातिगोत्रनिधत्तायुष्क, (७) जातिगोत्रनियुक्त, (८) जातिगोत्रनियुक्तायुष्क, (९) जातिनामगोत्रनिधत्त, (१०) जाति-नामगोत्रनिधत्तायुष्क, (११) जातिनामगोत्रनियुक्त, (१२) जाति-नामगोत्रनियुक्तायुष्क।

१—नैरयिकादि चार प्रकारकी गतियां, इन गतियोंका आयुष्य-वंधन, गतिनाम निधत्तायु कहा जाता है।

२—किसी भव विशेषमें जीवका रहना स्थिति कहा जाता है। स्थिति-रूप नामकर्म स्थितिनाम कहा जाता है। स्थितिनामकर्मके साथ निषिक्त आयु स्थितिनामनिधत्तायु कहा जाता हैं।

३—जिस देहमें जीव अवगाहन करे उसे अवगाहना कहते हैं, अर्थात् औदारिकादि शरीर। अवगाहनरूप औदारिकादि शरीर नामकर्मके साथ निषिक्त आयु, अवगाहनानामनिधत्तायु कहा जाता है।

४—प्रदेशरूप नामकर्मके साथ निषिक्त आयु प्रदेशनामनिधत्तायु।

५—आयुष्यकर्मके द्रव्योंके विपाकको अनुभाग कहते हैं। अनुभाग-रूप नामकर्म अनुभाग-नामकर्म। अनुभागनामकर्मके साथ निषिक्त आयु अनुभाग नाम निधत्तायु।

६—नियुक्त—संबद्ध करना,निकाचित करना अथवा वेदन करना।

ये बारह भेद जाति आश्रित हुए हैं। ऐसे ही अनुभक्तनाम-निधत्तायु तक शेष आयुष्यबंधोंके भेद जानने चाहिये।

वैमानिक पर्यन्त चौवीस दंडकीय जीवोंमें ये भेद होते हैं।

(प्रश्नोत्तर नं० १३८-१३९)

(१९६) लवण समुद्र तरंगित और क्षुब्ध है परन्तु प्रशान्त व अक्षुब्ध नहीं। लवणसमुद्र संबंधी शेष सर्व वर्णन जीवाभिगम सूत्रके अनुसार जानना चाहिये।

बाहरके समुद्र (तिर्यक्लोकसे बाहर) प्रशान्त व अक्षुब्ध हैं परन्तु तरंगित व क्षुब्ध नहीं हैं। वे पानीसे परिपूर्ण-लबालब भरे हुए हैं तथा परिपूर्ण घटकी तरह उनकी स्थिति है। ये समुद्र संस्थानसे एक आकारवाले तथा विस्तारमें विविध आकारवाले अर्थात् एक दूसरेसे दुगने-तिगुने होते हुए चले गये हैं। [1]यावत् इस तिर्यक्लोकमें भी असंख्य द्वीप-समुद्र हैं। स्वयंभूरमणसमुद्र इनमें सबसे अन्तिम है।

लोकमें जितने शुभनाम, शुभरूप, शुभगंध, शुभरस, और शुभ स्पर्श हैं उतने ही द्वीप और समुद्रोंके नाम है इसीप्रकार इनके उद्धार[2] व [3]परिणाम जानने चाहिये। सर्व जीव इन द्वीप-समुद्रोंमें उत्पन्न हुए हुए है।

१—यहाँ द्वीप-समुद्रोंका सम्पूर्ण वर्णन नहीं हैं। मात्र कुछ अंशसे बताकर अगला अंश अन्य सूत्रमें अवलोकन करनेके लिये कह दिया गया है।

२—उद्धार व परिणाम आदिके लिये भी मात्र यहाँ संकेत ही किये गये हैं। इनका विस्तृत वर्णन जीवाभिगम सूत्रमें हैं।

षष्ठम शतक

नवम उद्देशक

नवम उद्देशक में वर्णित विषय

[ज्ञानावरणीय-कर्म बंधन करते हुए अन्य कर्म-प्रकृतियोंका बंधन—संख्या, महर्द्धिक देव और विकुर्वण, अविशुद्धलेशी देव और उनके जाननेकी शक्ति—बारह विकल्प। प्रश्नोत्तर संख्या १०]

(प्रश्नोत्तर नं० १४०)

(१६७) ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हुए जीव सात, आठ और छः कर्म-प्रकृतियोंको बांधता है।

शेष सर्व वर्णन प्रज्ञापना सूत्रके बंध उद्देशकसे जानना चाहिये।

महर्द्धिक देव और विकुर्वण

(प्रश्नोत्तर नं० १४१-१४५)

(१६८) कोई महाऋद्धिसम्पन्न यावत् महानुभाव, देव बादर पुद्गलोंको ग्रहण किये बिना एक वर्ण और एक आकारवाले अपने शरीरादिको विकुर्वित नहीं कर सकता। वह बाह्य पुद्गलोंको ग्रहण करके ही विकुर्वण कर सकता है। वह यहाँ मनुष्यक्षेत्रगत रहे हुए या अन्यत्र रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहणकर विकुर्वण नहीं कर सकता है परन्तु देवलोक-स्थित पुद्गलोंको ग्रहण कर कर सकता है। इसप्रकार वह (१) एक वर्णवाले एक आकारको, (२) एक वर्णवाले अनेक आकारोंको, (३) अनेक वर्ण-

वाले एक आकारको और (४) अनेक वर्णवाले अनेक आकारोंको विकुर्वित करनेमें समर्थ है। यहां यह चतुर्भंगी जाननी चाहिये।

कोई भी महाऋद्धिसम्पन्न यावत् महानुभाव देव बाह्य पुद्गलोंको ग्रहण किये बिना काले पुद्गल नील पुद्गलमें और नील पुद्गल काले पुद्गलमें परिणत नहीं कर सकता। वह बाह्य पुद्गलोंको ग्रहणकर ही ऐसा कर सकता है। कालेसे लाल, पीला और श्वेत, नीलेसे पीला, लाल और श्वेत, लालसे पीला और श्वेत, और पीलेसे श्वेत, ये विविध वर्ण बाह्य पुद्गलोंको ग्रहण कर परिणत कर सकता है। इसीप्रकार क्रमशः गंध, रस और स्पर्शके संबंधमें जानना चाहिये। कर्कशको कोमल, कोमलको कर्कश, गुरुको लघु, लघुको गुरु, शीतको ऊष्ण, ऊष्णको शीत और स्निग्धको रूक्ष और रूक्षको स्निग्ध रूपसे वह परिणत कर सकता है पर बाह्य पुद्गलोंको ग्रहण किये विना नहीं।

देव और जाननेकी शक्ति

(प्रश्नोत्तर नं० १४६-१४९)

(१) अविशुद्धलेशी देव उपयोग-रहित आत्मासे अविशुद्ध लेशी देव या देवी अथवा दूसरोंको नहीं जानते है व नही देखते हैं।

(२) अविशुद्ध लेशी देव उपयोग रहित आत्मासे विशुद्ध लेशी देव या देवीको नहीं जानते है और नहीं देखते है।

(३) अविशुद्ध लेशी देव उपयोगसहित आत्मासे अविशुद्ध लेशी देव या देवीको नहीं जानते और नहीं देखते है।

(४) अविशुद्ध लेशी देव उपयोगसहित आत्मासे विशुद्ध लेशीको नहीं जानते है और नहीं देखते है।

(५) अविशुद्ध लेशी देव उपयोगसहित और उपयोगरहित आत्मासे अविशुद्ध लेशी देव या देवीको या दूसरोंको नहीं जानते हैं और नहीं देखते है।

(६) अविशुद्ध लेशी देव उपयोगसहित और उपयोगरहित आत्मासे विशुद्ध लेशी देव या देवी अथवा दूसरोंको नहीं जानते हैं व नहीं देखते हैं।

(७) विशुद्ध लेशी देव उपयोग रहित आत्मासे अविशुद्ध लेशी देव या देवी या दूसरोंको नहीं जानते हैं नही देखते है।

(८) विशुद्ध लेशी देव उपयोगरहित आत्मासे विशुद्ध लेशी देव या देवीको नहीं जानते हैं और नहीं देखते हैं।

(९) विशुद्ध लेशी देव उपयोगसहित आत्मासे अविशुद्ध लेशी देव-देवीको जानते हैं और देखते हैं।

(१०) विशुद्ध लेशी देव उपयोगसहित आत्मासे विशुद्धलेश्या वाले देव-देवी आदिको जानते हैं तथा देखते है।

(११) विशुद्ध लेशी देव उपयोगसहित और उपयोगरहित आत्मासे अविशुद्ध लेशी देव-देवीको जानते हैं तथा देखते हैं।

(१२) विशुद्ध लेशी देव उपयोगसहित और उपयोगरहित आत्मासे विशुद्ध लेश्यावाले देवको जानते व देखते हैं।

षष्ठम शतक

दशम उद्देशक

दशम उद्देशक में वर्णित विषय

[सुख या दुख निकालकर दिखाया नहीं जा सकता, देव और गंधके सूक्ष्मतम पुदगलोंका उदाहरण, जीव-व्याख्या—चउवीस दंडकीय जीवोंकी दृष्टिसे विचार। नैरयिक और आहार, केवली इन्द्रियोंकी सहायता विना देखते तथा जानते हैं। प्रश्नोत्तर सं० १३]

(प्रश्नोत्तर नं० १५०-१५१)

(१६६) "राजगृह नगरमें जितने भी जीव है उन्हें कोई भी व्यक्ति बेरकी गुठली, कलाय, चावल, उड़द, मूंग, जू और लींख जितना भी सुख या दुःख निकालकर दिखानेमे असमर्थ है।"

अन्यतीर्थिक इसप्रकार जो प्ररूपित करते हैं, वह मिथ्या है। वास्तविक बात यह है—सर्वलोकमें भी सर्व जीवोंको कोई भी सुख या दुख निकालकर दिखानेमें असमर्थ है। जिस-प्रकार कोई ऋद्धिसम्पन्न और महानुभागदेव विलेपनयुक्त सुगंधित द्रव्योंसे परिपूर्ण घटको खुलेमुह लेकर 'मैं चला' कह, एक ताली बजाने जितने समयमें ही इक्कीस वार सम्पूर्ण जम्बूद्वीपकी परिक्रमा करके चला आता है। उसके जाते ही सम्पूर्ण जम्बू-द्वीपमें वह सुगंध भी परिव्याप्त हो जाती है। कोई भी व्यक्ति उस परिव्याप्त सुगंधको बेरकी गुठली या लींक जितनी भी पृथक् रूपसे दिखानेमें असमर्थ है। उसीप्रकार सुख-दुखादि को कोई भी नहीं दिखा सकता।

जीव

(प्रश्नोत्तर नं० १५२-१५६)

(२००) जीव नियमतः चैतन्य है और चैतन्य भी नियमतः जीव हैं। नैरयिक नियमतः जीव हैं परन्तु जीव नैरयिक भी है और अनैरयिक भी।

असुरकुमारसे वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीव नियमतः जीव है और जीव असुरकुमारादि है भी और नहीं भी।

जो प्राणधारण करता है वह नियमतः जीव है। परन्तु जो जीव है वे प्राणधारण करते हैं, यह नियम नहीं। कोई धारण करते है और कोई नहीं भी।

नैरयिक नियमतः प्राणधारण करते हैं परन्तु जो प्राणधारण करते है वे नैरयिक भी होते है और अनैरयिक भी।

इसीप्रकार वैमानिक पर्यन्त चउवीस दंडकीय जीवोंके लिये जानना चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० १५७)

(२०१) भवसिद्धिक नैरयिक भी होते हैं और अनैरयिक भी। नैरयिक भवसिद्धिक भी होते हैं और अभवसिद्धिक भी।

इसीप्रकार वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० १५८-१५९)

(२०२) "सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्व एकान्त दुखरूप वेदना वेदन करते हैं।"

अन्यतीर्थिकोंका यह प्ररूपण मिथ्या है। वास्तविक बात यह है—कितने ही प्राण, भूत, सत्त्व और जीव एकान्त दुख-

रूप वेदना वेदन करते हैं तथा कदाचित् सुख भी वेदन करते हैं। कितने ही एकान्त सुखरूप वेदना वेदन करते हैं और कदाचित् दुख भी। कितने ही विविध प्रकारकी वेदनायें वेदन करते हैं—कदाचित् सुख और कदाचित् दुख।

नैरयिक एकान्त दुखरूप वेदनाका वेदन करते हैं परन्तु कदाचित् सुख भी अनुभव करते हैं। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक एकान्त सुखरूप वेदना वेदन करते है तो कदाचित् दुख भी अनुभव करते हैं।

पृथ्वीकायसे लेकर मनुष्य-पर्यन्त सर्व जीव विविध प्रकारकी वेदनाये वेदन करते हैं। वे कभी सुख अनुभव करते हैं और कभी दुख अनुभव करते है।

नैरयिक और आहार

(प्रश्नोत्तर नं १६०)

(२०३) नैरयिक आत्मा-द्वारा जिन पुद्गलोंको ग्रहण कर आहार करते हैं वे [1]आत्मशरीरक्षेत्रावगाढ़ पुद्गल होते हैं। अनन्तरक्षेत्रावगाढ़ व परंपरक्षेत्रावगाढ़ पुद्गलोंको आत्मा-द्वारा ग्रहण कर वे आहार नहीं करते हैं।

नैरयिकोंकी तरह वैमानिकपर्यन्त सर्व जीवोंके लिये इसी प्रकार जानना चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० १६१-१६२)

[देखो पृष्ठ सख्या १३६ क्रम सं० १३१ प्रश्नोत्तर नं० ४५-४९।]

१—अपने शरीररूपी क्षेत्रमें स्थित पुद्गल।

सप्तम शतक

प्रथम उद्देशक

प्रथम उद्देशकमे वर्णित विषय

[जीव परलोक जाते हुए कबतक आहारक और अनाहारक रहता है ? लोकस्वरूप, श्रमणोपासकको ईर्यापथिकी या साम्परायिकी क्रियायें लगती है ? व्रत—अतिचार, तथारूप श्रमणको दान देनेसे लाभ, कर्म-रहित जीव कैसे गति करता है ? उपयोग-रहित अनगारको लगनेवाली क्रियायें, दूषित भोजन-पानी, निर्दोष-भोजन-पानी, क्षेत्रातिक्रान्त भोजन आदि। प्रश्नोत्तर सं० २२]

(प्रश्नोत्तर नं० १-३)

(२०५) पर भवमें जाते हुए जीव प्रथम द्वितीय और तृतीय समयमें अनाहारक है और चौथे समयसे अवश्यमेव आहारक होता है।

इसीप्रकार चौबीस दण्डकीय जीवोंके लिये जानना चाहिये। सामान्य जीव और एकेन्द्रिय चोथे समयमें आहार करते है। शेप जीव तीसरे समयमें आहार करते हैं।

जीव समुत्पन्न होते हुए प्रथम समयमें और भवके अन्तिम समयमें सबसे अल्प आहारवाला होता है।

यह बात वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जाननी चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० ४)

(२०६) लोक सुप्रतिष्ठक शरावके आकारका है। नीचेसे विस्तीर्ण ऊपरसे खड़े मुख मृदंगके आकारका है। इस शाश्वत

लोकमें सम्पूर्ण ज्ञान और दर्शनके धारक अरिहंत, जिन, केवल ज्ञानी जीव-अजीव दोनोंको जानते व देखते हैं। वे सिद्ध होते हैं तथा सर्व दुखोंका अन्त करते हैं।

(प्रश्नोत्तर नं० ५)

(२०७) उपाश्रयमें सामायिकस्थ श्रमणोपासक को ईर्या-पथिकी क्रिया नहीं लगती है परन्तु साम्परायिकी क्रिया लगती है। क्योंकि सामायिकमें भी उसकी आत्मा अधिकरण (कषाय)-युक्त होती है। इससे उसको ईर्यापथिकी क्रिया न लगकर साम्परायिकी क्रिया लगती है।

व्रत और अतिचार

(प्रश्नोत्तर न ६-७)

(२०८) किसी श्रमणोपासकको त्रस जीवोंके वधका प्रत्याख्यान है परन्तु पृथ्वीकायके वधका नहीं। जमीन खोदते हुए यदि किसी त्रस जीवकी उसके द्वारा हिंसा हो जाती है तो उसके व्रतमें* अतिचार नहीं लगता, क्योंकि उसकी वध करनेकी प्रवृत्ति नहीं है।

इसीप्रकार वनस्पतिकायके परित्यागके सम्बन्धमें भी जानना चाहिए।

तथारूप श्रमणको दान देनेसे लाभ

(प्रश्नोत्तर नं० ८-९)

(२०९) तथारूप श्रमण या ब्राह्मणको निर्दोष अशन, पान, खादिम और स्वादिम द्वारा प्रतिलाभित करनेवाला श्रमणोपासक

* सामान्यरूपमें श्रावकको संकल्पपूर्वक हिंसाका प्रत्याख्यान होता है। जहाँतक वह संकल्पपूर्वक हिंसा नहीं करता वहाँ तक व्रतमें दोष नहीं लगता।

उसको समाधि उत्पन्न करता है। फलतः वह भी समाधि प्राप्त करता है।

तथारूप श्रमणको प्रतिलाभित करता हुआ श्रमणोपासक अपने जीवित (जीवन-निर्वाहमें कारणभूत अन्नादिका) और दुष्त्यज्य वस्तुका त्याग करता है अतः वह बोधि—सम्यक् दर्शनका, अनुभव करता है और पश्चात् सिद्ध होकर सर्व दुखोंका अन्त करता है।

कर्मरहित जीवकी गति

(प्रश्नोत्तर नं० १०-१५)

(२१०) निःसंगत्व, निरागत्व; गतिपरिणाम, बंधन-छेद, निरंधन—कर्मरूपी इन्धनसे रहित होना, और पूर्व-प्रयोगसे कर्म-रहित जीव गति करता है। जिसप्रकार कोई व्यक्ति छिद्र-विहीन और नहीं टूटे हुए सूखे तूम्बेको घास-फूस द्वारा लिपटे और उसपर मिट्टीके आठ लेप लगाकर धूपमें सूखा दे। सूखजाने पर उस तूम्बेको पुरुष-प्रमाणसे अधिक गहरे पानीमें डाल दे। मिट्टीके लेप-द्वारा भारी होकर वह तूम्बा पानीकी सतहको छोड़कर पानीके तलेमें जाकर बैठ जायगा। मिट्टीके आलेपोंके क्षय होनेपर वह तूम्बा तलको छोड़कर पुनः पानीकी सतह पर आ जायगा उसीप्रकार आत्माकी गति भी स्वीकार की जाती है। जिसप्रकार मटर की फली, मूगकी फली, उड़द की फली, शेमल की फली और एरंडकी फली धूपमें देनेपर सूख जाती हैं और सूखकर फूट जाती हैं। फूटनेसे उनके बीज एक ओर निकल आते हैं। उसीप्रकार बन्धनके छेदसे कर्मरहित आत्माकी गति होती है।

जिसप्रकार ज्वलित ईंधनसे निकले हुए धुएँकी गति प्रतिबन्ध बिना ऊर्ध्व होती है उसीप्रकार कर्मरूपी ईंधनसे विमुक्त होनेपर कर्मरहित आत्माकी गति भी ऊर्ध्व होती है।

जिसप्रकार धनुषसे छूटे हुए बाण की गति बिना किसी प्रतिबन्धके अपने लक्ष्यकी ओर अभिमुख होती है उसीप्रकार पूर्वप्रयोग से कर्मरहित जीवकी गति होती है।

दुखी जीव

(प्रश्नोत्तर नं० १६-१७)

(२११) दुखी जीव दुखसे व्याप्त होता है परन्तु अदुखी जीव दुखसे व्याप्त नहीं होता। दुखी नारकी दुखसे व्याप्त होते हैं परन्तु अदुखी नारकी दुखसे व्याप्त नहीं होते ।

इसप्रकार वैमानिक-पर्यन्त सर्वजीवोंके लिये समझना चाहिये। दुखसंबंधी निम्न पांच भंग बनते हैं :—

(१) दुखी दुखसे व्याप्त है, (२) दुखी दुखको ग्रहण करता है, (३) दुखी दुखको उदीर्ण करता है, (४) दुखी दुखको वेदन करता है और (५) दुखी दुखको निर्जीर्ण करता है।

ईर्यापथिकी ओर साम्परायिकी क्रिया

(प्रश्नोत्तर नं० १८)

(२१२) उपयोग-रहित गमन करते, खड़े रहते, बैठते, सोते, वस्त्र-पात्र-कम्बल और रजोहरण आदि ग्रहण करते व रखते अनगारको सांपरायिकी क्रिया लगती है; ईर्यापथिकी नहीं। क्योंकि जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ क्षीण हो गये है उसको ईर्यापथिकी क्रिया लगती है परन्तु साम्परायिकी नहीं। जिसके

क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न नहीं हुए उसको साम्परायिकी क्रिया लगती है परन्तु ईर्यापथिकी नहीं। सूत्रके अनुसार क्रिया करते साधुको ईर्यापथिकी और विरुद्ध चलनेवालेको साम्परायिकी क्रिया लगती है। वह उपयोग रहित साधु सूत्र-विरुद्ध आचरण करता है अतः उसको साम्परायिकी क्रिया लगती है।

सदोष-निर्दोष आहार-पानी

(प्रश्नोत्तर नं० १९-२२)

(२१३) निम्न सदोष भोजन-पान हैं:—

अंगारदोष भोजनपान--कोई निर्ग्रन्थ-साधु या साध्वी प्रासुक और ऐषणीय अशन, पान, खादिम और स्वादिमको ग्रहणकर उनमें मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित और आसक्त हो भोजन करता है तो वह अंगारदोष भोजनपान कहा जाता है।

धूम्रदोष भोजन-पान—कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी प्रासुक और ऐषणीय अशन, पान, खादिम और स्वादिम ग्रहणकर अत्यन्त अप्रीतिसे क्रोधित तथा खिन्न हो आहार करता है तो धूम्रदोष भोजन-पान कहा जाता है।

संयोजनादोष भोजन-पान—ऐषणीय आहार-पानीको कोई निर्ग्रन्थ, साधु या साध्वी ग्रहणकर स्वादलिप्सासे दूसरे पदार्थसे संयोजित कर आहार करता है, तो संयोजना दोष लगता है।

निम्न निर्दोष भोजन-पान है:—

अंगारदोषविहीन भोजन-पान—कोई निर्ग्रन्थ या साधु-साध्वी उपर्युक्त प्रकारका आहार ग्रहणकर अमूर्च्छित, अगृद्ध,

अग्रथित और अनासक्त हो आहार करता है तो वह आहार अंगारदोष-विहीन आहार-पानी कहा जाता है।

धूम्रदोष-रहित भोजन-पान—निर्दोष आहार पानी अप्रीति-पूर्वक, क्रोधित व खिन्न हो न करना।

असंयोजना-दोष-विहीन भोजन-पान—स्वादोत्पन्न करनेके लिये आहारमें अन्य पदार्थका मिश्रण न करना परन्तु जैसा आहार मिला वैसा ही समभावसे खाना।

क्षेत्रातिक्रान्त आहार-पानी—कोई साधु या साध्वी प्रासुक और ऐषणीय अशन-पान, खादिम-स्वादिम आदि आहार सूर्योदयके पूर्व ग्रहणकर सूर्योदयके पश्चात् खाए तो वह क्षेत्राति-क्रान्त आहार कहा जाता है।

कालातिक्रान्त—कोई साधु या साध्वी उपर्युक्त प्रकारका आहार प्रथम प्रहरमें ग्रहणकर अन्तिम प्रहर तक रखकर आहार करे तो कालातिक्रान्त आहार-पानी कहा जाता है।

मार्गातिक्रान्त—उपर्युक्त प्रकारका आहार-पानीको कोई साधु-साध्वी अर्द्धयोजन (दो कोस) की मर्यादा उल्लंघनकर आहार करे तो मार्गातिक्रान्त आहार-पानी कहा जाता है।

प्रमाणातिक्रान्त—उपर्युक्त प्रकारके आहारके कोई साधु या साध्वी मुर्गीके अंडेके परिमाणवाले बत्तीस कौरसे अधिक कौर खाय तो वह प्रमाणातिक्रान्त आहार कहा जाता है।

मुर्गीके अंडेके परिमाणवाले आठ कवलका आहार करने-वाला अल्पाहारी, सोलह कवलका आहार करनेवाला अर्द्धाहारी चौबीस कवलका आहार करनेवाला ऊनोदरिक, और बत्तीस कवलका आहार करनेवाला प्रमाणभोगी है।

इनसे एक भी कवल न्यून खानेवाला साधु प्रकामरस-भोजी अर्थात् मधुरादि रसका भोक्ता नहीं कहा जा सकता।

शस्त्र-परिणत निर्दोष-भोजन

कोई साधु या साध्वी शस्त्र-मूसलादि, पुष्पमाला और चंदनके विलेपनसे रहित व्यक्ति-द्वारा दत्त, कृम्यादि जन्तुरहित, निर्जीव, साधुके लिये नहीं बने या बनवाये हुए, नहीं संकल्प किये हुए, अनाहूत, अक्रीत—नहीं खरीदा हुआ, अनौद्देशिक—उद्देश्यकपूर्वक नहीं बनाया हुआ, [1]नवकोटि विशुद्ध, शंकितादि दश दोष रहित, उद्गम और उत्पादनैषणाके दोषसे विशुद्ध, अंगार-दोष-रहित, धूम्रदोपरहित, संयोजनादोपरहित चपचप ध्वनि-रहित आहारको बिना उतावलसे, न बहुत धीरे, आहारके किसी भागको नहीं छोड़े, गाड़ीकी धूरीकी तरह, या व्रणके विलेपनकी तरह, मात्र संयमके निर्वाहके लिये, संयम-भार-वहन करनेके लिए बिलमें प्रविष्ट सर्पकी तरह आहार करे तो वह आहार शस्त्रातीत, शस्त्र-परिणत, एषित (ऐषणा दोष रहित) व्येषित और सामुदायिक (विभिन्न भिक्षा दोष रहित) आहार कहा जाता है।

१—हनन करना, हनन करवाना, हनन करते हुए का अनुमोदन करना, पकाना, पकवाना, पकवाते हुएका अनुमोदन करना, खरीदना, खरीदवाना और खरीदते हुए का अनुमोदन करना।

सप्तम शतक

द्वितीय उद्देशक

द्वितीय उद्देशकमें वर्णित विषय

[प्रत्याख्यान और उसके भेद—चउवीस दंडकीय जीवोंकी दृष्टिसे विचार। जीव शाश्वत हैं या अशाश्वत ? प्रश्नोत्तर संख्या २४]

प्रत्याख्यान और उसके भेद

(प्रश्नोत्तर नं० २३-४४)

(२१४) सर्व प्राणों, सर्व भूतों, सर्व जीवों और सर्व सत्त्वोंकी हिंसाका मैंने प्रत्याख्यान कर लिया है, ऐसा बोलनेवाले व्यक्तिको कदाचित् सुप्रत्याख्यान होता है और कदाचित् दुष्प्रत्याख्यान। क्योंकि इसप्रकार बोलनेवाले व्यक्तियोंमें जिसको जीव-अजीव, त्रस-स्थावरका ज्ञान नहीं है उसको सुप्रत्याख्यान नहीं होकर दुष्प्रत्याख्यान होता है। इसप्रकार बोलकर वह सत्य भाषा नहीं बोलता वरन् असत्य भाषा बोलता है। वह असत्यभाषी, सर्व प्राणों व सत्त्वोंमें तीन कारण तीन योगसे संयमरहित, विरति-रहित, प्रत्याख्यानविहीन, सक्रिय कर्म-बंधनयुक्त, संवररहित, एकान्त हिंसक और एकान्त अज्ञ है।

जिसको जीव-अजीव, त्रस-स्थावर आदिका ज्ञान है, उसको इसप्रकार बोलने पर सुप्रत्याख्यान होता है। क्योंकि इसप्रकार बोलते हुए वह सत्य भाषा बोलता है परन्तु झूठ नहीं बोलता।

वह सुप्रत्याख्यानी, सत्यभाषी, सर्व प्राणों और सत्त्वोंमें तीन करण तीन योगसे संयत, विरतियुक्त, प्रत्याख्यानयुक्त, कर्मबंधरहित संवरयुक्त और एकान्त पंडित है।

प्रत्याख्यान दो प्रकारका है मूलगुण—प्रत्याख्यान और उत्तरगुणप्रत्याख्यान।

मूलगुणप्रत्याख्यान दो प्रकारका है—सर्वमूलगुण प्रत्याख्यान और देशमूलगुणप्रत्याख्यान।

सर्वमूलगुणप्रत्याख्यान पांच प्रकारका है—सर्व प्राणातिपात से विराम, सर्व मृषावादसे विराम, सर्व चौर्यसे विराम, सर्व अब्रह्मचर्यसे विराम और सर्व परिग्रहसे विराम।

देशमूलगुणप्रत्याख्यान पांच प्रकारका है—स्थूल प्राणातिपातसे विराम, स्थूल मृषावादसे विराम, स्थूल चौर्यसे विराम, स्थूल अब्रह्मचर्यसे विराम और स्थूल परिग्रहसे विराम।

उत्तरगुणप्रत्याख्यान दो प्रकारका है :—सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यान और देशोत्तरगुणप्रत्याख्यान।

सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यान दश प्रकारका है—अनागत, अतिक्रान्त, कोटियुक्त, नियंत्रित, साकार, अनाकार, कृतपरिमाण, निरवशेष, संकेत, अद्धाप्रत्याख्यान।

देशोत्तर प्रत्याख्यान सात प्रकारका है :—दिग्व्रत, उपभोगपरिभोगपरिमाण, अनर्थदंडविरमण, सामायिक, देशावकाशिक, पौषधोपवास, अतिथिसंविभाग, और [1]अपश्चिममारणान्तिक संलेहणाऽजोषणाऽऽराधना।

१—मृत्यु समयमें शरीर और कषायोंको कृश करनेवाला तप-विशेष।

जीव मूलगुणप्रत्याख्यानी, उत्तरगुणप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी भी हैं।

नैरयिक जीव अप्रत्याख्यानी हैं। मूलगुणप्रत्याख्यानी या उत्तरगुण प्रत्याख्यानी नहीं हैं।

एकेन्द्रियसे चतुरिन्द्रिय-पर्यन्त जीव, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक नैरयिकोंकी तरह अप्रत्याख्यानी हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक और मनुष्योंमें मूलगुणप्रत्याख्यानी, उत्तरगुणप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी भी हैं।

सर्व जीवोंमें मूलगुणप्रत्याख्यानी जीव सबसे कम, उत्तरगुण प्रत्याख्यानी उनसे असंख्येयगुणित अधिक और अप्रत्याख्यानी अनन्तगुणित हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकोंमें और मनुष्योंमें मूलगुणप्रत्याख्यानी जीव सबसे अल्प, इनसे असंख्येय गुणित अधिक उत्तरगुणप्रत्याख्यानी और उनसे असंख्येय गुणित अप्रत्याख्यानी है।

जीव सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी, देशमूलगुणप्रत्याख्यानी और उत्तरमूलगुणप्रत्याख्यानी हैं।

नैरयिक सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी और देशमूलगुणप्रत्याख्यानी नहीं हैं परन्तु अप्रत्याख्यानी है।

पंचन्द्रिय तिर्यंचयोनिकोंमें सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी नही हैं, देशमूलगुणप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी हैं।

मनुष्य सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी, देशमूलगुणप्रत्याख्यानी और उत्तरमूलगुणप्रत्याख्यानी है।

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों को नैरयिकोंकी तरह समझना चाहिये।

जीवोंमें सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी जीव सबसे अल्प, देशमूल-गुणप्रत्याख्यानी असंख्येयगुणित और अप्रत्याख्यानी अनन्त-गुणित अधिक हैं।

जीव, पंचेन्द्रिय तिर्यच और मनुष्योंमें अल्पत्वबहुत्व प्रथम दण्डकके अनुसार जानना चाहिये। सबसे अल्प पंचेन्द्रिय तिर्यन्च देशमूलगुणप्रत्याख्यानी हैं और अप्रत्याख्यानी असंख्य गुणित अधिक हैं।

जीव सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानी, देशोत्तरगुणप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी भी है। पंचेन्द्रिय तिर्यच और मनुष्य तीनों प्रकारके हैं और शेप वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीव अप्रत्याख्यानी हैं।

इनका अल्पत्वबहुत्व प्रथम दंडके अनुसार जानना चाहिये।

जीव संयत, असंयत और संयतासंयत भी हैं। इनका अल्पत्व बहुत्व पन्नवणाके अनुसार वैमानिक-पर्यन्त जानना चाहिये।

जीव प्रत्याख्यानी, अप्रत्याख्यानी व प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी तीनों ही प्रकार के हैं।

मनुष्य तीनों ही प्रकारके हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यच अप्रत्याख्यानी व प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी हैं। वैमानिक पर्यन्त शेष सर्व जीव अप्रत्याख्यानी हैं।

प्रत्याख्यानी जीव सबसे अल्प, प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी असंख्येयगुणित और अप्रत्याख्यानी अनन्तगुणित है। देशप्रत्याख्यानी पंचेन्द्रिय तिर्यंच सबसे अल्प, प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी; असंख्येयगुणित और अप्रत्याख्यानी इनसे असंख्येयगुणित हैं।

१—प्रज्ञापना तृतीय पद।

प्रत्याख्यानी मनुष्य सबसे अल्प हैं। देशप्रत्याख्यानी संख्येय-गुणित और अप्रत्याख्यानी इनसे असंख्येय गुणित अधिक है।

जीव शाश्वत हैं या अशाश्वत ?

(प्रश्नोत्तर नं० ४५-४६)

(२१५) जीव कदाचित् शाश्वत और कदाचित् अशाश्वत हैं। द्रव्यकी अपेक्षासे जीव शाश्वत और पर्यायकी अपेक्षासे अशाश्वत है।

वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीव शाश्वत और अशाश्वत दोनों ही प्रकारके है।

सप्तम शतक

तृतीय उद्देशक

तृतीय उद्देशकमें वर्णित विषय

[वनस्पतिकाय और उनका आहार, ग्रीष्ममें वृक्ष हरित क्यों ? कृष्ण-लेश्यी अल्पकर्मयुक्त और नीललेश्यी महाकर्मयुक्त हो सकते हैं स्थितिकी अपेक्षासे विचार, वेदना निर्जरा नहीं, वेदना कर्म है और निर्जरा नोकर्म है, नैरयिक शाश्वत और अशाश्वत हैं। प्रश्नोत्तर संख्या १५]

ग्रीष्म ऋतुमें अनेक वृक्षादि हरित क्यों ?

(प्रश्नोत्तर नं० ८७-८८)

(२१६) वनस्पतिकायिक जीव प्रावृट ऋतु—श्रावण-भाद्र, और वर्षाऋतु—आश्विन-कार्तिकमें महा आहारयुक्त होते हैं। शरद, हेमंत, वसन्त और ग्रीष्ममें क्रमशः अल्प आहारयुक्त होते हैं। ग्रीष्म ऋतुमें सबसे कम आहार होता है। यद्यपि ग्रीष्म ऋतुमें वनस्पतिकायिक सबसे न्यून आहारवाले होते हैं फिर भी अनेक वनस्पतिकायिक इस ऋतुमें पल्लवयुक्त, पुष्पयुक्त, फलयुक्त, हरितिमायुक्त और वनकी शोभासे सुशोभित होते हैं। इसका कारण ग्रीष्म ऋतुमें अनेक उष्णयोनिक जीव और पुद्गल वनस्पतिकायिक रूपमें उत्पन्न होते हैं और विशेष परिमाणमें उत्पन्न होते हैं। ये बढ़ते हैं और विशेष परिमाणमें बढ़ते हैं। अतः आहारकी न्यूनता होने पर भी ये हरित दिखाई देते हैं।

(प्रश्नोत्तर नं० ४९-५१)

(२१७) मूल मूलके जीवसे, कंद कंदके जीवसे यावत् वीज वीजके जीवसे व्याप्त हैं। मूलके जीव पृथ्वीकायिक जीवोंसे संबद्ध है अतः वनस्पतिकायिक जीव आहार करते हैं। इसीप्रकार वीज फलके जीवोंके साथ संबंधित होनेसे आहार करते हैं तथा परिणत करते हैं।

आलू, मूली, अदरख, हिरीली, सिरिली सिस्सिरिली, किट्टिका, क्षिरिया, क्षीरविदारिका, वज्रकंद, सूरणकंद, खेलुड़, आर्द्र भद्रमोथ, पीली हल्दी, हूथीहू, थिरुगा, मुद्गपर्णी अश्वकर्णी, सिहकर्णी, सीहंढी, मुसंढी, आदि वनस्पतियाँ तथा इसीप्रकारकी और भी वनस्पतियां अनन्त जीववाली तथा भिन्न-भिन्न जीववाली है।

अल्पकर्मयुक्त महाकर्मयुक्त

(प्रश्नोत्तर नं० ५२-५३)

(२१८) [1]स्थितिकी अपेक्षासे कृष्णलेश्यावाला नैरयिक अल्प कर्मयुक्त और नीललेश्यावाला महाकर्मयुक्त है। इसीप्रकार नील-लेश्यावालेसे कापोतलेश्यावाला कदाचित् महाकर्मयुक्त है।

असुरकुमारसे लेकर वैमानिक-पर्यन्त इसीप्रकार जानना चाहिये। विशोषान्तर यह है कि असुरकुमारोंके तेजोलेश्या

१—कृष्णलेश्या अत्यन्त अशुभ परिणामवाली है। इसकी अपेक्षासे नीललेश्या कुछ शुभ परिणामवाली है। अतः सामान्यरूपसे नीललेश्या युक्त जीवसे कृष्णलेश्यायुक्तजीव महाकर्मयुक्त होता है परन्तु आयुष्यकी अपेक्षासे कृष्णलेश्यायुक्तजीव अल्पकर्मयुक्त और नीललेश्यायुक्त जीव महाकर्मयुक्त है।

विशेष होती है। अन्य देवोंमें जिसको जितनी लेश्यायें हैं उतनी कहनी चाहिये। [1]ज्योतिष्क देवोंके लिये नहीं कहना चाहिये। पद्मलेश्यावाला वैमानिक अल्पकर्मयुक्त और शुक्ल-लेश्यावाला वैमानिक महाकर्मयुक्त है।

वेदना और निर्जरा

(प्रश्नोत्तर न० ५४-६०)

(२१६) जो वेदना है वह निर्जरा है और जो निर्जरा है वह वेदना है, यह अर्थ उपयुक्त नही। क्योंकि वेदना [2]कर्म है और निर्जरा नोकर्म है। अतः निर्जरा वेदना नहीं है।

यह बात नैरयिकसे लेकर वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना चाहिये। इन सर्व जीवोंको वेदना कर्म और निर्जरा अकर्म है।

जीव कर्म वेदन करता है और नोकर्म निर्जीर्ण करता है। अतः जिसकर्मको वेदन करता है उसको निर्जीर्ण करता है और जिसको निर्जीर्ण करता है उसको वेदन करता है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

१—ज्योतिष्क देवोंमें तेजोलेश्याके अतिरिक्त अन्य लेश्या नहीं होती अतः अन्य लेश्याकी अपेक्षासे वे अल्प कर्मयुक्त या महाकर्मयुक्त नहीं कहे जा सकते हैं।

२—उदय प्राप्त कर्मको वेदन करना वेदना है और वेदित कर्मका क्षय होना निर्जरा है। वेदन होनेसे वेदना कर्म कही गई है। वेदित हो जानेके पश्चात् कर्म कर्म नहीं रहता अतः उसे कर्म नहीं कहा जा सकता। इसीकारण निर्जरा नोकर्मकी होती है। नोकर्मकी निर्जरा होनेसे निर्जराको भी नोकर्म कहा गया है।

भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंके लिये यही नियम समझना चाहिये।

जो वेदनाका समय है वह निर्जराका समय नहीं और जो निर्जराका समय है वह वेदनाका समय नहीं। जीव जिससमय वेदन करता है उससमय निर्जरा नहीं करता, जिससमय निर्जरा करता है उससमय वेदन नहीं करता। अन्य समयमें वेदन करता है और अन्य समयमें निर्जरा करता है। अतः वेदना और निर्जराका समय भिन्न २ है।

यह विभेद नैरयिकसे लेकर वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना चाहिये।

क्या जीव शाश्वत हैं ?

(प्रश्नोत्तर नं० ६१)

(२२०) नैरयिक कदाचित् शाश्वत हैं और कदाचित् अशाश्वत ! द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे वे शाश्वत हैं और पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे अशाश्वत।

इसप्रकार वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके संबंधमें जानना चाहिये।

सप्तम शतक

चतुर्थ-पंचम-षष्ठम उद्देशक

चतुर्थ उद्देशक

चतुर्थ उद्देशकमें वर्णित विषय

[जीव-प्रकार। प्रश्नोत्तर सं० १]

(प्रश्नोत्तर नं ६१)

(२२१) संसारसमापन्नक—सासारिक जीव [1]छः प्रकारके हैं। इन छः प्रकारके जीवोंका वर्णन जीवाभिगम सूत्रके अनुसार सम्यक्त्वक्रिया और मिथ्यात्व क्रिया-पर्यन्त जानना चाहिये।

गाथा

जीवोंके छ:प्रकार, पृथ्वीके छ:प्रकार, आयुष्य, भवस्थिति, सामान्यकाय-स्थिति, निर्लेपन—रिक्त होनेका समय, अनगार-सम्यक्त्वक्रिया और मिथ्यात्व क्रिया—इतने विषयोंका उसमें वर्णन है।

पंचम उद्देशक

पंचम उद्देशकमें वर्णित विषय

[खेचर जीव और उनके प्रकार। प्रश्नोत्तर सं० १]

(प्रश्नोत्तर नं० ६२)

(२२२)खेचर—आकाशमें उड़नेवाले, पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक तीन प्रकारके हैं :—अंडज,—अंडेसे उत्पन्न होनेवाले, पोतज—

एक प्रकारकी बंद थैलीमें उत्पन्न होनेवाले, समूर्च्छिम—माता-पिताके बिना संयोगसे स्वतः उत्पन्न होनेवाले। इस संबंधमें विस्तृत वर्णन जीवाभिगम सूत्रके अनुसार "वे विमानोंका समुल्लंघन नहीं कर सकते, इतने विशाल है" पर्यन्त जानना चाहिये।

गाथा

योनिसंग्रह, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, योग, उपयोग, उपपात, आयुष्य, समुद्घात, च्यवन और जातिकुलकोटि इतने विषयोंका इसमें वर्णन है।

षष्ठम उद्देशक

षष्ठम उद्देशकमें वर्णित विषय

[आयुष्य-बंधन तथा वेदन—चउवीस दडकीय जीवोंकी अपेक्षासे विचार, कर्कशवेदनीयकर्म, अकर्कशवेदनीयकर्म, सातावेदनीयकर्म और असाता वेदनीयकर्म और इनके बंधनके हेतु, दुषमदुषमाकाल और तत्कालीन भारतवर्षकी स्थिति। प्रश्नोत्तर सं० २३]

(प्रश्नोत्तर न० ६१-६५)

(२२३) जो जीव नर्कमें उत्पन्न होने-योग्य हैं वे इस भवमें ही नर्कायुष्य बाधते हैं परन्तु वहां उत्पन्न होते हुए या उत्पन्न होकर नहीं बांधते हैं।

इसीप्रकार वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना।

नर्कमें उत्पन्न होने-योग्य जीव इस भवमें नैरयिकका आयुष्य वेदन नहीं करते हैं परन्तु उत्पन्न होते हुए या उत्पन्न होकर वेदन करते हैं।

इसीप्रकार वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना।

जीवोंकी सुख-दुखात्मक वेदना

(प्रश्नोत्तर नं० ६६-६८)

(२२४) नर्कमें उत्पन्न होनेयोग्य जीव इस भवमें अथवा नर्कमें उत्पन्न होते हुए कदाचित् महावेदनायुक्त और कदाचित् अल्पवेदनायुक्त हो सकता है परन्तु उत्पन्न होनेके पश्चात् एकान्त दुखमय वेदनाका ही भोगी होता है उसे कभी ही सुख वेदनाका अनुभव होता है।

असुरकुमारोंमें उत्पन्न होनेयोग्य जीव इस भवमें अथवा उत्पन्न होते हुए कदाचित् महावेदनायुक्त और कदाचित् अल्प-वेदनायुक्त हो सकता है परन्तु उत्पन्न होनेके पश्चात् एकान्त सुखरूप वेदनाका अनुभव करता है। उसे क्वचित् ही दुखका अनुभव होता है।

असुरकुमारोंकी तरह स्तनितकुमारों तक जानना चाहिए।

पृथ्वीकायमें समुत्पन्न होने योग्य जीव इस भवमें कदाचित् महावेदनायुक्त और कदाचित् अल्पवेदनायुक्त हो सकता है परन्तु पृथ्वीकायमें उत्पन्न होनेके पश्चात् विविध दुख-सुखात्मक वेदनाओंका अनुभव करता है।

इसीप्रकार मनुष्य-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना।

असुरकुमारोंकी तरह ही वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवोंके लिये जानना चाहिए।

आयुष्य-बंधन

(प्रश्नोत्तर नं० ६९)

(२२५) जीव अज्ञातरूपसे आयुष्यका बंध करता है ; ज्ञात-

रूपसे नहीं। वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीव अज्ञातरूपसे ही आयुष्यका बंध करते हैं।

कर्कशवेदनीय कर्म और उसके बंधके कारण

(प्रश्नोत्तर नं० ७०-७५)

(२२६) जीव कर्कशवेदनीय—दुखपूर्वक भोगनेयोग्य, और अकर्कशवेदनीय—सुखपूर्वक भोगनेयोग्य, दोनों प्रकारके कर्म वांधते हैं। प्राणातिपात आदि अठारह पापस्थानोंमें प्रवृत्त होनेसे कर्कशवेदनीय कर्मका बंधन होता है और इन पाप-क्रियायोंसे निवृत्त होने पर अकर्कशवेदनीय कर्मका बंधन होता है। वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंको कर्कशवेदनीय कर्मका बंधन होता है और मनुष्यको छोड़कर किसीको भी अकर्कशवेदनीय कर्मका बंधन नहीं होता। मनुष्यको अकर्कशवेदनीय कर्मका भी बंधन होता है।

असातावेदनीय कर्म और उसके बंधके कारण

(प्रश्नोत्तर नं० ७६-७९)

(२२७) प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों पर अनुकंपा करनेसे, उन्हें दुखित, शोकित, खेदित और पीड़ित नहीं करनेसे, नहीं पीटने तथा परिताप—कष्ट, नहीं देनेसे जीव सातावेदनीय कर्मका बंधन करते है। इसप्रकार वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना चाहिये। इनके विपरीत आचरणसे जीव असाता-वेदनीय कर्मका बंधन करते है। वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये यह बात जाननी चाहिये।

दुषमदुषमाकाल और भारतवर्ष

(प्रश्नोत्तर नं० ८०-८६)

(२२८) जम्बूद्वीपके भारतवर्षमे अवसर्पिणी कालका छट्ठा

आरा जब उत्कृष्ट (चरम) अवस्था पर पहुंच जायगा तब भारतवर्षका आकारभावप्रत्यवतार (आकार और भावोंका आविर्भाव) निम्न प्रकार होगा :—

वह काल हाहाभूत—हाहाकारयुक्त, भंभाभूत—दुःखार्तनाद-युक्त, और कोलाहलयुक्त होगा। कालके प्रभावसे अतीव कठोर, धूमिल, असह्य, अनुचित और भयंकर वायु तथा संवर्तक वायु प्रवाहित होंगे। वारंवार चारों ओरसे धूल उड़नेके कारण दिशायें रजसे मलीन, अंधकारयुक्त और धूम्रमय दिखाई देंगी। चन्द्र अत्यन्त शीतलताका व सूर्य अत्यन्त गर्मीका वर्षण करेंगे। वारवार अरसमेघ, विरसमेघ—खराब रसवाले मेघ, क्षार-मेघ—खारे पानीवाले बादल, तिक्तमेघ—खट्टे पानीवाले बादल, अग्निमेघ—आगके सदृश ऊष्ण पानीवाले बादल, विद्युतमेघ, विषमेघ विषमय पानीवाले बादल, अशनिमेघ—वज्रके सदृश पर्वतादि तोडनेवाले बादल, अपेय पानीवाले मेघ, व्याधि, रोग, और वेदना उत्पन्न करनेवाले मेघ तथा मनको अरुचिकर पानी वाले मेघ, प्रचंड अनिलके साथ तीक्ष्ण धाराओंके साथ बरसेंगे ; जिससे भारतवर्षके ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, मंडल, द्रोण-मुख, पट्टन तथा आश्रमोंमें स्थित मनुष्य, चतुष्पद, खग, ग्रामों व वनोंमें चलते त्रस जीव, विविध प्रकारके गुल्म, लतायें, वेले, घास, दूब आदि, शाल्यादि धान्य, प्रवाल, पल्लव, अंकूर, काष्ठादि व वनस्पतियां आदि विनष्ट हो जायंगी, । वैताढ्य पर्वतके अतिरिक्त सर्व पर्वतों, पहाड़ों, टीलों, स्थलों, रेगिस्तानों व तलहटियोंका विनाश होजायगा। गंगा और सिन्धु नदीके अतिरिक्त पानीके सरोवर व नदियां आदि न रहेंगी। दुर्गम और विषम, ऊंचे व

नीचे सर्व स्थान समतल हो जायेंगे। उस समय भरतक्षेत्रकी भूमि अंगार, मुर्मुर, गर्म राख और तप्त लोह कड़ाह व आगके सदृश तप्त, बहुत धूलयुक्त, वहुत रजयुक्त, वहुत पंकयुक्त, बहुत शैवालयुक्त और बहुत कर्दमयुक्त हो जायगी। पृथ्वी-स्थित जीवोंको चलने में अत्यन्त कष्ट होगा।

उस समय भरतक्षेत्रके मनुष्य कुरूप, कुवर्ण, कुगंध, कुरस, और कुस्पर्शयुक्त, अनिष्ट अमनोज्ञ, हीनस्वर दीनस्वर, अनिष्ट स्वर और अमनोज्ञ स्वरयुक्त, अनादेय, निर्लज्ज, कापट्य, कलह, छल-कपट, वध, बंध और वैरमें आसक्त, मर्यादाका उल्लंघन करनेमें अग्रगण्य, अकार्य-तत्पर, गुरु आदि पूज्य जनकी विनयसे रहित, वेडोल आकारवाले, वढ़े हुए नख, केश, दाढ़ी-मूछ और रोमवाले, काले, अतीव कठोर, श्याम वर्णवाले, बिखरे हुए वाल-वाले, श्वेत वालवाले, अनेक स्नायुओंसे आवेष्टित, दुर्दर्शनीय, संकुचित व अनेक प्रकारके कुलक्षणोंसे परिवेष्टित विकलांग, जरा-परिणत वृद्ध पुरुषके सदृश, टूटे-फूटे सड़े दांतोंवाले, घटके सदृश भयंकर मुखवाले, विपम नैत्रोंवाले, वक्र नासिकावाले, वक्र तथा विकृत मुखवाले, पांव—खुजलीवाले कठिन और तीक्ष्ण नखों द्वारा खुजलनेसे विकृत, दादवाले, कोढ़ी, सिध्म—विशेष कुष्ठयुक्त, फटी हुई कठोर चमड़ीवाले, विचित्र अंगवाले, ऊँटकी गतिवाले, कुआकृतियुक्त, विपम संधिवंधनयुक्त, ऊँच-नीच व विपम हड्डियों-पसलियोंसे युक्त, कुगठनयुक्त, कुप्रमाणयुक्त, विषम संस्थानयुक्त, कुरूप, कुस्थानमें वढ़नेवाले, कुस्थानमें शयन करनेवाले, कुभोजन करनेवाले, विविध व्याधिग्रस्त, स्खलनायुक्त, उत्साह-विहीन, सत्त्वरहित, विकृतचेष्टायुक्त, तेजहीन, वारवार ऊष्ण, शीत

तीक्ष्ण और कठोर पवनसे संत्रस्त, रजादिसे मलिन अंगवाले, अत्यन्त क्रोध, मान, माया और लोभयुक्त, अशुभ दुखोंके भोगी और प्रायः धर्मसंज्ञा व सम्यक्त्व-भ्रष्ट होंगे। एक हाथ-प्रमाण इनकी अवगाहना होगी। इनका सोलह और बीस वर्षका अधिकसे-अधिक आयुष्य होगा। ये पुत्र-पौत्रादिके बहु-परिवार वाले तथा अत्यन्त ममत्ववाले होंगे।

इसप्रकारके बहत्तर कुटुम्ब बीजभूत (आगामी मनुष्य जातिके लिये) हो , गंगा और सिन्धु महानदियोंके बिलों व वैताढ्य गिरि की गुहाओंका आश्रय लेकर रहेंगे।

उस समयमें रथ-मार्गके बराबर गंगा और सिन्धु नदियाँ विस्तृत होंगी। उनमें अक्षप्रमाण पानी होगा। उस जलमें अनेक मच्छ और कच्छ होंगे और पानी बहुत अल्प होगा। बिलवासी मनुष्य सूर्योदयसे एक मुहूर्त पूर्व और सूर्यास्तसे एक मुहूर्त पीछे अपने २ बिलोंसे बाहर निकलेंगे और मत्स्यादिको नदीसे निकालकर जमीनमें गाड़ देंगे। इसप्रकार शीत और ऊष्णतासे निर्जीव मच्छ-कच्छोंसे इक्कीस हजार वर्ष-पर्यन्त उस कालके मनुष्य अपनी आजीविका चलायेंगे।

शीलरहित, निर्गुण, मर्यादारहित, प्रत्याख्यान एवं पौषधोपवासरहित, प्रायः मांसाहारी, मत्स्याहारी, क्षुद्र और मृतकाहारी उस समयके मनुष्य मरकरके प्रायः नर्क और तिर्यंच-योनियोंमें उत्पन्न होंगे।

उस समयके सिंह, व्याघ्र, शेर, दीपिका, रींछ, जरख आदि जानवर, जलकाक, कंक, बीलक जलवायस और मयूरादि पक्षी भी पूर्ववत् ही नरक और तिर्यंच योनियोंमें उत्पन्न होंगे।

सप्तम शतक

सप्तम व अष्टम उद्देशक

सप्तम उद्देशक में वर्णित विषय

[सवृत अनगारको लगनेवाली क्रियायें, काम-भोग जीवोंको होता है अजीवोंको नहीं—विस्तृत विवेचन, काम-भोगी जीवोंका अल्पत्व बहुत्व, जीव अकाम वेदना कैसे वेदन करता है आदि । प्रश्नोत्तर सख्या २६]

संवृत अनगार और क्रिया

(प्रश्नोत्तर नं० ८७)

(२२६) उपयोगपूर्वक चलते, बैठते, सोते व वस्त्र, पात्र, कंवल, रजोहरणादि लेते-रखते संवृत—संवरयुक्त, अनगारको ईर्यापथिकी क्रिया लगती है परन्तु साम्परायिकी नहीं। जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ नष्ट हो गये है उसको ईर्यापथिकी क्रिया लगती है और जिसके कषाय नष्ट नहीं हुए उसको तथा सूत्र-विरुद्ध चलनेवालेको साम्परायिकी क्रिया लगती है।

काम-भोग

(प्रश्नोत्तर नं० ८८-१०३)

(२३०) काम रूपी है अरूपी नहीं। ये सचित्त और अचित्त भी है। काम जीवस्वरूप भी है और अजीवस्वरूप भी।

काम जीवोंको होता है अजीवोंको नहीं।

काम दो प्रकारके है :—रूप और शब्द।

भोग रूपी और अरूपी हैं। ये सचित्त और अचित्त भी हैं। भोग जीवस्वरूप भी हैं और अजीवस्वरूप भी। भोग जीवोंको प्राप्त है अजीवोंके नहीं। भोगोंके तीन भेद हैं :—गंध, रस और स्पर्श।

काम-भोग मिलकर पाँच प्रकारके हैं :—रूप, शब्द, गंध, रस और स्पर्श।

जीव, (सांसारिक) कामी भी हैं और भोगी भी हैं। कान और आँखकी अपेक्षासे जीव कामी, नाक, जिह्वा और शरीरकी अपेक्षासे भोगी हैं।

नैरायिक, भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक और मनुष्य कामी और भोगी हैं। चतुरिन्द्रिय जीव आँखकी अपेक्षासे कामी, नाक, जिह्वा और शरीरकी अपेक्षासे भोगी हैं। शेष अन्य जीव आंख और कानकी अपेक्षासे कामी और नाक-जिह्वा और शरीरकी अपेक्षासे भोगी हैं।

पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय जीव भोगी हैं परन्तु कामी नही। पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय शरीर, द्वीन्द्रिय शरीर और जिह्वा, त्रीन्द्रिय शरीर, जिह्वा, और नाककी अपेक्षासे भोगी हैं।

काम-भोगी, नोकामी–नोभोगी और भोगी जीवोंमें काम-भोगी जीव सबसे अल्प हैं ; नोकामी-नोभोगी—सिद्ध जीव, अनन्तगुणित और भोगी भी अनन्तगुणित अधिक हैं।

(प्रश्नोत्तर नं० १०४-१०७)

(२३१) किसी भी देवलोकमें उत्पन्न होने-योग्य क्षीण-

भोगी छद्मस्थ मनुष्य उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषाकार पराक्रमसे विपुल भोग्य भोगोंका उपभोग करनेमें समर्थ है, यह कथन उपयुक्त नहीं। वह किसीसे भी—उत्थानसे, कर्मसे, बलसे, वीर्यसे और पुरुषाकार पराक्रमसे विपुल उपभोगनीय भोगोंका उपभोग कर सकता है। अतः भोगोंका त्याग करता हुआ भोगी महानिर्जरायुक्त और महापर्यवसान—महाफलयुक्त होता है।

छद्मस्थकी तरह ही अधोऽवधिक—नियतक्षेत्र अवधिज्ञानी जो किसी भी देवलोकमें उत्पन्न होनेयोग्य हैं, परमावधिज्ञानी - जो उसी भवमें सिद्ध होनेवाले हैं और केवलज्ञानी—जो उसी भवमें सिद्ध होंगे, जानने चाहियें।

अकाम वेदनानुभव

(प्रश्नोत्तर नं० १०४-१०८)

(२३२) असंज्ञी—पृथ्वीकायादि पाच स्थावर, कितने ही समूर्च्छिम त्रसजीव जो अंध—अज्ञानी, मूढ, अज्ञानांधकारमें निमग्न और मोहजालमें आच्छन्न है वे अकाम निकरण—(अनिच्छापूर्वक वेदना अनुभव करना) वेदना वेदन करते है। इसीप्रकार समर्थ होनेपर भी संज्ञी जीव अकामनिकरण वेदना वेदन करते है। उदाहरणार्थ देखनेमें समर्थ होते हुए भी व्यक्ति अन्धकारमें स्थित पदार्थ दीपककी सहायता विना नहीं देख सकता, दीपक होनेपर भी पीछे, ऊँचे व नीचे इधर-उधर रखे हुए पदार्थ उपयोग विना नहीं देख सकता उसीप्रकार संज्ञी जीव सामर्थ्य होनेपर भी अनिच्छापूर्वक वेदना वेदन करते है।

समर्थ होनेपर भी जीव (संज्ञी) प्रकामनिकरण—तीव्र इच्छा-

पूर्वक वेदना वेदन करते है। जिसप्रकार कोई समुद्रपार पहुँचने में समर्थ नहीं है, समुद्रके उसपार रहे हुए रूपोंको देखनेमें समर्थ नहीं है, देवलोकमें जानेमें समर्थ नहीं और देवलोकके रूपोंको देखनेमें समर्थ नहीं है इसीप्रकार वे [1]समर्थ होनेपर भी तीव्रेच्छा पूर्वक वेदना वेदन करते हैं।

अष्टम उद्देशक

अष्टम उद्देशक मे वर्णित विषय

[छद्मस्थ मनुष्य और मुक्ति, हाथी और कुंथुका जीव समान है, पाप-कर्म दुखरूप हैं, दश प्रकारकी सज्ञायें, नैरयिकोंकी दशप्रकारकी वेदनायें, हाथी और कुंथुकी अप्रत्याख्यान क्रिया समान है, आधाकर्मी आहारक साधु और कर्मबन्धन। प्रश्नोत्तर सख्या ७]

(प्रश्नोत्तर नं० १०९)

[देखो पृष्ठ संख्या ३२, क्रम नं० ३८ प्रश्नोत्तर नं० १५९-१६३]

(प्रश्नोत्तर नं० ११०)

(२३३) निश्चित ही हाथी और कुंथुका जीव समान है। विशेष वर्णन रायप्रसेणी सूत्रसे "खुड्डियं वा महानियंवा" तक जानना चाहिये।

पापकर्म दुखदायक हैं

(प्रश्नोत्तर नं० १११)

(२३४) नैरयिकोंके द्वारा जो पापकर्म किये गये, किये

१—मन सहित होनेपर भी जीव प्रकाम निकरण—तीव्र अभिलापापूर्वक सुख-दुख वेदन करते हैं। क्योंकि इच्छाशक्ति व ज्ञानशक्ति-युक्त होनेपर भी सामर्थ्यके अभावसे वे प्राप्त नहीं कर सकते। अतः प्राप्तिके अभावमें तीव्रेच्छा मात्रसे ही सुख-दुखका वेदन करते हैं।

जाते हैं और किये जायेंगे, वे सर्व दुखकारक हैं तथा निर्जीर्ण होनेपर सुखकारक हैं।

वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये इसीप्रकार जानना चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० ११२)

(२३५) संज्ञायें दश हैं—आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुन संज्ञा, परिग्रहसंज्ञा, क्रोधसंज्ञा, मानसंज्ञा, मायासंज्ञा, लोभसंज्ञा, लोकसंज्ञा और ओघसंज्ञा (सामान्यज्ञान)।

(प्रश्नोत्तर नं० ११३)

(२३६) नैरयिक निम्न दश वेदनाओंका अनुभव करते है :

(१) शीत, (२) ऊष्णता (३) क्षुधा, (४) पिपासा, (५) खुजली (६) परतन्त्रता, (७) ज्वर, (८) दाह, (९) भय, और (१०) शोक।

अप्रत्याख्यान क्रिया

(प्रश्नोत्तर नं० ११४)

(२३७) अविरतिकी अपेक्षासे हाथी और कुंथुको अप्रत्याख्यान क्रिया समान होती है।

(प्रश्नोत्तर नं० ११५)

[देखो पृष्ठसंख्या ५९-६० क्रम संख्या ५८-५९ प्रथम शतक नवम उद्देशक]

सप्तम शतक

नवम-दशम उद्देशक

नवम उद्देशक

नवम उद्देशकमे वर्णित विषय

[असंवृत अनगार बाह्य पुद्गलोंको ग्रहण किये विना रूप-विकुर्वण नहीं कर सकना, महाशिलाकंटक संग्राम और उसके नामकरणका कारण, रथमूसल संग्राम और नामकरणका कारण, युद्धमें मरनेवाले योद्धा और उनकी गति, अन्यतीर्थिको की मान्यता और खण्डन । प्रश्नोत्तर संख्या १९]

असंवृत अनगार और रूप-विकुर्वण

(प्रश्नोत्तर नं० ११६-११८)

(२३८) प्रमत्त साधु बाह्य पुद्गलोंको ग्रहण किये विना एकवर्ण-वाला या अनेक वर्णवाला रूप विकुर्वित नहीं कर सकता परन्तु ग्रहणकर कर सकता है। वह यहाँ (मनुष्य-लोकस्थ) रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहणकर रूप विकुर्वित करता है।

इस सम्बन्धमें सर्व वर्णन षष्ठम शतकके नवम उद्देशक के अनुसार जानना चाहिये। विशेषान्तर यह है कि मनुष्यलोक में स्थित साधु मनुष्यलोकके पुद्गलोंको ग्रहण कर ही रूप विकुर्वित करता है।

महाशिलाकंटक संग्राम

(प्रश्नोत्तर नं० ११९-१२२)

(२३९) [1]महाशिलाकंटकसंग्राममें इन्द्र और कोणिक विजित हुए। नव मल्ली व नव लिच्छवी जो काशी और कोशलादेशके गणराजा थे पराजित हुए।

महाशिलाकंटक संग्राममें जो गज, अश्व, योद्धा और सारथी तृण, काष्ठ, पत्र अथवा कंकड़ों द्वारा मारे गये वे सब यह समझते थे कि वे महाशिलाओं द्वारा मारे गये हैं अतः यह संग्राम महाशिलाकंटक संग्राम कहा गया।

इस युद्धमें चौबीस लाख मनुष्य मारे गये। शीलरहित यावत् प्रत्याख्यान और पौषधोपवास रहित, क्रुद्ध, आक्रोषयुक्त घायल और अशान्त मनुष्य अधिकाश मरकर नर्क और तिर्यंच-योनियोंमें उत्पन्न हुए हैं।

रथमूसल संग्राम

(प्रश्नोत्तर नं० १२३-१२७)

(२४०) रथमूसल संग्राममें इन्द्र और कोणिक राजा विजित हुए। नव मल्ली और नव लिच्छवी राजा पराजित हुए।

रथमूसलसंग्राममें अश्वरहित, सारथीरहित योद्धारहित, एक मूसलसहित रथ अत्यन्त जन-संहार, जनवध, जन-मर्दन और जनप्रलय—विनाश, करता हुआ तथा लोहितका कीचड़

१—महाशिलाकटकसंग्राम वैशाली प्रजातन्त्रके अधिनायक चेटक और चम्पानगरीके राजा कोणिकके मध्य हुआ था।

उछालता हुआ चारों ओर दौड़ता था अतः यह युद्ध रथमूसल-संग्राम कहा गया है।

इस युद्धमें एक लाख मनुष्य मारे गये। शीलरहित पौपधोपवासरहित तथा उपर्युक्त प्रकारके मनुष्योंमें दश हजार मनुष्य एक मछलीके उदरमें, एक देवलोकमें, और एक उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए, शेप मनुष्य अधिकाशमें नर्क एवं तिर्यंच-योनियोंमें उत्पन्न हुए है।

(प्रश्नोत्तर नं० १२८-१३०)

(२४१) "अनेक प्रकारके युद्धोंमें किसी भी संग्राममें युद्ध करते हुए मरकर या घायल होकर मरकर योद्धागण किसी भी देवलोकमें उत्पन्न होते है।"

अनेक जन इसप्रकार परस्पर जो कथन करते है या प्ररूपित करते हैं, यह मिथ्या है। नागपुत्र वरुणकी तरह जीवाजीवके ज्ञाता, मृत्यु-समयमें सर्व पापोंका प्रत्याख्यान और आलोचन कर मरनेवाले देवलोकमें उत्पन्न होते है।

[1]नागपुत्र वरुण मृत्यु समयमें मरकर, सौधर्मदेवलोकमें अरुणाभ विमानमें उत्पन्न हुआ है। वहाँ उसकी स्थिति चार पल्योपमकी है। देवलोकका आयुष्य क्षयकर वह महाविदेह-क्षेत्रमें उत्पन्न हो सिद्ध होगा और सर्व दुखोंका अन्त करेगा।

वरुणका बालमित्र भी मरकर किसी सुकुलमें उत्पन्न हुआ है। वहाँसे मरकरके महाविदेह क्षेत्रमें उत्पन्न होकर सर्व दुखोंका अन्त करेगा।

१—देखो परिशिष्ट चारित्र-खण्ड।

दशम उद्देशक

दशम उद्देशक में वर्णित विषय

[पंचास्तिकाय, पापकर्मोंका अशुभ फलविपाक, अग्निकाय-हिंसा और तारतम्य, अचित्त पुद्गल भी प्रकाशयुक्त होते हैं। प्रश्नोत्तर सं० ११]

(प्रश्नोत्तर नं १३२-१३५)

(२४२) [1]पाच- अस्तिकाय है :—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाल, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय। इनमें चार अजीव व एक जीव, चार रूपी और एक अरूपी है।

अरूपी अजीवकाय—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, और आकाशास्तिकाय में कोई भी बैठने, सोने, खड़े रहने, और लेटनेमें समर्थ नहीं है। मात्र एक रूपी पुद्गलास्तिकाय में उक्त क्रियाये की जा सकती है।

रूपी अजीवकाय—पुद्गलास्तिकायको जीवोंके अशुभ फलदायी पापकर्म नहीं लगते हैं परन्तु अरूपी जीवकायको लगते हैं।

पापकर्मोंका अशुभ फलविपाक

(प्रश्नोत्तर नं० १३६-१३९)

(२४३) जीवोंके पापकर्म परिणाममें उनको दुखदायक होते है। जिसप्रकार कोई पुरुप सम्यक् रूपसे परिपक्व अठारहके प्रकार व्यंजन थालीमें लेकर खा रहा है पर वे व्यंजन विषमिश्रित है। यद्यपि वह भोजन प्रारम्भमें स्वादिष्ट लगता है परन्तु परिणाममें अत्यन्त अशुभ होता है उसीप्रकार जीवोंके पापकर्म अशुभ फलविपाकसंयुक्त होते हैं।

जीवोंके कल्याण-कर्म कल्याणप्रद होते है। उनका परिणाम

१—कालोदायी परिव्राजक-द्वारा पूछे गये प्रश्न।

सुखद होता है। जिसप्रकार कोई पुरुष सम्यक् रूपसे परिपक्व अठारह प्रकारके व्यंजनोंको थालीमें लेकर खा रहा है। पर व्यंजन औषधिमिश्रित है। अतः भोजन प्रारम्भमें अस्वादिष्ट लगता है परन्तु उसका परिणाम सुखदायक होता है। जीवोंको प्राणातिपातादि अठारह पापोंका परित्याग प्रारंभमें अच्छा नहीं लगता है परन्तु परित्यागका परिणाम सुखदायक होता है। त्याग का परिणाम कभी भी कष्टदायक नहीं होता।

अग्निकाय-हिंसा और उसका तारतम्य

(प्रश्नोत्तर न० १४०)

(२४४) दो पुरुष जिनके पास समान उपकरण है; वे एक साथ अग्निकायकी हिंसा करते हैं। इनमें एक अग्निको जलाता है और एक बुझाता है। इन दो व्यक्तियोंमें अग्निको प्रज्वलित करनेवाला पुरुष अधिक कर्मयुक्त, अधिक क्रियायुक्त, अधिक आश्रवयुक्त और अधिक वेदनायुक्त है। अग्निको बुझानेवाला उसकी अपेक्षा अल्प कर्मयुक्त, अल्प क्रियायुक्त, अल्प आश्रवयुक्त, और अल्प वेदनायुक्त है। क्योंकि अग्निको प्रज्वलित करनेवाला पृथ्वीकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक अनेक जीवोंकी हिंसा करता है और बुझानेवाला उपर्युक्त जीवोंकी कम हिंसा करता है।

(प्रश्नोत्तर न ६-७)

(२४५) अचित्त पुद्गल भी चमकते हैं। क्रोधित साधुकी तेजोलेश्याके पुद्गल उससे निकलकर दूर अथवा गन्तव्य स्थान पर जाकर गिरते हैं। जहाँ ये गिरते है वहाँ-वहाँ ये अचित्त पुद्गल अवभासित व उद्योतित होते है।

अष्टम शतक

प्रथम उद्देशक

प्रथम उद्देशकमें वर्णित विषय

[पुद्‌गलों के प्रकार, प्रयोगपरिणत, मिश्रपरिणत और विस्रसापरिणत, पुद्‌गलोंका चउवीस दंडकीय जीवों तथा उनके भेद-प्रभेदों-द्वारा विभाजन—विस्तृत वर्णन। प्रश्नोत्तर संख्या ६९]

(प्रश्नोत्तर नं० १-६९)

(२४६) पुद्‌गल तीन प्रकारके हैं:-प्रयोगपरिणत—जीव-व्यापार से शरीरादि-रूपमें परिणत हुए, मिश्रपरिणत—प्रयोग और स्वभावके सम्बन्धसे परिणत हुए और विस्रसापरिणत—स्वतः स्वभावसे परिणत हुए हुए।

प्रयोगपरिणत पुद्‌गल और उसके भेद

प्रयोगपरिणत पुद्‌गल के पांच भेद हैं—एकेन्द्रिय प्रयोगपरिणत, द्वीन्द्रिय प्रयोगपरिणत, त्रीन्द्रिय प्रयोगपरिणत, चतुरिन्द्रिय प्रयोगपरिणत और पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत।

एकेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्‌गल पृथ्वीकायादि पांच स्थावर जीवोंकी अपेक्षासे पाच प्रकारके है—(१) पृथ्वीकायिक प्रयोगपरिणत, (२) अपकायिक प्रयोगपरिणत, (३) तैजसकायिक प्रयोगपरिणत, (४) वायुकायिक प्रयोगपरिणत और (५) वनस्पतिकायिक प्रयोगपरिणत।

एकेन्द्रिय पृथ्वीकायिक प्रयोगपरिणत पुद्गल दो प्रकारके हैं—सूक्ष्म एकेन्द्रिय पृथ्वीकायिक प्रयोगपरिणत और बादर एकेन्द्रिय पृथ्वीकायिक प्रयोगपरिणत।

इसीप्रकार अप्कायिक, तैजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिकके भेद जानने चाहिये।

द्वीन्द्रिय प्रयोगपरिणत, त्रीन्द्रिय प्रयोगपरिणत और चतुरिन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गल अनेक प्रकारके हैं।

पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणात पुद्गलके चार भेद हैं—नैरयिक प्रयोगपरिणत, तिर्यंच प्रयोगपरिणत, मनुष्य प्रयोगपरिणत और देव प्रयोगपरिणत।

नैरयिक पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गलके सात भेद हैं—रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिक प्रयोगपरिणत, शर्कराप्रभापृथ्वी नैरयिक प्रयोगपरिणत, बालुकाप्रभापृथ्वी नैरयिक प्रयोगपरिणत, पंक-प्रभापृथ्वी नैरयिक प्रयोगपरिणत, धूम-प्रभा नैरयिक प्रयोग-परिणत, तमप्रभा नैरयिक प्रयोगपरिणत और तमतम:प्रभा नैरयिक प्रयोगपरिणत।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्रयोगपरिणत पुद्गलके तीन भेद हैं:—जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्रयोगपरिणत, स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्रयोगपरिणत और खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्रयोगपरिणत।

जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्रयोगपरिणत पुद्गलके दो भेद हैं—समूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्रयोगपरिणत और गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्रयोगपरिणत। स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्रयोगपरिणतके दो भेद हैं—चतुष्पद स्थलचर

पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्रयोगपरिणत और परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्रयोग-परिणत।

चतुष्पद, स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्रयोगपरिणत पुद्गलके दो भेद हैं: –सम्मूर्च्छिम प्रयोगपरिणत और गर्भज प्रयोगपरिणत।

परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्रयोगपरिणत पुद्गलके दो भेद हैं—उरपरिसर्प–पेटके बल चलनेवाले जीवों द्वारा परिणत और भुजपरिसर्प—भुजाके बल चलनेवाले जीवों द्वारा परिणत।

उरपरिसर्प व भुजपरिसर्प स्थलचर तिर्यंय पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गलके निम्न दो भेद हैं : –

सम्मूर्च्छिम प्रयोगपरिणत और गर्भज प्रयोगपरिणत।

इसीप्रकार खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचप्रयोगपरिणत पुद्गलके भेद जानने चाहिये।

मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गलके दो भेद हैं—सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय मनुष्य प्रयोगपरिणत और गर्भज पंचेन्द्रिय मनुष्य प्रयोगपरिणत।

देव पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गलके चार भेद हैं :— भवनवासी देव पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत, वाणव्यन्तर देव पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत, ज्योतिष्क देव पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत और वैमानिकदेव पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत।

भवनवासी पंचेन्द्रिय देव प्रयोगपरिणत पुद्गल दश प्रकारके है :—असुरकुमार, नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युत्कुमार, अग्नि-कुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, पवनकुमार और स्तनितकुमार पंचेन्द्रिय देव प्रयोगपरिणत।

बाणव्यन्तर पंचेन्द्रिय देव प्रयोगपरिणत पुद्गल आठ प्रकारके है :—पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुप, महोरग और गांधर्व पंचेन्द्रिय देव प्रयोगपरिणत।

ज्योतिष्क देव पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गल पांच प्रकारके हैं :—चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारक पंचेन्द्रिय देव प्रयोग-परिणत।

वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गलके दो भेद हैं:—कल्पोपन्न वैमानिकदेव पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत और कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत।

कल्पोपन्न वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गल बारह प्रकार के है :—सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लातक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत् कल्पोपन्न वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत।

कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गल दो प्रकार के है :—ग्रैवेयकप्रयोगपरिणत और अनुत्तरोपपातिक-प्रयोगपरिणत। ग्रैवेयक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेद्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गलके नव भेद है :—

अधस्तन—नीचे के त्रिक् में स्थित, मध्यस्तन और ऊपरी-मक—ऊपर के त्रिक् मे स्थित देव प्रयोगपरिणत।

अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल के पांच भेद हैं :—विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक प्रयोगपरिणत पुद्गल से लेकर सर्वार्थ-सिद्ध अनुत्तरोपपातिक वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पर्यन्त उपर्युक्त वर्णित पुद्गलों के सर्व भेदों में प्रत्येक के दो भेद और हैं-पर्याप्त और अपर्याप्त। जैसे-पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक प्रयोगपरिणत पुद्गल और अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक प्रयोग-परिणत पुद्गल। इसी प्रकार सर्व भेदों के लिये जानना चाहिये।

अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक प्रयोगपरिणत पुद्गल औदा-रिक, तैजस और कार्मण शरीर प्रयोगपरिणत हैं और पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक प्रयोगपरिणत पुद्गल भी औदा-रिक, तैजस और कार्मण शरीर प्रयोगपरिणत है।

इसीप्रकार पर्याप्त चतुरिन्द्रिय प्रयोगपरिणत पर्यन्त जानना चाहिये। विशेषान्तर यह है कि जो पर्याप्त बादर वायुकाय एकेन्द्रिय प्रयोगपरिणत हैं वे औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण शरीर-प्रयोगपरिणत है। अपर्याप्त रत्नप्रभा पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गल और पर्याप्त रत्नप्रभा पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल वैक्रिय, तैजस व कार्मण शरीर प्रयोगपरिणत हैं।

सातों नर्क भूमियों के प्रयोगपरिणत पुद्गलों के सम्बन्धमें इसीप्रकार जानना चाहिये।

अपर्याप्त समूर्च्छिम जलचर पंचेंद्रिय प्रयोगपरिणत, पर्याप्त समूर्च्छिम जलचर पंचेंद्रिय प्रयोगपरिणत; अपर्याप्त गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गल औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर प्रयोगपरिणत है।

पर्याप्त गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गल औदारिक, वैक्रिय, तैजस व कार्मण शरीर-प्रयोगपरिणत हैं।

जैसे जलचर के उपर्युक्त चार भेद किये गये हैं उसीप्रकार चतुष्पद, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प व खेचर के चार २ विभेद जानने चाहिये।

समूर्च्छिम मनुष्य और अपर्याप्त गर्भज मनुष्य पंचेंद्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गल औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर-प्रयोगपरिणत हैं।

पर्याप्त गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गल औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर-प्रयोगपरिणत हैं।

पर्याप्त व अपर्याप्त भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और सर्वार्थसिद्ध पर्यन्त सर्व देव वैमानिक पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गल वैक्रिय, तैजस और कार्मण शरीर-प्रयोग परिणत है।

पर्याप्त व अपर्याप्त, सूक्ष्म और बादर पृथ्वीकायिक प्रयोग-परिणत पुद्गल स्पर्शेन्द्रिय प्रयोगपरिणत है। इस चतुर्भङ्गीके अनुसार वनस्पतिकाय तक एकेन्द्रिय जीवोंके लिये जानना चाहिये।

पर्याप्त और अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गल, स्पर्श, रसना, घ्राण और चक्षुइन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं। इनमें द्वीन्द्रियके दो, त्रीन्द्रियके तीन और चतुरिन्द्रिय के चार इन्द्रियां जाननी चाहिये।

सर्वार्थसिद्ध पर्यन्त शेष सर्व पर्याप्त व अपर्याप्त प्रयोगपरिणत पुद्गल पांचों इन्द्रियों-द्वारा परिणत हैं।

अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गल जो औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर-प्रयोग परिणत हैं वे स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग परिणत है।

इसीप्रकार सर्वार्थसिद्ध पर्यन्त शेष सर्व जीवोंके लिये जिसके जितने शरीर और इन्द्रियां है, उनके अनुसार जानना चाहिये।

अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिकसे लेकर पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध पर्यन्त सर्व जीवों-द्वारा प्रयोगपरिणत पुद्गल वर्णसे श्याम, नील, रक्त, पीत व श्वेतवर्ण, गंधसे—सुरभिगंध व दुरभिगंध, रससे—तिक्त, कटु, तूरे, अम्ल व मधुर, स्पर्शसे—कर्कश, कोमल, शीत, ऊष्ण, भारी, हल्के, स्निग्ध व रूक्ष, संस्थानसे—परिमंडल, वर्त्तुल, त्रिकोणात्मक, चतुष्कोणात्मक व आयातसंस्थान परिणत हैं।

इसीप्रकार अपर्याप्त पृथ्वीकायिकसे सर्वार्थसिद्ध-पर्यन्त सर्व जीवोंके अपने २ शरीरों और इन्द्रियों द्वारा परिणत पुद्गलोंका वर्ण गन्ध, रस, स्पर्श व संस्थान जानना चाहिये।

इसप्रकार ये नव दण्डक होते हैं।

मिश्रपरिणत पुद्गल

मिश्रपरिणत पुद्गलके पाच भेद है—एकेन्द्रिय मिश्रपरिणत यावत् पंचेन्द्रिय मिश्रपरिणत।

जैसे प्रयोगपरिणतके नव दंडक कहे गये है वैसे ही मिश्र-परिणतके नव दंडक जानने चाहिये। प्रयोगपरिणतके स्थानपर मिश्रपरिणत शब्द प्रयोग करना चाहिये।

विस्रसाप्रयोगपरिणत पुद्गल

विस्रसा-परिणत पुद्गलसे पांच भेद है:—वर्णपरिणत, गंध-परिणत, रसपरिणत, स्पर्शपरिणत और संस्थानपरिणत।

वर्णपरिणतके पाच भेद हैं—कृष्ण वर्ण यावत् शुक्ल वर्ण परिणत।

गंधपरिणतके दो भेद हैं—सुरभिगंधपरिणत और दुरभिगंधपरिणत।

रसपरिणत के पांच भेद हैं—तिक्त यावत् मधुर रसपरिणत। स्पर्शपरिणतके आठ भेद हैं—कर्कश यावद् रूक्ष स्पर्शपरिणत संस्थान परिणतके पांच भेद हैं—परिमण्डल यावत् आयातसंस्थानपरिणत।

एक द्रव्य प्रयोगपरिणत, मिश्रपरिणत और विस्रसापरिणत है। प्रयोगपरिणत पुद्गल मन, वचन और शरीर तीनों ही प्रयोगोंसे परिणत है।

जो पुद्गल द्रव्य [1]मन प्रयोगपरिणत है वह [2]सत्य मन, असत्य मन, सत्यासत्य मन व व्यवहार मन प्रयोगपरिणत भी होता है। सत्यमन प्रयोगपरिणत [3]आरंभसत्यमनप्रयोगपरिणत, अनारम्भसत्यमन प्रयोगपरिणत, सारम्भसत्य मन प्रयोग-परिणत, असरंभसत्यमन प्रयोगपरिणत, समारंभ सत्य मनप्रयोग परिणत व असमारंभसत्यमन प्रयोगपरिणत है।

जैसे सत्यमन प्रयोगपरिणत कहा गया है वैसे ही मृषामन प्रयोगपरिणत, सत्यासत्यमन प्रयोगपरिणत और व्यवहार मन प्रयोगपरिणत जानना चाहिये।

---

१ - औदारिक काययोग द्वारा मनोवर्गणा द्रव्यको ग्रहणकर मनरूपमें परिणत पुद्गल मनप्रयोगपरिणत पुद्गल कहे जाते हैं।

२—सत्य पदार्थका चिन्तन करना रूपी मनका व्यापार सत्यमनप्रयोग।

३—आरंभ—जीवहिंसा-जीवहिंसामें मनप्रयोग होना, इस मनप्रयोगद्वारा परिणत पुद्गल आरंभ सत्यमनप्रयोगपरिणत हैं। अनारंभ—अहिंसा सरंभ—जीवघातका संकल्प, समारंभ—परिताप उत्पन्न करना।

मनप्रयोगपरिणतकी तरह ही वचनप्रयोग भी असमारंभ वचन प्रयोगपरिणत पर्यन्त जानना चाहिये।

जो द्रव्य कायप्रयोगपरिणत है वह औदारिककाय प्रयोग-परिणत, [1]औदारिक मिश्रकाय प्रयोगपरिणत, वैक्रियकाय प्रयोग-परिणत, [2]वैक्रियमिश्रकाय प्रयोगपरिणत, आहारक शरीर प्रयोगपरिणत, [3]आहारकमिश्रकाय प्रयोगपरिणत और कार्मण शरीर प्रयोगपरिणत है। औदारिककाय प्रयोगपरिणत द्रव्य एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त सर्व औदारिक शरीरवालोंको होता है। उनमें सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त सभी आ जाते हैं। यहाँ पूर्ववत् सर्व भेद जानने चाहिये।

१—औदारिक कायप्रयोग-पर्याप्त जीवोंको ही होता है। जब औदारिक शरीर अपूर्णावस्थामें कार्मण शरीरके साथ संयुक्त होता है तब औदारिक मिश्र कहा जाता है। काय-प्रयोगसे जो द्रव्य औदारिक मिश्रकाय-रूपमें परिणत होते हैं वे औदारिक मिश्रकाय प्रयोगपरिणत कहे जाते हैं। औदारिक मिश्रकाय प्रयोग अपर्याप्त जीवोंको होता है परन्तु पर्याप्त गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक, बादर वायुकायिक व मनुष्योंको भी होता है।

२--वैक्रियमिश्रकाय-प्रयोग उत्पन्न होते हुए अपर्याप्त देवता और नारकियोंको होता है। लब्धिजन्य वैक्रिय शरीरका परित्याग कर औदारिक शरीर ग्रहण करते हुए औदारिक शरीरवाले जीवमें वैक्रिय शरीरकी प्रधानता होती है। इस अपेक्षासे भी वह प्रयोग वैक्रियमिश्रकाय प्रयोग कहा जाता है।

३—आहारकमिश्रकाय-प्रयोग - औदारिक शरीरके साथ आहारककी जब मिश्रता होती है तब यह होता है। जब आहारकशरीरी अपने कार्यको समाप्त कर पुनः औदारिक शरीर धारण करता है तब आहारकका प्राधान्य होनेसे वह आहारकमिश्र कहा जाता है। जबतक आहारकका सर्वथा परित्याग न हो वहाँतक औदारिकके साथ मिश्रता रहती है।

औदारिक शरीरकाय-प्रयोगपरिणतकी तरह ही औदारिक मिश्रकाय-प्रयोगपरिणतके लिये एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय पर्यन्त जानना चाहिये। विशेपान्तर यह है कि [1]बादर वायुकायिक, गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक और गर्भज मनुष्योंमें पर्याप्त और अपर्याप्तको तथा शेप सर्व अपर्याप्त जीवोंको होता है।

वैक्रियकाय प्रयोगपरिणत द्रव्य एकेन्द्रियोंमें मात्र वायुकाय प्रयोगपरिणत होता है परन्तु अन्य एकेन्द्रिय जीवों द्वारा नहीं होता। यह सर्व वैक्रिय शरीरवालोंको होता है। इस संबंधमें प्रज्ञापनासूत्र के अनुसार विस्तृत वर्णन जानना चाहिये।

वैक्रिय शरीरकाय-प्रयोग परिणतकी तरह ही वैक्रियमिश्र शरीर-प्रयोगपरिणतके लिये जानना चाहिये। विशेपान्तर यह है कि वैक्रियमिश्रकायका प्रयोग अपर्याप्त देव और नैरयिकोंको होता है। अन्य जीवोंमें सर्व पर्याप्त जीवोंको होता है।

एक द्रव्य आहारकशरीर प्रयोगपरिणत मनुष्याहारक प्रयोगपरिणत होता है परन्तु अन्य सर्व जीवोंको नहीं होता। मनुष्योंमें भी ऋद्धिप्राप्त, प्रमत्त, सम्यग्दृष्टि, पर्याप्त, संख्येय वर्षायुषी साधुको होता है परन्तु अप्रमत्त साधुको नहीं होता।

---

१ – औदारिक शरीरयुक्त मनुष्य, तिर्यञ्च या वादर वायुकायिक जब वैक्रिय शरीर धारण करते हैं तब औदारिक शरीरमें रहे हुए आत्म-प्रदेशोंको विस्तारित कर वैक्रिय शरीरयोग्य पुद्गलोंको ग्रहण करते हैं। जहाँतक वे वैक्रिय शरीरका परित्याग नहीं करते वहाँतक वैक्रियके साथमें औदारिक की मिश्रता होती है। इसीतरह आहारकके साथ भी औदारिककी मिश्रता होती है।

आहारकमिश्र शरीरकाय प्रयोग परिणत भी इसीप्रकार जानना चाहिये।

एक द्रव्य कार्मण शरीर प्रयोगपरिणत एकेन्द्रियसे लेकर सर्वार्थसिद्ध पर्यन्त सव जीवोंको होता है। सूक्ष्म, वादर, पर्याप्त और अपर्याप्त सभीको होता है।

एकद्रव्य मिश्रपरिणत होता है। वह मनमिश्र, वचनमिश्र और कायमिश्र-प्रयोग-परिणत भी होता है।

प्रयोगपरिणतके संबंधमें जिसप्रकार कहा गया है उसीप्रकार मिश्रपरिणतके संबंधमें भी जानना चाहिये।

विस्रसा—स्वभावतः परिणत एक द्रव्य वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और संस्थानरूपमें परिणत होता है। वर्णपरिणत होनेपर काला, नीला और श्वेतादि वर्णमें, गंध-रूपमें परिणत होनेपर सुगंध और दुर्गन्ध रूपमें, रसरूपमें परिणत होनेपर तिक्तमधुरादि रसोंमें, स्पर्शरूपमें परिणत होनेपर कर्कश-रूक्षादि स्पर्शोमें और संस्थानरूपमें परिणत होनेपर परिमण्डलादि संस्थानरूपोंमें परिणत होता है।

दो द्रव्य परिणत होनेपर प्रयोग-परिणत, मिश्र-परिणत और विस्रसापरिणत होते हैं। अथवा एक द्रव्य प्रयोगपरिणत होता है तो दूसरा मिश्रपरिणत अथवा एक द्रव्य प्रयोगपरिणत हो तो दूसरा द्रव्य विस्रसापरिणत हो अथवा एक द्रव्य मिश्र-परिणत हो और दूसरा विस्रसापरिणत। अथवा एक द्रव्य विस्रसापरिणत हो और एक द्रव्य मिश्रपरिणत हो। दो द्रव्य प्रयोगपरिणत होनेपर मन-प्रयोगपरिणत, वचन प्रयोगपरिणत और काय प्रयोगपरिणत होते है। (१) अथवा एक द्रव्य मनप्रयोग

परिणत और दूसरा वचनप्रयोगपरिणत हो, (२) अथवा एक मन प्रयोगपरिणत और दूसरा कायप्रयोगपरिणत हो (३) अथवा एक वचन प्रयोगपरिणत और दूसरा कायप्रयोगपरिणत हो।

दो द्रव्य मनप्रयोगपरिणत होनेपर सत्यमनःप्रयोगपरिणत, असत्यमनः प्रयोगपरिणत, सत्यमृपामनः प्रयोगपरिणत, असत्य-मृपामनःप्रयोगपरिणत, असत्यमृपामनःप्रयोगपरिणत भी होते हैं।

१—अथवा एक सत्यमनः प्रयोगपरिणत और दूसरा मृपा-मनः प्रयोगपरिणत हो।

२—अथवा एक सत्यमनः प्रयोपरिणत और दूसरा सत्य-मृपामनः प्रयोगपरिणत हो।

३—अथवा एक सत्यमनः प्रयोगपरिणत और दूसरा असत्य मृपामनः प्रयोगपरिणत हो।

४—अथवा एक मृपामनः प्रयोगपरिणत और दूसरा सत्य-मृपामनः प्रयोगपरिणत हो।

५—अथवा एक मृपामनःप्रयोगपरिणत और दूसरा असत्य-मृपामनः प्रयोगपरिणत हो।

६—अथवा एक सत्य मृपामनः प्रयोगपरिणत और दूसरा असत्यमृपामनः प्रयोगपरिणत हो।

सत्यमनःप्रयोगपरिणत होनेपर (१) आरंभ सत्यमनः प्रयोग-परिणत, (२)अनारंभ सत्यमनःप्रयोगपरिणत, (३)संरंभ सत्यमनः प्रयोगपरिणत, (४) असंरंभ सत्यमनःप्रयोगपरिणत, (५) समारंभ सत्यमनः प्रयोगपरिणत और (६) असमारंभ सत्यमनःप्रयोग-परिणत भी हो सकता है। अथवा एकद्रव्य आरंभ सत्यमनः

प्रयोगपरिणत और दूसरा अनारंभ सत्यमनः प्रयोगपरिणत हो। इसप्रकार द्विक् संयोगी विभाजन करना चाहिये।

सर्वार्थसिद्ध पर्यन्त सर्वजीवोंको ये प्रयोग होते है।

दो द्रव्य प्रयोगपरिणतकी तरह ही मिश्रपरिणतके संबंधमें भी जानना चाहिये। विस्रसापरिणतके संबंधमें भी इसीप्रकार पूर्व वर्णनानुसार जानना चाहिये।

तीन द्रव्य प्रयोगपरिणत, मिश्रपरिणत और विस्रसापरिणत होते हैं। (१)अथवा एक द्रव्यप्रयोगपरिणत, अन्य दो मिश्रपरिणत हों, (२)अथवा एक प्रयोगपरिणत और अन्य दो विस्रसापरिणत हों, (३) अथवा दो प्रयोगपरिणत और एक मिश्रपरिणत हो, (४) अथवा दो प्रयोगपरिणत और एक विस्रसापरिणत हो, (५) अथवा एक मिश्रपरिणत और अन्य दो विस्रसापरिणत हों, (६) अथवा दो मिश्रपरिणत और एक विस्रसापरिणत हो, (७) अथवा एक प्रयोगपरिणत, एक मिश्रपरिणत और एक विस्रसा-परिणत हो।

तीन द्रव्य प्रयोगपरिणत होनेपर मनः प्रयोगपरिणत, वचन-प्रयोगपरिणत और कायप्रयोगपरिणत होते है। इनके पूर्ववत् एक संयोगी, द्विक्सयोगी और त्रिक्संयोगी भंग करने चाहिये।

मनःप्रयोगपरिणत होनेपर सत्यमनःप्रयोगपरिणत हो आदि पूर्ववत् सर्वभेद द्विक् संयोगी और त्रिक्संयोगी कहने चाहिये।

चार द्रव्य प्रयोगपरिणत, मिश्रपरिणत और विस्रसापरिणत होते है। (१) अथवा एक प्रयोगपरिणत और अन्य तीन मिश्रपरिणत, (२) अथवा एक प्रयोगपरिणत और अन्य तीन विस्रसापरिणत, (३) अथवा दोप्रयोगपरिणत और दो मिश्रपरि-

अष्ठम शतक

द्वितीय उद्देशक

द्वितीय उद्देशकमें वर्णित विषय

[आशीविष और उसके प्रभेद,—चउवीसदंडकीय जीवोंकी अपेक्षासे विचार, छद्मस्थ दश पदार्थोंको न जानता और न देखता है, ज्ञानके भेद, ज्ञानी और अज्ञानी, ज्ञानी-अज्ञानीके अपेक्षासे सर्व जीवोंका विचार, गति, इन्द्रिय, काय, सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त, भवस्थ, सज्ञी और असंज्ञी जीवोंकी अपेक्षासे ज्ञानी और अज्ञानी जीवोंका अलग-अलग विचार, लब्धि और उसके भेद, लब्धिभेदसे ज्ञानी और अज्ञानीका विचार, साकारोपयोगी, अनाकरोपयोगी, सयोगी, सलेश्यी, आहारक और अनाहारक जीवोंकी अपेक्षासे ज्ञानी व अज्ञानीका विचार, पांच ज्ञान व तीन अज्ञानोंका विषय —ज्ञेय शक्ति, ज्ञान-पर्यायें तथा इनका तारतम्य । प्रश्नोत्तर संख्या ११७]

आशीविष

(प्रश्नोत्तर न० ७०-८४)

(२४७) दो प्रकारके [1]आशीविष (दाढस्थ विषवाले) हैं—जाति आशीविष और कर्म आशीविष ।

१—जिन प्राणियोंके दाढोंमें विष हो उन्हें आशीविष कहा जाता है । ये दो प्रकारके हैं जातिआशीविष और कर्म-आशीविष । सर्प, विच्छू आदि जीव जन्मसे ही आशीविष हैं अतः ये जाति आशीविष कहे जाते हैं । शाप आदिके द्वारा जो दूसरोकी घात करते हैं वे कर्म आशीविष कहे जाते हैं । पर्याप्त पचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्योको तपश्चर्यादिसे इसप्रकारकी लब्धि प्राप्त होती है ।

जाति आशीविप चार प्रकारके हैं। वृश्चिकजातीय आशीविप, मेंढक जातीय आशीविप, सर्पजातीय आशीविप और मनुष्य-जातीय आशीविप।

वृश्चिकजातीय आशीविप अर्द्धभरतक्षेत्र-प्रमाण देहको विषसे विपाक्त कर सकते हैं। यह मात्र उनकी शक्तिका माप है। इतना किसीने किया नहीं, करते नहीं और करेंगे नहीं।

मेंढकजातीय आशीविप भरतक्षेत्र प्रमाण देह अपने विषसे विपाक्तकर सकते हैं। यह मात्र उनकी शक्तिका माप है। इतना किसीने किया नहीं, करते नहीं और करेंगे नहीं।

सर्पजातीय आशीविप जम्बूद्वीप प्रमाण देहको विपाक्त कर सकते हैं। यह मात्र उनकी शक्तिका माप है। इतना किसीने किया नहीं, करते नहीं और करेंगे नहीं।

मनुष्यजातीय आशीविप समयक्षेत्र (ढाई द्वीप) प्रमाण देहको विपाक्त कर सकते हैं। यह मात्र उनकी शक्तिका माप है। इतना किसीने किया नहीं, करते नहीं और करेंगे नहीं।

तिर्यचयोनिक, मनुष्य और देव कर्म आशीविप हैं किन्तु नैरयिक नहीं हैं। तिर्यचयोनिकोंमें भी मात्र संख्येय वर्षायुषी, पर्याप्त, व पंचेन्द्रिय गर्भज तिर्यचयोनिक ही कर्म आशीविप है।

मनुष्य कर्म आशीविपमें गर्भज मनुष्य कर्म आशीविप है। सम्मूर्च्छिम नहीं। गर्भज मनुष्योंमें भी कर्मभूमिमे समुत्पन्न, संख्येय वर्षायुषी, पर्याप्त मनुष्य कर्म आशीविप है अपर्याप्त नहीं।

भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव कर्म आशीविप है। भवनवासियोंमें असुरकुमारसे स्तनितकुमार पर्यन्त अपर्याप्त भवनवासी कर्म आशीविष है।

पर्याप्त नहीं। इसीप्रकार पिशाचादि अपर्याप्त व्यन्तर व अपर्याप्त ज्योतिष्क कर्म-आशीविप है ; पर्याप्त नहीं।

वैमानिक देवोंमें कल्पोपन्न देव कर्म-आशीविप हैं; कल्पातीत नहीं। कल्पोपन्न देवोंमें भी सौधर्मसे सहस्रार तकके अपर्याप्त देव कर्म आशीविप हैं ; पर्याप्त नहीं।

(प्रश्नोत्तर नं० ८५)

(२४८) छद्मस्थ मनुष्य निम्न दश पदार्थोंको प्रत्यक्षज्ञान-द्वारा नहीं जानता और नहीं देखता है :—

(१) धर्मास्तिकाय, (२) अधर्मास्तिकाय, (३) आकाशास्तिकाय, (४) शरीररहित जीव, (५) परमाणु पुद्गल, (६) शब्द, (७) गंध, (८) वायु, (९) भावी जिन और (१०) भावी अन्तकर।

उपर्युक्त पदार्थोंको सम्पूर्ण ज्ञान-दर्शनके धारक अरिहंत, जिन व केवली सर्वभावसे—प्रत्यक्ष ज्ञानद्वारा, जानते तथा देखते हैं।

ज्ञान

(प्रश्नोत्तर नं० ८६-१२६)

(२४९) ज्ञानके पांच भेद हैं :—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान। आभिनिवोधिक (मतिज्ञान) के चार प्रभेद है :—अवग्रह—सामान्य ज्ञान, ईहा—ग्रहित ज्ञानपर विचार, अवाय—ग्रहित ज्ञानका निश्चय, और धारणा—ग्रहित ज्ञानको अविस्मृत रूपसे धारण करना।

विशेप भेद [1]राजप्रश्नीय सूत्रसे जानने चाहिये।

[2]अज्ञानके तीन भेद हैं—मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान और

१—राजप्रश्नीय पृ० १३०-१ पं० ४।

२—विपरीत अथवा मिथ्याज्ञानको अज्ञान कहा जाता है।

विभंगज्ञान। मति-अज्ञानके चार प्रभेद हैं—अवग्रह, इहा, अवाय और धारणा।

अवग्रह दो प्रकारका है—[1]अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह। विशेप वर्णन नन्दीसूत्रके अनुसार जानना चाहिये।

अज्ञानियों और मिथ्यादृष्टियों-द्वारा प्रतिपादित ज्ञान श्रुतअज्ञान कहा जाता है। श्रुतअज्ञानका विस्तृत वर्णन नन्दी-सूत्रसे जानना चाहिये।

[2]विभंगज्ञानके अनेक भेद है :—

[3]ग्रामाकार, नगराकार यावत् सन्निवेशाकार, द्वीपाकार, समुद्राकार, वर्षाकार, वर्षधराकार, पर्वताकार, वृक्षाकार, स्तूपाकार, हयाकार, गजाकार, मनुष्याकार, किन्नराकार, किंपुरुपाकार, महोरगाकार, गांधर्वाकार, वृपभाकार आदि। इसप्रकार पशु-पक्षी-वानर आदि अनेक आकरोंकी अपेक्षासे विभंगज्ञानके भेद किये जा सकते हैं।

ज्ञानी-अज्ञानी

जीव ज्ञानी भी है और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं उनमें कितने ही दोज्ञानी, कितने ही तीन ज्ञानी, कितने ही चार ज्ञानी

१—उपकरणेन्द्रिय-द्वारा प्राप्त शब्दादि विषयोका अव्यक्त ज्ञान व्यंजनावग्रह। "यह कुछ है" ऐसा सामान्य ज्ञान अर्थावग्रह कहा जाता है।

२—मिथ्यादर्शनमोहनीय कर्मके उदयसे विपरीत अवधिज्ञानको विभंगज्ञान कहा जाता है।

३—जिस विभंगज्ञानका विषय—ज्ञेयशक्ति, मात्र एक ग्रामतक सीमित हो उसे ग्रामाकार विभंगज्ञान कहते हैं। इसीप्रकार अन्य आकारोंके लिये भी समझना चाहिये।

और कितने ही एक ज्ञानी हैं। जो दो ज्ञानी हैं वे मति और श्रुतज्ञानी हैं, जो तीन ज्ञानी हैं वे मति, श्रुत और अवधिज्ञानी हैं, जो चार ज्ञानी हैं वे मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञानी हैं और जो एक ज्ञानी हैं वे नियमतः केवलज्ञानी हैं।

जो जीव अज्ञानी हैं उनमें कितने ही दो अज्ञानी और कितने ही तीन अज्ञानी हैं। जो दो अज्ञानी हैं वे मति और श्रुत अज्ञानी है और जो तीन अज्ञानी हैं वे मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी तथा विभंगज्ञानी हैं।

नैरयिक ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। जो [1]ज्ञानी हैं वे नियमतः मति, श्रुत और अवधिज्ञानी हैं और जो अज्ञानी हैं उनमें कितने ही दो अज्ञानी—मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी और कितने ही तीन अज्ञानो—मति-श्रुत अज्ञानी और विभंगज्ञानी हैं।

भवनपतियोंमें भी स्तनितकुमारों तक नैरयिकोंकी तरह ही ज्ञानी व अज्ञानी दोनों हैं। जो ज्ञानी हैं वे नियमतः तीन ज्ञानी और जो अज्ञानी हैं उनमें नैरयिकों की तरह विभेद जानने चाहिये।

पृथ्वीकायादि पांच स्थावर ज्ञानी नहीं परन्तु अज्ञानी हैं। यह नियम है। ये दो अज्ञानी हैं—मति और श्रुतअज्ञानी।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव ज्ञानी भी है और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं वे मति-श्रुतज्ञानी हैं और जो अज्ञानी हैं वे मति-श्रुत अज्ञानी हैं।

१—सम्यग्दृष्टि नैरयिकोंको भवप्रत्यय अवधिज्ञान होता है। अतः वे अवश्यमेव तीन ज्ञानके धारक होते हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच ज्ञानी भी है और अज्ञानी भी। जो ज्ञानी हैं उनमें कितने ही दो मति-श्रुत ज्ञानी है और कितने ही मति-श्रुत और अवधिज्ञानी है। जो अज्ञानी है उनमें कितने ही मति-श्रुत अज्ञानी और कितने ही मति-श्रुत अज्ञानी व विभंगज्ञानी है।

मनुष्य जीवकी तरह ज्ञानी व अज्ञानी है। इनमें पांच ज्ञान व तीन अज्ञान विभेदपूर्वक है।

वाणव्यन्तरोंमें नैरयिकोंकी तरह ही तीन ज्ञानका नियम व तीन अज्ञानका विभाजन है। ज्योतिष्क व वैमानिकोंमे तीन ज्ञान व तीन अज्ञानका नियम है।

सिद्ध ज्ञानी हैं अज्ञानी नहीं। उनमें केवल एक ज्ञान है।

गतिकी अपेक्षासे—संमुत्पद्यमान नैरयिक जीव ज्ञानी व अज्ञानी दोनों हैं। इनमे तीन ज्ञानका नियम व तीन अज्ञानका विभाजन है।

तिर्यंच-गति समुत्पद्यमान जीवोंमें दो ज्ञान और दो अज्ञानका, मनुष्य-गति समुत्पद्यमानमें तीन ज्ञानका विभाजन व दो अज्ञान का नियम, देवगति समुत्पद्यमानमें तीन ज्ञानका नियम व तीन अज्ञानका विभाजन है। सिद्धगति समुत्पद्यमानमें मात्र केवल-ज्ञानका नियम है।

सइन्द्रिय जीवोंको विभाजनसे चार ज्ञान व तीन अज्ञान होते है।

इन्द्रियों की अपेक्षा से—एकेन्द्रियोंमें पृथ्वीकायिक की तरह दो अज्ञान का नियम, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय में

दो ज्ञान व दो अज्ञान का नियम, [1]पंचेन्द्रिय में चार ज्ञान और तीन अज्ञान का विभाजन है। अनिन्द्रिय सिद्धों में केवलज्ञान का नियम है।

कायकी अपेक्षा से—सर्व सकायिक जीवों में पांच ज्ञान व तीन अज्ञानका विभाजन करना चाहिये।

पृथ्वीकायिकसे वनस्पतिकायिक पर्यन्त जीवोंमें दो अज्ञान नियमतः हैं। त्रसकायमें पांच ज्ञान व तीन अज्ञानका विभाजन है।

अकायिक—सिद्ध नियमतः केवलज्ञानी है।

सूक्ष्म व वादरकी अपेक्षासे—सूक्ष्म जीव पृथ्वीकायिककी तरह अज्ञानी हैं इनमें नियमतः दो अज्ञान हैं।

वादर जीव—सकायिकोंकी तरह है। इनमें पाच ज्ञान व तीन अज्ञानोंका विभाजन है।

नो सूक्ष्म-नो बादर—सिद्ध जीवोंमें नियमतः केवलज्ञान है।

पर्याप्तकी अपेक्षा से—पर्याप्त जीव ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी है। सकायिककी तरह पांच ज्ञान व तीन अज्ञानका विभाजन है।

पर्याप्त नैरयिकोंमें तीन ज्ञान और तीन अज्ञानका नियम है। स्तनितकुमार-पर्यन्त दश भवनपतियोंमें इसीप्रकार विभाजन है।

पर्याप्त पृथ्वीकायिक आदि स्थावरों तथा चतुरिन्द्रिय पर्यन्त पर्याप्त विकलेन्द्रिय जीवोंमें नियमतः दो अज्ञान है।

१—इन्द्रियद्वारमें इन्द्रियोंके उपभोगकी अपेक्षासे विभाजन किया गया है। केवलज्ञानी सइन्द्रिय पंचेन्द्रिय होते हैं परन्तु उनका ज्ञान अतीन्द्रिय होता है अतः वे इन्द्रियद्वारके अन्तर्गत नहीं आते हैं।

पर्याप्त पंचेंद्रिय तिर्यंचयोनिकोंमें तीन ज्ञान व तीन अज्ञान का विभाजन है। पर्याप्त मनुष्योंमें सकायिककी तरह पाच ज्ञान व तीन अज्ञानका विभाजन है।

पर्याप्त वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकोंमें नैरयिकों की तरह तीन ज्ञान व तीन अज्ञानका नियम है।

अपर्याप्तकी अपेक्षा से—अपर्याप्त जीव ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी है। उनमे तीन ज्ञान व तीन अज्ञानका विभाजन है।

अपर्याप्त नैरयिकोंमें तीन ज्ञानका नियम व तीन अज्ञान का विभाजन है। इसीतरह स्तनितकुमार-पर्यन्त भवनपतियोंमें जानना चाहिये।

अपर्याप्त पृथ्वीकायसे लेकर वनस्पतिकाय-पर्यन्त पांच स्थावरोंमें दो अज्ञानका नियम है। [1]अपर्याप्त द्वीन्द्रियसे अपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्यन्त जीवोंमें दो ज्ञान और दो अज्ञानका नियम है। अपर्याप्त मनुष्योंमें तीन ज्ञानका विभाजन और दो अज्ञानका नियम है।

अपर्याप्त वाणव्यन्तरोंमें नैरयिकोंकी तरह तीन ज्ञानका नियम और तीन अज्ञानका विभाजन है।

अपर्याप्त ज्योतिष्क और वैमानिकोंमें तीन ज्ञान और तीन अज्ञानका नियम है।

नो पर्याप्त और नो अपर्याप्त जीवोंमें केवलज्ञानका नियम है।

भवस्थकी अपेक्षासे—भवस्थ जीव ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। इनमें तीन ज्ञानका नियम व तीन अज्ञानका विभाजन है।

१—अपर्याप्त द्वीन्द्रियोंमें किसीको सास्वादन सम्यग्दर्शनकी सम्यभावना रहती है ; इस अपेक्षासे ये ज्ञानी और अज्ञानी दोनों कहे गये हैं।

नैरयिकभवस्थमें तीन ज्ञानका नियम व तीन अज्ञानका विभाजन है, तिर्यंचभवस्थमें तीन ज्ञान और तीन अज्ञानका विभाजन है। मनुष्यभवस्थमें पांच ज्ञान और तीन अज्ञानका विभाजन है। देवभवस्थामें तीन ज्ञानका नियम और तीन अज्ञानका विभाजन है।

भवसिद्धिककी अपेक्षासे—भवसिद्धिक ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। इनमें पाच ज्ञान व तीन अज्ञानका विभाजन है।

अभवसिद्धिकज्ञानी नहीं हैं परन्तु अज्ञानी हैं। इनमें तीन अज्ञानका विभाजन है।

नो भवसिद्धिक और नो अभवसिद्धिक—सिद्धोंमें केवलज्ञान का नियम है।

संज्ञी-असंज्ञीकी अपेक्षासे – संज्ञीमें सइन्द्रियकी तरह चार-ज्ञान व तीन अज्ञानका विभाजन है। असंज्ञीमें द्वीन्द्रियकी तरह दो ज्ञान और दो अज्ञानका नियम है।

नो संज्ञी और नो असंज्ञीमें केवलज्ञानका नियम है।

लब्धि और उसके भेद

(प्रश्नोत्तर नं० १२७-१५७)

(२५०) लब्धि—कर्मक्षयसे ज्ञानादिगुणोंकी संप्राप्तिके निम्न दश भेद है :—

(१) ज्ञानलब्धि, (२) दर्शनलब्धि, (३) चारित्रलब्धि, (४) चारित्राचारित्रलब्धि, (५) दानलब्धि, (६) लाभलब्धि, (७) भोगलब्धि, (८) उपभोगलब्धि, (९) वीर्यलब्धि, (१०) इन्द्रियलब्धि।

ज्ञानलब्धि पांच प्रकारकी है—मतिज्ञानलब्धि, श्रुतज्ञानलब्धि, अवधिज्ञानलब्धि, मनःपर्ययज्ञानलब्धि और केवलज्ञानलब्धि।

दर्शनलब्धि तीन प्रकारकी है—समदर्शनलब्धि, मिथ्यादर्शन-लब्धि और समिथ्यादर्शनलब्धि।

चारित्रलब्धि पाच प्रकारकी है—सामायिकचारित्रलब्धि, छेदोपस्थानचारित्रलब्धि, परिहारविशुद्धीचारित्रलब्धि, सूक्ष्म-संपरायचारित्रलब्धि और यथाख्यातचारित्रलब्धि।

चारित्राचारित्रलब्धि, दानलब्धि, लाभलब्धि, भोगलब्धि और उपभोगलब्धिके विभेद नहीं है।

वीर्यलब्धि तीन प्रकारकी है—बालवीर्यलब्धि, पंडितवीर्यलब्धि और बालपंडितवीर्यलब्धि।

इन्द्रियलब्धि पांच प्रकारकी है—श्रोत्रेन्द्रियलब्धि, चक्षु-इन्द्रियलब्धि, घ्राणेन्द्रियलब्धि, रसनेन्द्रियलब्धि और स्पर्शेन्द्रियलब्धि।

लब्धिसंप्राप्त ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

, ज्ञानलब्धिसंप्राप्त जीव ज्ञानी हैं; अज्ञानी नहीं। इनमें कितने ही दो ज्ञानी, तीन ज्ञानी, चार ज्ञानी और केवलज्ञानी हैं। ज्ञानलब्धि अप्राप्त जीव अज्ञानी हैं; ज्ञानी नहीं। इनमें कितने ही दो अज्ञानयुक्त, कितने ही तीन अज्ञानयुक्त हैं। आभिनिबोधिक ज्ञानलब्धिसंपन्न ज्ञानी हैं परन्तु अज्ञानी नहीं। इनमें कितने हीं दो ज्ञानी, कितने ही तीन ज्ञानी और कितने ही चार ज्ञानी हैं। आभिनिबोधिकज्ञानलब्धिरहित जीव ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी है वे एकज्ञानी—केवलज्ञानी है। यह नियम है। जो अज्ञानी है उनमें कितने ही विभाजनसे दो ज्ञानी व तीन अज्ञानी है।

मतिज्ञानलब्धिसम्पन्नकी तरह ही श्रुतज्ञानलब्धिसम्पन्न और मतिज्ञानलब्धि रहितकी तरह ही श्रुतज्ञानलब्धि रहितके विषयमें जानना चाहिये।

अवधिज्ञानलब्धिसम्पन्न ज्ञानी हैं परन्तु अज्ञानी नहीं। इनमें कितने ही तीन ज्ञानी और कितने ही चार ज्ञानी हैं। जो तीन ज्ञानी हैं वे मति, श्रुत और अवधिज्ञानी हैं और जो चार ज्ञानी हैं वे मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञानी हैं।

अवधिज्ञानलब्धिअलब्धक ज्ञाना भी है और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं उनमें अवधिज्ञानको छोड़कर शेष चार ज्ञानों का विभाजन है। जो अज्ञानी उनमें तीनों अज्ञानोंका विभाजन है।

मनःपर्ययज्ञानलब्धिसम्पन्न ज्ञानी हैं परन्तु अज्ञानी नहीं। इनमें कितने ही तीन ज्ञानसम्पन्न और कितने ही चार ज्ञान-सम्पन्न हैं। जो तीन ज्ञानसंपन्न है वे मति, श्रुत और मनःपर्यय ज्ञानयुक्त हैं और जो चार ज्ञानसंपन्न हैं वे मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञानी हैं।

मनःपर्ययज्ञानलब्धि अलब्धक ज्ञानी भी है और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं उनमें मनःपर्ययको छोड़कर विभाजनसे चार ज्ञान है और जो अज्ञानी है उनमें विभाजनसे तीन अज्ञान हैं।

केवलज्ञानलब्धिसंपन्न ज्ञानी है परन्तु अज्ञानी नहीं। इनमें मात्र केवलज्ञानका नियम है।

केवलज्ञानलब्धि अलब्धक ज्ञानी भी है और अज्ञानी भी है। जो ज्ञानी है उनमें विभाजन से केवलज्ञानको छोड़कर शेष

चार ज्ञान हैं और जो अज्ञानी है उनमें विभाजनसे तीनों अज्ञान हैं।

अज्ञानलब्धियुक्त जीवोंमें ज्ञानी नहीं हैं परन्तु अज्ञानी है। इनमें विभाजनसे तीनों अज्ञान है।

अज्ञानलब्धिअलब्धक ज्ञानी है परन्तु अज्ञानी नहीं। इनमें विभाजनसे पांचों ज्ञान हैं।

जिसप्रकार अज्ञानलब्धिलब्धक और अज्ञानलब्धि अलब्धक कहे गये हैं उसीप्रकार मतिअज्ञान व श्रुतअज्ञानलब्धिलब्धक व अलब्धक जानने चाहिये। विभंगज्ञानलब्धिसंप्राप्त जीवोंमें तीन अज्ञानका नियम और उसके अलब्धक जीवोंमें पांच ज्ञानका विभाजन व दो अज्ञानका नियम है।

दर्शनलब्धियुक्त जीव ज्ञानी भी है और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं उनमें विभाजनसे पांच ज्ञान है। जो अज्ञानी हैं उनमें विभाजनसे तीन अज्ञान हैं।

दर्शनलब्धिके अलब्धक नहीं है। सम्यक्दर्शनलब्धियुक्त जीवोंमें विभाजनसे पांच ज्ञान है। इसके अलब्धकमें विभाजनसे तीन अज्ञान हैं।

मिथ्यादृष्टिलब्धियुक्तजीव ज्ञानी नही हैं परन्तु अज्ञानी है। इनमें विभाजनसे तीन अज्ञान हैं। अलब्धकमें विभाजनसे पांच ज्ञान व तीन अज्ञान हैं।

समिथ्यादृष्टिलब्धिलब्धक और अलब्धकको मिथ्यादृष्टि लब्धियुक्त और अलब्धियुक्तकी तरह जानने चाहिये।

चारित्रलब्धिसंपन्न जीव ज्ञानी हैं परन्तु अज्ञानी नहीं।

इनमें विभाजनसे पांच ज्ञान हैं। इसके अलब्धकमें मनःपर्ययको छोड़कर विभाजनसे चार ज्ञान व तीन अज्ञान है।

सामायिकचारित्रलब्धिसंपन्नमें विभाजनसे चार ज्ञान है। इसके अलब्धकमें विभाजनसे पांच ज्ञान व तीन अज्ञान है।

सामायिकचारित्रलब्धियुक्तकी तरह ही छेदोपस्थान परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसंपराय तथा यथाख्यातचारित्रलब्धि-युक्त जानने चाहिये। मात्र यथाख्यातचारित्रलब्धि-लब्धकमें विभाजनसे पांच ज्ञान हैं। चारित्राचारित्रलब्धि लब्धकमें जीव ज्ञानी हैं परन्तु अज्ञानी नहीं। इनमें विभाजनसे कितने ही दो ज्ञानी व तीन ज्ञानी हैं। जो दो ज्ञानी हैं वे मति व श्रुत ज्ञानी हैं और जो तीन ज्ञानी है वे मति, श्रुत व अवधिज्ञानी हैं। इसके अलब्धकमें विभाजनसे पांच ज्ञान व तीन अज्ञान हैं।

दानलब्धिसंप्राप्त जीवोंमें विभाजनसे पांच ज्ञान व तीन अज्ञान हैं। इसके अलब्धक ज्ञानी हैं परन्तु अज्ञानी नहीं। ज्ञानीमें भी केवलज्ञानी हैं। यह नियम है।

इसीतरह लाभलब्धि, भोगलब्धि, उपभोगलब्धि व वीर्य-लब्धि-संप्राप्त जीवोंको जानना चाहिये।

बालवीर्यलब्धि संप्राप्त जीव ज्ञानी भी है और अज्ञानी भी हैं। इनमें विभाजनसे तीन ज्ञान व तीन अज्ञान है। इसके अलब्धकमें विभाजनसे पाचों ज्ञान हैं।

पंडितवीर्यलब्धिलब्धकमें विभाजनसे पाच ज्ञान है। इसके अलब्धकमें मनःपर्यय ज्ञानको छोड़कर विभाजनसे चार ज्ञान व तीन अज्ञान है।

बालपंडितवीर्यलब्धि-लब्धकमें विभाजनसे तीन ज्ञान हैं। इसके अलब्धकमें विभाजनसे पांच ज्ञान व तीन अज्ञान हैं।

इन्द्रियलब्धिसंप्राप्त जीवोंमें विभाजनसे चार ज्ञान व तीन अज्ञान हैं। इसके अलब्धकमें केवलज्ञानका नियम है।

श्रोत्रेन्द्रियलब्धिलब्धकमें विभाजनसे चार ज्ञान व तीन अज्ञान हैं। इसके अलब्धकमें ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं उनमें कितने ही दो ज्ञानी और कितने ही एक ज्ञानी—केवलज्ञानी हैं। जो अज्ञानी हैं वे नियमतः मति-श्रुत अज्ञानी हैं।

चक्षुइन्द्रियलब्धि-लब्धक और घ्राणेन्द्रियलब्धिलब्धकमें भी श्रोत्रेन्द्रियलब्धिलब्धककी तरह ही जानना चाहिये।

रसनेन्द्रियलब्धि-लब्धकमें विभाजनसे चार ज्ञान व तीन अज्ञान हैं। इसके अलब्धकमें जो ज्ञानी हैं उनमें केवलज्ञानका और जो अज्ञानी हैं उनमें दो अज्ञानका नियम है।

स्पर्शेन्द्रियलब्धि-लब्धकमें इन्द्रियलब्धि-लब्धककी तरह विभाजनसे चार ज्ञान व तीन अज्ञान हैं। इसके अलब्धकमें नियमतः केवलज्ञान है।

(प्रश्नोत्तर नं० १५८-१६९)

(२५१) साकारोपयोगीमें विभाजनसे पांच ज्ञान व तीन अज्ञान हैं। मति-श्रुत साकारोपयोगीमें विभाजनसे चार ज्ञान हैं। अवधिसाकारोपयोगी और मनःपर्ययसाकारोपयोगीमें विभाजनसे तीन अथवा चार ज्ञान होते हैं। केवलज्ञानसाकारोपयोगीमें नियमतः केवलज्ञान है।

मतिअज्ञान व श्रुतअज्ञान साकारोपयोगीमें विभाजनसे तीन अज्ञान हैं और विभंगसाकारोपयोगीमें नियमतः तीन अज्ञान हैं।

अनाकारोपयोगीमें विभाजनसे पांच ज्ञान व तीन अज्ञान है। चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन अनाकारोपयोगीमें विभाजनसे चार ज्ञान व तीन अज्ञान है। अवधिदर्शन अनाकारोपयोगीमें जो ज्ञानी है उनमें विभाजनसे चार ज्ञान और जो अज्ञानी है उनमें नियमतः तीन अज्ञान हैं।

केवलदर्शन अनाकारोपयोगीमें केवलज्ञानका नियम है।

सयोगीमें सकायिककी तरह विभाजनसे पांच ज्ञान व तीन अज्ञान है। इसीतरह मनयोगी, वचनयोगी और काययोगीके लिये जानना चाहिये। अयोगीमें सिद्धोंकी तरह केवलज्ञानका नियम है।

सलेश्यीमें सकायिककी तरह विभाजनसे पांच ज्ञान व तीन अज्ञान है। कृष्ण, नील, कापोत, तेजस व पद्मलेश्यीमें सकायिक सइन्द्रियकी तरह विभाजनसे चार ज्ञान व तीन अज्ञान है।

शुक्ललेश्यीमे सलेश्यीकी तरह विभाजनसे पांच ज्ञान व तीन अज्ञान हैं। अलेश्यीमें नियमतः केवलज्ञान है।

सकषायीमें सइन्द्रिय की तरह जानना चाहिये।

इसीतरह क्रोध, मान, माया और लोभ-काषायिकोंके लिये जानना चाहिये।

अकषायीमें विभाजनसे पांच ज्ञान हैं।

सइन्द्रियकी तरह ही वेदसहित स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी जानने चाहिये।

अवेदीमें अकषायिककी तरह विभाजनसे पांच ज्ञान है।

आहारकमें विभाजनसे पांच ज्ञान व तीन अज्ञान है। अनाहारकमें मनःपर्ययको छोड़कर विभाजनसे चार ज्ञान व तीन अज्ञान है।

ज्ञान-अज्ञान और उनकी ज्ञेय-शक्ति

(प्रश्नोत्तर नं० १७०-१७७)

(२५२) मतिज्ञानकी ज्ञेय शक्ति समासरूपमें चार प्रकारकी है—द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे और भावसे। आभिनिबोधिक—मतिज्ञानी, द्रव्यकी अपेक्षासे समुच्चय रूपसे सर्व द्रव्य जानता तथा देखता है, क्षेत्रापेक्षासे समुच्चयरूपसे सर्व क्षेत्रको देखता तथा जानता है। इसीतरह काल और भावकी अपेक्षासे जानना चाहिये।

श्रुतज्ञानकी ज्ञेय शक्ति समासरूपमें चार प्रकारकी है—द्रव्यसे,क्षेत्रसे कालसे और भावसे। श्रुतज्ञानी द्रव्यापेक्षासे उपयोग-सहित सर्व द्रव्योंको सर्वभावसे जानता तथा देखता है। इसी-प्रकार क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षासे भी जानना चाहिये।

अवधिज्ञानकी शक्ति समासरूपमें चार प्रकारकी है द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे और भावसे। अवधिज्ञानी द्रव्यापेक्षासे रूपी पदार्थोंको जानता तथा देखता है। [1]क्षेत्र, काल और भाव आदिकी अपेक्षासे नन्दीसूत्रके अनुसार जानना चाहिये।

मनःपर्ययज्ञानकी ज्ञेय शक्ति समासरूपमें चार प्रकारकी हैं—

१—द्रव्यसे अवधिज्ञानी जघन्य तेजस और भाषा द्रव्योंके अन्तरमें स्थित अनन्त सूक्ष्म पुद्‌गल द्रव्योंको तथा उत्कृष्ट बादर और सूक्ष्म सर्व द्रव्योंको जानते हैं। क्षेत्रसे अवधिज्ञानी जघन्य अंगुलका असख्यातवां भाग तथा उत्कृष्ट अलोकके असंख्य लोकप्रमाण खडको जानता तथा देखता है। कालसे जघन्य आवलिकाके असंख्येय भागको तथा उत्कृष्ट असंख्येय उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालचक्रोंके अतीत व अनागतकालके रूपी-द्रव्योंको जानता तथा देखता है। भावसे जघन्य व उत्कृष्ट अनन्त भावोंको जानता तथा देखता है।

द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे और भावसे। ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानी अनन्त प्रादेशिक अनन्त स्कंधोंको जानता तथा देखता है। शेष सर्व वर्णन नन्दीसूत्रके अनुसार जानना चाहिये।

केवलज्ञानकी ज्ञेय शक्ति समासरूपमें चार प्रकारकी है:—द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे और भावसे। केवलज्ञानी द्रव्यसे सर्व द्रव्योंको जानता तथा देखता है। इसी तरह भावपर्यन्त जानना चाहिये।

मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभंगज्ञानकी ज्ञेय शक्ति समास रूपसे चार प्रकारकी है :—

मतिअज्ञानी द्रव्यसे मति अज्ञानके विषयी द्रव्योंको जानता व देखता है। इसीतरह क्षेत्र, काल और भावसे जानना चाहिये।

श्रुतअज्ञानी द्रव्यसे क्षेत्रसे, कालसे और भावसे श्रुतअज्ञानके द्रव्योंको जानता तथा देखता है। इसीतरह क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षासे जानना चाहिये।

विभंगज्ञानी द्रव्यसे विभंगज्ञानपरिगत द्रव्योंको जानता तथा देखता है। इसीप्रकार क्षेत्र, काल और भावसे जानना चाहिये।

---

१ - द्रव्यसे ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी ढाईद्वीपमें स्थित संज्ञी, पचेन्द्रिय-पर्याप्त जीवोंके मनरूपमें परिणत मनोवर्गणाके अनन्त स्कंधोंको देखता है। क्षेत्रसे जघन्य अंगुलका असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट तिर्यक् मनुष्यलोकमें स्थित संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोके मनोगत भावोंको जानता तथा देखता है। कालसे जघन्य पल्योपमके असंख्येय भागको और उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्येय भाग जितने कालके अतीत व अनागतकालको जानता तथा देखता है और भावसे—जघन्य सर्व भावोंके अनन्तवें भागको तथा उत्कृष्ट अनन्त भावोंको जानता तथा देखता है।

ऋजुमतिकी अपेक्षासे विपुलमति विशुद्ध और स्पष्ट जानता तथा देखता है।

ज्ञानस्थिति और पर्यायें

(प्रश्नोत्तर नं० १७८-१८६)

(२५३) ज्ञानी दो प्रकारके हैं—सादिसपर्यवसित और सादि अपर्यवसित। सादिसपर्यवसित ज्ञानी जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट छासठ सागरोपमसे कुछ अधिक समय ज्ञानावस्थामें रहते हैं। (सादि अपर्यवसित केवलज्ञानी सदैव ज्ञानी रहते हैं। उनका ज्ञान नष्ट नहीं होता है।)

ज्ञानी, मतिज्ञानी आदि पाच ज्ञानी, अज्ञानी, मतिअज्ञानी आदि तीन अज्ञानी इन दशोंका स्थितिकाल व अल्पत्वबहुत्व प्रज्ञापनासूत्रसे व अन्तरकाल जीवाभिगम सूत्रसे जानना चाहिये। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञानकी अनन्त पर्यायें हैं। मतिज्ञानकी पर्यायोंकी तरह ही मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान व विभंगज्ञानकी भी अनन्त पर्यायें हैं।

उपर्युक्त पाच ज्ञानोंकी पर्यायोंमें मनःपर्यवज्ञानकी पर्यायें सबसे अल्प हैं। इनसे अवधिज्ञान, श्रुतज्ञान, मतिज्ञान और केवलज्ञान की पर्यायें उत्तरोत्तर अनन्तगुणित अधिक हैं।

तीन अज्ञानोंमें सबसे अल्प विभंगज्ञान की पर्यायें हैं। इनसे श्रुतअज्ञान व मतिअज्ञान की पर्यायें उत्तरोत्तर अनन्त-गुणित अधिक हैं।

पांच ज्ञान व तीन अज्ञानोंमें सबसे अल्प मनःपर्यवज्ञानकी पर्यायें हैं। इनसे विभंगज्ञान, अवधिज्ञान, श्रुतअज्ञान व मति अज्ञानकी पर्यायें एक दूसरेसे उत्तरोत्तर अनन्तगुणित अधिक हैं। मतिअज्ञानकी पर्यायोंसे मतिज्ञानकी पर्यायें विशेषाधिक हैं। इनसे केवलज्ञानकी पर्यायें अनन्त गुणित हैं।

अष्टम शतक

तृतीय उद्देशक

तृतीय उद्देशकमें वर्णित विषय

[वृक्षोंके प्रकार, किसी जीवके खण्ड २ कर देनेपर खंडोके मध्यभाग आत्म-प्रदेशोंसे स्पृष्ट होते हैं ? जीव-प्रदेशोंको शस्त्रादिसे पीड़ा नहीं होती। प्रश्नोत्तर संख्या ५]

*वृक्षोंके प्रकार

(प्रश्नोत्तर नं० १८७-१९१)

(२५४) वृक्ष तीन प्रकारके हैं—संख्येय जीववाले, असंख्येय जीववाले और अनन्त जीववाले।

संख्येय जीववाले वृक्ष अनेक प्रकारके हैं। जैसे—ताल, तमाल, तक्कली, तेतली आदि।

असंख्येय जीववाले वृक्ष दो प्रकारके हैं :—एक गुठलीवाले और वहुत गुठलीवाले।

एक गुठलीवाले वृक्ष अनेक प्रकारके हैं ; जैसे—नीम, आम्र, जामुन आदि। बहुत गुठलीवाले वृक्ष अनेकप्रकारके हैं ; जैसे—अमरूद, तिंदुक, दाड़िम आदि। अनन्त जीववाले वृक्ष अनेक प्रकारके है ; जैसे—आलू, मूला, सिंगबेर (अदरख) आदि।

संख्येय जीववाले, असंख्येय जीववाले और अनन्त जीववाले वृक्षोंके अनेक नाम प्रज्ञापनासूत्रमें गिनाये हुए है। उन नामोंके अतिरिक्त भी अनेक वृक्ष हैं।

* वृक्ष शब्दका प्रयोग वनस्पतिमात्रके लिये हुआ है।

जीवप्रदेश

(प्रश्नोत्तर नं० १९२-१९३)

(२५५) किसीके द्वारा यदि कछुआ या कछुओंकी पंक्ति, गोह या गोहोंकी पंक्ति, गाय-बैल या गाय-बैलोंकी पंक्ति, मनुष्य या मनुष्योंकी पंक्ति, भैंस या भैंसोंकी पंक्तिके दो, तीन, चार, इसतरह संख्येय टुकड़े कर दिये गये हों तो भी उन विभिन्न खण्डोंके मध्यभाग जीवप्रदेशोंसे स्पर्शित होते हैं।

यदि कोई पुरुप उन विभिन्न टुकड़ोंके अन्तराल—मध्य भागको, हाथ, पाव, अंगुली, शलाका, काष्ठ या डंडे आदिसे छूए, धक्का दे, खीचे अथवा किसी तीक्ष्ण शस्त्रद्वारा छेदन करे या अग्नि-द्वारा जलाए तो वह उन जीवप्रदेशोंको अल्प या अधिक, कुछ भी पीड़ा नहीं दे सकता और न जला ही सकता है। क्योंकि जीवप्रदेशों पर शस्त्रादिका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(प्रश्नोत्तर नं० १९४-१९५)

(२५६) आठ पृथ्विया है—रत्नप्रभादि सात नर्कभूमियां और आठवीं ईपत्प्राग्भारा। रत्नप्रभा पृथ्वी [1]चरम या अचरम नहीं है। यहाँ चरम निर्विशेप है। रत्नप्रभाकी तरह वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिये। स्पर्शचरमकी अपेक्षासे वैमानिक देव चरम भी हैं और अचरम भी हैं।

१—चरम—पर्यन्तवर्ती, अचरम—मध्यवर्ती। चरमत्व और अचरमत्व अन्यवस्तु-सापेक्ष हैं। यहा किसी अन्य वस्तुका कथन नहीं है अतः ये भूमियाँ चरम अथवा अचरम नहीं कही जा सकती। इस संबंधमें प्रज्ञापनासूत्रके चरम पदमें बहुत विस्तृत वर्णन है।

अष्टम शतक

चतुर्थ-पंचम उद्देशक

चतुर्थ उद्देशक

चतुर्थ उद्देशकमें वर्णित विषय

[पांच क्रियायें । प्रश्नोत्तर संख्या १]

(प्रश्नोत्तर नं० १९६)

(२५७) क्रिया पांच प्रकारकी है:—कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपात क्रिया। विशेष ज्ञानके लिए प्रज्ञापनासूत्रका सम्पूर्ण क्रियापद जानना चाहिये।

पंचम-उद्देशक

पंचम उद्देशकमें वर्णित विषय

[आजीविकोंके प्रश्न सामायिकस्थ श्रावक और उसके भंड, स्त्री, धन आदि—विस्तृत विवेचन, श्रावक और स्थूल प्राणातिपातादिका प्रत्याख्यान, आजीविकोंके सिद्धान्त—बारह आजीविक श्रावक, श्रमणोपासकोको वर्जनीय पन्द्रह कर्मादान । प्रश्नोत्तर संख्या ११]

सामायिकस्थ श्रावक और परिग्रह

(प्रश्नोत्तर नं० १९७-२००)

(२५८) [1]सामायिकस्थ श्रमणोपासकके कोई भंडोपकरण अपहरण करले और सामायिक पूर्ण होनेके पश्चात् यदि वह उनकी

---

१ आजीविक श्रमणोपासक द्वारा पूछे गये प्रश्नोंके उत्तर ।

खोज—छानवीन करता हो तो वह अपने ही भंडोपकरणकी गवेपणा करता है परन्तु अन्यके नहीं। यद्यपि शीलव्रत, गुणव्रत, प्रत्याख्यान और पौपधोपवाससे उसके भंड अभंड हो जाते हैं और सामायिकमें उसकी भावना भी ऐसी ही हो जानी है। वह सोचता है—चाँदी, सोना, कास्य, वस्त्र, विपुल धन, रत्न, मणि, मौक्तिक, शंख, शील, प्रवाल, और स्फटिक रत्न आदि मेरे नहीं है। ये सारभूत द्रव्य नहीं है परन्तु वह उनसे ममत्वका त्याग नहीं करता। ममत्व-त्याग न करनेसे वह व्रतके पीछे पुनः उसीके पदार्थोंकी गवेपणा करता है।

उपाश्रयमें सामायिकस्थ श्रमणोपासककी जाया (पत्नी) के साथ कोई अन्य व्यक्ति विपय-सेवन करता है तो वह श्रमणोपासककी जायाके साथ ही विपय-सेवन करता है परन्तु अजाया (अपत्नी) के साथ नहीं। यद्यपि शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण-व्रत, प्रत्याख्यान और पौपधोपवाससे जाया अजाया हो जाती है और उस समय उसकी भी यही भावना रहती है—मेरे माता, पिता, भ्राता, भगिनि, भार्या, पुत्र, पुत्री, और पुत्रवधू आदि कोई नहीं है परन्तु उसका स्नेह-बंधन नहीं टूटता। अतः व्रता-नन्तर पुनः वह उनमें मोहसे आच्छन्न हो जाता है। इसलिये वह उसीकी जायाका सेवन करता है; अजायाका नहीं।

प्रत्याख्यान और उसके भंग

(प्रश्नोत्तर नं० २०१-२०७)

(२५६) श्रमणोपासकको प्रथम स्थूल प्राणातिपातका अप्रत्या-ख्यान होता है। प्रत्याख्यान करके वह अतीतका प्रतिक्रमण

करता है, वर्तमानका संवरण करता है और अनागतका प्रत्याख्यान करता है।

अतीतकालका [1]तीन करण तीन योगसे, तीन करण दो योगसे और-यावत् एक करण एक योगसे प्रतिक्रमण करता करता है। त्रिविध-त्रिविध प्रकारसे अर्थात् वह करे नहीं, करवावे नहीं और करतेको अनुमोदित करे नहीं, मनसे, वचनसे और कायासे, तीन करण दो योगसे—करे नहीं, करवावे नहीं, करतेको अनुमोदित करे नहीं, मनसे और वचनसे, अथवा करे नहीं, करवावे नहीं, करतेको अनुमोदित करे नहीं मनसे और कायासे, अथवा करे नहीं, करवावे नहीं, करतेको अनुमोदित करे नहीं वचनसे व कायासे।

तीन करण एक योगसे—करे नहीं, करवावे नहीं, करतेको अनुमोदित करे नहीं मनसे, अथवा करे नहीं, करवावे नहीं और और करतेको अनुमोदित करे नहीं वचनसे, अथवा करे नहीं, करवावे नहीं, करतेको अनुमोदित करे नहीं, कायासे।

दो करण तीन योगसे—करे नहीं, करवावे नहीं मनसे वचन से और कायासे अथवा करे नहीं, और करते हुएको अनुमोदित करे नही, मनसे, वचनसे और कायासे, अथवा करवावे नहीं और करते हुएको अनुमोदित करे नहीं मनसे, वचनसे और कायासे।

दो करण दो योगसे—करे नहीं और करवावे नहीं, मनसे, और वचनसे, अथवा करे नहीं, करवावे नहीं, मनसे और कायासे, अथवा करे नहीं, करवावे नहीं वचनसे और कायासे अथवा करे

---

1 तीन करण—नहीं करना, करवाना तथा करते हुएका समर्थनक नहीं करना। तीन योग—मन, वचन और शरीर।

नहीं और करतेको अनुमोदित करे नहीं मनसे और वचनसे, अथवा करे नहीं और करतेको अनुमोदित करे नहीं मनसे और कायासे, अथवा करे नहीं और करतेको अनुमोदित करे नहीं वचनसे और कायासे, अथवा करवावे नहीं और करतेको अनुमोदित करे नहीं मनसे और वचनसे, अथवा करवावे नहीं और करतेको अनुमोदित करे नहीं मनसे और कायासे, अथवा करवावे नहीं और करतेको अनुमोदित करे नहीं वचनसे और कायासे।

दो करण एक योगसे—करे नहीं, करवावे नहीं मनसे, अथवा करे नहीं, करवावे नहीं वचनसे, अथवा करे नहीं, करवावे नहीं कायासे, अथवा करे नहीं और करतेको अनुमोदित करे नहीं मनसे, अथवा करे नहीं और करतेको अनुमोदित करे नहीं वचन से, अथवा करे नहीं और करतेको अनुमोदित करे नहीं कायासे, अथवा करवावे नहीं और करतेको अनुमोदित करे नहीं मनसे, अथवा करवावे नहीं और करतेको अनुमोदित करे नहीं वचनसे, अथवा करवावे नहीं और करतेको अनुमोदित करे नहीं कायासे।

एक करण तीन योगसे—करे नहीं मनसे, वचनसे और कायासे, अथवा करवावे नहीं मनसे, वचनसे और कायासे, अथवा करतेको अनुमोदित करे नहीं मनसे वचनसे, और कायासे।

एक करण दो योगसे—करे नहीं मनसे, वचनसे, अथवा करे नहीं मनसे, कायासे, अथवा करे नहीं वचनसे, कायासे, अथवा करवावे नहीं मनसे, वचनसे, अथवा करवावे नहीं मनसे, कायासे अथवा करवावे नहीं वचनसे, कायासे, अथवा करतेको अनुमोदित करे नहीं मनसे, वचनसे, अथवा करतेको अनुमोदित करे

नहीं मनसे, कायासे, अथवा करतेको अनुमोदित करे नहीं वचनसे, कायासे।

एक करण एक योगसे—करे नहीं मनसे, अथवा करे नहीं वचनसे, अथवा करे नहीं कायासे, अथवा करवावे नहीं मनसे, अथवा करवावे नहीं वचनसे, अथवा करवावे नहीं कायासे, अथवा करतेको अनुमोदित करे नहीं मनसे, अथवा करतेको अनुमोदित करे नहीं वचनसे, अथवा करतेको अनुमोदित करे नहीं कायासे।

जिसप्रकार अतीतकालीन प्रतिक्रमणके ४६ भंग कहे गये हैं उसीप्रकार वर्तमान संवरण तथा अनागत प्रत्याख्यानके भी ४६-४६ भंग जानने चाहिये।

प्रथम स्थूल प्राणातिपातके जैसे १४७ भंग होते हैं वैसे ही स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तादान, स्थूल मैथुन, व स्थूल परिग्रहके भी—प्रत्येकके १४७ भंग होते हैं।

आजीविक और श्रमणोपासक

(२६०) प्रत्याख्यानपूर्वक व्रत-पालन करनेवाले ही श्रमणोपासक होते हैं। आजीविकोपासक इसप्रकारके उपासक नहीं होते हैं। क्योंकि आजीविकोंकी मान्यता है कि प्रत्येक जीव अक्षीण-परिभोगी—सचित्ताहारी है इसलिये वे उन्हें हनकर, छेदकर, काटकर, लोपकर (चर्म उतारकर) और नाश करके खाते हैं।

आजीविकोंके बारह श्रमणोपासक हैं—ताल, तालप्रलंब, उद्विध, संविध, अवविध, उदय, नामोदय, नर्मोदय, अनुपालक, शंखपालक, अयंबुल, और कातर।

आजीविकोपासक अरिहंत (गोशालक) को देव माननेवाले, मातापिताकी सेवा करनेवाले तथा गूलर, वड़, वेर, अंजीर, पिलू आदि पांच फलों और पिडाल, लहसून आदि कंदमूलका भक्षण नहीं करते हैं। ये बैल आदिका निर्लांछन नहीं करते और न छेदन ही करते हैं। जिससें त्रस प्राणियोंका विनाश हो ; ऐसा कोई व्यापार या वृत्ति नहीं करते है।

जब आजीविक श्रमणोपासक भी इसप्रकारकी वृत्तिकी कामना करते हैं ; तो फिर जो श्रमणोपासक है, उनका तो कहना ही क्या ? श्रमणोपासक निम्न पन्द्रह कर्मादान—हिंसाजनक व्यापार न स्वयं करे, न अन्यसे करवावे और न दूसरे करते हुए का अनुमोदन करे।

पन्द्रह कर्मादान

अंगारकर्म, वनकर्म शाकटकर्म, भाटककर्म (भाड़ा कमाना), स्फोटककर्म, दंतवाणिज्य, लाक्षवाणिज्य, केश-वाणिज्य, रस-वाणिज्य, विषवाणिज्य, यन्त्रपीलनकर्म, निर्लांछनकर्म, दावाग्नि-दापनकर्म, सरद्रहतालावपरिशोषणकर्म और असतीजनपोषणकर्म।

इसप्रकारके आचरणसे श्रमणोपासक शुक्ल, निर्मल, और पवित्रतायुक्त बनकर मृत्यु वेलामें काल करके किसी देवलोकमें उत्पन्न होते हैं। भवनवासीसे वैमानिक पर्यन्त चार प्रकारके देव हैं।

अष्टम शतक

षष्ठम-सप्तम उद्देशक

षष्ठम उद्देशकमें वर्णित विषय

[संयतको दान देनेका परिणाम, सदोष अशनादि दानका परिणाम, असंयतको दानका परिणाम, निर्ग्रन्थ और पिण्ड-निमन्त्रण, आराधक और विराधक, दीपकादिमें क्या जलता है? अग्निमें क्या जलता है? औदारिकादि शरीरोंकी अपेक्षासे क्रियायें—चउवीस दंडकीय जीवोंकी दृष्टिसे विचार। प्रश्नोत्तर संख्या २७]

निर्दोष दान और उसका फल

(प्रश्नोत्तर नं० २०८)

(२६१) तथारूप श्रमण-ब्राह्मणको प्रासुक व एषणीय (निर्दोष) अशन, पान, खादिम और स्वादिम द्वारा प्रतिलाभित करता हुआ श्रमणोपासक एकान्त निर्जरा करता है। उसे किञ्चित् भी पापकर्म नहीं लगता है।

सदोष दान और उसका फल

(प्रश्नोत्तर नं० २०९)

(२६२) तथारूप श्रमण-ब्राह्मणको अप्रासुक व अनेषणीय अशन, पान, खादिम, स्वादिम-द्वारा प्रतिलाभित करता हुआ श्रमणोपासक अधिकांशमें निर्जरा करता है और अल्पांशमें पाप-कर्म बाँधता है।

तथारूप असंयतको दान और उसका फल

(प्रश्नोत्तर नं० २१०)

(२६३) तथारूप, विरतिरहित, अप्रतिहत, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यान-द्वारा पापकर्म नहीं रोकनेवाले असंयतको प्रासुक या अप्रासुक, एपणीय या अनेपणीय अशन, पान, खादिम और स्वादिम द्वारा प्रतिलाभित करता हुआ श्रमणोपासक एकान्त पापकर्म बांधता है ; उसे किञ्चित् भी निर्जरा नहीं होती।

निर्ग्रन्थ और पिण्ड-ग्रहण

(प्रश्नोत्तर न० २११-२१३)

(२६४) गाथापतिके घर आहारार्थ प्रविष्ट निर्ग्रन्थको कोई गृहस्थ आहारके दो विभाग करके आमंत्रित करे और कहे— "आयुष्मन् एक भाग आप स्वयं उपभोग करें और दूसरा भाग स्थविरको दे देना।" इसप्रकारका जिसने आहार ग्रहण किया हो, उस साधुको स्थविरकी खोज करनी चाहिये। यदि स्थविर मिल जायं तो उन्हें वह भाग दे देना चाहिये। कदाचित् गवेषणा करने पर भी स्थविर न मिलें तो उस पिंडका वह स्वयं भक्षण न करे और न अन्य किसीको ही दे; वरन् एकान्त निर्जन स्थानमें अचित्त व प्रासुक स्थान देखकर तथा भूमि परिमार्जित कर उसे वह आहार वहाँ विसर्जन कर देना चाहिये।

इसीप्रकार तीन पिंड, चार पिंड, और यावत् दश पिंड तक जानना चाहिये। विशेषान्तर यह है कि एक पिडका स्वयं आहार करे और शेप पिड नव स्थविरोंको दे दे; अन्यथा उपर्युक्त विधिसे विसर्जित कर दे।

इसीप्रकार पात्र, गोच्छक, रजोहरण, चोलपट्टक, कंबल, यष्टि, और संस्तारकके विषयमें जानना चाहिये।

आराधक और विराधक

(प्रश्नोत्तर नं० २१४-२२१)

(२६५) गाथापतिके गृहमें पिण्डार्थ प्रविष्ट निर्ग्रन्थके द्वारा किसी अकरणीय कार्यका सेवन होगया हो और तत्क्षण ही उसके उसके मनमें वहीं यह विचार उत्पन्न हो गया हो—"इस पापकार्य की मैं अभी ही आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा और गर्हा करता हूं, इससे निवृत्त होता हूं, इससे विशुद्ध होता हूं, भविष्यमें ऐसा कार्य न करनेके लिये तत्पर होता हूँ तथा यथोचित्त प्रायश्चित्त व तपकर्म स्वीकार करता हूँ। मैं स्थविरोंके पास यहांसे जाकर आलोचना करूँगा और यावत् यथोचित तपकर्म स्वीकार करूँगा।" तदनन्तर स्थविरों पास जाते हुए यदि उसे स्थविर न मिलें अथवा वे स्थविर मूक हो गये हों अथवा कदाचित् पहुँचनेके पूर्व ही वह निर्ग्रन्थ भी (किसी कारणवश) मूक हो जाय तो आलोचना न होने पर भी वह आराधक होता है किन्तु विराधक नहीं। इसके निम्न चार भंग होते हैं:—

—इसप्रकारका दोषसंस्पृष्ट साधु स्वयं आलोचनादि करके स्थविरके पास आलोचना करने निकला परन्तु स्थविर मिले नहीं अथवा मूक हो गये जिससे प्रायश्चित्त न दे सके ;- तो भी वह आराधक होता है ; विराधक नहीं।

—इसप्रकारका दोषसंस्पृष्ट साधु स्वयं आलोचनादि करके स्थविरके पास आलोचना करने निकला पन्तु स्थविर मिले नहीं

और दिवंगत हो गये—इससे वह प्रायश्चित्त न ले सका ; तो भी वह आराधक होता है; विराधक नहीं।

—इसप्रकारका दोषसंस्पृष्ट साधु स्वयं आलोचनादि करके स्थविरके पास आलोचनार्थ निकला ; स्थविर मिले परन्तु पहुँचनेके पूर्व ही वह मूक हो गया ; परिणामस्वरूप प्राश्चित्त न ले सका ; तो भी वह आराधक होता है; विराधक नहीं।

—इसप्रकारका दोषसंस्पृष्ट साधु स्वयं आलोचनादि करके स्थविरके पास आलोचनार्थ निकला परन्तु जाते हुए ही वह मर गया, इससे पायश्चित्त नहीं ले सका ; तो भी वह आराधक होता है, विराधक नहीं।

इसीप्रकार संप्राप्तके—(स्थविरके पास पहुँचनेपर उपर्युक्त स्थितियोंके हो जानेके) उपर्युक्त चारों भंग जानने चाहिये।

जिसप्रकार गाथापतिके गृहमें पिंडार्थ प्रविष्ट अनगारके अकृत्यस्थान सेवनके ये आठ अपलापक— भेद कहे गये हैं उसी प्रकार स्वाध्यायभूमि व स्थंडिलभूमिमें अकृत्यकार्य-सेवनके आठ-आठ भंग जानने चाहिये।

ग्रामानुग्राम जाते हुए किसी अनगार-द्वारा किसी अकृत्य-स्थानका सेवन हो जाय, तो उसके भी इसीप्रकार आठ अपलापक भेद, जानने चाहिये।

जिसप्रकार निर्ग्रन्थोंके ये तीन गम कहे गये हैं उसीप्रकार निर्ग्रन्थनियोंके भी समझने चाहिये। मात्र स्थविरके स्थान पर प्रवर्तिनी शब्दका प्रयोग करना चाहिये।

जिसप्रकार कोई पुरुष भेड़के बाल, हाथीके बाल या शणके

रेसे, कपासके रेसे तथा तृणके एक दो, तीन यावत् संख्येय टुकड़े कर अग्निमें डालदे; तब काटते हुए काटे, डालते हुए डाले और जलते हुए जले कहे जायंगे उसीप्रकार आलोचनादिके लिये उपस्थितको आराधक कहा जायगा परंतु विराधक नहीं।

अथवा, जिसप्रकार कोई पुरुष नवीन वस्त्र या श्वेत धुला हुआ वस्त्र मजीठके द्रोण—पात्रमें डाल दे तो ऊपरसे डाला जाता वस्त्र डाला गया, ऊबलता हुआ वस्त्र ऊबला यावत् रंगाता हुआ रंगा हुआ कहा जायगा उसीप्रकार आलोचनादिके लिये उपस्थित दोष-संस्पृष्ट अनगार आराधक कहा जायगा परंतु विराधक नहीं।

दीपकमें क्या जलता है ?

(प्रश्नोत्तर नं० २२२-२२३)

(२६६) प्रज्वलित दीपकमें दीपक नहीं जलता, दीपक-शिखा नहीं जलती, बत्ती नहीं जलती, तैल नहीं जलता, ढक्कन नहीं जलता परन्तु ज्योति जलती है।

प्रज्वलित गृहमें गृह नहीं जलता, दिवालें नहीं जलतीं, टट्टिया नहीं जलतीं, स्तंभ नहीं जलते, काष्ठ नहीं जलता तथा छप्पर —आच्छादन नहीं जलता परन्तु ज्योति—अग्नि जलती है।

क्रिया

(प्रश्नोत्तर नं० २२४-२३४)

(२६७) औदारिक शरीरयुक्त जीव कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पांच क्रियाओंवाला होता है और कदाचित् अक्रिय भी होता है। नैरयिक (पूर्वशरीरकी अपेक्षासे) औदारिक शरीरकी अपेक्षासे कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पाच क्रियावाले होते है।

इसीप्रकार मनुष्यको छोड़कर वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना चाहिये।

मनुष्य जीवकी तरह औदारिक शरीर-द्वारा कदाचित् तीन, कदाचित् चार, कदाचित् पाच क्रियावाला होता है और कदाचित् अक्रिय भी होता है।

एक जीव बहुत औदारिक शरीरोंकी अपेक्षा, बहुत जीव एक औदारिक शरीरकी अपेक्षा, बहुत जीव बहुत औदारिक शरीरोंकी अपेक्षा प्रथम दंडककी तरह ही क्रियायुक्त होते हैं।

जीव वैक्रिय शरीरकी अपेक्षासे कदाचित् तीन, कदाचित् [1]चार क्रियाओंवाला और कदाचित् अक्रिय होता है।

मनुष्यको छोड़कर नैरयिकोंसे वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीव वैक्रिय शरीरकी अपेक्षासे कदाचित् तीन और कदाचित् चार क्रियाओंवाले है। मनुष्य वैक्रिय शरीरकी अपेक्षासे कदाचित् तीन, कदाचित् चार क्रियाओंवाला और कदाचित् अक्रिय होता है।

जिसप्रकार औदारिक शरीरयुक्तके चार दंडक—विभेद कहे गये है उसीप्रकार वैक्रियके भी जानने चाहिये। विशेषान्तर यह है कि ये पांच क्रियाओंवाले नहीं होते। शेष वैक्रियके प्रथम दंडकके समान ही है।

आहारक, तैजस और कार्मण शरीरकी अपेक्षासे वैक्रिय शरीरके समान ही वैमानिक पर्यन्त सर्वजीवोंको क्रियायें लगती हैं। प्रत्येकके चार-चार उपर्युक्त विभेद भी जानने चाहिये।

१—जीवको वैक्रिय शरीरकी अपेक्षासे चार ही क्रियायें लगती हैं। क्योंकि वैक्रिय शरीरका घात नहीं किया जा सकता।

अष्ठम शतक

सप्तम उद्देशक

सप्तम उद्देशकमें वर्णित विषय

[गतिप्रपात और उसके भेद— प्रश्नोत्तर संख्या १]

(प्रश्नोत्तर नं० २३५)

(२६८) पांच प्रकारके गतिप्रपात हैं :—(१) प्रयोगगति[1] (२) ततगति[2] (३) बंध-छेदनगति[3] (४) उपपातगति[4] और (५) विहायगति[5]।

यहाँ प्रज्ञापना सूत्रका सम्पूर्ण प्रयोगपद जानना चाहिये।

---

१ प्रयोगगति—सत्यमनयोग आदि पन्द्रह प्रकारके व्यापार-द्वारा मन आदि पुद्गलोंकी गति।

२ ततगति—तत—विस्तीर्ण—ग्रामानन्तर जानेकी प्रवृत्ति।

३ बंध-छेदनगति—कर्म-बंध-छेदनसे शरीर-मुक्त जीवकी अथवा शरीर-बंधन-छेदनसे जीवकी समुत्पन्न गति।

४ उपपात-गति—आयुष्य समाप्त होने पर अन्यत्र समुत्पन्न होनेके लिये चलना।

५ विहाय गति—आकाशमें गमन करना।

अष्टम शतक

अष्टम उद्देशक

अष्टम उद्देशकमें वर्णित विषय

[प्रत्यनीक और उसके भेद, व्यवहार-भेद और उनके अनुसार प्रायश्चित्त, बंध और उसके प्रकार आठ-कर्म, प्रकृतियां और बावीस परिषह, बावीस परिषह और सप्त-अष्ट और एक कर्मबंधकोंके परिषह, जम्बूद्वीप और सूर्य, सूर्यके निकट और दूर दृष्टिगोचर होनेके कारण, इन्द्रस्थान, प्रश्नोत्तर संख्या ४७]

प्रत्यनीक

(प्रश्नोत्तर नं० २३६-२४१)

(२६६) [1]गुरुप्रत्यनीक तीन है—आचार्यप्रत्यनीक, उपाध्याय प्रत्यनीक और स्थविरप्रत्यनीक।

गतिप्रत्यनीक तीन हैं—इहलोकप्रत्यनीक, परलोकप्रत्यनीक तथा उभयलोकप्रत्यनीक।

समूहप्रत्यनीक तीन है—कुलप्रत्यनीक, गणप्रत्यनीक और संघप्रत्यनीक।

अनुकंपाप्रत्यनीक तीन है—तपस्वीप्रत्यनीक, ग्लानप्रत्यनीक, और शिष्यप्रत्यनीक।

सूत्रप्रत्यनीक तीन हैं—सूत्रप्रत्यनीक, अर्थप्रत्यनीक और सूत्रार्थप्रत्यनीक।

---

१ प्रत्यनीक—विरोधी, द्वेषी तथा निन्दक।

भावप्रत्यनीक तीन हैं—ज्ञानप्रत्यनीक, दर्शनप्रत्यनीक, और चारित्रप्रत्यनीक।

व्यवहार

(प्रश्नोत्तर नं० १-६९)

(२७०) पाच प्रकारके [1]व्यवहार हैं—[2]आगमव्यवहार, [3]श्रुतव्यवहार, [4]आज्ञाव्यवहार, [5]धारणाव्यवहार और [6]जीत—आचारव्यवहार।

जिसके पास जिसप्रकारके आगम हों उसीप्रकारसे उसे (निर्ग्रन्थको) आगमानुसार व्यवहार चलाना चाहिये। उस विषयमें यदि आगम न हों किन्तु श्रुत हो तो उसके अनुसार व्यवहार चलाना चाहिये। यदि उस विषयमें श्रुत भी न हो किन्तु जिसप्रकारसे उसे आज्ञा हो तो उसीके अनुसार व्यवहार चलाना चाहिये। यदि उस विषयमें आज्ञा भी न हो तो अपनी धारणानुसार व्यवहार चलाना चहिये। यदि उसमें धारणा भी न हो तो जीतके अनुसार व्यवहार चलाना चाहिये।

इसप्रकार उपर्युक्त पांचों व्यवहारों द्वारा—जिस-जिस प्रकारके जिसके व्यवहार हों उन्हींके अनुसार व्यवहार चलाना चाहिये।

१, व्यवहार—मुमुक्षु की प्रवृत्ति। २, आगम—केवलज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, अवधिज्ञान, चौदहपूर्व, दश और नव पूर्व ३ श्रुत—आचारकल्पादि। ४, आज्ञा —गीतार्थ आचार्य-द्वारा व्यपदेशित नियम।

५, धारणा—गीतार्थ आचार्यने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे जिस दोषकी जिसप्रकार शुद्धि की उसीके अनुसार शुद्धि करना।

६, जीत—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षासे तथा शरीरादिकी शक्ति देखकर प्रायश्चित्त देना।

इन पांच व्यवहारों की जब-जब जहाँ-जहाँ आवश्यकता हो तब-तब वहाँ-वहाँ अनिश्रोपश्रित—राग-द्वेष तथा पक्षपात-विहीन हो, समभावसे इन्हें व्यवहार करता हुआ श्रमण-निर्ग्रन्थ आज्ञाका आराधक होता है।

बंध

(प्रश्नोत्तर नं० २४४-२५६)

(२७१) बंध दो प्रकारके हैं—ईर्यापथिक बंध और साम्प-रायिक बंध।

ईर्यापथिककर्म नैरयिक, तिर्यंचयोनिक, तिर्यंच स्त्री-पुरुष, और देवी-देव नहीं बांधते हैं परन्तु [1]पूर्वप्रतिपन्नके कारण मनुष्य स्त्रियां और मनुष्य बांधते है।

[2]प्रतिपद्यमानकी अपेक्षासे (१) मनुष्य बांधता है, या (२) मनुष्य स्त्री बांधती है, या (३) मनुष्य बांधते हैं, या (४) मनुष्य स्त्रियाँ बांधती हैं, या (५) एक मनुष्य और एक मनुष्य स्त्री बांधते हैं, या (६) एक मनुष्य और अनेक मनुष्य स्त्रियाँ बांधती हैं, या (८) अनेक मनुष्य और अनेक मनुष्य स्त्रियाँ बांधती हैं।

ईर्यापथिककर्म स्त्री, पुरुष, नपुंसक, अनेक स्त्रियां, अनेक पुरुष और अनेक नपुंसक, नोस्त्री, नोनपुंसक और नोपुरुष नहीं बांधते हैं परन्तु पूर्वप्रतिपन्न की अपेक्षासे वेदरहित जीव

१—जिसने पूर्व ईर्यापथिक बन्ध बांधा हो उसे पूर्वप्रतिपन्न कहते हैं। ईर्यापथिककर्मके बधक वीतराग—उपशान्तमोह, क्षीणमोह और सयोगीकेवली गुणस्थानमें वर्तित जीव होते हैं।

२—ईयापथिक बंधनके प्रथम समयमें वर्तित जीव प्रतिपद्यमान कहे जाते हैं।

बांधते है और प्रतिपद्यमानकी अपेक्षासे वेदरहित जीव या अनेक वेदरहित जीव बांधते हैं।

वेदरहित जीव ईर्यापथिककर्मको (१) स्त्रीपश्चात्कृत (जिसको पूर्व स्त्रीवेद था) (२) पुरुषपश्चात्कृत (जिसको पूर्व पुरुषवेद था) (३) नपुंसकपश्चात्कृत (जिसको पूर्व नपुंसक-वेद था) (४) अनेक स्त्रीपश्चात्कृत (५) अनेक पुरुषपश्चात्कृत (६) अनेक नपुंसकपश्चात्कृत (७) अनेक स्त्रीपश्चात्कृत और अनेक पुरुषपश्चात्कृत बांधते है। इसप्रकार इनके छब्बीस भंग हैं।

[1]भवाकर्षकी अपेक्षासे ईर्यापथिक कर्म (१) किसीने बांधा, कोई बांधता है और कोई बांधेगा। (२) किसीने बाधा, कोई बांधता है और कोई नहीं बांधेगा। (३) किसीने बांधा, कोई नहीं बाधता है और कोई बांधेगा। (४) किसीने बाधा, कोई नहीं बाधता है तथा कोई नहीं बांधेगा। (५) किसीने नहीं बाधा, कोई बांधता है और कोई बांधेगा। (६) किसीने नहीं बाधा, कोई बाधता है और कोई नहीं बांधेगा। (७) किसीने नहीं, बाधा, कोई बांधता नहीं और कोई बांधेगा। (८) किसीने नहीं बाधा, कोई बांधता नहीं और कोई बांधेगा नहीं।

[2]ग्रहणाकर्षकी अपेक्षासे भी किसीने बाधा है, कोई बांधता है और कोई बांधेगा—आदि उपर्युक्त भंग जानने चाहिये। मात्र छट्ठा भंग—किसीने नहीं बाधा, कोई बाधता है और कोई नहीं बांधेगा, यहाँ नहीं कहना चाहिये।

---

१ अनेक भवोमें उपशमश्रेणीकी प्राप्तिसे ईर्यापथिक कर्म-पुद्गलोंको ग्रहण करना भवाकर्ष कहा जाता है।

२ एक भवमें ही ईर्यापथिक कर्म-पुद्गलोंको ग्रहण करना ग्रहणाकर्ष।

ईर्यापथिककर्म सादिसपर्यवसित बांधता है परन्तु सादि अपर्यवसित, अनादिसपर्यवसित और अनादिअपर्यवसित नहीं बांधते हैं। वह ईर्यापथिककर्म देशसे (आंशिकरूपसे) देशको (अंशको), देशसे सर्वको और सर्वसे देशको नही बांधता है परन्तु सर्वसे सर्वको बांधता है।

साम्परायिककर्म नैरयिक, तिर्यच, तिर्यंचस्त्री, देव, देवी, मनुष्य स्त्री और मनुष्य भी बॉधते हैं।

यह कर्म स्त्री, पुरुप, नपुंसक, अनेक स्त्री, अनेक नपुंनसक, नोस्त्री, नोपुरुप और नोनपुंसक भी बाँधते हैं तथा वेदरहित जीव भी बांधते हैं।

यही बात एक जीव-आश्रित तथा अनेक जीव-आश्रित जीवोंके लिये जाननी चाहिये।

साम्परायिक कर्मको जो वेदरहित एक जीव और अनेकजीव बांधते हैं वे स्त्रीपश्चात्कृत या पुरुषपश्चात्कृत हो बांधते हैं, इस संबंधमें ईर्यापथिक बंधककी तरह सर्व भंग जानने चाहिये।

साम्परायिक कर्म (१) किसीने बांधा, कोई बांधता है तथा कोई बांधेगा, (२) किसीने बांधा, कोई बांधता है तथा कोई नहीं बांधेगा, (३) किसीने बांधा, कोई नहीं बांधता है और कोई बांधेगा। (४) किसीने बांधा, कोई बांधता नही और बांधेगा नही।

साम्परायिक कर्म सादिसपर्यवसित, अनादि सपर्यवसित, और अनादिअपर्यवसित बांधते हैं परन्तु सादिअपर्यवसित नहीं बांधते हैं। यह कर्म देशसे देश, देशसे सर्व और सर्वसे देश नहीं बांधा जाता परतु सर्वसे सर्व बांधा जाता है।

अष्टकर्म और बावीस परिषह

(प्रश्नोत्तर नं० २५७-२६४)

(२७१) आठ कर्म-प्रकृतियां हैं:—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय।

बावीस[1] परिषह है :—क्षुधा, पिपासा, ठंड, गर्मी, मशकदंश अचेल, अरति, स्त्री, चर्या, नैशेधिकी, शैय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, जलमेल, सत्कार-पुरस्कार, प्रज्ञा, ज्ञान और दर्शन।

उपर्युक्त बावीस परिषहोंका ज्ञानावरणीय, वेदनीय, मोहनीय और अंतराय—इन चार कर्म-प्रकृतियोंमें समावेश हो जाता है।

ज्ञानावरणीयकर्ममें प्रज्ञापरिषह और ज्ञानपरिषहोंका समावेश होता है।

वेदनीयकर्ममें निम्न ग्यारह परिषह समाविष्ट होते हैं:—

क्षुधा, पिपासा ठंड, गर्मी, मसकदंश, चर्या, शैय्या, वध, रोग, तृण और जलमेल।

दर्शनमोहनीयमें मात्र दर्शनपरिषहका समावेश होता है।

चारित्रमोहनीयमें निम्न सात परिषह समाविष्ट होते है:—

अरति, अचेल, स्त्री, [2]नैषेधिकी, याचना, आक्रोश, सत्कार-पुरस्कार।

अंतरायकर्ममें मात्र अलाभपरिषह समाविष्ट होता है।

---

१ परिषह-संकट-प्राप्ति विपदा। २ शून्य गृहादि या स्वाध्याय भूमिमें आनेवाली विपदायें नैषेधिकी कही जाती हैं।

सप्तविध कर्म-बन्धक और परिषह

(प्रश्नोत्तर नं० २६५-२७०)

(२७३) सात प्रकारके कर्मबांधनेवाला उपर्युक्त बावीस परिषह वेदन करता है। वह एक साथ बीस परिषह वेदन करता है; क्योंकि जिस समय शीतपरिषह वेदन करता है उससमय उष्ण परिषह वेदन नहीं करता और जिस समय ऊष्णपरिषह वेदन करता है उस समय शीतपरिषह वेदन नहीं करता। जिस समय चर्यापरिषह वेदन करता है उससमय नैषेधिकीपरिषह वेदन नहीं करता और जिस समय नैषेधिकीपरिषह वेदन करता है उस समय चर्यापरिषह वेदन नहीं करता।

आठ प्रकारके कर्मबांधनेवाला बावीस परिषह वेदन करता है परन्तु उसे एक साथ बीस ही वेदन होते हैं। शेष सर्व वर्णन सप्तविध कर्मबंधककी तरह जानना चाहिये।

छः प्रकारका कर्मबंधक सराग छद्मस्थ चौदह परिषह वेदन करता है परन्तु एक साथ बारह ही; क्योंकि जिस समय शीत-परिषह वेदन करता है उस समय ऊष्णपरिषह वेदन नहीं करता और जिस समय ऊष्णपरिषह वेदन करता है उस समय शीतपरिषह वेदन नहीं करता। जिस समय वह चर्यापरिषह वेदन करता है उस समय शैय्यापरिषह वेदन नहीं करता और जिससमय शैय्यापरिषह वेदन करता है उस समय चर्या परिषह नहीं वेदन नहीं करता।

एक प्रकारके कर्मबंधक वीतराग छद्मस्थ छःकर्मबंधक सराग छद्मस्थकी तरह ही चौदह परिषह वेदन करते हैं परन्तु एक साथ बारह ही।

एक प्रकारके कर्मबन्धक सयोगीभवस्थ केवलज्ञानी तथा कर्मबंधरहित अयोगी केवलज्ञानी ग्यारह परिषह वेदन करते हैं परन्तु एक साथ नव परिषह ही वेदन होते है। जिस समय वे शीतपरिषह वेदन करते हैं उस समय ऊष्णपरिषह वेदन नहीं करते और जिस समय ऊष्णपरिषह वेदन करते हैं उस समय शीतपरिषह वेदन नहीं करते। जिससमय चर्यापरिषह वेदन करते हैं उस समय शैय्यापरिषह वेदन नहीं करते और जिससमय शैय्यापरिषह वेदन करते हैं उस समय चर्या-परिषह वेदन नहीं करते।

सूर्य और उसका प्रकाश

(प्रश्नोत्तर नं० २७१-२८१)

(२७४) जम्बूद्वीपमें दो सूर्य उदयके समय दूरस्थ होनेपर भी निकट, मध्याह्नमें निकट होनेपर भी दूर तथा अस्त होनेके समय दूर होनेपर भी निकट दिखाई देते हैं। यद्यपि ये सूर्य सुवह, मध्याह्न तथा संध्या—तीनों ही समय समान ऊँचाईमें होते है। इसका कारण लेश्या—तेज, है। लेश्या—तेजके प्रतिघातसे उदय-समयमें दूरस्थ होनेपर भी निकट, तेजके अभितापसे मध्याह्नमें निकट होनेपर भी दूर तथा तेजके प्रतिघातसे अस्तसमयमें दूर होनेपर भी निकट दिखाई देते हैं।

जम्बूद्वीपमें दो सूर्य [1] अतीत क्षेत्रकी ओर या अनागत

---

[1]—अतीत क्षेत्र अतिक्रान्त होनेसे सूर्य उस ओर नहीं जाते। वर्तमान अर्थात् जहाँ जाना है, उस ओर जाते हैं, अनागत—जहाँ जाना होगा, उस ओर भी नहीं जाते।

क्षेत्रकी ओर नहीं जाते परन्तु वर्तमान क्षेत्रकी ओर जाते हैं। वे अतीत क्षेत्र या अनागत क्षेत्रको प्रकाशित नहीं करते परन्तु वर्तमान क्षेत्रको प्रकाशित करते हैं। ये स्पर्शित क्षेत्रको प्रकाशित करते हैं परन्तु अस्पर्शित क्षेत्रको नहीं। ये छओं दिशाओंको उद्योतित, प्रकाशित व तपित करते हैं।

जम्बूद्वीपमें दो सूर्यों की क्रिया अतीत क्षेत्रमें नहीं होती, वर्तमान क्षेत्रमें होती है और अनागत क्षेत्रमें भी नहीं होती।

ये स्पृष्ट क्रिया करते हैं परन्तु अस्पृष्ट नहीं। छओं दिशाओंमें इनकी स्पृष्ट क्रिया होती है।

ये सूर्य एक सो योजन ऊपर, अठारह सो योजन नीचे और छियालीस हजार दो सो तिरसठ और एक योजनके साधिक २१ भाग जितना क्षेत्र तिर्यक् लोकमें प्रकाशित करते है।

मानुष्योत्तर पर्वतके अन्दर जो चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारारूप देव हैं वे ऊर्ध्व लोकमें समुत्पन्न है। इस सवंधमें जीवाभिगम सूत्रसे विस्तृत वर्णन जानना चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० २८२)

(२७५) इन्द्रस्थान जघन्य एक समय उत्कृष्ट छः मास पर्यन्त उपपात रहित होता है, अर्थात् तवतक इन्द्रके च्युत् हो जानेपर नवीन इन्द्र उत्पन्न नहीं होता।

अष्टम शतक

नवम उद्देशक

नवम उद्देशकमें वर्णित विषय

[वंध और उसके भेद-प्रभेद, वधके कारण—विस्तृत विवेचन। प्रश्नोत्तर संख्या ११०]

बंध और उसके प्रकार

(प्रश्नोत्तर नं० २८३-३९२)

(२७६) बंध दो प्रकारका है—[1]प्रयोगबंध और [2]विस्रसाबंध।

विस्रसाबंध और उनके भेद

विस्रसाबंध दो प्रकारका है—सादिविस्रसाबंध और अनादिविस्रसाबंध।

अनादिविस्रसाबंध तीन प्रकारका है :- धर्मास्तिकायिक अन्योन्यअनादिविस्रसाबंध, अधर्मास्तिकायिकअन्योन्यअनादिविस्रसाबंध और आकाशास्तिकायिकअन्योन्यानादिविस्रसाबंध।

धर्मास्तिकायिकअन्योन्यअनादिविस्रसाबंध देशबंध है परन्तु सर्वबंध नहीं। कालापेक्षासे यह सर्वकाल पर्यन्त रहता है।

इसीप्रकार अधर्मास्तिकायिक और आकाशास्तिकायिक अन्योन्यअनादिविस्रसाबंधके विषयमें जानना चाहिये।

१—प्रयोग—कृत्रिम—अन्य पदार्थोंके सहयोगसे होनेवाला बंधन।

२—विस्रसा-प्राकृतिक—स्वतः विना किसीके सहयोगसे होनेवाला बधन।

सादिविस्रसाबंध तीन प्रकारका है :—[1]बंधनप्रत्ययिक, [2]भाजनप्रत्ययिक और [3]परिणामप्रत्ययिक।

सादिबंधनप्रत्ययिक—द्विप्रादेशिक, त्रिप्रादेशिक यावत् दश-प्रादेशिक, संख्येय प्रादेशिक, असंख्येय प्रादेशिक और अनन्त प्रादेशिक पुद्गल स्कंधोंका विषम स्निग्धता, विषम रूक्षता और विषम स्निग्धता-रूक्षता-द्वारा बंधनप्रत्ययिकबंध होता है। यह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्येय कालपर्यन्त रहता है।

सादिभाजनप्रत्ययिकबंध पुरानी मदिरा, पुराने गुड़ और पुराने चावलके पात्रकी तरह भाजन-प्रत्ययिकबंध होता है। इसकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्येय काल है।

सादिपरिणामप्रत्ययिकबंध—बादल अथवा मेघ-समूहके समान परिणामप्रत्ययिकबंध होता है। स्थिति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छः मास है। इस संबंधमें श० ३, उ० ७ के अनुसार जानना चाहिये।

प्रयोगबंध और उसके भेद

प्रयोगबंध तीन प्रकारका है :—अनादिअपर्यवसित, सादि-अपर्यवसित और सादिसपर्यवसित। अनादिअपर्यवसितबंध जीवके आठ मध्यप्रदेशोंमें होता है। इन आठ प्रदेशोंमें भी तीन-तीन प्रदेशोंका बंध अनादि अपर्यवसित है।

सादिअपर्यवसितबंध सिद्धोंको है।

१—स्निग्धता आदि गुणों-द्वारा परमाणुओंका बंधन

२—किसी आधारभूत कारणसे होनेवाला बंधन।

३—रूपान्तरके परिणामस्वरूप होनेवाला बधन।

सादिसपर्यवसितवंध चार प्रकारका है :—

आलापनवध, आलीनवंध, शरीरवध और शरीरप्रयोगवंध।

[1] आलापनवध – घासके भारों, लकड़ीके भारों, पत्रोंके भारों, पलाशके भारों, वेलके भारों या वेत्तलता, छाल, वरत्त, रज्जु, वेल, कुश और नारियलछालकी तरह आलापन वध जानना चाहिये। स्थिति जघन्य अन्तरमुहूर्त और उत्कृष्ट सख्येयकाल है।

आलीनवंध—यह चार प्रकारका है श्लेषणावंध, उच्चयवंध, समुच्चयवंध और संहननवंध।

श्लेपणावंध—शिखर, फर्श, स्तंभ, प्रासाद, चर्म, काष्ठ, घड़ा, कपड़ा व चट्टाइयों आदिका चूना, मिट्टी, वज्रलेप, लाख, मोम आदि श्लेष्ण द्रव्यों द्वारा जो वंध होता है उसे श्लेषणावंध कहते है। स्थिति जघन्य अन्तरमुहूर्त और उत्कृष्ट संख्येय काल है।

उच्चयवंध—तृणराशि, काष्ठराशि, पत्रराशि, तूसराशि, भूसेके ढेर, उपलोंके ढेर और कूड़ेके ढेरका उच्चरूपसे जो वंध होता है उसे उच्चयवंध कहते है। स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्येय वर्ष है।

समुच्चयवंध—कूआ, तालाव, नदी, द्रह, वापी, पुष्करिणी, दीर्घिका, गुंजालिका, सरोवर, सरोवरश्रेणी, विशाल सरोवरों की पंक्ति, विलश्रेणी, देवकुल, सभा, परव, स्तूप, खाई, परिघा, दुर्ग, कंगूरे, चरिक, द्वार, गोपुर, तोरण, प्रासाद, घर, शरणस्थान, लेण—गृहविशेप, हाट, शृङ्गाटकमार्ग, त्रिकमार्ग, चतुष्कमार्ग, चत्वरमार्ग, चतुर्मुखमार्ग, राजमार्ग आदिका चूना, मिट्टी और

1—रस्सी आदिके रूपमें तृणादिका वंधन।

2—लाख आदि द्वारा होनेवाला वंधन।

वज्रलेप आदिके द्वारा समुच्चयरूपसे जो बंध होता है उसे समुच्चयबंध कहते है। स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्येय काल है।

*संहननबंध दो प्रकारका है :—देशसंहननबंध और सर्व-संहननबंध।

देशसंहननबंध—गाड़ी, रथ, यान, युग्मवाहन, गिल्ली, थिल्ली, (पलाण), शिविका और स्पन्दमानी, (वाहन विशेष) लोढ़ी, लोह कड़ाह, चम्मच, आसन, शयन, स्तंभ, वर्तन, पात्र आदि नाना प्रकारके उपकरणोंसे जो संबंध होता है उसे देश संहननबंध कहते हैं। स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्येय काल है।

सर्वसंहननबंध—दूध और पानीकी तरह मिल जाना।

शरीरबंध दो प्रकारका है—पूर्वप्रयोगप्रत्ययिक और प्रत्युत्पन्न-प्रयोगप्रत्ययिक।

पूर्वप्रयोगप्रत्ययिक—समुद्घात करते हुए नैरयिकों और संसारस्थ सर्व जीवोंके जीव-प्रदेशोंका जहाँ-जहाँ जिन-जिन कारणोंसे जो बंध होता है उसे पूर्वप्रयोगप्रत्ययिकबंध कहते हैं।

प्रत्युत्पन्नप्रयोगप्रत्ययिक—केवलिसमुद्घात-द्वारा समवहित ... समुद्घातसे पुनः लौटते हुए मध्य मंथनावस्थामें वर्तित

*विभिन्न पदार्थोंके मिलनेसे एक आकारका बनना संहननबंध। किसी वस्तुके एक अंश द्वारा किसी अन्य वस्तुका दूसरा अंश बनना देशबंधन कहा जाता है। जैसे–पहिया, जूआ, आदि विभिन्न अवयव मिलकर गाडीका रूप धारण कर लेते हैं। दूध और पानी आदिकी तरह तादात्म्य रूप हो जाना सर्वसंहननबंध कहा जाता है।

केवलज्ञानी अनगारके तेजस और कार्मण शरीरका जो बंध होता है उसे प्रत्युत्पन्नप्रयोगप्रत्ययिक बंध कहते है। इस समयमें आत्म-प्रदेश संघात प्राप्त करते है जिससे तेजस और कार्मण शरीरोंका बंध होता है।

शरीरप्रयोगबंध पांच प्रकारका है:—औदारिकशरीरप्रयोग बंध, वैक्रियशरीरप्रयोगबंध, आहारकशरीरप्रयोगबंध, तेजस शरीरप्रयोगबंध और कार्मणशरीरप्रयोगबंध।

औदारिकशरीरप्रयोगबंध

औदारिकशरीरप्रयोगबंध पांच प्रकारका है:—एकेन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय औदारिकशरीरप्रयोगबंध।

एकेन्द्रिय औदारिकशरीरप्रयोगबंध पाच प्रकारका है:—पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीरप्रयोगबंध आदि। इसप्रकार अवगाहना-संस्थानमें वर्णित औदारिकशरीरके भेदोंको पर्याप्त-गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीरप्रयोगबंध और अपर्याप्त गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीरबंध पर्यन्त जानना चाहिये।

जीवकी वीर्यशक्ति[1]-वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशमसे समुत्पन्न शक्ति, [2]सयोग, [3]सद्द्रव्य, प्रमाद, कर्म, योग, भव, आयुष्य तथा औदारिकशरीरप्रयोगनामकर्मके उदयसे औदारिक शरीर-प्रयोगबंध होता है।

पृथ्वीकायिकसे यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय

१—वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशमसे समुत्पन्न शक्ति-वीर्यशक्ति।

२—मन आदिकी प्रवृत्ति सयोगता।

३—तथाविध पुद्गल द्रव्योंका एकत्र होना सद्द्रव्यता।

त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च और पंचेन्द्रिय मनुष्यको उपर्युक्त कारणों तथा औदारिकशरीरप्रयोगनामकर्मके उदयसे औदारिक शरीरप्रयोगवंध होता है।

औदारिक शरीरप्रयोगवंध [1]देशवंध भी है और [2]सर्ववंध भी है। यह वात एकेन्द्रियसे मनुष्य पंचेन्द्रियपर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जाननी चाहिये।

औदारिकशरीरप्रयोगवंध कालकी अपेक्षासे निम्नप्रकार है :-

सर्ववंध एक समय और देशवंध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट एक समय न्यून तीन पल्योपम है।

एकेन्द्रिय शरीरप्रयोगवंधमें सर्ववंध एक समय और देशवंध जघन्य एक समय व उत्कृष्ट एक समय न्यून वाईस हजारवर्ष है।

पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीरप्रयोगवंधसर्व वंधमें एक समय और देशवंधमें जघन्य तीन समय न्यून क्षुल्लक भव-पर्यन्त और उत्कृष्टमें एक समय न्यून वाईस हजार वर्ष है।

इसीप्रकार सर्वजीवोंका सर्ववंध कालकी अपेक्षासे एक समय है। जिन जीवोंके वैक्रिय शरीर नहीं है, उनका देशवंध जघन्य तीन समय न्यून क्षुल्लक भव और उत्कृष्ट अपनी-अपनी आयुष्य-स्थितिसे एक समय न्यून है।

१—जीव जब पूर्व शरीरका परित्याग कर अन्य शरीर ग्रहण करता है तब उत्पत्तिस्थानमें रहे हुए शरीरयोग्य पुद्गलोंको जिस समय ग्रहण करना और छोडना प्रारंभ करता है उसको देशवंध कहते हैं।

२ सर्ववंध – जीव जब मात्र शरीरयोग्य पुद्गलोंको ही ग्रहण करता है तब सर्ववंध कहा जाता है। उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें जीव केवल शरीरयोग्य पुद्गलोंको ही ग्रहण करता है।

जिन जीवोंके वैक्रिय शरीर है उनका देशबंध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अपने-अपने आयुष्यसे एक-एक समय न्यून है। मनुष्योंका देशबन्ध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट एक समय न्यून तीन पल्योपम है।

कालापेक्षासे औदारिक-शरीर-बंधका अन्तर इसप्रकार हैं—सर्वबन्धका अन्तर जघन्य तीन समय न्यून क्षुल्लक भव-ग्रहण-पर्यन्त और उत्कृष्ट समयाधिक पूर्वकोटि और तैंतीस सागरोपम है। देशबंधका अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट तीन समयाधिक तैंतीस सागरोपम है।

एकेन्द्रिय औदारिक शरीर-बंधवाले जीवोंके सर्ववंधका अन्तर जघन्य तीन समय न्यून क्षुल्लकभव और उत्कृष्ट समयाधिक बाईस हजार वर्ष है। देशबंधका अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

पृथ्वीकायिक औदारिक शरीरबंधवाले एकेन्द्रिय जीवोंके सर्वबंधका अन्तर एकेन्द्रिय जीवोंके तरह है और देशबंधका अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट तीन समय है।

पृथ्वीकायिक की तरह ही वायुकायिक जीवोंको छोड़कर चतुरिन्द्रिय तक सर्व जीवोंका अन्तर जानना चाहिये। परन्तु उत्कृष्टमें सर्वबंधका अन्तर जिसकी जितनी आयुष्य-स्थिति है उससे एक समय अधिक जानना चाहिये। वायुकायिकके सर्वबंधका अन्तर जघन्य तीन समय न्यून क्षुल्लकभवपर्यन्त और उत्कृष्ट समयाधिक तीन हजार वर्ष है। देशबंधका अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच औदारिक शरीरबंधवाले जीवोंके सर्वबंधका

अन्तर जघन्य तीन समय न्यून क्षुल्लकभवपर्यन्त और उत्कृष्ट समयाधिक पूर्वकोटि है। देशबंधका अन्तर एकेन्द्रियवत् है।

इसीप्रकार मनुष्योंका जानना चाहिये।

कोई जीव एकेन्द्रिय योनिमें है, वहाँसे वह एकेन्द्रियके सिवाय किसी अन्य योनिमें जाता है और पुनः वहाँसे एकेन्द्रियमें उत्पन्न होता है तो एकेन्द्रिय औदारिक शरीरप्रयोग-बंधका अन्तर कालसे इसप्रकार है :—सर्वबंधका अन्तर जघन्य तीन समय न्यून दो क्षुल्लक भव और उत्कृष्ट संख्येय वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम है। देशबंधका अन्तर जघन्य एक समय अधिक क्षुल्लक भव और उत्कृष्ट संख्येय वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम है।

कोई जीव पृथ्वीकायमें है, वहाँसे पृथ्वीकायके अतिरिक्त अन्य योनिमें उत्पन्न हो, पुनः पृथ्वीकायमें उत्पन्न होता है तो एकेन्द्रिय पृथ्वीकायिक औदारिकशरीरप्रयोगबंधका अन्तर कालापेक्षासे इसप्रकार है :—

सर्वबंधका अन्तर जघन्य तीन समय न्यून दो क्षुल्लक भव और उत्कृष्ट अनन्तकाल—अनन्त उत्सर्पिणी और अव-[illegible] है। क्षेत्रसे अनन्त लोक—असंख्य पुद्गलपरावर्त है और [illegible] आवलिकाके असंख्यातवे भागके तुल्य है। दे[illegible]का अन्तर जघन्यमें समयाधिक क्षुल्लकभव और उत्कृष्ट अनन्तकाल यावत् आवलिकाके असंख्येय भाग तुल्य असंख्य पुद्गलपरावर्त है।

जिसप्रकार पृथ्वीकायिकका अन्तर कहा गया है उसीप्रकार

वनस्पतिकायिकको छोड़कर मनुष्य-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना चाहिये।

वनस्पतिकायिकके सर्ववंधका अन्तर जघन्य कालकी अपेक्षासे तीन समय न्यून दो क्षुल्लक भव और उत्कृष्ट असंख्येय-काल—असंख्य उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी है। क्षेत्रसे असंख्येय लोक है। देशवंधका अन्तर जघन्य समयाधिक क्षुल्लकभव और उत्कृष्ट पृथ्वीकायके स्थितिकाल (असंख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी) जितना है।

औदारिकशरीरके देशवन्धक, सर्ववन्धक और अवन्धक जीवोंमें सवसे अल्प सर्ववन्धक, उनसे अवन्धक विशेषाधिक और उनसे देशवन्धक असंख्येय गुणित हैं।

वैक्रियशरीरप्रयोगवन्ध दो प्रकारका है :—एकेन्द्रिय वैक्रिय-शरीरप्रयोगवंध और पंचेन्द्रिय वैक्रियशरीरप्रयोगवंध।

एकेन्द्रिय वैक्रियशरीरप्रयोगवंधके संवंधमें अवगाहनासंस्थान-पदके अनुसार वैक्रियशरीरके भेद जानने चाहिये। पंचेन्द्रिय-प्रयोगवंधमें भी पर्याप्त और अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोप-पातिक कल्पातीत वैमानिक पर्यन्त वैक्रियशरीरप्रयोगवंधके सर्व भेद जानने चाहिये।

वैक्रियशरीरप्रयोगवंध

वीर्य, संयोग, सद्द्रव्य, प्रमाद, कर्म, योग, भव, आयुष्य और लब्धिकी अपेक्षासे तथा वैक्रियशरीरप्रयोगनामकर्मके उदयसे वैक्रियशरीरप्रयोगवंध होता है।

उपर्युक्त कारणों तथा वैक्रियशरीरप्रयोगनामकर्मके उदयसे वायुकायिक एकेन्द्रिय, सप्त नर्कभूमिस्थ पंचेन्द्रिय नैरयिक,

पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक, मनुष्य, असुरकुमारादि दस भवनपति, बाणव्यन्तर, ज्योतिष्क, कल्पोपन्नक वैमानिक—अच्युतपर्यन्त,, ग्रैवेयक कल्पातीत वैमानिक और अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देवोंको वैक्रियशरीरप्रयोगवंध होता है।

वैक्रियशरीरप्रयोगवंध देशवध भी है और सर्ववंध भी है। अनुत्तरोपपातिक-पर्यन्त सर्व देवताओंके ये भेद जानने चाहिये।

कालकी अपेक्षासे वैक्रियशरीरप्रयोगवंध इसप्रकार हैं :—

सर्ववन्ध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट दो समय है। देशवन्ध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट एक समय न्यून तैंतीस सागरोपम है।

एकेन्द्रिय वायुकायिक वैक्रियशरीरप्रयोगबध कालापेक्षासे इसप्रकार है :—

सर्वबध एक समय और देशबंध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक है।

रत्नप्रभास्थ नैरयिकोंका वैक्रियशरीरप्रयोगवंध कालापेक्षासे इसप्रकार है :—सर्ववंध एक समय और देशबध जघन्य तीन समय न्यून दश हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक समय न्यून एक सागरोपम है।

इसीप्रकार सातवीं नर्कभूमितक जानना चाहिये परन्तु देश-बधके विषयमें जिसकी जितनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति है उनमें एक-एक समय न्यून कर देना चाहिये।

पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक और मनुष्योंका वायुकायिककी तरह जानना चाहिये।

भवनपतियोंसे अनुत्तरोपपातिक तकके देवताओंका नैर-यिकोंकी तरह जानना चाहिये परन्तु जिसका जितना उत्कृष्ट आयुष्य है उसके अनुसार एक समय न्यून देशबंधका काल जानना चाहिये। सबके सर्वबंधका काल एक समय है।

वैक्रियशरीरप्रयोगवधका अन्तर कालापेक्षासे निम्नप्रकार है :

सर्वबंधका अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्त-काल—अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी यावत् आवलिकाके असंख्येय भाग तुल्य असंख्येय पुद्गलपरावर्त हैं।

इसीप्रकार देशवन्धका अन्तर जानना चाहिये।

[1]वायुकायिक वैक्रियशरीरप्रयोगबन्धका अन्तर इसप्रकार है :—सर्ववन्धका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पल्यो-पमका असंख्यातवां भाग।

इसीप्रकार देशबंधका अन्तर भी जानना चाहिये।

तिर्यंचयोनिक पचेन्द्रिय वैक्रियशरीरप्रयोगबन्धका अन्तर इसप्रकार हैं :—

सर्ववन्धका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व (दो से नव कोटि) है।

इसीप्रकार देशवन्धका अन्तर भी जानना चाहिये।

पंचेन्द्रियतिर्यंचकी तरह मनुष्यका भी जानना चाहिये।

कोई जीव वायुकायिकमें है; वहांसे मरकर वायुकायके अति-

१—औदारिकशरीरी वायुकायिकको अपर्याप्तावस्थामें वैक्रियशक्ति उत्पन्न नहीं होती। जन्मके एक मुहूर्त पश्चात् पर्याप्त होनेपर वह वैक्रिय शरीर वनाता है। वैक्रियशरीर बनाने पर वह बधक होता है। अतएव सर्वबंधकका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है।

रिक्त किसी अन्य योनिमें उत्पन्न होकर पुनः वहांसे वायुकायमें उत्पन्न होता है तो एकेन्द्रिय वायुकायिक वैक्रियशरीरबन्धका अन्तर इसप्रकार है :—

सर्वबन्धका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल—वनस्पतिकालकी तरह।

इसीप्रकार देशबन्धका अन्तर भी जानना चाहिये।

कोई जीव रत्नप्रभाभूमिमें समुत्पन्न है। वहांसे रत्नप्रभाके अतिरिक्त किसी जीवयोनिमें उत्पन्न होकर पुनः रत्नप्रभाभूमिमें उत्पन्न होता है तो रत्नप्रभा-नैरयिकके वैक्रियशरीरबन्धका अन्तर इसप्रकार है :—

सर्वबन्धका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दश हजार वर्ष और उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पतिकालकी तरह) है।

देशबन्धका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पतिकालकी तरह) है।

इसीप्रकार सातवी नर्कभूमि तक जानना चाहिये परन्तु विशेषान्तर यह है कि सर्वबंधका जघन्य अन्तर जिस नैरयिककी जितनी जघन्य स्थिति है, उससे अन्तर्मुहूर्त अधिक है। शेष सर्व पूर्ववत्।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक और मनुष्यके सर्वबन्धका अन्तर वायुकायिककी तरह जानना चाहिये।

रत्नप्रभास्थ नैरयिककी तरह ही असुरकुमारसे सहस्रारपर्यन्त जानना चाहिये। सर्वबन्धके अन्तरमें जिसकी जितनी जघन्य स्थिति है, उससे अन्तर्मुहूर्त अधिक जानना चाहिये। शेष सर्व पूर्ववत्।

आनतदेवलोकका अन्तर इसप्रकार है :—

सर्ववन्धका अन्तर जघन्य वर्षपृथक्त्व अधिक अठारह सागरोपम और उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पतिकालकी तरह) है।

देशवन्धका अन्तर जघन्य वर्षपृथकृत्व और उत्कृष्ट अनन्त-काल (वनस्पतिकालकी तरह) है।

इसीप्रकार अच्युत् देवलोक-पर्यन्त जानना चाहिये। परन्तु सर्वब्रधका अन्तर जिसकी जितनी जघन्य स्थिति है; उससे वर्ष-पृथकृत्व अधिक है। शेप सर्व पूर्ववत्।

ग्रैवेयक कल्पातीत वैक्रियशरीरप्रयोगवन्धका अन्तर इसप्रकार है :—सर्ववंधका अन्तर जघन्य वर्पपृथकत्व अधिक बावीस सागरोपम और उत्कृष्ट अनन्तकाल है।

देशवन्धकका अन्तर जघन्य वर्पपृथकत्व और उत्कृष्ट अनन्तकाल—(वनस्पतिकालकी तरह) है।

अनुत्तरोपपातिक वैक्रिय शरीरप्रयोगवन्धका अन्तर इसप्रकार है :—सर्ववन्धका अन्तर जघन्य वर्पपृथकृत्व अधिक इकतीस सागरोपम और उत्कृष्ट संख्येय सागरोपम है।

देशवन्धका अन्तर जघन्य वर्पपृथकृत्व और उत्कृष्ट संख्येय सागरोपम है।

वैक्रियशरीरके सर्ववंधक, अवंधक और 'देशवंधक जीवोंमें सर्ववंधक जीव सबसे अल्प, इनसे देशवंधक असंख्येय गुणित और इनसे अवन्धक अनन्तगुणित विशेपाधिक हैं।

आहारकशरीरप्रयोगवन्ध

आहारकशरीरप्रयोगव्रध एक प्रकारका है। मनुष्योंको आहारक शरीरका बंध होता है परन्तु इनके सिवाय अन्य जीवों

को नहीं होता। मनुष्योंमें भी अवगाहनासंस्थानपदमें वर्णित वर्णनके अनुसार ऋद्धिप्राप्त, प्रमत्तसंयत, सम्यक्दृष्टि, पर्याप्त और संख्येय वर्षके आयुष्यवाले कर्मभूमि-समुत्पन्न गर्भज मनुष्यों को ही आहारकशरीरप्रयोगबन्ध होता है। अपर्याप्त प्रमत्तसंयत को बन्ध नहीं होता।

वीर्य, संयोग, सद्द्रव्य यावत् लब्धिके आश्रयसे तथा आहारकशरीरप्रयोगनामकर्मके उदयसे आहारकशरीरप्रयोगबन्ध होता है।

आहारकशरीरप्रयोगबन्ध देशबन्ध भी है और सर्वबन्ध भी है। उसका सर्वबन्ध एक समय और देशबन्ध जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। कालापेक्षासे आहारक शरीरप्रयोगबन्धका अन्तर इसप्रकार है :—

सर्वबंधका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त-काल—अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी है। क्षेत्रापेक्षासे अनन्त लोक अर्द्धपुद्गलपरावर्त है।

इसीप्रकार देशबंधका अन्तर जानना चाहिये।

आहारकशरीरके देशबंधक, सर्वबंधक और अबंधक जीवों में सबसे अल्प सर्वबंधक, उनसे देशबंधक संख्येयगुणित और उनसे अबंधक अनन्तगुणित विशेषाधिक हैं।

तैजसशरीरप्रयोगबन्ध

तैजसशरीर-प्रयोग-बंध पांच प्रकारका है :—एकेन्द्रिय तैजसशरीरप्रयोगबंध, द्वीन्द्रिय तैजसशरीरप्रयोगबंध, त्रीन्द्रिय तैजसशरीरप्रयोगबंध, चतुरिन्द्रिय तैजसशरीरप्रयोगबंध और पंचेन्द्रिय तैजसशरीरप्रयोगबंध।

एकेन्द्रियादि तैजसशरीरप्रयोगबंधके भेद-प्रभेदोंके सम्बन्धमें अवगाहनासंस्थानमें वर्णित भेद, पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय तैजसशरीरप्रयोगबंध और अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पचेन्द्रिय तैजसशरीरप्रयोगबध पर्यन्त जानने चाहिये।

वीर्य, संयोग, सद्द्रव्य यावत् आयुष्यके आश्रयसे तथा तैजसशरीरप्रयोगनाम-कर्मके उदयसे तैजसशरीर प्रयोगबध होता है।

तैजसशरीरप्रयोगबध देशबंध है परन्तु सर्वबंध नहीं।

तैजसशरीरप्रयोगबध (कालापेक्षासे) दो प्रकारका है— अनादिअपर्यवसित और अनादिसपर्यवसित। इन दोनों प्रकारके बंधनोंका अन्तर नहीं है।

तैजसशरीरके देशबंधक और अबधक जीवोंमें अबंधक जीव सबसे अल्प और देशबधक इनसे अनन्तगुणित है।

कार्मणशरीरप्रयोगबंध

कार्मणशरीरप्रयोगबंध आठ प्रकारका है :—

ज्ञानावरणीयकार्मणशरीरप्रयोगबंध यावत् अन्तरायकार्मण-शरीरप्रयोगबंध।

ज्ञानावरणीयकार्मणशरीरप्रयोगबंध ज्ञान-प्रत्यनीकता, ज्ञान-अपलाप, ज्ञानान्तराय, ज्ञानप्रद्वेप, ज्ञानकी आशातना, ज्ञान-विसंवादन तथा ज्ञानावरणीयकार्मणशरीरप्रयोगनामकर्मके उदयसे होता है।

दर्शनावरणीयकार्मणशरीरप्रयोगबध दर्शनप्रत्यनीकता, दर्शन-

अपलाप, दर्शनान्तराय, दर्शनप्रद्वेष, दर्शन-आशातना, दर्शन-विसंवादन तथा दर्शनावरणीयकार्मणशरीरप्रयोगनामकर्मके उदयसे होता है।

सातावेदनीयकार्मणशरीरप्रयोगबंध प्राणियोंपर तथा भूतोंपर अनुकम्पा करनेसे तथा परिताप उत्पन्न न करनेसे तथा सातावेदनीयकार्मणशरीरप्रयोगनामकर्मके उदयसे होता है। यहाँ सप्तम शतकके दशम उद्देशकमें जो कारण गिनाये गये हैं वे सर्व जानने चाहिये।

असातावेदनीय—कार्मणशरीरप्रयोगबंध दूसरोंको दुःख देनेसे, दूसरोंको शोक उत्पन्न करनेसे, दूसरोंको परिताप उत्पन्न करनेसे तथा असातावेदनीयकार्मणशरीरनामकर्मके उदयसे होता है। यहाँ सप्तम शतकके दशम उद्देशकमें वर्णित सर्व कारण जानने चाहिये।

मोहनीयकार्मणशरीरप्रयोगबंध तीव्र क्रोध, तीव्र मान, तीव्र माया, तीव्र लोभ, तीव्र दर्शनमोहनीय, तीव्र चारित्रमोहनीय और मोहनीयकार्मणशरीरप्रयोगनामकर्मके उदयसे होता है।

नरकायुष्कार्मणशरीरप्रयोगबंध महारंभ, महापरिग्रह, मांसा- . , पञ्चेन्द्रिय जीवोंके वध और नरकायुष्कार्मणशरीरप्रयोग-नामकर्मके उदयसे होता है।

तिर्यंचायुष्कार्मणशरीरप्रयोगबंध माया, कापट्य, झूठ, झूठे तोल-माप तथा तिर्यंचायुष्कार्मणशरीरप्रयोगनामकर्मके उदयसे होता है।

मनुष्यायुष्कार्मणशरीरप्रयोगबंध प्रकृतिकी भद्रता, प्रकृतिकी

विनीतता, दयालुता, अमात्सर्य तथा मनुष्यायुष्कार्मणशरीर-प्रयोगनामकर्मके उदयसे होता है।

देवायुष्कार्मणशरीरप्रयोगबंध सरागसंयम, सयमासंयम, अज्ञान तप, अकाम निर्जरा तथा देवायुष्कार्मणशरीरप्रयोगनाम-कर्मके उदयसे होता है।

शुभनामकार्मणशरीरप्रयोगबध कायकी सरलता, भावकी सरलता, भाषाकी सरलता, योगके अविसंवादन तथा शुभ-नामकार्मण शरीरप्रयोगनामकर्मके उदयसे होता है।

अशुभनामकार्मणशरीरप्रयोगबंध कायकी वक्रता, भावकी वक्रता, भापाकी वक्रता, योगके विसवादन तथा अशुभनाम-कार्मणशरीरप्रयोगनामकर्मके उदयसे होता है। उच्चगोत्र कार्मण-शरीरप्रयोगबंध जातिमद, कुलमद, बलमद, रूपमद, तपमद श्रुतमद, लाभमद और ऐश्वर्यमद न करने तथा ऊच्चगोत्र-कार्मणशरीरप्रयोगनामकर्मके उदयसे होता है।

नीचगोत्रकार्मणशरीरप्रयोगबंध जातिमद, कुलमद, बल-मद, रूपमद, तपमद, श्रुतमद, लाभमद, ऐश्वर्यमद तथा नीच-गोत्रकार्मणशरीरप्रयोगनामकर्मके उदयसे होता है।

अन्तरायकार्मणशरीरप्रयोगबंध दानान्तराय, लाभान्त-राय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय तथा अन्तरायकार्मणशरीरप्रयोगनामकर्मके उदयसे होता है।

ज्ञानावरणादि ये आठ कार्मणशरीरप्रयोगबंध देशबंध हैं परन्तु सर्वबंध नहीं।

ज्ञानावरणादि आठ कार्मणशरीर-प्रयोगबंध (कालापेक्षासे) दो प्रकारके हैं—अनादिसपर्यवसित और अनादिअपर्यवसित।

तैजसशरीरके स्थितिकालके समान इनका भी स्थितिकाल जानना चाहिये। कालापेक्षासे इनका अन्तर अनादि-अनन्त और सान्त है। जिसप्रकार तैजस शरीरके लिये कहा गया है उसीप्रकार यहां भी जानना चाहिये।

ज्ञानावरणादि आठ कार्मणशरीरप्रयोगबंधक जीवोंमें देशबंधक और अबन्धक जीवोंका अल्पबहुत्व तैजसके समान विशेषाधिक जानना चाहिये। मात्र आयुष्यमें अन्तर है। आयुष् कर्मके देशबंधक जीव सबसे अल्प है और उनसे अबंधक जीव संख्येय गुणित है।

सर्वबंधक, बंधक और अबंधक

जिस जीवको औदारिकशरीरका सर्वबंध है वह वैक्रिय शरीरका बंधक नहीं है किन्तु अबंधक है।

औदारिकशरीर सर्वबंधक आहारक शरीरका अबधक है। औदारिक शरीरका सर्वबंधक तैजसशरीरका बंधक है परन्तु अबन्धक नहीं। वह तैजसशरीरका देशबधक है परन्तु सर्व-बधक नहीं। तैजसशरीरकी तरह ही कार्मणशरीरके लिये जानना चाहिये।

जो औदारिकशरीरका देशबंधक है वह वैक्रियशरीरका अबंधक है। इससम्बंधमे कार्मणशरीर-पर्यन्त जैसा ऊपर सर्वबंधकके प्रसंगमे कहा गया है, वैसा ही देशबंधकके लिये जानना चाहिये।

जो जीव वैक्रिय शरीरके सर्वबंधक है वे औदारिक शरीर तथा आहारक शरीरके अबंधक है। तैजस और कार्मणशरीर

जिसप्रकार औदारिकके साथ कहे गये हैं वैसे ही वैक्रियके लिये भी जानने चाहिये। ये देशबंधक है परन्तु सर्वबंधक नहीं।

जैसा वैक्रियशरीरके सर्वबंधकके प्रसंगमें कहा गया है वैसा ही देशबंधकके लिये भी कार्माणशरीर पर्यन्त जानना चाहिये।

जो जीव आहारकशरीरके सर्वबंधक है वे औदारिक तथा वैक्रियशरीरके अबंधक हैं। तैजस और कार्मणशरीर जैसे औदारिकके साथ कहे गये हैं वैसे ही यहाँ भी जानने चाहिये।

जैसे आहारकशरीरके सर्वबंधकके लिये कहा गया है वैसे ही देशबंधकके लिये भी जानना चाहिये।

जो जीव तैजसशरीरका देशबंधक है वह औदारिक शरीरका बंधक भी है और अबन्धक भी। बंधकमें देशबंधक भी है और सर्वबंधक भी है।

औदारिककी तरह वैक्रिय और आहारकके लिये जानना चाहिये।

तैजसशरीरका बंधक कार्मणशरीरका बंधक है परन्तु अबंधक नहीं। बंधकमें भी देशबंधक है परन्तु सर्वबंधक नहीं।

जिस जीवको कार्मणशरीरका देशबंध है वह औदारिक शरीरका बंधक है या नहीं इससंबंधमें जैसे तैजसशरीरके लिये कहा गया है वैसे ही कार्मणशरीरके लिये जानना चाहिये।

औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण शरीरोंके देशबन्धक, सर्वबन्धक और अबन्धक जीवोंमें सबसे अल्प आहारकशरीरके सर्वबन्धक है। इनसे देशबंधक संख्येय गुणित अधिक हैं। इनसे वैक्रियशरीरके सर्वबन्धक असंख्येय गुणित और इनसे वैक्रियशरीरके देशबंधक असंख्येयगुणित अधिक हैं

इनसे तैजस और कार्मणशरीरके अबंधक जीव अनन्तगुणित और परस्पर तुल्य हैं। उनसे औदारिक शरीरके सर्वबंधक जीव अनन्तगुणित तथा उनसे अबंधक विशेषाधिक हैं। इनसे देशबंधकजीव असंख्येय गुणित हैं। उनसे तैजस और कार्मण शरीरके देशबंधक जीव विशेषाधिक हैं। उनसे वैक्रियशरीरके अबंधक जीव विशेषाधिक हैं। उनसे आहारकशरीरके अबंधक जीव विशेषाधिक हैं।

अष्टम शतक

दशम उद्देशक

दशम उद्देशकमें वर्णित विषय

[ज्ञान और क्रियाके सम्बन्धमें अन्यतीर्थिकोंकी मान्यता तथा खंडन, आराधना और उसके प्रकार, पुद्गल-परिणाम, लोकाकाश और जीवप्रदेश, कर्मप्रकृतियाँ, अष्ट कर्म और उनका परस्पर सम्बन्ध, पुद्गली और पुद्गल— सर्व जीव दृष्टिसे विचार। प्रश्नोत्तर सख्या ४७]

(प्रश्नोत्तर नं० ३९३)

(२७७) "[1]शील ही श्रेयस्कर है, श्रुत ही श्रेयस्कर है, श्रुत श्रेयस्कर है (शीलनिरपेक्ष) और शील श्रेयस्कर है (श्रुतनिरपेक्ष)।"

अन्यतीर्थिकोंका इसप्रकारका प्ररूपण मिथ्या है। मैं इसप्रकार कहता हूं, प्ररूपित करता हूँ तथा प्रज्ञप्त करता हूँ :—

चारप्रकारके पुरुष हैं :—(१) एक शीलसंपन्न है परन्तु श्रुतसंपन्न नहीं, (२) एक श्रुतसम्पन्न है परन्तु शीलसम्पन्न नहीं (३) एक

१—इस प्रश्नका संवध ज्ञान और क्रियासे है। जैनधर्म मात्र क्रिया या मात्र ज्ञान ही पर वल नहीं देता है। 'ज्ञान-क्रियाभ्यां मोक्षः' कहकर वह श्रेयके लिये ज्ञान और क्रिया दोनोंकी आवश्यकता वताता है। इतर दार्शनिक श्रेयके लिये एकान्त क्रिया या एकान्त श्रुत पर ही वल देते हैं। क्रियाको ही श्रेय माननेवाले ज्ञानका कोई प्रयोजन स्वीकार नहीं करते और ज्ञान मात्रसे ही फल-सिद्धि माननेवाले क्रियाकी आवश्यकता नहीं मानते। कुछ दार्शनिक ज्ञान और क्रियाको निरपेक्ष कहकर क्रिया-रहित ज्ञान और ज्ञान-रहित क्रियासे ही अभीष्ट सिद्धि स्वीकार करते हैं।

शीलसम्पन्न भी है और श्रुतसम्पन्न भी है (४) एक शीलसम्पन्न भी नहीं है और श्रुतसम्पन्न भी नहीं है।

प्रथम वर्गका पुरुष जो शीलसम्पन्न है परन्तु श्रुतसम्पन्न नहीं, वह उपरत (पापादिसे) है किन्तु धर्मको नहीं जानता है; इसलिये वह देशाराधक कहा गया है। दूसरे वर्गका पुरुष जो शीलसम्पन्न नहीं परन्तु श्रुतसम्पन्न है, वह अनुपरत (पापादिसे) है फिर भी वह धर्मको जानता है; अतः वह देशविराधक कहा गया है। तृतीय वर्गका पुरुष जो शीलसम्पन्न भी और श्रुतसम्पन्न भी है, वह उपरत है और धर्मको जानता है; अतः वह सर्वाराधक कहा गया है। चतुर्थ वर्गका पुरुष जो शीलसम्पन्न भी नहीं और श्रुतसम्पन्न भी नहीं, वह (पापसे) उपरत नही है; अतः वह सर्वविराधक कहा गया है।

आराधना और आराधक

(प्रश्नोत्तर न० ३९४-४०५)

(२७८) अराधना तीन प्रकारकी है—[1]ज्ञानाराधना, [2]दर्शनाराधना और [3]चारित्राराधना।

ज्ञानाराधना तीन प्रकारकी है—उत्कृष्ट, मध्यम और निम्न।

१—ज्ञानाराधना – अष्टप्रकारसे ज्ञानाचारका बिना किसी दोषके पालन करना, जैसे—योग्यकाल अध्ययन, विनय, सम्मान आदि।

२ दर्शनाराधना—अपने सम्यक्त्वमें शका, कांक्षा आदि अष्टप्रकारके दोषोंसे रहित हो दृढ रहना।

३ चारित्राराधना—निरतिचाररूपसे पांच महाव्रत तथा पंच समिति आदिका पालन करना।

दर्शनाराधना और चारित्राराधनाके भी उपर्युक्त उत्कृष्ट, मध्यम व निम्न तीन २ भेद होते हैं।

जिस जीवको उत्कृष्ट ज्ञानाराधना हो उसे उत्कृष्ट और मध्यम दर्शनाराधना होती है और जिस जीवको उत्कृष्ट दर्शनाराधना हो, उसे उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य ज्ञानाराधना होती है।

जिसप्रकार उत्कृष्ट ज्ञानाराधना और दर्शनाराधनाका संबंध बताया गया है उसीप्रकार उत्कृष्ट ज्ञानाराधना और उत्कृष्ट चारित्राराधनाका सम्बन्ध भी जानना चाहिये।

जिसको उत्कृष्ट दर्शनाराधना हो उसे उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य चारित्राराधना होती है और जिसको उत्कृष्ट चारित्राराधना होती है उसे नियमतः उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है।

उत्कृष्ट ज्ञानाराधना, उत्कृष्ट चारित्राराधना और उत्कृष्ट दर्शनाराधना करके कितने ही जीव उसी भवमें सिद्ध होते हैं और कितने ही कल्पोपन्न व कल्पातीत देवलोकोंमें उत्पन्न होते हैं। उत्कृष्ट चारित्राराधनासे देवलोकमें उत्पन्न होनेवाले कल्पातीत देवलोकोंमें ही उत्पन्न होते हैं।

मध्यम ज्ञानाराधना-द्वारा कितने ही जीव दो भव-ग्रहणके पश्चात् सिद्ध होते है तथा अपने सर्व दुखोंका अन्त करते है परन्तु तृतीय भवका अतिक्रमण नहीं करते।

इसीप्रकार मध्यम दर्शनाराधना और मध्यम चारित्राराधना के लिये जानना चाहिये।

निम्न (जघन्य) ज्ञानाराधना आराधकर कितने ही जीव तीसरे भवमें सिद्ध होते है तथा अपने सर्व दुखोंका अन्त करते हैं परन्तु सात-आठ भवसे अधिक भवोंका अतिक्रमण नहीं करते।

इसीप्रकार निम्न दर्शनाराधना और निम्न चारित्राराधनाके लिये जानना चाहिये।

पुद्गलपरिणाम

(प्रश्नोत्तर न० ४०६-४१३)

(२७६) पुद्गलोंका पांच प्रकारका परिणाम है—वर्णपरिणाम, गंधपरिणाम, रसपरिणाम, स्पर्शपरिणाम और संस्थानपरिणाम।

कालादि पांच प्रकारके वर्णपरिणाम, दो प्रकारके गंध-परिणाम, पाच प्रकारके रस-परिणाम और आठ प्रकारके स्पर्श-परिणाम जानने चाहिये।

संस्थानपरिणाम पांच प्रकारका है—परिमंडल, वृत्ताकार, त्र्यस्त्र, चतुरस्त्र और आयतसंस्थान।

पुद्गलास्तिकायका एक प्रदेश (परमाणु) (१) कदाचित् द्रव्य और (२) कदाचित् द्रव्यदेश है परन्तु (३) अनेक द्रव्य या (४) अनेक द्रव्य देश अथवा (५) एक द्रव्य और एक द्रव्यदेश अथवा (६) द्रव्य और अनेक द्रव्य देश अथवा (७) अनेकद्रव्य और एक द्रव्यदेश, अथवा (८) अनेकद्रव्य और अनेक द्रव्यदेश नहीं है।

पुद्गलास्तिकायके दो प्रदेशके उपर्युक्त आठ विकल्पोंमें पांच विकल्प जानने चाहिये। शेप अन्तिम तीन भगोंका प्रतिषेध करना चाहिये। तीन प्रदेशोंके लिये आठवे भंगको छोड़कर उपर्युक्त सातों भग जानने चाहिये।

पुद्गलास्तिकायके चार, पाच, छ-सात और यावत् असंख्येय व अनन्त प्रदेशोंके लिये उपर्युक्त आठों ही भंग कहने चाहिये।

लोकाकाश और जीव-प्रदेश

(प्रश्नोत्तर नं० ४१४-४१५)

(२८०) लोकाकाशके असंख्य प्रदेश है। जितने लोकाकाशके प्रदेश हैं उतने एक-एक जीवके आत्म-प्रदेश है।

कर्मप्रकृतियाँ

(प्रश्नोत्तर नं० ४१६-४३६)

(२८१) आठ कर्म-प्रकृतियाँ हैं—ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय। वैमानिक तक सर्व जीवोंके आठों कर्मप्रकृतियाँ हैं।

ज्ञानावरणीयकर्मके अनन्त [1]अविभागपरिच्छेद है। वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवोंके ज्ञानावरणीयकर्मके अनन्त अविभाग-परिच्छेद है। ज्ञानावरणीयकी तरह ही अन्तराय तक आठों कर्म-प्रकृतियोंके अविभागपरिच्छेद जानने चाहिये।

एक-एक जीवका एक-एक जीव-प्रदेश ज्ञानावरणीयकर्मके अभिवागपरिच्छेदोंसे [2]कदाचित् आवेष्टित-परिवेष्टित होता है और कदाचित् नहीं भी। यदि आवेष्टित-परिवेष्टित हो तो अवश्य ही अनन्त अविभागपरिच्छेदों-द्वारा आवेष्टित-परिवेष्टित होता है।

एक-एक नैरयिक जीवका एक-एक आत्म-प्रदेश नियमतः अनन्त अविभागपरिच्छेदों-द्वारा आवेष्टित व परिवेष्टित है।

१—केवलज्ञानीके द्वारा भी जिन कर्माणुओंके विभाग परिकल्पित नहीं किये जा सकते उन सूक्ष्म अणुओंको अविभागपरिच्छेद कहा जाता है।

२—जीव केवलज्ञानीकी अपेक्षासे आवेष्टित-परिवेष्टित नहीं होता है। क्योंकि केवलज्ञानीके ज्ञानावरणीय-कर्म क्षय हो जाता है। कर्मक्षय होनेसे अविभागपरिच्छेदों-द्वारा उसके आत्म-प्रदेशोंका परिवेष्टन नहीं होता।

नैरयिकोंकी तरह ही वैमानिकपर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना चाहिये परन्तु मनुष्यके लिये जीवकी तरह जानना चाहिये।

अन्तराय-पर्यंत सर्व कर्म-प्रकृतियोंके लिये ज्ञानावरणीयकी तरह वैमानिक पर्यंत सर्व जीवोंके लिये समझना चाहिये परन्तु वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र—इन चार कर्मोंके लिये नैरयिक की तरह ही मनुष्यके लिये भी जानना चाहिये। अन्य कर्मोंके लिये पूर्ववत्—जीवकी तरह जानना चाहिये।

अष्टकर्म और उनका परस्पर संबंध

जिस जीवके ज्ञानावरणीयकर्मका बंधन है उसके नियमतः दर्शनावरणीय कर्मका बंधन है और जिसके दर्शनावरणीय कर्मका बंधन है उसे नियमतः ज्ञानावरणीय कर्मका बंधन है।

जिस जीवके ज्ञानावरणीय कर्मका बंधन है उसके नियमतः वेदनीय कर्मका बंधन है और जिसके वेदनीयकर्मका बंधन है उसके कदाचित् ज्ञानावरणीय कर्मका बंधन होता है और कदाचित नहीं भी होता है।

जिस जीवके ज्ञानावरणीयकर्मका बंधन है उसके मोहनीयकर्म का वन्धन कदाचित होता है और कदाचित् नहीं भी होता है परन्तु जिसके मोहनीयकर्मका वन्धन है उसके नियमतः ज्ञानावरणीय कर्मका वन्धन होता है।

जिस जीवके ज्ञानावरणीय कर्मका वधन है उसके नियमतः आयुष्य, नाम और गोत्र कर्मोंका बंधन है परन्तु जिस जीवके ये कर्म-बंधन हैं उसके कदाचित् ज्ञानावरणीयकर्मका बंधन होता है

और कदाचित् नहीं भी होता है। अन्तरायके लिये दर्शना-वरणीयकी तरह जानना चाहिये।

जिसप्रकार ज्ञानावरणीयके साथ उपर्युक्त सात कर्म कहे गये हैं उसीप्रकार दर्शनावरणीयके लिये भी जानने चाहिये।

जिसके वेदनीय कर्मका बंधन है उसके मोहनीय-कर्मका बंधन कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता है परन्तु जिसके मोहनीयकर्मका बंधन है उसके वेदनीयकर्मका बंधन नियमतः है।

जिसके वेदनीयकर्मका बंधन है उसके आयुष्य, नाम और गोत्रकर्मका बंधन नियमतः है और जिसके इन कर्मोंका बंधन है उसके वेदनीयकर्मका बंधन अवश्य होता है। जिसके वेदनीयकर्म-बंधन है उसके अन्तराय कर्मका बंधन कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता है।

जिसके मोहनीयकर्मका बंधन है उसके आयुष्, नाम, गोत्र और अन्तराय कर्मोंका बधन नियमतः होता है परन्तु जिसके इन कर्मोंका बंधन हो, उसके मोहनीयकर्मका बंधन कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता है।

आयुष्कर्मके साथ नाम और गोत्र, ये दोनों कर्म नियमतः अवश्य होते है। जहाँ इन दोनों कर्मोंका बंधन है वहाँ आयुष् कर्मका भी बधन है।

जिसके आयुष् कर्मका बधन है उसके अन्तरायकर्मका बधन कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता है परन्तु जिसके अन्तरायकर्मका बंधन है उसके नियमतः आयुष् कर्मका बंध है।

जिसके नामकर्मका बंधन है उसके नियमतः गोत्रकर्मका बंधन

है और जिसके गोत्रकर्मका बंधन है उसके नियमतः नामकर्मका बधन है। ये दोनों कर्म परस्पर नियमतः होते हैं।

जिसके नाम और गोत्र कर्मोंका बंधन है उसके अन्तरायकर्म-बंधन कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता है परन्तु जिसके अन्तराय-कर्मका बधन है उसके नियमतः इन दोनों कर्मोंका बंध है।

पुद्गली और पुद्गल

(प्रश्नोत्तर नं० ८३७-८३९)

(२८२) जीव पुद्गली भी है और पुद्गल भी है। जिसप्रकार कोई पुरुष छत्र-द्वारा छत्री, दड-द्वारा दण्डी, घट-द्वारा घटी, पट-द्वारा पटी और कर-द्वारा करी कहा जाता है उसीप्रकार जीव भी श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षासे पुद्गली और जीवकी अपेक्षासे पुद्गल कहा जाता है।

नैरयिकसे लेकर वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीव पुद्गली और पुद्गल हैं। जिसको जितनी इन्द्रियाँ है उतनी कहनी चाहिये।

सिद्ध पुद्गली नही है परन्तु पुद्गल है। जीवकी अपेक्षासे पुद्गल कहे गये हैं।

नवम शतक

उद्देशक १—३०

वर्णित विषय

[प्रथम उद्देश्यक—जम्बूद्वीपकी स्थिति व आकार—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, प्रश्नोत्तर संख्या १, द्वितीय उद्देशक—जम्बूद्वीपमें सूर्य, चंद्र आदिकी सख्या—जीवाभिगमसूत्र, प्रश्नोत्तर संख्या ३, तृतीय उद्देशक—एकोरुकद्वीप की स्थिति—२८ अन्तर्द्वीपोंके अलग-अलग २८ उद्देशक। प्रश्नोत्तर संख्या १। समस्त प्रश्नोत्तर संख्या ५।]

प्रथम उद्देशक

(प्रश्नोत्तर न० १)

(२८३) जम्बूद्वीप कहाँ है, उसका कैसा आकार है, इस सम्बन्धमें जम्बूद्वीपप्रज्ञाप्ति जाननी चाहिये।

द्वितीय उद्देशक

(प्रश्नोत्तर नं २-४)

(२-४) जम्बूद्वीपमें कितने चन्द्रोंने प्रकाश किया, कितने वर्तमानमें करते है और कितने करेंगे, इससम्बन्धमें जीवाभिगमसूत्रके अनुसार जानना चाहिये।

इसीप्रकार लवणसमुद्र, धातकीखंड, कालोदधि, पुष्करवरद्वीप आभ्यन्तरपुष्करार्ध, मनुष्यक्षेत्र तथा पुस्करोदसमुद्रके लिये जीवाभिगम सूत्रसे जानना चाहिये।

तृतीय उद्देशक

(प्रश्नोत्तर नं० ५)

(२८५) जम्बूद्वीपमें स्थित सुमेरुपर्वतके दक्षिणमें चुल्लहिमवंत नामक वर्षधरपर्वतके पूर्वीय छोरसे तीन सो योजन लवणसमुद्र में जानेके पश्चात् दक्षिण दिशाके एकोरुक मनुष्योंका एकोरुक द्वीप आता है। उस द्वीपकी लम्बाई और चौड़ाई तीन सो योजन है और उसकी परिधि नवसो पचास योजनसे कुछ न्यून है। यह द्वीप एक श्रेष्ठ पद्मवेदिका और एक वनखण्डसे चारों ओरसे घिरा हुआ है। इन दोनोंका प्रमाण तथा वर्णन जीवाभिगम सूत्रमें किया गया है। इस द्वीपके मनुष्य मरकर देवगतिमें जाते हैं।

इसप्रकारके अपनी-अपनी लम्बाई और चौड़ाईकी अपेक्षा अट्ठाईस अन्तर्द्वीप है। यहाँ एक-एक अन्तर्द्वीपका अलग-अलग एक-एक उद्देशक जानना चाहिये। सब मिलाकर अट्ठाईस अन्तर्द्वीपोंके अट्ठाईस उद्देशक होते हैं।

नवम शतक

इकतीसवां उद्देशक

इकतीसवे उद्देशकमें वर्णित विषय

[केवलीप्ररूपित धर्मका लाभ केवली आदिसे विना सुने भी किसी जीवको होता है और किसी जीवको विना सुने नहीं होता—हेतु, सम्यग्-दर्शन, ब्रह्मचर्यवास, संयम, संवर, आभिनिबोधिक आदि पांचों ज्ञानोंकी प्राप्ति किसी जीवको केवली-कथित धर्म-श्रवणके विना भी होती है—कारण—विस्तृत विवेचन, केवलीप्ररूपित धर्म-श्रवण करके भी किसी जीवको धर्मकी प्राप्ति होती है और किसीको नहीं—आदि—विस्तृत वर्णन प्रश्नोत्तर संख्या ५३]

इकतीसवां अध्ययन

(प्रश्नोत्तर न० ६-५८)

(२८६) केवली, केवलीके श्रावक-श्राविका, केवलीके उपासक-उपासिका, केवलीपाक्षिक (स्वयंबुद्ध), केवलीपाक्षिक श्रावक-श्राविका और केवलीपाक्षिक उपासक-उपासिकासे विना सुने भी किसी जीवको केवलीकथित धर्मश्रवण का लाभ होता है और किसीको नहीं। जिन जीवोंके ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम है उन्हें विना सुने भी केवलीकथित धर्मश्रवणका लाभ होता है और जिन जीवोंके ज्ञानावरणीयकर्मका क्षयोपशम नहीं है उन जीवोंको धर्मश्रवण किये विना केवलीकथित धर्म-श्रवणका लाभ नहीं मिलता है।

केवलीके पाससे या यावत् पाक्षिक उपासिकासे धर्मश्रवण किये विना भी कोई जीव शुद्ध सम्यग्दर्शन (बोधि) का अनुभव करता है और कोई जीव नहीं। जिन जीवोंके दर्शनावरणीय कर्मका क्षयोपशम हो गया है वे जीव धर्म-श्रवण किये विना भी शुद्ध सम्यग्दर्शनका अनुभव करते हैं। जिन जीवोंके दर्शनावरणीय कर्मका क्षयोपशम नहीं हुआ वे विना धर्म-श्रवण किये शुद्ध सम्यग्दर्शनका अनुभव नहीं करते है।

केवलीके पाससे यावत् पाक्षिक उपासिकासे धर्मश्रवण किये विना भी कोई जीव अगारवास (गृहवास) छोड़, मुंडित हो अनगारधर्म स्वीकार करता है और कोई जीव नहीं। जिस जीवके धर्मान्तरायिक—चारित्रधर्ममें अन्तरायभूत चारित्रावरणीयकर्मोंका क्षयोपशम हो गया है वह धर्म-श्रवण किये विना भी मुंडित हो अनगारधर्म स्वीकार करता है और जिस जीवके धर्मान्तरायिक कर्मोंका क्षय नहीं हुआ है वह धर्मश्रवण किये विना मुंडित हो अगारवास छोड़ अनगारधर्म स्वीकार नहीं करता।

केवलीके पाससे यावत् पाक्षिक उपासिकासे धर्म-श्रवण किये विना भी कोई जीव शुद्ध ब्रह्मचर्यवास धारण करता हैं और कोई जीव नहीं। जिस जीवके चारित्रावरणीयकर्मोंका क्षयोपशम हो गया है वह विना धर्म-श्रवण किये भी ब्रह्मचर्यवास स्वीकार कर लेता है और जिस जीवके चारित्रावरणीयकर्मोंका क्षयोपशम नहीं हुआ; वह विना धर्मश्रवण किये ब्रह्मचर्यवास स्वीकार नहीं करता।

केवलीके पाससे यावत् पाक्षिक उपासिकासे धर्म-श्रवण किये

बिना भी कोई जीव विशुद्ध संयम-द्वारा संयम-पालनमें शौर्य प्रकट करना है और कोई जीव नहीं। जिस जीवके [1]यतना-वरणीय कर्मोंका क्षयोपशम होगया है वह बिना धर्मश्रवण किये भी विशुद्ध संयम-द्वारा संयमयतना करता है और जिस जीवके यतनावरणीयकर्मोंका क्षमोपशम नहीं हुआ है, वह धर्म-श्रवण किये बिना संयमके साथ संयमयतना नहीं कर सकता।

केवलीके पाससे यावत् पाक्षिक उपासिकासे धर्म-श्रवण किये बिना भी कोई जीव शुद्ध संवरसे आश्रव अवरुद्ध करता है और कोई जीव नहीं। जिस जीवके अध्यवसानावरणीय (भाव चारित्रावरणीय) कर्मोंका क्षयोपशम हो गया है वह धर्मश्रवण किये बिना भी विशुद्ध संवर द्वारा आश्रवका निरोध करता है और जिल जीवके अध्यवसायावरणीय कर्मोंका क्षयोपशम नहीं हुआ है वह बिना धर्म-श्रवण किये आश्रवोंका निरोध नहीं कर सकता।

केवलीके पाससे यावत् पाक्षिक उपासिकासे धर्म-श्रवण किये बिना कोई जीव आभिनिबोधिक ज्ञान प्राप्त कर सकता है और कोई जीव नहीं। जिस जीवके आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्मोंका क्षयोपशम हो गया है वह बिना धर्म-श्रवण किये भी आभिनिबोधिक ज्ञान प्राप्त कर सकता है और जिस जीवके अभिनिवोधिक ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम नहीं हुआ है वह बिना धर्म-श्रमण किये आभिनिवोधिक ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता है।

१—संयमधर्ममें वीर्यका प्रकट होना यतना है। उस वीर्यको आच्छादित करनेवाला कर्म यतनवावरणीय—वीर्यान्तरायकर्म कहा जाता है।

आभिनिबोधिकज्ञानकी तरह ही श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञानके लिये जानना चाहिये। मात्र-श्रुतज्ञानके लिये श्रुतज्ञानावरणीय कर्मोंका, अवधिज्ञानके लिये अवधिज्ञानावरणीय कर्मोंका और मनःपर्यवज्ञानके लिये मनः-पर्यवज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम कहना चाहिये। केवल-ज्ञानके लिए केवलज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय कहना चाहिये।

केवलीके पाससे यावत् केवलीपाक्षिक उपासक-उपासिकासे सुने बिना भी कोई जीव केवली-कथित धर्मको जानता है और कोई जीव नहीं; कोई जीव शुद्ध सम्यक्त्व का अनुभव करता है और कोई जीव नहीं; कोई जीव मुंडित हो अगारवास छोड़ अनगारधर्म स्वीकार करता है और कोई जीव नहीं; कोई जीव विशुद्ध ब्रह्मचर्यवास स्वीकार करता है और कोई जीव नहीं; कोई जीव शुद्ध संयम-द्वारा संयम-यतना करता है और कोई जीव नहीं, कोई जीव शुद्ध संवर-द्वारा आश्रवका प्रतिरोध करता है और कोई जीव नहीं; कोई जीव आभिनिबोधिक ज्ञान प्राप्त करता है और कोई जीव नहीं। मतिज्ञानकी तरह श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञानके लिये जानना चाहिये। कोई जीव केवलज्ञान प्राप्त करता है और कोई जीव नहीं।

जिसका ज्ञानावरणीयकर्म, जिसका दर्शनावरणीयकर्म, जिसका धर्मान्तरायिककर्म, जिसका चारित्रावरणीयकर्म, जिसका यतनावरणीयकर्म, जिसका अध्यवसानावरणीयकर्म, जिसका आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयकर्म, जिसका श्रुतज्ञानावरणीयकर्म, जिसका अवधिज्ञानावरणीयकर्म और जिसका मनःपर्यव ज्ञानावरणीयकर्म क्षयोपशम नहीं हुआ तथा जिसका केवलज्ञाना-

वरणीयकर्म क्षय नहीं हुआ, वह जीव विना धर्म-श्रमण किये उपर्युक्त गुण नहीं प्राप्त कर सकता। जिसके उपर्युक्त कर्मोंका क्षयोपशम हो गया है या जिसका केवलज्ञानावरणीय कर्म क्षय हो गया है, वह जीव विना धर्मश्रवण किये भी उपर्युक्त गुणोंको प्राप्त करता है।

निरन्तर छट्ठतपके साथ सूर्यके सम्मुख ऊँचे हाथ कर तप-भूमिमें आतापना लेनेसे, प्रकृतिके उपशान्त होनेसे, क्रोध, मान, माया और लोभके स्वाभाविकरूप में अत्यन्त न्यून होनेसे, अत्यन्त मार्दव,—विनम्रता, सरलता, व विनयसे या अन्य किसी शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम, विशुद्ध लेश्यासे तदावरणीय—विभंग-ज्ञानावरणीय कर्मोंके क्षयोपशम होने से तथा ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेपणा करते हुए विभंगज्ञान उत्पन्न होता है। विभंगज्ञानके उत्पन्न होनेसे वह जघन्य अंगुलका असंख्येय भाग और उत्कृष्ट असंख्येय हजार योजनका क्षेत्र जानता तथा देखता है। वह विभंग-ज्ञानद्वारा जीव-अजीव, पाखण्डी, आरम्भी, परिग्रही, दुखी और विशुद्ध जीवों को भी जानता है।

वह विभंगज्ञानी पूर्व ही सम्यक्त्व प्राप्त कर लेता है। सम्यूकत्व प्राप्त होनेसे श्रमणधर्म मे अभिरुचि लेता है। रुचिसे चारित्र स्वीकार करता है। चारित्र स्वीकार कर लिंग—वेप स्वीकार करता है। इससे शनैः शनैः उसकी मिथ्यात्व-पर्यायें क्षीण होती जाती है और सम्यगदर्शन की पर्यायें बढ़ती जाती है। इसप्रकार उसका विभंगज्ञान सम्यक्त्वयुक्त हो शीघ्र ही अवधिरूप मे परिवर्तित हो जाता है।

क्रमशः प्रत्याख्यानावरण, अप्रत्याख्यानावरण, और संज्वलन क्रोध, मान, माया व लोभका क्षय करता है। पश्चात् पांच प्रकारके ज्ञानावरणीयकर्म, नव प्रकारके दर्शनावरणीयकर्म, पाच प्रकारके अन्तरायकर्म और मोहनीयकर्मको [1] छिन्न-मस्तक ताड़वृक्ष के समान—सम्पूर्णरूप से क्षय करता है। परिणामतः वह कर्मरजको बिखेर देनेवाले अपूर्व-करणमे प्रवेश करता है। इससे उसे अनन्त, अनुत्तर, बाधारहित, आवरण-रहित, सर्व पदार्थों को ग्रहण करनेवाला और प्रतिपूर्ण श्रेष्ठ केवलज्ञान व केवलदर्शन उत्पन्न होता है।

ये (अश्रुत) केवलज्ञानी केवली-कथित धर्मको प्रज्ञप्त, प्ररूपित या प्रकट नही करते परन्तु मात्र एक न्याय—उदाहरण और एक प्रश्नोत्तर के सिवाय कोई धर्मोपदेश नहीं देते। ये किसीको मुंडित नहीं करते है। मात्र उपदेश (दीक्षार्थ) देते है। अन्तमे ये सिद्ध होते है तथा सर्व दुखोंका अन्त करते हैं।

ये (अश्रुत) केवलज्ञानी ऊर्ध्वलोक, अधःलोक और तिर्यक-लोकमें भी होते है। यदि ये उर्ध्वलोकमे उत्पन्न हों तो शब्दा-पाति, विकटापाति गंधापाति और माल्यवंत नामक वैताढ्य पर्वतोंमे होते है। संहरणकी अपेक्षासे सौमनस्य वन या पांडुक वनमे होते है। यदि अधोलोकमें हों तो गर्त—अधोलोकके ग्रामादिमें या गुफाओंमें होते है। संहरणकी अपेक्षासे पाताल-कलश या भवनवासियों के भवनोंमें होते है। तिर्यक्लोक में

1—जिसप्रकार ताड़वृक्षका मस्तक--ऊपरी भाग सर्वथा कटकर उससे अलग हो जाता है उसीप्रकार सम्पूर्णरूप से कर्मोंका अलग हो जाना।

हों तो पन्द्रह कर्मभूमियों में होते हैं। संहरणकी अपेक्षा से ढाई द्वीप और समुद्रोंके एक भागसे होते हैं।

ये (अश्रुत) केवलज्ञानी एक समय में जघन्य एक, दो, तीन तथा उत्कृष्ट दश होते हैं।

केवली यावत् केवली पाक्षिक उपासक-उपासिकासे केवली-कथित धर्म-श्रवणकर कोई जीव केवलीप्ररूपित धर्मको प्राप्त करते है और कोई जीव नहीं। इस सम्बन्धमें अश्रुतकेवलीके लिये वर्णित उपर्युक्त वर्णन श्रुतकेवलीके लिये भी "जिस जीवने केवल-ज्ञानावरणीय कर्मका क्षय कर लिया है उसे केवलीप्ररूपित-धर्मका लाभ होता है और उसे केवलज्ञान प्राप्त होता है" पर्यन्त जानना चाहिये।

वह (केवलज्ञानी यावत् केवली पाक्षिक उपासक-उपासिकासे केवली-प्ररूपित धर्म-श्रवणकर जिसको सम्यग्दर्शनादि प्राप्त होगये हैं) व्यक्ति निरंतर अट्ठम तपके द्वारा आत्माको भावित करता है। स्वभावकी भद्रतासे यावत् मार्गकी गवेशणा करते हुए उसे अवधिज्ञान उत्पन्न होता है। उस समुत्पन्न अवधि-ज्ञानके द्वारा वह जघन्य अंगुलका असंख्येय भाग तथा उत्कृष्ट अलोकमें लोकप्रमाण असंख्य खण्डोंका जानता तथा देखता है।

वह अवधिज्ञानी (श्रुत) लेश्याकी अपेक्षा छओं लेश्याओंमें और ज्ञानकी अपेक्षासे मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञानोंमें पाया जाता है। योग, उपयोग, संघयण संस्थान, ऊँचाई और आयुष्यकी अपेक्षा वह भी (अश्रुत) अवधिज्ञानीकी तरह ही होता है। वेदकी अपेक्षासे वह सवेदी भी है और अवेदी भी। सवेदी होनेपर स्त्रीवेदी या पुरुषवेदी या पुरुष नपुंसकवेदी होता

है। कषायकी अपेक्षासे वह सकषायी या अकषायी होता है। यदि अकषायी हो तो क्षीणकषायी होता है परन्तु उपशान्तकषायी नहीं। सकषायी होनेपर चारों कषायोंमें या एक, दो या तीन कषायोंमें पाया जाता है। चारों ही कषायोंमें पाये जानेपर संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ कषायों, तीन कषायोंमें पाये जानेपर संज्वलन मान, माया और लोभ कषायोंमें, दो कषायोंमें पाये जानेपर संज्वलन माया और लोभ कषायोंमें और एक कषायमें पाये जानेपर संज्वलन लोभकषायमें पाया जाता है।

यह (श्रुत) अवधिज्ञानी अध्यवसायोंकी अपेक्षासे (अश्रुत) अवधिज्ञानी की तरह ही होता है।

(श्रुत अवधिज्ञानीको) यहाँ केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न होने तकका सर्व वर्णन अश्रुतको तरह ही जानना चाहिये।

(श्रुत) केवलज्ञानी केवलीप्ररूपित धर्म बताते है, प्रज्ञप्त करते हैं और प्ररूपित करते हैं। ये किसीको मुंडित—दीक्षित भी करते है। इनके (श्रुतकेवली) के शिष्य-प्रशिष्य भी प्रव्रज्या देते है तथा मुंडित करते हैं।

(श्रुत) केवली सिद्ध-बुद्ध होते हैं तथा सर्व दुखोंक अन्त करते है। उनके शिष्य-प्रशिष्य भी सिद्ध होते है तथा सर्व दुखोंका अन्त करते हैं।

ये (श्रुत) केवली उर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यक् लोकमें भी होते है। यहाँ सर्व वर्णन (अश्रुत) केवलीकी तरह जानना चाहिये।

(श्रुत) केवली एक समयमें जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट एकसो आठ होते है।

नवम शतक

बत्तीसवाँ उद्देशक

बत्तीसवे उद्देशकमें वर्णित विषय

[नैरयिकादि सान्तर उत्पन्न होते है या निरन्तर ?—चउवीस दंडकीय जीवोंकी दृष्टिसे विचार, नैरयिकादि सान्तर उद्वर्तित होते हैं या निरन्तर-चउवीस दडकीय जीवोंकी दृष्टिसे विचार, प्रवेशनक और उसके भेद—एक संयोगी, द्विक संयोगी यावत् संख्येय-असंख्येय संयोगीकी अपेक्षासे विकल्प सद् नैरयिकादि उत्पाद् एवं उद्वर्तन—कारण, नैरयिकादि गतियोंमें उत्पन्न होनेके कारण। प्रश्नोत्तर संख्या ५१]

(प्रश्नोत्तर नं० ५९-६६)

(२८७) [1]नैरयिक, असुरकुमार और द्वीन्द्रियसे वैमानिक पर्यन्त सर्व जीव [2]सान्तर और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं। परन्तु पृथ्वीकायिकसे वनस्पतिकायिक पर्यन्त सर्व एकेन्द्रिय जीव निरन्तर उत्पन्न होते रहते है।

उत्पादकी तरह ही उद्वर्तनके लिये भी जानना चाहिये।

*प्रवेशनक

(प्रश्नोत्तर नं० ६७-१००)

(२८८) प्रवेशनक चार प्रकारके है: नैरयिकप्रवेशनक, तिर्यंचयोनिकप्रवेशनक, मनुष्यप्रवेशनक और देवप्रवेशनक।

१—गांगेय अनगार-द्वारा पूछे गये प्रश्न।

२—जिस प्रजनन—उत्पत्तिमें समयादि कालका व्यवधान हो।

* विजातीय भवसे विजातीय भवमें उत्पन्न होना प्रवेशनक कहा जाता है। सजातीय भवसे सजातीय भवमें उत्पन्न होना प्रवेशनक नहीं कहा जाता है जैसे—एकेन्द्रियोंका एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होना प्रवेशनक नहीं परन्तु किसी देवका एकेन्द्रियमें उत्पन्न होना प्रवेशनक है।

नैरयिकप्रवेशनक

नैरयिकप्रवेशनक सातप्रकारका है—रत्नप्रभाप्रवेशनक··· यावत् सप्तमभूमिप्रवेशनक।

एक नैरयिक जीव नैरयिकप्रवेशनक-द्वारा प्रविष्ट होते हुए रत्न-प्रभामें भी प्रविष्ट होता है और यावत् सप्तम तमतम:प्रभामें भी।

दो नैरयिक जीव नैरयिकप्रवेशनक-द्वारा प्रविष्ट होते हुए रत्नप्रभामें भी होते हैं यावत् तमतम:प्रभामें भी प्रविष्ट होते है। अथवा एक रत्नप्रभामें हो और एक बालुकाप्रभामें हो ··· इस-प्रकार एक रत्नप्रभामें हो और एक तमतम:प्रभामें हो (रत्न-प्रभाके साथ छः विकल्प), अथवा एक शर्कराप्रभामें हो और एक बालुकाप्रभामें हो······इसप्रकार एक शर्कराप्रभामें हो और एक तमतम.प्रभामें हो (शर्कराप्रभाके साथ पांच विकल्प)।

(इसप्रकार क्रमशः आगे बढ़ते रहना चाहिये। जिससे दो नैरयिकोंकी अपेक्षासे द्विकसंयोगी ६+५+५+३+२+१=२१ विकल्प होंगे।)

तीन नैरयिक नैरयिकप्रवेशनक-द्वारा प्रविष्ट होते हुए तीनों रत्नप्रभामें भी, शर्कराप्रभामें भी ·····इसप्रकार यावत् तमतम:प्रभा में प्रविष्ट हों, अथवा एक रत्नप्रभामें और दो शर्कराप्रभामें······ एक रत्नप्रभामें और दो तमतम:प्रभामें, अथवा दो रत्नप्रभामें और एक शर्कराप्रभामें····· दो रत्नप्रभामें एक तमतम:प्रभामें, अथवा एक शर्कराप्रभामें और दो बालुकाप्रभामें······एक शर्कराप्रभामें और दो तमतम:प्रभामें अथवा दो शर्कराप्रभामें और एक बालुकाप्रभामें····· दो शर्कराप्रभामें और एक तमतम:प्रभामें प्रविष्ट हो।

(इसीप्रकार अगली भूमियोंके लिये कहना चाहिये। इस-प्रकारसे रत्नप्रभाके १२, शर्कराप्रभाके १०, वालुकाप्रभाके ८, पंकप्रभाके ६, धूमप्रभाके ४, तमप्रभाके २, सर्व ४२ विकल्प होंगे।)

अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें और एक बालुकाप्रभामें, अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें और एक पंकप्रभामें......एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें और एक तमतमःप्रभामें प्रविष्ट हो (कुल पांच), अथवा एक रत्नप्रभामें, एक बालुकाप्रभामें और एक पंकप्रभामें,......अथवा एक बालुकाप्रभामें और एक तमतमःप्रभामें (कुल चार) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक पंकप्रभामें और एक धूमप्रभामें......अथवा एक पंकप्रभामें और एक तमतमःप्रभामें प्रविष्ट हो। (कुल तीन)

(इसीप्रकार पंकप्रभाको छोड़कर दो, और धूमप्रभाको छोड़कर एक विकल्प हुआ। इसप्रकार रत्नप्रभाके ५+४+३+२+१ =१५, समस्त पन्द्रह विकल्प होते हैं। इसीप्रकारसे शर्कराप्रभाके ४+३+२+१=१०, बालुकाप्रभाके ३+२+१=६, पंकप्रभाके १+१+१ =३, धूमप्रभाका १ =३५ विकल्प)

इसप्रकार तीन नैरयिकोंकी अपेक्षासे एकसंयोगी ७, द्विक संयोगी ४२, त्रिकसंयोगी ३५, कुल मिलाकर ८४ विकल्प हुए)

तीन नैरयिकोंके प्रवेशनककी तरह ही चार नैरयिकोंके एक-संयोगी सात, द्विकसंयोगी ६३, त्रिकसंयोगी १०५, चारसंयोगी ३५ कुल २१० विकल्प होते हैं।

इसीप्रकार पांच नैरयिकोंके अनुक्रमसे ७+८४+२१०+१४०+ २१ कुल ४६२ विकल्प, छः नैरयिकोंके ७+१०५+३५० +३५०+ १०५+७=कुल ९२४, सात नैरयिकोंके ७+१२६+५२५+७००+

३१६+४२+१=१७१६, आठ नैरयिकोंके ७+१४७+७३५+१२२५ +७३५+१४७+७=कुल ३००३, नव नैरयिकोंके ७+१६८+६८०+ १६६०+१४७०+३६२+२८= कुल ५००५ और दश नैरयिकोंके ७+ १८६+१२६०+२६४०+२६४६+८८२+८४=कुल ८००८ विकल्प होते हैं।

संख्येय नैरयिक जीव नर्कभूमिमें प्रवेश करते हुए रत्न-प्रभामें भी प्रविष्ट होते हैं और तमतमःप्रभामें भी ········। (एकसंयोगी ७ विकल्प) अथवा दो रत्नप्रभामें और संख्येय शर्कराप्रभामे,·· ·· दो रत्नप्रभामें और संख्येय तमतमःप्रभामें (छः विकल्प) इसप्रकार क्रमशः तीन, चार यावत् दश रत्नप्रभा में और संख्येय तमतमःप्रभामें, अथवा संख्येय रत्नप्रभामें और संख्येय शर्कराप्रभामें······यावत् संख्येय रत्नप्रभामें और संख्येय तमतमःप्रभामे प्रविष्ट हों (इसीप्रकार शर्कराप्रभा के लिये भी गिनना चाहिये। इसप्रकार द्विकसंयोगी २३१ विकल्प होंगे।

अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें और संख्येय वालुकाप्रभा में········यावत् एक रत्नप्रभामें, एक शर्करा-प्रभामें और संख्येय तमतमःप्रभामें, अथवा एक रत्नप्रभामें, दो शर्कराप्रभामें और संख्येय वालुकाप्रभामें ·····इसप्रकार एक रत्नप्रभामें, दश शर्कराप्रभामें और संख्येय वालुकाप्रभामें, एक रत्नप्रभामें, संख्येय शर्कराप्रभामें और संख्येय वालुकाप्रभामें······ दश रत्नप्रभामें, संख्येय शर्कराप्रभामें और संख्येय वालुका-प्रभामें, अथवा संख्येय रत्नप्रभामें, संख्येय शर्कराप्रभामें और संख्येय वालुकाप्रभामें—इसीप्रकार एक रत्नप्रभा, एक वालुका-

प्रभा और संख्येय पंकप्रभामें......(इस प्रकार गिनते गिनते संख्येय रत्नप्रभामें, संख्येय वालुकाप्रभामें और संख्येय पंकप्रभा में हों, तक आना चाहिये; इसप्रकार शेष पृथ्वियों तक गिनना चाहिये। इसप्रकार त्रिकसंयोगी ७३५ विकल्प होते हैं।

अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक वालुकाप्रभा में और संख्येय पंकप्रभामें—तदनन्तर पूर्वोक्त क्रमसे तृतीय भूमिमें दो से लेकर संख्येय शब्दोंको संयोजित करते हुए अन्य दश विकल्प होते हैं। इस क्रमसे अन्य पृथ्वियों और प्रथम पृथ्वीमें भी दो से लेकर संख्येय शब्द संयोजित करते हुए २० विकल्प होते हैं। इस तरह कुल मिलाकर ३१ विकल्प होते हैं। ३१ विकल्पोंके साथ सात नैरयिकोंके चतुष्कसंयोगी ३५ पदोंका गुणाकार करनेसे १०८५ विकल्प होंगे।

इसीप्रकार आदि की पांच पृथ्वियोंके साथ पंच-संयोग करने चाहिये। इनमें प्रथम चारमें एक-एक और पांचवीमें संख्येय, यह प्रथम होगा। तदनन्तर चतुर्थ भूमिमें दो से लेकर संख्येय शब्द प्रयोग किये जायं—इसीक्रमसे शेष तीसरी, दूसरी और पहली भूमिके लिये भी करना चाहिये। ये सब मिलाकर पंचसंयोगी ४१ विकल्प होते हैं। इनके साथ नर्कभूमियोंके पंचसंयोगी २१ पदोंका गुणाकार करते हुए ८६१ विकल्प होंगे। छःसंयोगी के पूर्वोक्त क्रमसे ५१ विकल्प होते हैं। इनके साथ सात नर्कोंके छःसंयोगी ७ पदोंका गुणाकार करते हुए ३५७ विकल्प होते हैं। सप्तसंयोगमें भी पूर्वोक्त क्रमसे ६१ विकल्प होते हैं।

इसप्रकार संख्येय नैरयिकों की अपेक्षा से ७+२३१+६३५+१०८५+८६१+३५७+६१=३३३७ विकल्प होते हैं।

असंख्येय नैरयिक प्रवेश करते हुए रत्नप्रभामें भी प्रविष्ट होते हैं और......यावत् तमतमःप्रभामें भी होते है। अथवा एक रत्नप्रभामें और असंख्येय शर्कराप्रभामें—इसप्रकार संख्येय नैरयिकोंकी तरह ही १ से १०, संख्येय एवं असंख्येय का गणित करना चाहिये। (इसके ७+२५२+८०५+११६०+६४५+३६२+६७=३६५८ विकल्प होंगे।)

उत्कृष्ट प्रवेशनक की अपेक्षासे सर्व नैरयिक रत्नप्रभामें हों, अथवा रत्नप्रभा और शर्कराप्रभामें, अथवा रत्नप्रभा और वालुकाप्रभामें हों इसप्रकार...... यावत् रत्नप्रभा और तमतमः प्रभामें हों, अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा और वालुकाप्रभामें हों—इसप्रकार यावत् रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा और तमतमःप्रभा में हों, अथवा रत्नप्रभा, वालुकाप्रभा और पंकप्रभामें भी हों......यावत् रत्नप्रभा, वालुकप्रभा और तमतमःप्रभामें हो, अथवा रत्नप्रभा, पंकप्रभा और धूमप्रभामें हो। पूर्व जिसप्रकार रत्नप्रभाको विना छोड़े नैरयिकोंका त्रिक संयोग कहा गया है उसीप्रकार यहाँ भी कहना चाहिये।

[इसीप्रकार चतुष्कसंयोगी, पंचसंयोगी, छःसंयोगी और सप्तसंयोगी विकल्प जानने चाहिये। इन सबके मिलाकर उत्कृष्टपदके इसप्रकार विकल्प होंगे—एकसंयोगी १, द्विक संयोगी ६, त्रिकसंयोगी १५, चतुष्कसयोगी २०, पंचसयोगी १५, षट्सयोगी ६ और सप्तसंयोगी १ विकल्प होगा। ये सब १+६+१५+२०+१५+६+१=६४ विकल्प होते है।]

रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिकप्रवेशनक, शर्कराप्रभापृथ्वी नैरयिक प्रवेशनक.........यावत् तमतमःप्रभापृथ्वी नैरयिकप्रवेशनकोंमें विशेषाधिकत्व निम्न प्रकार है :—

सबसे अल्प सप्तम तमतमःप्रभापृथ्वी नैरयिकप्रवेशनक हैं; इससे तमःप्रभापृथ्वी नैरयिकप्रवेशनक असंख्येयगुणित है—इसप्रकार विपरीत क्रमसे रत्नप्रभापर्यन्त उत्तरोत्तर प्रवेशनक असंख्येय गुणित अधिक हैं।

तिर्यंचयोनिकप्रवेशनक

तिर्यंचयोनिकप्रवेशनक पांच प्रकारका है :—एकेन्द्रिय तिर्यंच-योनिकप्रवेशक ''यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकप्रवेशनक।

तिर्यंचयोनिकप्रवेशनकमें भी नैरयिकप्रवेशनककी तरह एक तिर्यंचयोनिक जीवसे लेकर असंख्येय जीवोंका प्रवेशनक जानना चाहिये।

तिर्यंचयोनिक उत्कृष्टरूपसे इसप्रकार प्रविष्ट होते हैं—सर्व एकेन्द्रियोंमें हों अथवा एकेन्द्रियों और द्वीन्द्रियोंमें हों—इसप्रकार नैरयिकोंकी तरह तिर्यंचयोनिकोंके लिये भी कहना चाहिये। एकेन्द्रियोंको छोड़े बिना, द्विकसंयोग, त्रिकसंयोग, चतुष्कसंयोग, पंचसंयोग सबोंमें कहने चाहिये।

तिर्यंचयोनिकप्रवेशनकोंमें अल्पत्व-बहुत्व निम्नप्रकार हैं :—पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक-प्रवेशनक सबसे अल्प है, उससे चतुरिन्द्रिय तिर्यंचयोनिकप्रवेशक विशेषाधिक हैं। इसप्रकार क्रमशः त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और एकेन्द्रिय प्रवेशनक उत्तरोत्तर विशेष अधिक हैं।

मनुष्यप्रवेशनक

मनुष्यप्रवेशनक दो प्रकारका है :—समूर्च्छिम मनुष्यप्रवेशनक और गर्भज मनुष्यप्रवेशनक।

नैरयिकोंकी तरह ही एक मनुष्यसे लेकर असंख्येय मनुष्यों तकके प्रवेशनक जानने चाहियें।

उत्कृष्टरूपमें ये सर्व समूर्च्छिम मनुष्योंमें अथवा समूर्च्छिम मनुष्यों और गर्भज मनुष्योंमें भी प्रविष्ट होते हैं।

गर्भज मनुष्यप्रवेशनकों और समूर्च्छिम मनुष्यप्रवेशनकोंमें अल्पत्वबहुत्व निम्नप्रकार है :—

सबसे अल्प गर्भज मनुष्यप्रवेशनक है और समूर्च्छिम मनुष्य-प्रवेशनक इनसे असंख्येय गुणित अधिक हैं।

देवप्रवेशनक

देवप्रवेशनक चार प्रकारका है :—भवनवासी देवप्रवेशनक, बाणव्यन्तर देवप्रवेशनक, ज्योतिष्क देवप्रवेशनक और वैमानिक देवप्रवेशनक। इनका भी एक देवसे लेकर असंख्य देवतक पूर्ववत् जानना चाहिये।

उत्कृष्टरूपमें ये सर्व ज्योतिष्कमें अथवा ज्योतिष्क और भवनवासियोंमें, अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी एवं वैमानिकोंमें अथवा ज्योतिष्क, बाणव्यन्तर और वैमानिकोंमें अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी, बाणव्यन्तर और वैमानिकोंमें प्रविष्ट हों।

चार देव प्रवेशनकोंमें वैमानिकदेवप्रवेशनक सबसे अल्प है, इनसे असंख्येय गुणित अधिक भवनवासी देवप्रवेशनक है, इनसे असंख्येयगुणित वाणव्यन्तरदेवप्रवेशनक है और इनसे ज्योतिष्क-देवप्रवेशनक संख्येयगुणित है।

चार प्रकारके प्रवेशनकोंमें सबसे अल्प मनुष्य प्रवेशनक हैं, इनसे नैरयिकप्रवेशक असंख्येयगुणित अधिक हैं, इनसे असंख्येय गुणित देवप्रवेशनक है और देवप्रवेशनकसे असंख्येयगुणित अधिक तिर्यंचयोनिकप्रवेशनक हैं।

उत्पाद और उद्वर्तन

(प्रश्नोत्तर नं० १०१-१०५)

[देखो क्रमसंख्या २८७ पृष्ठसंख्या ३३६]

(प्रश्नोत्तर नं० १०२)

(२८६) नैरयिकोंमे विद्यमान नैरयिक उत्पन्न होते हैं परन्तु अविद्यमान नैरयिक उत्पन्न नही होते। इसीप्रकार विद्यमान उद्वर्तित होते हैं परंन्तु अविद्यमान नही।

यही बात वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जाननी चाहिये। उद्वर्तनमें ज्योतिष्क और वैमानिकोंके लिये उद्वर्तनके स्थानपर च्यवन शब्द-प्रयोग करना चाहिये।

सद्—विद्यमान नैरयिक उत्पन्न होते हैं व असद्—अविद्यमान नैरयिक उत्पन्न नहीं होते—इस सम्बन्धमें [1]पंचम शतकके नवम उद्देशकके अनुसार कारण जानने चाहिये।

नर्कादि गतियोंमें उत्पन्न होनेके कारण

(प्रश्नोत्तर नं० १०६-१०९)

(२९०) नैरयिक नैरयिकोंमें स्वतः—अपनेआप उत्पन्न होते है परन्तु किसी दूसरेके द्वारा अर्थात् परतः उत्पन्न नहीं होते। ये कर्मोके उदय, कर्मोकी गुरुता, कर्मोके भार, कर्मोके अतिभार,

---

१ देखो पृष्ठ संख्या—१६६, क्रमसंख्या १७२

अशुभ कर्मोंके उदय, विपाक तथा फलसे नर्कोंमें उत्पन्न होते हैं।

असुरकुमार स्वतः (असुरकुमारोंमें) उत्पन्न होते हैं परन्तु किसी अन्यके द्वारा नहीं। कर्मोंके उदय, कर्मोंकी उपशमता, अशुभ कर्मोंके अभाव, कर्मोंकी विशुद्धि, शुभ कर्मोंके उदय, विपाक और फलसे असुरकुमाररूपमें उत्पन्न होते है।

असुरकुमारोंकी तरह ही वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवोंमें इन देवोंके उत्पन्न होनेके कारण जानने चाहिये।

पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायरूपमें स्वयं उत्पन्न होते है परन्तु अस्वयं—किसी अन्यके द्वारा नहीं। ये कर्मोंके उदय, कर्मोंकी गुरुता, कर्मोंके भार, कर्मोंके अतिभार, शुभाशुभ कर्मोंके उदय, विपाक और फलसे पृथ्वीकायिक रूपमें उत्पन्न होते है।

पृथ्वीकायिककी तरह ही मनुष्य-पर्यन्त सर्व जीवोंकी उत्पत्तिके कारण जानने चाहिये।

नवम शतक

३३-३४ वां उद्देशक

तैतीसवे उद्देशकमें वर्णित विषय

[जमाली अनगारसे गौतम-द्वारा पूछे गये प्रश्न—जीव शाश्वत है या अशाश्वत, लोक शाश्वत है या अशाश्वत?—महावीर द्वारा प्रत्युत्तर, किल्विषिक देव उनकी स्थिति और निवास। प्रश्नोत्तर संख्या ८]

(प्रश्नोत्तर नं० ११०)

(२६१) [1]लोक शाश्वत है। लोक कभी नहीं था, नहीं हैं, नहीं रहेगा ; ऐसा नहीं परन्तु लोक था तथा रहेगा। यह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षत, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

लोक अशाश्वत भी है, क्योंकि अवसर्पिणी होकर उत्सर्पिणी होता है और उत्सर्पिणी होकर अवसर्पिणी होता है।

(प्रश्नोत्तर नं० १११)

(२६२) जीव शाश्वत है। कभी जीव नहीं था, नहीं है और नहीं होगा ; ऐसा नहीं परन्तु जीव था, है तथा रहेगा। वह ध्रुव नियत, शाश्वत, अक्षत, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

जीव अशाश्वत भी है। क्योंकि नैरयिकसे तिर्यंचयोनिक, तिर्यंचयोनिकसे मनुष्य और मनुष्यसे देव होता है।

१—जमाली अनगारसे गौतम गणधर-द्वारा पूछे गये प्रश्न। उनके प्रश्न थे लोक शाश्वत है या अशाश्वत? जीव शाश्वत है या अशाश्वत? जमालीके प्रत्युत्तर न दे सकनेपर भगवान् महावीर द्वारा किये गये समाधान।

किल्विषिक देव

(प्रश्नोत्तर नं० ११२-११७)

(२६३) किल्विषिकदेव तीन प्रकारके हैं :—तीन पल्योपमकी, तीन सागरोपमकी और तेरह सागरोपमकी स्थितियुक्त।

ज्योतिष्क देवोंके ऊपर तथा सौधर्म और ईशान देवलोकके नीचे तीन पल्योपमकी स्थितिवाले, सौधर्म और ईशान देवलोकोंके ऊपर तथा सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोकोंके नीचे तीन सागरोपमकी स्थितिवाले तथा ब्रह्मलोकके ऊपर तथा लांतकके नीचे तेरह सागरोपमकी स्थितिवाले किल्विषिक देव रहते हैं।

जो आचार्य, उपाध्यय, कुल, गण और संघका प्रत्यनीक हो, जो आचार्य और उपाध्यायका अयश करनेवाला, निन्दा—अवर्णवाद करनेवाला और अकीर्ति करनेवाला हो, जो अनेक असत्य अर्थोंको प्रकटकर दुराग्रहसे अपनेको, दूसरोंको तथा दोनोंको—स्वय और दूसरोंको, भ्रान्त करता हो, दुर्बोध करता हो, अनेक वर्षोंतक साधुत्वका पालन करता हो और अन्तमें मृत्यु समयमें अपने अकरणीय कार्योंका आलोचन-प्रतिक्रमण किये विना ही काल करता हो, वह उपर्युक्त तीन प्रकारके किल्विषिक देवोंमें किसी भी किल्विषिक देवरूपमें उत्पन्न होता है।

किल्विषिक देव आयुष्य, भव और स्थितिके क्षयसे देवलोकसे च्युत् हो [1]नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवके चार पाँच भव करके

---

१ भवग्रहणकी सख्या की अपेक्षासे यह सामान्य कथन है, अन्यथा देव और नैरयिक मरकर पुनः उत्तरवर्त्ती भवमें देवगति या नर्कगतिमें उत्पन्न नहीं होते। यह नियम है।

सिद्ध होते हैं और कितने ही अनादि और दीर्घमार्गवाली चारगतिरूप संसार-अटवीमें भ्रमण करते रहते हैं।

३४ वां उद्देशक

३४ वें उद्देशकमें वर्णित विषय

[एक पुरुषकी घात करते हुए व्यक्ति अन्य जीवोंकी भी घात करता है—कारण-अन्य विविध जीवोंकी दृष्टिसे विचार, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक आदि जीवोंका आहार, पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवोंको लगनेवाली क्रियायें। प्रश्नोत्तर सं० १४]

(प्रश्नोत्तर नं० ११८-१२३)

(२६४) कोई पुरुष अन्य पुरुषकी घात करते हुए पुरुषकी भी घात करता है और नोपुरुष—इतर जीवोंकी भी घात करता है। यद्यपि घातकके मनमें "मैं एक पुरुषकी घात करता हूँ" ऐसा विचार होता है परन्तु एक पुरुषकी घात करते हुए वह अनेक जीवोंका भी विनाश करता है।

कोई पुरुष अश्वकी घात करते हुए अश्वकी भी घात करता है और इतर जीवोंकी भी घात करता है। कारण पूर्ववत् जानना चाहिये। अश्वकी तरह ही हाथी, सिंह, व्याघ्र, चीत्ते आदिके सम्बन्धमें जानना चाहिये।

कोई पुरुष एक त्रस जीवकी घात करते हुए एक त्रस जीवकी भी घात करता है और इसके अतिरिक्त अन्य त्रस जीवोंकी भी घात करता। कारण पूर्ववत्। इन सब प्रश्नोंका एक ही गममें समावेश हो जाता है।

कोई पुरुष ऋषिका वध करते हुए ऋषिके सिवाय अन्य जीवोंका भी वध करता है। यद्यपि वधिकके मनमें "मैं एक

ऋषिका वध करता हूँ" ऐसा विचार होता है परन्तु वह उसका वध करते हुए अनन्त जीवोंका भी वध करता है।

एक पुरुष दूसरे पुरुषकी घात करते हुए नियमतः पुरुष-वैरसे, अथवा पुरुष-वैर और इतर पुरुषके वैर अथवा इतर पुरुषोंके वैरोंसे बंधता है।

पुरुष-बैरकी तरह अश्व, व्याघ्र आदि जीवोंके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये। ऋषिका घातक भी अवश्य ही ऋषिके वैरसे अथवा इतर ऋषिके वैर या वैरों से बंधता है।

एकेन्द्रिय जीव और श्वासोच्छ्वास

(प्रश्नोत्तर नं० १२४-१३१)

(२६५) पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिक, अप्कायिक अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवोंको आनप्राण—श्वासोच्छ्वासनिःश्वासरूपमें ग्रहण करते हैं।

पृथ्वीकायिककी तरह ही जल, वायु, अग्नि और वनस्पतिकायिक जीवोंके लिये जानना चाहिये।

पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिक को आनप्राणरूपसे—श्वासोच्छ्वासनिःश्वास रूपमें ग्रहण करते हुए और छोड़ते हुए कदाचित् तीन, चार और पांच क्रियायुक्त होते हैं।

पृथ्वीकायिक तरह ही अप्कायिक से वनस्पतिकायिक पर्यन्त सर्व जीव कदाचित्, तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पांच क्रियायुक्त होते है।

वायुकायिक जीव वृक्षको मूलसे कँपाता हुआ या गिराता हुआ कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पांच क्रियायुक्त होता है। मूलकी तरह ही बीजसे लेकर कंदतक जानना चाहिये।

दशम शतक

प्रथम उद्देशक

प्रथम उद्देशकमें वर्णित विषय

[दश दिशायें और उनमें स्थित जीव, अजीव, जीव व अजीवके देश-प्रदेश—विस्तृत विवेचन, शरीर और उसके भेद। प्रश्नोत्तर संख्या ९]

(प्रश्नोत्तर न० १-७)

(२६६) [१] पूर्व दिशा जीवरूप और अजीवरूप है। पूर्वके तरह ही पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, अधो और ऊर्ध्व दिशायें जाननी चाहिये।

दिशायें दश हैं :—पूर्व, पूर्वदक्षिण (अग्निकोण) दक्षिण, दक्षिण पश्चिम (नैऋत्य कोण), पश्चिम, पश्चिमोत्तर (वायव्य कोण), उत्तर, उत्तरपूर्व (ईशान कोण) ऊर्ध्व और अधो दिशा।

इन दिशाओंके (अनुक्रम से) निम्न दश नाम हैं :—ऐन्द्री (पूर्व) आग्नेयी (अग्निकोण) याम्या (दक्षिण) नैऋती, (नैऋत्यकोण), वारुणी (पश्चिम) वायव्या, (वायव्यकोण) सोम्या (उत्तर) ऐशानी (ईशानकोण) विमला (उर्ध्व दिशा) और तमा (अधोदिशा)।

पूर्व दिशा जीवरूप, जीव-देश और जीव-प्रदेशरूप भी है तथा अजीवरूप और अजीव देश-प्रदेश रूप भी है।

---

१ जीव तथा अजीवकी अपेक्षासे पूर्वादि दिशाओंकी स्थिति

पूर्वदिशामें जो जीव हैं वे निश्चय ही एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय तथा अनिन्द्रिय (सिद्ध) जीव हैं और जो जीव-देश व प्रदेश हैं वे भी इन्हीं जीवोंके हैं।

इसमें जो अजीव हैं वे दो प्रकारके हैं :—रूपी और अरूपी। रूपी अजीव चार प्रकारके हैं :—स्कंध, स्कधदेश, स्कंधप्रदेश और परमाणुपुद्गल। जो अरूपी हैं वे सात प्रकारके हैं— (१) [१]नोधर्मास्तिकायरूपधर्मास्तिकायदेश, (२) धर्मास्तिकाय प्रदेश, (३) नोअधर्मास्तिकायरूप - अधर्मास्तिकायदेश, (४) अधर्मास्तिकाय-प्रदेश, (५) नोआकाशास्तिकायरूप-आकाशास्तिकाय देश, (६) आकाशास्तिकाय प्रदेश (७) अद्धासमय (काल)।

[२]आग्नेयी दिशा नोजीवदेशरूप, जीवप्रदेशरूप और अजीवरूप तथा अजीवदेश-प्रदेश रूप है।

इसमें जो जीव देश हैं वे निश्चय ही एकेन्द्रिय जीवके देश है अथवा (१) अनेक एकेन्द्रिय जीवोंके देश और एक द्वीन्द्रिय जीवका देश है, अथवा (२) अनेक एकेन्द्रियों और एक द्वीन्द्रिय के देश हैं, अथवा (१) अनेक एकेन्द्रियों और अनेक द्वीन्द्रियोंके देश हैं, अथवा एकेन्द्रियों के देश और एक त्रीन्द्रिय

१—पूर्व दिशा अखण्ड धर्मास्तिकायरूप नहीं है परन्तु उसके देश और असंख्येय प्रदेशरूप है अतः नोधर्मास्तिकाय शब्दका प्रयोग किया है। इसीप्रकार नो अधर्मास्तिकायके लिये भी जानना चाहिये।

२—आग्नेयी आदि विदिशायें जीवस्वरूप नहीं हैं, क्योंकि प्रत्येक विदिशा का व्यास एक प्रदेश है। एक प्रदेशमें जीवका समावेश नहीं होता क्योंकि जीवकी अवगाहना असंख्येय प्रदेशात्मक है। अतः नोजीव देशरूप शब्दका प्रयोग किया गया है।

जीवका देश है—इसप्रकार उपर्युक्त तीनों विकल्प यहाँ भी जानने चाहिये। इसी क्रमसे अनिन्द्रिय पर्यन्त भंग करने चाहिये।

इसमें जो जीव-प्रदेश हैं वे निश्चय ही एकेन्द्रियोंके प्रदेश हैं अथवा द्वीन्द्रियके प्रदेश हैं (२) एकेन्द्रियों और द्वीन्द्रियोंके प्रदेश हैं—इसप्रकार प्रथम भंगको छोड़कर अनिन्द्रिय पर्यन्त सर्वत्र दो भंग जानने चाहिये।

जो अजीव हैं उनके उपर्युक्त (पूर्व दिशामें कथित) रूपीके चार और अरूपीके सात भेद जानने चाहिये। विदिशाओंमें जीव नहीं हैं अतः सर्वत्र देशविषयक भंग जानने चाहिये।

पूर्व (ऐन्द्री) दिशाकी तरह ही याम्या, वारुणी (पश्चिम) और सोम्या (उत्तर) दिशायें जीवरूप, जीव-देश-प्रदेशरूप, अजीवरूप और अजीव-देश-प्रदेशरूप हैं।

जैसे आग्नेयी दिशाके सम्बन्धमें कहा गया है उसीप्रकार नैऋत्य, वायव्य, और ईशान दिशाओं के लिये जानना चाहिये।

विमला (ऊर्ध्व) दिशामें आग्नेयीमें कथित जीवोंकी तरह जीव और पूर्वमें वर्णित अजीवोंकी तरह अजीव हैं।

इसीप्रकार अधोदिशाके विषयमें जानना चाहिये। विशेषान्तर यह है कि इसमें अरूपी अजीव छः प्रकारके हैं। वहाँ अद्धा समय (काल) नहीं है।

(प्रश्नोत्तर नं० ८-९)

(२६७) शरीर पांच प्रकारके हैं – औदारिक, वैक्रिय, आहारक तैजस और कार्मण।

औदारिक शरीरके भेद आदि, अवगाहना-संस्थान पद (प्रज्ञापनापद २१) के अनुसार जानने चाहिये।

दशम शतक

द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ उद्देशक

द्वितीय उद्देशक

द्वितीय उद्देशक में वर्णित विषय

[वीचिमार्ग, अवीचिमार्ग, योनि और उसके भेद, वेदना और उसके प्रकार, प्रतिमाधारी अनगार और दोष-सेवन । प्रश्नोत्तर संख्या ६]

(प्रश्नोत्तर नं० १०-११)

(२६८) वीचिमार्ग—कषायभावमें संस्थित संवृत अनगार को अग्रस्थित रूपों को देखते हुए, पीछे रहे हुए रूपोंको देखते हुए, पार्श्ववर्ती रूपोंको देखते हुए, ऊपरके रूपोंको देखते हुए और नीचेके रूपोंको देखते हुए ईर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती है परन्तु साम्परायिकी क्रिया लगती है। क्योंकि जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ क्षीण हो गये हों उसीको ईर्यापथिकी क्रिया लगती है। यहाँ [1]सप्तम शतक प्रथम उद्देशकमें वर्णित "संवृत अनगार सूत्रविरुद्ध आचरण करता है", तक सर्व वर्णन जानना चाहिये।

अवीचिमार्ग—अकषायभावमें संस्थित संवृत अनगारको उपर्युक्त रूपोंका अवलोकन करते हुए, ईर्यापथिकी क्रिया लगती है परन्तु साम्परायिकी नहीं। जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ क्षीण हो गये हों उसको ईर्यापथिकी क्रिया लगती है; साम्परायिकी नहीं। [2]सप्तम शतकके प्रथम उद्देशक में वर्णित—

१-२—देखो पृष्ठ संख्या २११, क्रम-संख्या २१२।

"संवृत अनगार सूत्रके अनुसार आचरण करता है", तक सर्व वर्णन यहाँ भी जानना चाहिये।

योनि

(प्रश्नोत्तर नं० १२)

(२९९) योनि तीन प्रकार की है :—शीत, ऊष्ण और शीतोष्ण। यहाँ समग्र [1]योनिपद जानना चाहिये।

वेदना

(प्रश्नोत्तर नं० १३)

(३००) वेदना तीन प्रकारकी है :—शीत, ऊष्ण और शीतोष्ण वेदना। यहाँ [2]प्रज्ञापनासूत्रसे सम्पूर्ण वेदनापद जानना चाहिये।

नैरयिक दुखपूर्ण, सुखपूर्ण और दुखसुखविहीन वेदना भी वेदन करते है।

प्रतिमाधारी अनगार और दोष-सेवन

(प्रश्नोत्तर नं० १४-१५)

(३०१) जिस अनगारने मासिक [3]प्रतिमा अंगीकार की है तथा जिसने शरीरके ममत्वका परित्याग कर दिया है, ऐसे (प्रतिमाधारी) भिक्षुके द्वारा यदि किसी एक अकृत्य स्थानका सेवन हो गया हो और यदि वह उस अकृत्य स्थानकी आलोचना तथा प्रतिक्रमण किये विना काल कर जाय तो उसे आराधना नहीं होती। यदि अकृत्य स्थानका वह आलोचन व प्रतिक्रमण करके काल

१, प्रज्ञापना सूत्र पद ९। २ प्रज्ञापनासूत्र पद ३५। ३ प्रतिमा—तपविशेषः। यहाँ दशाश्रुतस्कंध में वर्णित बारह ही प्रतिमाओंका वर्णन जानना चाहिये।

करता है तो उसको आराधना होती है। कदाचित् किसी भिक्षुके द्वारा अकृत्य स्थानका सेवन हो गया हो, फिर उसके मनमें यह विचार उत्पन्न हो—"मैं अपने मरण समयमें अपने इस अकृत्य स्थानका आलोचन करूँगा तथा तपरूपी प्रायश्चित्त अंगीकार करूँगा" परन्तु यदि वह अकृत्य स्थानका आलोचन व प्रतिक्रमण किये बिना ही मर जाय तो उसे आराधना नहीं होती। आलोचन तथा प्रतिक्रमण कर काल करे तो आराधना होती है। कोई भिक्षु किसी अकृत्य स्थानका सेवन कर यह सोचे "श्रमणोपासक भी यदि काल-समय में काल करके किसी एक देवलोकमें उत्पन्न होता है तो क्या मैं अन्न-पन्निक देवत्व भी प्राप्त नहीं करूँगा?" यह सोच, यदि वह उस स्थान का आलोचन तथा प्रत्यालोचन नहीं करे तथा मरण समयमें काल करके मर जाय तो आराधना नहीं होती है। अकृत्य स्थानका आलोचन तथा प्रतिक्रमण करके काल करे तो आराधना होती है।

तृतीय उद्देशक

तृतीय उद्देशक में वर्णित विषय

[देव और उनकी समुल्लंघन-शक्ति, अल्पशक्तिसम्पन्न देव-देवी और महत् शक्तिसम्पन्न देव-देवी - परस्पर एक दूसरेके मध्य होकर जा सकते या नहीं?—विस्तृत विवेचन, दौड़ता हुआ अश्व और उसकी खु-खु ध्वनिका कारण, भाषा और उसके भेद। प्रश्नोत्तर संख्या १५]।

देव और उनकी समुल्लंघन-शक्ति

(प्रश्नोत्तर नं० १६-२८)

(३०२) देवता अपनी शक्तिके द्वारा चार-पांच देवावासोंका

समुल्लंघन करते हैं पश्चात् दूसरे की शक्तिके आश्रयसे उल्लंघन करते हैं। यह बात असुरकुमार, व्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिक-पर्यन्त जाननी चाहिये। मात्र असुरकुमार अपनी आत्मशक्तिसे असुरकुमारोंके आवासोंका ही समुल्लंघन कर सकते हैं। अन्य सर्व देवगण चार-पांच देवावासों का उल्लंघन अपनी आत्मशक्तिसे करते हैं, पश्चात् किसी दूसरे की शक्तिके आश्रयसे उल्लंघन करते हैं।

अल्पशक्तिसंपन्न देव महर्द्धिक देवके मध्य होकर नहीं जाता। समानशक्तिवाला देव समानशक्तिवाले देवके मध्य होकर नहीं जाता परन्तु यदि वह प्रमत्त हो तो जा सकता है।

मध्य जाता हुआ देव सम्मुख देवको विमोहित करके जा सकता है परन्तु विना विमोहित किये नहीं। वह देव प्रथम (जानेके पूर्व) विमोहित करके जाता है परन्तु प्रथम जाकर पश्चात् विमोहित नहीं करता है।

महर्द्धिक देव अल्पशक्तिवाले देवके मध्य होकर जाता है। वह अल्पशक्तिसम्पन्न देवको विमोहित करके भी जा सकता है और विना विमोहित करके भी। वह पूर्व विमोहित करके भी जा सकता है अथवा प्रथम वहाँ जाकर पश्चात् विमोहित भी कर सकता है।

अल्पशक्तियुक्त असुरकुमार महाशक्तिसम्पन्न असुरकुमार के मध्य होकर नहीं जा सकता। सामान्य देवोंकी तरह असुरकुमारोंके स्तनितकुमार तक तीनों विकल्प जानने चाहिये।

अल्पशक्तिवान् देव महाशक्तिसम्पन्न देवांगनाके मध्य होकर

नहीं जाता। समानशक्तिवाला देव समानशक्तिवाली देवीके मध्य होकर नहीं जाता परन्तु प्रमत्त हो तो जा सकता है। इसप्रकार पूर्ववत् देवताओंके सर्व विकल्प देवियोंके लिये भी जानने चाहिये।

अल्पशक्तिसम्पन्न देवांगना महान्‌शक्तिसम्पन्न देवांगना के मध्य होकर नहीं जाती। समानशक्तिवाली देवी समान-शक्तिवाली देवीके मध्यमें या महाशक्तिवाली देवीके मध्यमें जा सकती है या नहीं; इस सम्बन्धमें पूर्ववत् प्रत्येक के तीन-तीन विकल्प जानने चाहिये।

महान्‌ऋद्धिसन्न वैमानिक देवांगना अल्पशक्तिशाली देवांगनाके मध्यम होकर जाती है। वह बिना विमोहित किये अथवा पूर्व विमोहित करके भी जाती है अथवा पूर्व जाकर पीछे भी विमोहित करती है ; इस सम्बन्धमें पूर्ववत् जानना चाहिये। इसप्रकार देव-देवियोंके [1]चार दंडक जानने चाहिये।

अश्व और खु-खु ध्वनि

(प्रश्नोत्तर नं० २९)

(३०३) जब घोड़ा दौड़ता है, तब उसके हृदय और यकृतके मध्यमें कर्कट नामक वायु उत्पन्न होती है, इससे दौड़ते समय वह खु-खु शब्द करता है।

१—चार दडक—सामन्य देवके साथ देवीका दंडक, महत्‌देवके साथ देवीका दडक, देवींके साथ देवका दंडक और देवीके साथ देवीका दडक।।

भाषा और उसके भेद

(प्रश्नोत्तर न० ३०)

(३०४) भाषा बारह प्रकार की है —

(१) आमन्त्रणी[१] (२) आज्ञापनी[२] (३) याचनी[३] (४) प्रच्छनी[४] (५) प्रज्ञापनी[५] (६) प्रत्याख्यानी[६] (७) इच्छानुलोमा[७] (८) अनभिगृहीता[८] (९) अभिगृहीता[९] (१०) संशयकरणी[१०] (११) व्याकृता[११] और (१२) अव्याकृता[१२] ।

"मैं आश्रय करूँगा, शयन करूँगा, खड़ा रहूँगा, बैठूगा और लेटूँगा" इसप्रकारकी भाषा प्रज्ञापनी भाषा है। ऐसी भाषा मृषा नहीं कही जा सकती ।

चतुर्थ उद्देशक

चतुर्थ उद्देशकमें वर्णित विषय

[चमरेन्द्र, वैरोचनेन्द्र, वलि, धरणेन्द्र आदि इन्द्रोंके त्रायस्त्रिंशक देव और उनकी संख्या । प्रश्नोत्तर संख्या ८ ।]

१, संबोधनपूर्वक बोली जाती हुई भाषा आमन्त्रणी, २, आज्ञा—अधिकारके साथ बोलाती हुई आज्ञापनी, ३, किसी वस्तुको मांगना याचनी, ४, अज्ञात अथवा संदिग्ध वचन बोलना प्रच्छनी, ५, उपदेश देना अथवा किसीको अवगत करना प्रज्ञापनी, ६, निषेधात्मक वचन कहना—प्रत्याख्यानी, ७, इच्छानुकूल भाषा इच्छानुलोमा ८, अनिश्चयात्मक भाषा—अनभिगृहीता जैसे — तुम्हें जैसा पसन्द हो वैसा कार्य करो, ९, निश्चयात्मक भाषा—अभिगृहीता, यह कर, वह कर आदि १०, सशय-उत्पन्न करनेवाली भाषा संशयकरणी-द्वयार्थक भाषा, ११ लोकप्रसिद्ध अर्थयुक्त भाषा व्याकृता १२ गंभीर गूढार्थपूर्ण भाषा अव्याकृता ।

त्रायस्त्रिंशक देव

(प्रश्नोत्तर न० ३१-३८)

(३०५) [1]असुरेन्द्र—असुरकुमारोंके राजा चमरके ३३ त्राय-स्त्रिंशक देव हैं। इन त्रायस्त्रिंशक देवोंके नाम शाश्वत हैं। अतः वे कभी न थे, कभी न होंगे, कभी नहीं है, ऐसा नहीं। ये शाश्वत् नित्य हैं। अव्युच्छित्तिनय—द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे अन्य च्युत् होते हैं और अन्य उत्पन्न होते हैं।

वैरोचनेन्द्र-वैरोचनराज बलि, नागकुमारेन्द्र धरण, भूतानन्द यावत् महाघोष इन्द्र, देवेन्द्र देवराज शक्र, ईशानेन्द्र और देवेन्द्र सनत्कुमारके तैतीस-तैतीस त्रायस्त्रिंशक देव हैं।

शेष सर्व वर्णन चमरेन्द्रकी तरह जानना चाहिये। प्राणतसे अच्युत् पर्यन्त भी इसीप्रकार जानना जाहिये।

---

१ यमहस्ति अनगार द्वारा पूछा गया प्रश्न।

दशम शतक

पंचम उद्देशक

पंचम उद्देशकमें वर्णित विषय

[चमरेन्द्र और उसकी अग्रमहिषियोंकी संख्या—परिवार, चमरेन्द्र अपनी सभामें देवांगनाओंके साथ विषय-सेवन नहीं कर सकना—कारण, चमरेन्द्रके लोकपाल और उनकी अग्रमहिषियां, सर्व इन्द्रों तथा लोकपालोंकी अग्रमहिषियोंके नाम तथा परिवार। प्रश्नोत्तर संख्या २८]

(प्रश्नोत्तर नं० ३९-६६)

(३०६) [1]असुरेन्द्र चमरके पाच अग्रमहिषिया है। उनके नाम इसप्रकार है :—१, काली, २ रायी, ३, रजनी, ४, विद्युत् और ५ मेघा। एक २ महिषिके आठ ८ हजार देवियोंका परिवार है। एक २ देवी आठ-आठ हजार देवियोंके परिवारको विकुर्वित कर सकती है। इसप्रकार पूर्वापर सर्व मिलाकर चालीस हजार देवियां हैं और इन देवियोंका यह परिवार त्रुटिक कहा जाता है।

असुरेन्द्र चमर अपनी चमरचंचा नामक राजधानीमें सुधर्मा-सभामें चमर नामक सिंहासन पर बैठकर अपने त्रुटिकके साथ दिव्य भोगोंको भोगनेमें असमर्थ हैं; क्योंकि सुधर्मासभामें माणवक नामक चैत्यस्तंभ है। उस वज्रमय गोल स्तंभमें जिन की अनेक अस्थियां हैं। ये अस्थियां चमर तथा अनेक असुरकुमार देवों तथा देवियोंके लिये अर्चनीय, वंदनीय, नमस्कारयोग्य, पूजनीय, सत्कारयोग्य व सम्मानयोग्य है। वे कल्याणरूप व

१—स्थविरों द्वारा पूछे गये प्रश्नोंके उत्तर।

मंगलरूप हैं तथा देव-चैत्यकी तरह उपासनीय हैं। अतः जिन की अस्थियोंके निकट वह अपनी राजधानीमें भी भोग नहीं भोग सकता। वह मात्र सिंहासनारूढ़ हो चौंसठ हजार सामानिक देवों, त्रायस्त्रिंशकदेवों तथा अनेक असुकुमार देव तथा देवांगनाओंसे परिवृत्त हो, लम्बे तथा निरन्तर होते हुए नाट्य, गीत और वाद्य शब्दोंके साथ पारिवारिक ऋद्धि उपभोग करनेमें समर्थ है परन्तु मैथुननिमित्तक भोग नहीं भोग सकता है।

असुरेन्द्र चमरके लोकपाल सोमके कनका, कनकलता, चित्रगुप्ता और वसुन्धरा नामक चार अग्रमहिषियाँ है। एक २ देवीके एक-एक हजार देवियोंका परिवार है। एक-एक देवी एक-एक हजार देवियोंके परिवारको विकुर्वित कर सकती है। इस-प्रकार पूर्वापर सब मिलाकरके चार २ हजार देवियोंका परिवार है जो त्रुटिक कहा जाता है। सोम महाराज अपनी सोम नामक राजधानीकी सुधर्मासभामें सोम नामक सिंहासनपर बैठकर इन देवियोंके त्रुटिकके साथ मैथुननिमित्तक भोग भोगनेमें असमर्थ हैं। कारण और शेष सर्व वर्णन चमरकी तरह जानना चाहिए। परिवार सूर्याभकी तरह जानना चाहिये।

लोकपाल सोम महाराजाकी तरह ही चमरके अन्य यम, वरुण और वैश्रमण लोकपालोंके लिये जानना चाहिये। राज-धानियोंमें अन्तर है। यमके यमा, वरुणके वरुणा और वैश्रमणके वैश्रमणा नामक राजधानी है।

वैरोचनेन्द्र बलिके पाच-पाच पटरानियाँ है। उनके नाम इसप्रकार हैं - शुभा, निशुंभा, रंभा, निरंभा और मदना। देवियोंका परिवार आदि सर्व चमरेन्द्रकी तरह जानना चाहिये।

वैरोचनेन्द्र बलिकी राजधानी बलिचचा है; इसका परिवार तृतीय शतकके प्रथम उद्देशकके अनुसार जानना चाहिये। वैरोचनेन्द्र बलिके लोकपालों—सोम, यम, वरुण और वैश्रमण, प्रत्येकके चार २ पटरानियां हैं; जिनके नाम इसप्रकार हैं—मेनका, सुभद्रा, विजया और अशनि।

इनके परिवार आदि चमरके सोमादि लोकपालोंकी तरह जानने चाहिये।

नागकुमारोंके राजा धरणेन्द्रके छः पटरानियां हैं। उनके नाम इसप्रकार हैं :—इला, शुक्रा, सतारा, सौदामिनी, इन्द्रा और घनविद्युत्। प्रत्येक देवी छः छः हजार देवियोंका परिवार विकुर्वित कर सकती है। इसप्रकार पूर्वापर सब मिलाकर छत्तीस हजार देवियोंका एक त्रुटिक है।

शेष सर्व वर्णन चमरेन्द्रकी तरह ही है।

नागकुमारेन्द्र धरणके लोकपाल कालवाल महाराजके चार पटरानियां हैं। उनके नाम इसप्रकार है :—अशोका, विमला, सुप्रभा और सुदर्शना।

शेष सर्व वर्णन चमरके लोकपालोंकी तरह है।

इसीप्रकार अन्य तीनों लोकपालोंके लिये जानना चाहिये।

भूतानेन्द्रके छः अग्रमहिषियां है। नाम इसप्रकार हैं—रूपा, रूपांशा, सुरूपा, रूपकावती, रूपकाता और रूपप्रभा।

परिवार आदि सर्व धरणेन्द्रकी तरह जानना चाहिये।

भूतानेन्द्रके लोकपाल नागवित्तके चार पटरानियां हैं। उनके नाम इसप्रकार है :—सुनन्दा, सुभद्रा, सुजाता और सुमना।

परिवार आदि सर्व वर्णन चमरके लोकपालवत्। इसीप्रकार अन्य तीनों लोकपालोंके लिये जानना चाहिये।

दक्षिण दिशाके इन्द्रोंको धरणेन्द्रकी तरह और उनके लोकपालोंको धरणेन्द्रके लोकपालोंकी तरह, उत्तर दिशाके इन्द्रोंको भूतानेन्द्रकी तरह और उनके लोकपालोंको भूतानेन्द्रके लोकपालों की तरह जानना चाहिये।

विशेषान्तर यह है कि सर्व इन्द्रोंकी राजधानियाँ और सिंहासन इन्द्रोंके समान नामसे तथा उनके परिवार तृतीय शतकके प्रथमोद्देशकके अनुसार जानने चाहिये। सर्व लोकपालोंकी राजधानियाँ और सिंहासन भी उन्हींके नामोंके समान है। परिवार चमरेन्द्रके लोकपालोंके परिवारोंकी तरह जानने चाहिये।

पिशाचेन्द्र कालके चार पटरानियाँ है। उनके नाम इसप्रकार हैं :—कमला, कमलप्रभा, उत्पला और सुदर्शना। एक २ देवीके एक-एक हजार देवियोंका परिवार है। शेष सर्व चमरके लोकपालोंकी तरह जानना चाहिये। परिवार भी उन्हींके समान है। विशेषान्तर यह है कि इसकी काला नामक राजधानी और काल नामक सिंहासन है।

इसीप्रकार महाकालके लिये जानना चाहिये।

भूतोंके राजा भूतेन्द्र सुरूपके चार पटरानियाँ है। उनके नाम इसप्रकार है :—रूपवती, बहुरूपा, सुरूपा और सुभद्रा। एक-एक देवीका परिवार आदि सर्व वर्णन कालेन्द्रकी तरह जानना चाहिये।

सुरूपकी तरह ही प्रतिरूपेन्द्रके लिये जानना चाहिये।

यक्षेन्द्र पूर्णभद्रके चार पटरानियाँ है। उनके नाम इस-प्रकार हैं :—पूर्णा, बहुपुत्रिका, उत्तमा और तारका। एक-एकका परिवार आदि सर्व वर्णन कालेन्द्रकी तरह जानना चाहिये। इसीप्रकार मणिभद्रके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये।

इसीप्रकार महाभींसेन्द्रके सम्बन्धमें जानना चाहिये।

किनरेन्द्रके चार पटरानियाँ हैं :--अवतंसा, केतुमती रतिसेना, रतिप्रया। एक २ का परिवार आदि सर्व पूर्ववत्।

इसीप्रकार किम्पुरुपेन्द्रके सम्बन्धमें जानना चाहिये।

सत्पुरुपेन्द्र के चार अग्रमहिपियां हैं। उनके नाम इसप्रकार हैं—रोहिणी नवमिका, ह्री और पुष्पवती। शेप वर्णन पूर्ववत्।

इसीप्रकार महापुरुपेन्द्रके सम्बन्धमें जानना चाहिये।

अतिकायेन्द्रके चार पटरानियाँ हैं। उनके नाम इसप्रकार हैं :—भुजंगा, भुजंगवती, महाकच्छा और स्फुटा। एक-एकका परिवारादि सर्व पूर्ववत्।

इसीप्रकार महाकायेन्द्रके लिसे जानना चाहिये।

गीतरतीन्द्रके चार पटरानियाँ है। वे इसप्रकार है :—सुघोपा, विमला, सुस्वरा और सरस्वती। एक-एकके परिवार आदिका सर्व वर्णन पूर्ववत्।

इसीप्रकार गीतयश इन्द्रके लिये भी जानना चाहिये। इन सर्व इन्द्रोंका सर्व वर्णन कालेन्द्रकी तरह जानना चाहिये परन्तु राजधानियाँ और सिहासन इन्द्रोंके नामानुसार हैं।

ज्योतिष्केन्द्र और ज्योतिष्कराज चन्द्रके चार पटरानियाँ। उनके नाम इसप्रकार हैं :—चन्द्रप्रभा, ज्योत्स्नाभा, अर्चि-

माली और प्रभकरा। जीवाभिगम सूत्रमें वर्णित ज्योतिष्क उद्देशकके अनुसार यहाँ सर्व वर्णन जानना चाहिये।

सूर्यके सम्बन्धमें भी इसीप्रकार जानना चाहिसे। सूर्यके भी निम्न चार अग्रमहिषियां है :—

सूर्यप्रभा, आतपाभा, अर्चिमाली और प्रभंकरा।

उपर्युक्त सर्व इन्द्र अपनी-अपनी राजधानियोंमे सिंहासनके मध्य मैथुननिमित्तक भोग भोगनेमें असमर्थ है।

अंगार नामक महाग्रहके चार अग्रमहिषियां हैं। उनके नाम इसप्रकार हैं :—विजया, वैजयन्ती, जयती और अपराजिता। एक-एक देवीका परिवार आदि सर्व चन्द्रवत्। विशेष अन्तर यह है कि विमानका नाम अंगरावतंसक और सिहासनका नाम अंगारक है।

इसीप्रकार व्याल नामक ग्रह-पर्यन्त और भावकेतु ग्रह-पर्यन्त अट्ठासी महाग्रहोंके लिये जानना चाहिये। अवतसक और सिहासनोंके नाम इन्द्रोंके नामोंके अनुसार ही हैं।

देवराज देवेन्द्र शक्रके आठ अग्रमहिषियां है। उनके नाम इसप्रकार हैं—पद्मा, शिवा, श्रेया अंजु, अमला, अप्सरा, नवमिका और रोहिणी। एक-एक देवीके सोलह-सोलह हजार देवियोंका परिवार है। एक-एक देवी अन्य सोलह-सोलह हजार देवियोंका रूप विकुर्वित कर सकती है। इसप्रकार पूर्वापर मिलाकर एक लाख अठावीस हजार देवियोंके परिवारका एक त्रुटिक है।

देवेन्द्र शक्र सौधर्मावंतसक विमानमें सुधर्मा सभाके शक्र नामक सिहासनमें बैठकर अपने त्रुटिकके साथ मैथुनिक भोग भोगनेमें समर्थ नहीं। शेष सर्व वर्णन चमरेन्द्रकी तरह जानना

चाहिये। परिवार तृतीय शतकके प्रथम उद्देशकके अनुसार जानना चाहिये।

देवेन्द्र देवराज शक्रके सोमनामक महाराजा (लोकपाल) के चार अग्रमहिषियां हैं। उनके नाम इसप्रकार हैं :- रोहिणी, मदना, चित्रा और सोमा। एक-एक देवीका परिवार चमरेन्द्रके लोकपालोंकी तरह जानना चाहिये विशेषान्तरमें स्वयंप्रभ विमान, सुधर्मासभा और सोमनामक सिंहासन है।

इसीप्रकार वैश्रमण-पर्यन्त जानना चाहिये। इनके विमान तृतीय शतकके अनुसार जानने चाहिये।

ईशानेन्द्रके आठ अग्रमहिषियाँ हैं। उनके नाम इसप्रकार है :—कृष्णा, कृष्णराजि, रामा, रामरक्षिता, वसु, वसुगुप्ता, वसुमित्रा और वसुन्धरा। एक-एक देवीका परिवार आदि सर्व वर्णन शक्रकी तरह जानना चाहिये।

देवेन्द्र देवराज ईशानेन्द्रके सोम महाराजाके चार पटरानियाँ हैं। उनके नाम इसप्रकार है :—पृथ्वी, रात्रि रजनि और विद्युत्। परिवार आदि सर्व वर्णन शक्रके लोकपालकी तरह जानना चाहिये

इसीप्रकार वरुण-पर्यन्त जानना चाहिये। इनके विमान चतुर्थ शतकके अनुसार जानने चाहिये।

दशम शतक

६-३४ उद्देशक

वर्णित विषय

[षष्ठम उद्देशक—शक्रकी सुधर्मासभा, शक्रकी ऋद्धि एवं सुख, प्रश्नोत्तर नं० २, ७ से ३४ उद्देशक—अट्ठाईस अन्तर्द्वीप—प्रत्येकका एक-एक अध्ययन—जीवाभिगम सूत्र ७ प्रश्नोत्तर सख्या १ सर्व प्रश्नोत्तर संख्या ३ ।

षष्ठम उद्देशक

(प्रश्नोत्तर नं० ६७-६८)

(३०७) जम्बूद्वीपके मेरु पर्वतके दक्षिणमे रत्नप्रभा भूमिसे [1]अनेक कोटिकोट्य योजन दूर सौधर्म देवलोकमें पांच अवतंसक कहे गये है। अशोकावतंसक, यावत् मध्यम सौधर्मावतंसक। सौधर्मावतंसक महाविमानकी लम्बाई-चौड़ाई साढ़े बारह लाख योजन है।

शक्रका प्रमाण, उपपात, अभिषेक, अलंकार अर्चनिका आदिका सर्व वर्णन आत्मरक्षकों-पर्यन्त सूर्याभदेवकी तरह ही जानना चाहिये। उसकी स्थिति दो सागरोपमकी है।

देवेन्द्र देवराज शक्र महान ऋद्धिसम्पन्न यावत् सुखसम्पन्न है। बत्तीस लाख विमानोंका आधिपत्य रखता है।

---

१ – रायपसेणीसूत्र ।

उद्देशक ७—३४

(प्रश्नोत्तर नं० ६९)

(३०८) उत्तरनिवासी [1]एकोरुक मनुष्योंके एकोरुक द्वीपोंकी स्थिति, स्थान, आदिके सम्बन्ध में जीवाभिगम सूत्रसे सर्व वर्णन जानना चाहिये। शुद्धदंतद्वीप-पर्यन्त सर्व द्वीपोंके सम्बन्धमें जानना चाहिये। प्रत्येक द्वीपके वर्णनका एक एक उद्देश्यक होता है। इसप्रकार अट्ठाईस द्वीपोंके अट्ठाईस उद्देशक होते है।

---

१. एकोरुक—एक जांघ वाले।

ग्यारहवां शतक

उद्देशक १-८

प्रथम उद्देशक

प्रथम उद्देशकमें वर्णित विषय

[उत्पल एकजीवी है अथवा अनेकजीवी ? विविध अपेक्षाओंसे विचार। प्रश्नोत्तर संख्या ४१]

उत्पल

(प्रश्नोत्तर नं० १-४१)

(३०६) एक पत्रयुक्त उत्पल एक जीवयुक्त है परन्तु अनेक जीवयुक्त नहीं। जब उत्पलमें अन्य जीव उत्पन्न होते हैं (पत्रादि के रूपमें) तब वह एक जीवयुक्त नहीं होकर अनेक जीवयुक्त होता है।

उत्पलमें समुत्पन्न जीव नैरयिकोंसे नहीं आते परन्तु मनुष्य, तिर्यंच और देवलोकसे आते हैं। प्रज्ञापनासूत्र-व्युत्क्रान्तिपद में कहा गया है—वनस्पतिकायिक में ईशान देव-लोक तकके जीवोंका उपपात है। उत्पलमें एक समयमें जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट संख्येय या असंख्येय जीव उत्पन्न होते है। यदि ये उत्पलके जीव समय-समयमें असंख्येय भी निकाले जाय तो असंख्येय उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल पर्यन्त भी ये सम्पूर्णरूपसे नहीं निकाले जासकते। इन जीवोंकी शरीरावगाहना जघन्य अंगुलके असख्येय भाग जितनी और

उत्कृष्ट कुछ अधिक हजार योजन है। ये जीव ज्ञानावरणीय कर्मके बंधक हैं परन्तु अबंधक नहीं। एक जीव भी ज्ञानावरणीय कर्मका बंधक है और अनेक जीव भी बंधक है। इसीप्रकार अन्तरायकर्म तक जानना चाहिये। आयुष्यकर्मके बंधकके संबंधमें निम्न आठ भग जानने चाहिये :—

(१) एक जीव बंधक है, (२) एक जीव अबंधक है, (३) अनेक जीव बंधक हैं (४) अनेक जीव अबंधक हैं, (५) एक जीव बधक है और एक जीव अबंधक है (६) एक जीव बंधक है और अनेक जीव अबंधक है। (७) अनेक जीव बंधक है और एक जीव अबंधक है, (८) अनेक जीव अबंधक हैं और अनेक जीव बंधक हैं।

ये जीव ज्ञानावरणीय आदि कर्मोके अवेदक नहीं परन्तु वेदक है। एक जीव अथवा अनेक जीव अवेदक भी है। इसी प्रकार अन्तराय तक जानना चाहिये। ये जीव सातावेदनीय और असातावेदनीय कर्मके वेदक है। यहाँ उपर्युक्त आठ भंग जानने चाहिये।

उत्पलके जीव ज्ञानावरणीय आदि कर्मोंके उदयवाले हैं परन्तु अनुदयवाले नहीं। एक जीव उदयवाला है अथवा अनेक जीव उदयवाले हैं। इसतरह अन्तराय तक सभंग जानना चाहिये।

उदीरिक या अनुदीरिक कर्मोंके लिये भी इसीप्रकार जानना चाहिये। आयुष्यकर्म और वेदनीयकर्मके लिये उपर्युक्त आठ भंग कहने चाहिये।

उत्पलके जीव कृष्णलेश्यायुक्त, नीललेश्यायुक्त, कापोतलेश्या-

युक्त और तेजसलेश्यायुक्त है। इनके एकसंयोगी, द्विकसंयोगी, त्रिकसंयोगी, और चतुष्कसयोगी [1]अस्सी भंग होते हैं।

एक या- अनेक उत्पलके जीव मिथ्यादृष्टि हैं परन्तु सम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं है। ये मनयोगी या वचनयोगी नहीं परन्तु काययोगी है। एक जीव की अपेक्षासे एक काययोगी और अनेक जीवोंकी अपेक्षासे अनेक काययोगी। साकारोपयोगयुक्त या अनाकारोपयोगयुक्तके सम्बन्धमें उपर्युक्त आठ भंग जानने चाहिये।

उत्पलके जीवोंके शरीर पांच वर्ण, पाच रस, दो गंध, और आठ स्पर्शयुक्त है पर स्वयं जीव वर्ण, गन्व, रस और स्पर्श-रहित है।

इन जीवोंमें कोई एक उच्छ्वासक, कोई एक निःश्वासक, कोई एक अनुच्छ्वासक निःश्वासक है। अनेक जीव उच्छ्वासक अनेक जीव निःश्वासक, अनेक जीव अनुच्छ्वासकनिःश्वासक भी है। अथवा एक उच्छ्वासक और एक निःश्वासक या एक उच्छ्वासक और एक अनुच्छ्वासकनिःश्वासक या एक निःश्वासक और एक अनुच्छ्वासकनिःश्वासक, या एक उच्छ्वासक, एक निःश्वासक और एक अनुच्छ्वासक निःश्वासक

१—एकसयोगमें एक जीवोके चार और अनेक जीवके चार, कुल मिलाकर आठ भंग होते हैं। द्विकसंयोगमें एक और अनेककी चतुर्भंगी होती है। कृष्ण आदि चार लेश्याओंके छः द्विकसंयोग होते हैं। इन सयोगोंको उपर्युक्त द्विकसंयोगी भंगोके साथ गुणाकार करने पर चउवीस विकल्प होते हैं। चार लेश्याओंके त्रिकसंयोगी आठ विकल्प होते हैं— इनसे गुणाकार करने पर त्रिकसंयोगी ३२ भंग होते हैं। चतुष्कसंयोगी १६ विकल्प होते हैं। इसप्रकार ८+२४+३२+१६=८० भंग हुए।

है। इस तरह आठ भंग करने चाहिये। ये सब मिलाकर [1]२६ विकल्प होते हैं।

उत्पलके जीव आहारक भी हैं और अनाहारक भी। आहारक-अनाहारक के उपर्युक्त आठ भंग करने चाहिये।

ये सर्वविरति अथवा देशविरति (विरताविरत) नहीं परन्तु अविरति हैं। (एक जीवकी अपेक्षा से) एक जीव अविरति अथवा (अनेक जीवकी अपेक्षासे) अनेक जीव अविरति हैं।

ये सक्रिय हैं परन्तु अक्रिय नहीं। इनमें एक जीव सक्रिय है अथवा अनेक जीव सक्रिय हैं।

उत्पलके जीव सात प्रकारके अथवा आठ प्रकारसे कर्मबंधक हैं। इस सम्बन्धमें उपर्युक्त आठ भंग करने चाहिये।

ये आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा तथा परिग्रहसंज्ञाके उपयोगवाले हैं। इनके [2]अस्सी भंग जानने चाहिये। ये क्रोध-मान-माया-लोभ कषायवाले हैं। इनके भी अस्सी भंग जानने।

उत्पलके जीव स्त्रीवेद और पुरुषवेदवाले नहीं परन्तु नपुंसक वेदवाले हैं। एक जीवकी अपेक्षासे एक जीव नपुंसकवेदवाला और अनेक जीवोंकी अपेक्षासे अनेक जीव नपुंसकवेदवाले हैं। स्त्रीवेदबंधक, पुरुषवेदबंधक या नपुंसकवेदबंधककी अपेक्षासे २६ भंग जानने चाहिये।

१— एक एवं और अनेकके एकसंयोगी छः भंग, द्विकसंयोगी बारह और त्रिकसंयोगी आठ भंग होते हैं। उस तरह २६ भंग होते हैं।

२—देखो लेश्या की अपेक्षासे किये गये ८० भंग।

उत्पलके जीव संज्ञी नहीं परन्तु असंज्ञी है। एक जीवकी अपेक्षासे एक अथवा अनेककी अपेक्षासे अनेक असंज्ञी हैं।

ये सइन्द्रिय है परन्तु अनिन्द्रिय नहीं। एक जीवकी अपेक्षासे एक जीव सइन्द्रिय है और अनेक जीवकी अपेक्षासे अनेक जीव सइन्द्रिय हैं।

उत्पलका जीव उत्पलमें जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्येय कालपर्यन्त रहता है।

उत्पलका जीव च्युत् होकर पृथ्वीकायमें उत्पन्न हो फिर उत्पलमें उत्पन्न हो तो निम्नकाल तक गमनागमन करता है :—

भव की अपेक्षासे उत्पलका जीव जघन्य दो भव और उत्कृष्ट असख्येय भव तक और कालकी अपेक्षाके जघन्य दो मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्य काल तक गमनागमन करता है।

पृथ्वीकी तरह ही अप्काय, तेजसकाय और वायुकाय तक जानना चाहिये।

वनस्पतिकाय में उत्पन्न हो और पुनः वहांसे उत्पलमें उत्पन्न हो तो निम्न समय गमनागमन में लगता हैं :—

भवकी अपेक्षासे जघन्य दो भव और उत्कृष्टमें अनन्त भव, कालकी अपेक्षासे जघन्यमें दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और या चतुरिन्द्रिय में उत्पन्न हो पुनः उत्पलमें समुत्पन्न हो तो निम्न अन्तर्काल होगा अर्थात् निम्न-कालपर्यन्त गमनागमन करता है :—

भवकी अपेक्षासे जघन्य दो भव और उत्कृष्ट संख्येयभव। कालकी अपेक्षासे जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट संख्येयकाल।

यदि उत्पलका जीव उत्पलसे च्युत होकर तिर्यंच पंचेन्द्रियमें उत्पन्न हो और पुनः वहांसे उत्पलमें उत्पन्न हो तो निम्न अन्त-काल होगा :—

भवकी अपेक्षासे जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव। कालकी अपेक्षासे जघन्य में दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट में पूर्वकोटि पृथक्त्व।

मनुष्यमें उत्पन्न होनेपर भी इसीप्रकार समझना चाहिये।

उत्पलके जीव द्रव्यसे अनन्तप्रदेशिक द्रव्योंका आहार करते हैं। आहारक उद्देशकमें वर्णित वनस्पतिकायिकके आहार के समान इनका भी आहार जानना चाहिये। ये सर्वात्मासे सर्व प्रदेशोंका आहार करते हैं। ये नियमतः छओं दिशाओंसे आहार करते हैं।

उत्पलके जीवोंकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट दश हजार वर्ष है।

उत्पलके जीवोंके तीन समुद्घात हैं:—वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणांतिक समुद्घात।

ये जीव मारणान्तिक समुद्घात से समवहित होकर भी मरते हैं और असमवहित होकर भी। मरणानन्तर ये नैरयिक, तिर्यंचयोनिक, मनुष्य और देवोंमें कहाँ जन्म लेते हैं? इससम्बन्ध में प्रज्ञापनासूत्र के व्युत्क्रान्तिपदके उद्वर्तनप्रकरण में वनस्पति-कायिक जीवोंके सम्बन्धमें कहा गया सर्व वर्णन जानना चाहिये।

सर्व प्राणी, सर्व भूत, सर्वजीव और सर्व सत्त्व उत्पलके मूल, नाल, कंद, पत्र, केसर, कर्णिका और थिभुग (पत्रका उत्पत्ति स्थान) में अनेक वार अथवा अनन्त वार उत्पन्न हो चुके हैं।

उद्देशक २-८

वर्णित विषय

[शालूक, पलाश, कुंभिक, नाडिक, पद्म, कर्णिका, नलिन—प्रत्येकका एक एक उद्देशक—उत्पल के सदृश ही सर्व वर्णन तथा विशेषान्तर। प्रश्नोत्तर संख्या ८]।

(प्रश्नोत्तर नं० ४२-४९)

(३१०) एक पल्लवयुक्त शालूक (उत्पल कंद एक जीवयुक्त है अथवा अनेक जीवयुक्त, इस सम्बन्धमें उत्पलोद्देशक का सर्व वर्णन जानना चाहिये। विशेषान्तर यह है कि शालूक की अवगाहना जघन्य अंगुलका असंख्येय भाग और उत्कृष्ट धनुष पृथक्त्व है।

एक पत्रयुक्त पलाश, एकपत्रयुक्त कुंभिक (वनस्पति विशेष) एक पल्लवयुक्त नाडिक (वनस्पति विशेष), एक पल्लवयुक्त पद्म और एक पल्लवयुक्त नलिनके लिये उत्पलोद्देशक के अनुसार सर्व वर्णन जानना चाहिये परन्तु इनमें निम्न विभेद है :—

पलाश वृक्षकी अवगाहना जघन्य अंगुलकी असंख्येयभाग और उत्कृष्ट गाउपृथक्त्व है। देवता च्युत् होकर पलाश वृक्षमें उत्पन्न नहीं होते।

लेश्याकी अपेक्षासे पलाश वृक्षके जीव कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यायुक्त है। इनके पूर्ववत् २६ भंग जानने चाहिये।

कुंभिक की अवगाहना पलाशवृक्षकी तरह है। स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व—दो से नव वर्ष है।

नाडिक की अवगाहना और स्थिति कुंभिक की तरह है।

ग्यारहवाँ शतक

नवम-दशम उद्देशक

नवम उद्देशक

नवम उद्देशक में वर्णित विषय

[शिवराजर्षि की समुद्र और द्वीपों सम्बन्धी मान्यता—महावीर द्वारा खण्डन, वर्णादि रहित और वर्णादि सहित पुद्गल, सिद्ध होनेवाले जीवोंका शरीर। प्रश्नोत्तर संख्या ४]

(प्रश्नोत्तर नं० ५०)

(३११) "[1]लोकमें सात समुद्र और सात द्वीप हैं। इसके बाद द्वीप और समुद्र नहीं।"

शिवराजर्षिका यह कथन मिथ्या है। मैं इसप्रकार कहता हूं—इस तिर्यक्लोकमें स्वयंभूरमण पर्यन्त असंख्येय द्वीप और समुद्र हैं[2]। ये जम्बूद्वीप आदि द्वीप और लवणसमुद्रादि समुद्र (वृत्ताकार होने से) आकार में एक सदृश हैं परन्तु विशालता की अपेक्षा दुगुने-तीगुने—अनेक प्रकारके हैं।

(प्रश्नोत्तर नं० ५१-५२)

(३१२) जम्बूद्वीपमें[3] वर्णयुक्त, वर्णरहित, रसयुक्त, रसविहीन,

---

१—राजर्षि शिव—देखो परिशिष्ट चारित्रखण्ड।

२—जीवाभिगमसूत्र ३। ३—वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शयुक्त पुद्गल द्रव्य हैं पर वर्णादि रहित आकाशादि भी द्रव्य हैं। ये परस्पर एक दूसरे को स्पर्श करके स्थित रहते हैं।

गंधयुक्त, गंधविहीन, स्पर्शयुक्त, स्पर्शविहीन द्रव्य अन्योन्यबद्ध, अन्योन्यस्पृष्ट यावत् अन्योन्यसंबद्ध हैं।

लवणसमुद्र, धातकीखण्ड और यावत् स्वयंभूरमणसमुद्रमें उपर्युक्त द्रव्य परस्पर संबद्ध, और स्पृष्ट है।

प्रश्नोत्तर नं० ५३)

(३१३) सिद्ध होनेवाला जीव वज्रऋषभनाराचसंघयणमें सिद्ध होता है। सघयण, संस्थान, ऊँचाई, आयुष्य तथा वास आदिके लिये सम्पूर्ण [1] सिद्धगडिका जाननी चाहिये।

दशम उद्देशक

दशम उद्देशकमें वर्णित विषय

[लोकके प्रकार, अधोलोक, तिर्यक्लोक और ऊर्ध्वलोकके आकार, अलोक और उसका आकार, अधोलोक; तिर्यक्लोक और ऊर्ध्वलोक क्या जीवरूप, अजीवरूप है?—इत्यादि प्रश्न, लोकाकाश और अलोकाकाशके एक प्रदेशमे जीव या अजीव हैं या नहीं?—इत्यादि प्रश्न, लोक और अलोककी विशालता तथा काल्पनिक रूपक, लोकाकाश-प्रदेशमें जीवप्रदेश एक दूसरेको पीड़ित नहीं करते—नर्त्तकी और दर्शकोंका उदाहरण, एक आकाश प्रदेशमें स्थित जीवोंका अल्पत्वबहुत्व। प्रश्नोत्तर संख्या २२]

लोक और उसके प्रकार

(प्रश्नोत्तर नं ५४-७५)

(३१४) लोक चार प्रकारका है:—द्रव्यलोक, क्षेत्रलोक, काललोक और भावलोक।

क्षेत्रलोक तीन प्रकारका है:—अधोलोकक्षेत्रलोक, तिर्यक्-लोकक्षेत्रलोक, ऊर्ध्वलोकक्षेत्रलोक।

१—औपपातिक सूत्र।

अधोलोक क्षेत्रलोक सात प्रकारका है :—रत्नप्रभापृथ्वी-अधोलोकक्षेत्रलोक यावत् अधःसप्तमपृथ्वीअधोलोकक्षेत्रलोक।

तिर्यक्लोकक्षेत्रलोक असंख्येय प्रकारका है। जम्बूद्वीप तियक् लोकक्षेत्रलोक यावत् स्वयंभूरमणसमुद्र तिर्यक्लोक क्षेत्रलोक।

ऊर्ध्वलोकक्षेत्रलोक पन्द्रह प्रकारका है :—

१२,[1]सौधर्मकल्प ऊर्ध्वलोकक्षेत्रलोक यावन् अच्युत्कल्प ऊर्ध्व-लोकक्षेत्रलोक, १३ ग्रैवेयक विमान ऊर्ध्वलोकक्षेत्रलोक १४, अनुत्तर विमान ऊर्ध्वलोकक्षेत्रलोक १५ ईषत्-प्राग्भारा पृथ्वी ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक।

लोकका आकार

अधोलोकक्षेत्रलोक त्रापाके आकारका है। तिर्यक्लोक क्षेत्रलोक झालरके आकारका है। ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक खड़े मृदंगके आकारका है।

लोक सुप्रतिष्ठकके आकारमे संस्थित है। नीचेसे विस्तीर्ण, मध्यमें संक्षिप्त आदि। [2]सप्तम शतकके प्रथम उद्देशकके अनुसार जानना चाहिये।

अलोक और उसका आकार

अलोक [3]पोले गोलेके आकारका है।

अधोलोकक्षेत्र क्या जीवरूप, जीवदेशरूप या जीवप्रदेश

१—सौधर्मादि बारह देवलोक।

२—देखो पृष्ठ संख्या २०८। क्रम-सख्या २०६

३—अलोए झुसिरगोलसंठिए पन्नते।

रूप है? इस सम्बन्धमें ऐन्द्री दिशामें वर्णित सर्व वर्णन यहाँ भी अद्धासमय तक जानना चाहिये।

तिर्यक्लोकक्षेत्रलोक और ऊर्ध्वलोकक्षेत्रलोकके विषयमें भी इसीप्रकार जानना चाहिये। ऊर्ध्वलोकके लिये विशेषान्तर यह है कि वहाँ अरूपी द्रव्य छः प्रकारके है, सातवा अद्धासमय नहीं है।

लोक क्या जीवरूप है, इस संबंधमें द्वितीय शतकमें [1]लोकाकाशके लिये वर्णित सर्व वर्णन यहाँ भी जानना चाहिये। विशेषान्तर यह है कि लोकमें निम्न सात अरूपी द्रव्य है।

(१) धर्मास्तिकाय, (२) धर्मास्तिकायके प्रदेश, (३) अधर्मास्तिकाय, (४) अधर्मास्तिकायके प्रदेश, (५) नोआकाशास्तिकायरूप आकाशस्तिकायका प्रदेश (६) आकाशास्तिकायके प्रदेश, (७) अद्धासमय।

अलोक क्या जीवरूप है? इस सम्बन्धमें अस्तिकाय उद्देशकमें अलोकाकाशके संबन्धमें वर्णित सर्व वर्णन यहाँ 'अनन्तवे भाग न्यून है', पर्यन्त जानना चाहिये।

अधोलोकक्षेत्रके एक आकाश प्रदेशमें जीव नहीं है परन्तु जीवदेश, जीवप्रदेश, अजीव, अजीवदेश तथा अजीवप्रदेश है। जो जीव देश है वे नियमतः एकेन्द्रिय जीवोंके देश हैं अथवा एकेन्द्रिय जीवोंके और द्वीन्द्रिय जीवके देश है अथवा एकेन्द्रिय जीवोंके और द्वीन्द्रिय जीवोंके देश है। इसप्रकार [2]मध्यम भंगको छोड़कर (दूसरा भंग, शेष भंग अनिन्द्रिय जीव-

---

[1] देखो शतक २ उद्देशक १०—पृष्ठ संख्या ८५, क्रम संख्या ८६

[2] आकाश प्रदेशमें एक द्वीन्द्रिय जीवके अनेक देश संभावित नहीं अतः दूसरा भंग नहीं बनता है।

सिद्धपर्यन्त जानने चाहिये। वहां जो जीवके प्रदेश हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय जीवोंके प्रदेश हैं अथवा एकेन्द्रिय जीवों और एक द्वीन्द्रिय जीवके प्रदेश हैं अथवा एकेन्द्रिय और द्वीन्द्रिय जीवोंके प्रदेश हैं—इसप्रकार यावत् पंचेन्द्रिय और अनिन्द्रिय के सबंधमें प्रथम भंगको छोड़कर तीन भंग जानने चाहिये।

वहाँ जो अजीव हैं वे दो प्रकारके हैं—रूपी अजीव और अरूपी अजीव। रूपी अजीव तो पूर्वानुसार जानने चाहिये और अरूपी अजीव पाँच प्रकार के है :- (१) नोधर्मास्तिकाय-धर्मास्तिकाय देश, (२) धर्मास्तिकायप्रदेश, (३) नोअधर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय देश, (४) अधर्मास्तिकायप्रदेश (५) अद्धासमय। तिर्यक्क्षेत्रलोकके एक आकाशप्रदेश में और ऊर्ध्व लोकके एक आकाश-प्रदेशमें क्या जीव, जीव-देश और जीव-प्रदेश आदि है, इससम्बन्धमें सर्व अधोलोकक्षेत्रकी तरह जानना चाहिये। मात्र ऊर्ध्वलोकक्षेत्रके एक आकाशप्रदेशमें अद्धा-समय काल नहीं है। अतः वहाँ चार प्रकारके अरूपी द्रव्य हैं।

अलोकाकाश के एक प्रदेशमें जीव, जीवदेश, जीवप्रदेश, अजीव, अजीवदेश और अजीवप्रदेश भी नहीं हैं। मात्र एक अजीवद्रव्यदेश - आकाश है। अलोक अगुरु, लघु और अगुरुलघुरूप अनन्त गुणोंसे संयुक्त है और सर्वाकाशका अनन्तवां भाग है।

भावापेक्षासे अधोलोकक्षेत्रमें अनन्त वर्ण और पर्यायें हैं। यहाँ[1] स्कन्दक-उद्देशकमें वर्णित भावलोक संबधी सर्व वर्णन जानना चाहिये। भावापेक्षासे अलोकमें वर्ण, पर्यायें और

---

१ देखो पृष्ठ संख्या ६७, क्रम सख्या ६६

अगुरुलघु पर्यायें नहीं हैं परन्तु एक अजीवद्रव्य देश—आकाश है और सर्वाकाशका अनन्तवाँ भाग न्यून है।

द्रव्यापेक्षासे अधोलोकक्षेत्रमें अनन्त जीवद्रव्य, अनन्त अजीवद्रव्य और अनन्त जीवाजीव द्रव्य है। इसीप्रकार तिर्यक्-लोकक्षेत्रमें तथा ऊर्ध्वलोकक्षेत्रमें भी जानना चाहिये।

अलोकमें द्रव्यापेक्षा से जीवद्रव्य, अजीवद्रव्य और जीवा-जीव द्रव्य नहीं हैं परन्तु एक अजीवद्रव्यदेश—आकाश है।

कालापेक्षासे अधोलोकक्षेत्र किसी दिवस नहीं था, ऐसा नहीं। यह शाश्वत व नित्य है। इसीप्रकार तिर्यक्लोक, ऊर्ध्व-लोक और अलोकके लिये जानना चाहिये।

लोक और उसकी विशालता

जम्बूद्वीप नामक द्वीप सर्व द्वीपों और समुद्रोंके आभ्यन्तर है। उसकी परिधि (तीन लाख सोलह हजार दो सो सत्ताईस योजन, तीन कोस एकसो अट्ठाईस धनुष और कुछ अधिक साढ़े तेरह अंगुल) है। [1]यदि महर्द्धिक यावत् महासुखसम्पन्न छः देव मेरुपर्वत पर उसकी चूलिकाको चारों ओरसे घेरकर खड़े रहें और नीचे चार महत् दिक्कुमारियां चार बलिपिंड ग्रहण कर जम्बूद्वीप की चारों दिशाओंमें बाह्यमुख खड़ी हों। पश्चात् चारों बलिपिंडोंको वे दिक्कुमारियाँ एकसाथ बाहर फेंके तो उन देवोंमें प्रत्येक देव चारों बलिपिंडों को पृथ्वीपर गिरनेके पूर्व ही ग्रहण करनेमें समर्थ हैं। ऐसी तीव्र गतिवाले देवताओंमें

१—यह लोकको विशालता को बतानेके लिये रूपक परिकल्पित किया गया है।

से एक देव उत्कृष्ट यावत् तीव्रगतिसे पूर्वमें, एक पश्चिममें, एक उत्तरमें और एक दक्षिणमें, एक ऊर्ध्व दिशामें और एक अधो-दिशामें गया। उसी समय एक हजार वर्षकी आयुष्यवाला एक बालक उत्पन्न हुआ, क्रमशः उस बालकके पिता दिवंगत हुए, उसका आयुष्य क्षीण हो गया, उसकी अस्थि और मज्जा विनष्ट हो गये और उसकी सात पीढ़ियोंके पश्चात् वह कुल-वंश भी नष्ट हो गया। उसके नाम व गोत्र भी नष्ट हो गये। —इतने समय तक चलते रहनेपर भी वे देवगण लोकके अन्तको नहीं प्राप्त कर सकते हैं।

इससे लोक कितना बड़ा है, यह सोचा जा सकता है। इसमे देवताओंके द्वारा समुल्लंघित क्षेत्र अधिक है परन्तु अनुल्लंघित कम। अनुल्लघित क्षेत्र उल्लंघित क्षेत्रमें असंख्यातवा भाग है और उल्लंघित क्षेत्र अनुल्लंघित क्षेत्रसे असख्येयगुणित अधिक है।

अलोक और उसकी विशालता

इस मनुष्य लोककी लम्बाई पैंतालीस लाख योजन है (शेप सर्व स्कंदकके प्रकरण की तरह)। दश महर्द्धिक देव इस मनुष्य लोकको चारों ओरसे घेरकर खड़े हों। उनके नीचे आठ दिक् कुमारियां आठ बलिपिंडों को ग्रहण का मानुषोत्तरपर्वतकी चारों दिशाओं और चारों विदिशाओंमें बाह्याभिमुख खड़ी रहे। पश्चात् वे उन आठ बलिपिंडोंको एक साथ ही मानुषोत्तर पर्वतकी बाहरकी दिशाओंमें फेंके तो खड़े हुए देवोंमे प्रत्येक देव उन बलिपिंडोंको पृथ्वीपर गिरनेके पूर्व ही संहरण करनेमें समर्थ है।

ऐसे उत्कृष्ट और त्वरित गतिसम्पन्नदेवोंने लोकके अन्तसे, यद्यपि यह असत् कल्पना है (जो सम्भव नहीं); पूर्वादि सर्व दिशाओंमें प्रयाण किया। उसी समय एक लक्ष वर्षायुषी एक बालक का जन्म हुआ, क्रमशः उस बालकके माता-पिता दिवंगत हुए, उसका आयुष्य क्षीण हो गया ; उसकी अस्थि और मज्जा नष्ट हो गये और उसकी सात पीढ़ियोंका कुल —वंश ही नष्ट हो गया; उसके नाम व गोत्र भी नष्ट हो गये। इतना काल व्यतीत हो जानेपर भी वे देवगण अलोकके अन्तको प्राप्त न कर सके। इससे अलोक कितना बड़ा है, यह सोचा जा सकता है। अलोकमें देवताओं द्वारा गमन किया हुआ क्षेत्र अधिक नहीं है। समुल्लंघित क्षेत्रसे अनुल्लंघित क्षेत्र अनन्तगुणित है और अनुल्लंघिक क्षेत्रसे समुल्लंघित क्षेत्र अनन्त भाग न्यून है।

लोकके एक आकाशप्रदेशमें एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय और अनिन्द्रिय जीवोंके आत्म-प्रदेश है। ये अन्योन्य स्पृष्ट यावत् अन्योन्य संबद्ध होनेपर भी परस्पर एक दूसरेको किसी भी प्रकारकी बाधा (पीड़ा)—व्याबाधा (विशिष्ट पीड़ा) उत्पन्न नहीं करते और न किसीका छविच्छेद ही करते है। जिसप्रकार कोई श्रृङ्गारित और चारु वेषवाली यावत् मधुर कठवाली नर्त्तकी सैकड़ों और सहस्रों व्यक्तियोंसे परिपूर्ण रंगस्थलीमें बत्तीस प्रकारके नाट्योंमेंसे किसी एक नाट्यको दिखाती है तो दर्शकगण उस नर्तकीको अनिमेष दृष्टिसे चारों ओरसे देखते है तथा उनकी दृष्टियाँ उस नर्तकीके चारों ओर गिरती हैं; इससे नर्तकीको कोई आबाधा या व्याबाधा उत्पन्न नहीं होती और न उसके अवयवका ही छेद होता है अथवा वह नर्त्तकी उन दर्शकोंकी दृष्टियोंको

कोई आबाधा-व्याबाधा उत्पन्न नहीं करती और न छविच्छेद ही करती है। इसीप्रकार जीवोंके आत्मप्रदेश परस्पर स्पृष्ट होनेपर भी आबाधा-व्याबाधा उत्पन्न नहीं करते और न छविच्छेद ही करते हैं।

लोकके एक आकाश-प्रदेशमे जघन्यपदस्थित जीव-प्रदेश सबसे अल्प हैं उनसे सर्व जीव असंख्येय गुणित अधिक हैं तथा इनसे उत्कृष्टपदस्थित जीव विशेषाधिक है।

ग्यारहवां शतक

ग्यारहवां-बारहवां उद्देशक

ग्यारहवां उद्देशक

ग्यारहवें उद्देशकमें वर्णित विषय

[काल और उसके भेद, सबसे बडी रात्रि और सबसे छोटा दिन, सबसे छोटी रात्रि और सबसे बडा दिन—कारण। प्रश्नोत्तर संख्या १४]

काल और उसके भेद

(प्रश्नोत्तर नं० ७६-९)

(३१५) [1]काल चार प्रकारका है—(१) प्रमाणकाल (२) यथा-निर्वृत्तिकाल (३) मरणकाल (४) अद्धाकाल।

प्रमाणकाल

प्रमाणकाल दो प्रकारका है—दिवसप्रमाणकाल और रात्रि-प्रमाणकाल। चार पौरुषी—प्रहर, का दिन होता है और चार पौरुषीकी रात्रि होती है। बड़ीसे बड़ी पौरुषी साढ़े चार मुहूर्तकी और छोटीसे छोटी तीन मुहूर्तकी—दिवस या रात्रिकी होती है। जब दिवस या रात्रिमें साढ़े चार मुहूर्तकी सबसे बड़ी पौरुषी होती है तब मुहूर्तके एक सो बावीसवें भाग जितनी घटती-घटती सबसे छोटी तीन मुहूर्तकी पौरुषी होती है और जब तीन मुहूर्तकी सबसे छोटी पौरुषी होती है तब मुहूर्तके एकसो बावीसवें भाग

१—सुदर्शन श्रमणोपासक द्वारा पूछे गये प्रश्नका उत्तर। उसका प्रश्न था—काल कितने प्रकारका है?

जितनी बढ़ती-बढ़ती साढ़े चार मुहूर्तकी सबसे बड़ी पौरुषी होती है।

जब अठारह मुहूर्तका बड़ा दिन तथा बारह मुहूर्तकी छोटी रात्रि हो तब साढ़े चार मुहूर्तकी दिवसकी सबसे बड़ी पौरुषी और रात्रिकी तीन मुहूर्तकी सबसे छोटी पौरुषी होती है। जब अठारह मुहूर्तकी बड़ी रात्रि और १२ मुहूर्तका छोटा दिन हो तब साढे चार मुहूर्तकी सबसे बडी रात्रि-पौरुषी और तीन मुहूर्तकी सबसे छोटी दिवस-पौरुषी होती है।

आषाढ़की पूर्णिमाको अठारह मुहूर्तका बड़ा दिन तथा बारह मुहूर्तकी छोटी रात्रि होती है। पौष मासकी पूर्णिमाको अठारह मुहूर्तकी बड़ी रात्रि तथा बारह मुहूर्तका छोटा दिन होता है। चैत्रकी पूर्णिमा तथा आश्विनकी पूर्णिमाको दिन और रात्रि दोनों बराबर होते हैं। उस दिन पन्द्रह मुहूर्तका दिन तथा पन्द्रह मुहूर्तकी रात्रि होती है और दिवस व रात्रिकी पौने चार-चार मुहूर्तकी पौरुषी होती है।

यथानिर्वृत्तिकाल

जब कोई नैरयिक, तिर्यंचयोनिक, मनुष्य या देव जिसने, जैसा आयुष्य बाधा वैसा ही पालन करता है तो यथानिर्वृत्तिकाल कहा जाता है।

मरणकाल

शरीरसे जीव अथवा जीवसे शरीरका जब वियोग होता है तब मरणकाल कहा जाता है।

अद्धाकाल

अद्धाकाल अनेक प्रकारका है जैसे :— समय, आवलिका

यावत् उत्सर्पिणीरूप। कालका वह भाग समय है जिसका कोई विभाग न हो। असंख्य समयोंके समुदायसे एक आवलिका होती है।

पल्योपम और सागरोपमके द्वारा नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य तथा देवोंके आयुष्यका माप होता है। देव और नारकोंकी स्थितिके सम्बन्धमें सम्पूर्ण [1]स्थितिपद जानना चाहिये।

पल्योपम तथा सागरोपम (औपमेयिक काल) समाप्त होते हैं।

बारहवां उद्देशक

बारहवें उद्देशकमें वर्णित विषय

[देव और उनकी जघन्य व उत्कृष्ट स्थिति, वर्णसहित व वर्णरहित द्रव्य। प्रश्नोत्तर सख्या २]

(प्रश्नोत्तर नं० ९०-९१)

(३१६) [2]देवलोकमें देवताओं की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष है। पश्चात् समयाधिक करते हुए तैतीस सागरोपम है। पश्चात् देव और देवलोक व्युच्छिन्न होते है। तदनन्तर सौधर्म-कल्पमें वर्णसहित व वर्णरहित द्रव्य है। इसप्रकार ईषत्प्राग्-भारा पृथ्वीतक जानना चाहिये।

१—प्रज्ञापनासूत्र चतुर्थपद।

२—ऋषिपुत्र श्रावक द्वारा कथित वक्तव्यकी भ० महावीर द्वारा पुष्टि।

बारहवां शतक

द्वितीय-तृतीय उद्देशक

द्वितीय उद्देशक

द्वितीय उद्देशक में वर्णित विषय

[जीवका गुरुत्व, भवसिद्धिक जीव और संसार, कुछ जीवोंका सोना, जागना, सबल होना, निर्बल होना, और उद्योगी होना अच्छा तथा कुछका नहीं। श्रोत्रेन्द्रिय वशीभूत जीव और कर्म-बंधन। प्रश्नोत्तर संख्या ८]

जीवका गुरुत्व

(प्रश्नोत्तर नं० ७)

(३१९) [1]जीव प्राणातिपातादि अठारह पापस्थानों-द्वारा जल्दी ही गुरुत्व—कर्म-भारसे बिभिल होना, प्राप्त करते हैं। विशेष सर्व वर्णन [2]प्रथम शतकके अनुसार जानना चाहिये।

भवसिद्धिकत्व और संसार

(प्रश्नोत्तर नं० ८-१०)

(३२०) जीवोंका भवसिद्धिकत्व स्वभावसे है परन्तु [3]परिणामसे नहीं। सर्व भवसिद्धिक जीव सिद्ध होंगे। यद्यपि सर्व भवसिद्धिक जीव सिद्ध होंगे फिर भी यह लोक इनसे रहित न

---

१ - जयन्ती श्राविका द्वारा पूछेगये प्रश्नोंके उत्तर

२—देखो पृष्ठ संख्या ५६, क्रमसंख्या ५४

३ —रूपान्तरित होनेको परिणाम कहाजाता है— बालकसे युवा, युवासे वृद्ध होना, ये सब परिणामिक भाव हैं।

इसीप्रकार कुछ जीवोंका सबल और निर्बल, उद्योगी और आलसी होना अच्छा है। कारण पूर्ववत्। उद्योगी जीव उपर्युक्त कार्योंके साथ साथ आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी ग्लान, शैक्ष, (नव दीक्षित) कुल, गण, संघ और साधार्मिक की अनेक वैयावृत्य – सेवाओंमें अपनेको लगाते रहते है।

(प्रश्नोत्तर नं० १४)

(३२२) श्रोत्रेन्द्रियवशीभूत जीव क्या बाँधता है? इस संबंधमें क्रोधवशीभूत जीव की तरह ही सर्व वर्णन जानना चाहिये।

श्रोत्रेन्द्रियवशीभूत की तरह ही आंख, नाक, कान और शरीर सुख-वशीभूत जीवोंके लिये जानना चाहिये।

तृतीय उद्देशक

तृतीय उद्देशक में वर्णित विषय

[सप्त नर्क भूमियां। प्रश्नोत्तर संख्या २]

(प्रश्नोत्तर नं० १५-१६)

(३२३) सात पृथ्वियां हैं:—प्रथमा यावत् सप्तमी। पृथ्वियों के नाम व गोत्र आदि जीवाभिगम सूत्रके नैरयिक उद्देशकसे जानने चाहिये।

बारहवां शतक

चतुर्थ उद्देशक

चतुर्थ उद्देशकमें वर्णित विषय

[दो प्रदेशिक, तीन प्रदेशिक......संख्येयप्रदेशिक......असख्येयप्रदेशिक......अनन्तप्रदेशिक पुद्गल और उनके विभाग। प्रश्नोत्तर संख्या ३१]

(प्रश्नोत्तर नं० १६-२७)

(३२४) दो परमाणु संयुक्तरूपमें जब इकट्ठे हो जाते हैं तब द्विप्रदेशिक स्कंध होता है। यदि उसके विभाग किये जायं तो उसके दो विभाग होंगे। एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर दूसरा परमाणु पुद्गल।

तीन परमाणु पुद्गल जब संयुक्तरूपमें इकट्ठे हो जाते हैं तब तीन प्रदेशिक स्कंध होता है। यदि उसके विभाग किये जायं तो उसके दो या तीन विभाग होंगे। यदि दो विभाग हों तो एक र एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर द्विप्रदेशिक स्कंध। तीन विभाग करनेपर तीन परमाणु पुद्गल होंगे।

चार, पांच, छः, सात, आठ, नव और दश परमाणु पुद्गल क्रमशः संयुक्तरूपमें इकट्ठे हों तो चार प्रदेशिक, पांच प्रदेशिक, छः प्रदेशिक, सात प्रदेशिक, आठ प्रदेशिक, नव प्रदेशिक और दश प्रदेशिक स्कंध होते हैं। यदि इनके विभाग किये जायं तो चार प्रदेशिक स्कंधके दो, तीन, चार, पंच प्रदेशिक स्कंधके दो, तीन, चार, पांच, छः प्रदेशिकके, दो, तीन, चार, पांच छः, सात प्रदेशिकके दो, तीन, चार, पांच, छः, सात, आठ प्रदेशिकके दो,

तीन, चार, पांच, छः, सात, आठ, नव प्रदेशिकके दो, तीन, चार, पांच, छः सात, आठ, नव, दश प्रदेशिकके दो, तीन, चार, पांच, छः, सात, आठ, नव, और दश विभाग होंगे।

चार प्रदेशिक स्कंधके विभाग इस तरह होंगे :—यदि दो हों तो एक और एक परमाणु पुद्‌गल और दूसरी ओर तीन प्रदेशिक स्कंध, अथवा दो दो प्रदेशिक स्कध, तीन हों तो एक ओर दो भिन्न २ परमाणु पुद्‌गल और दूसरी ओर एक द्विप्रदेशिक स्कंध, चार होनेपर अलग-अलग चार परमाणु पुद्‌गल होंगे।

पंचप्रदेशिक स्कंधके पांच विभाग इस तरह होंगे—यदि दो विभाग हों तो एक ओर एक परमाणु पुद्‌गल और दूसरी ओर एक चार प्रदेशिक स्कंध, या एक ओर द्विप्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर त्रिप्रदेशिक स्कंध, तीन विभाग हों तो एक ओर दो अलग अलग परमाणु पुद्‌गल और एक तीन प्रदेशिक स्कंध अथवा एक ओर परमाणु पुद्‌गल और दो अलग-अलग दो प्रदेशिक स्कंध, चार विभाग हों तो तीन अलग परमाणु पुद्‌गल और एक द्विप्रदेशिक स्कंध, पाच विभाग हों तो अलग-अलग पाच परमाणु होंगे।

छः प्रदेशिक स्कंधके छः विभाग इस तरह होंगे :—यदि दो विभाग हों तो एक ओर एक परमाणु पुद्‌गल और दूसरी ओर पांच प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर द्विप्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर चार प्रदेशिक स्कंध, अथवा दो, तीन प्रदेशिक स्कंध होंगे। तीन हों तो एक ओर अलग-अलग दो परमाणु पुद्‌गल और एक चार प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्‌गल, एक द्विप्रदेशिक स्कंध और एक त्रिप्रदेशिक स्कंध, अथवा

तीन दो प्रदेशिक स्कंध होंगे। चार विभाग इस तरह होंगे—एक ओर अलग-अलग तीन परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर एक तीन प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर अलग-अलग दो परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर दो द्विप्रदेशिक स्कंध। यदि पाच विभाग हों तो एक ओर चार अलग- अलग परमाणु पुद्गल और एक द्विप्रदेशिक स्कंध होगा। छः विभाग करनेपर अलग-अलग छः परमाणु पुद्गल होंगे।

सात प्रदेशिक स्कंधके दो विभाग करने पर एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर छः प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर तीन प्रदेशिक स्कंध और एक ओर चार प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर द्विप्रदेशिक स्कध और दूसरी ओर पच प्रदेशिक स्कंध होगा। तीन विभाग करने पर—एक ओर अलग २ दो परमाणु पुद्गल और एक और पंच प्रदेशिक स्कंध, अथवा, एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक द्विप्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर चार प्रदेशिक स्कध अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर तीन-तीन प्रदेशिक दो स्कंघ अथवा एक ओर दो दो प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर एक तीन प्रदेशिक स्कंध होगा। चार विभाग करने पर—एक ओर अलग-अलग तीन पुद्गल और दूसरी ओर चार प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर दो परमाणु पुद्गल और एक द्विप्रदेशिक स्कंध तथा एक त्रीप्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर तीन द्विप्रदेशिक स्कंध होंगे। पाच विभाग करने पर—एक ओर अलग-अलग चार परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर एक तीन प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर तीन परमाणु पुद्गल और दूसरी

ओर दो दोप्रदेशिक स्कंध होंगे। छः विभाग करने पर—एक ओर अलग-अलग पांच परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर एक द्विप्रदेशिक स्कंध होता। सात विभाग करने पर अलग-अलग सात परमाणु पुद्गल होंगे।

आठ प्रदेशिक स्कंधके दो विभाग इसतरह होंगे—एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर एक सप्त प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर एक ओर दोप्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर छः प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर तीन प्रदेशिक एक स्कंध और दूसरी ओर पांच प्रदेशिक एक स्कंध, अथवा—चार-चार प्रदेशिक दो स्कंध होंगे। तीन विभाग करने पर—एक ओर दो अलग-अलग परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर छः प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक द्विप्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर एक पंच प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक तीन प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर एक चार प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर दो दो प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर एक चार प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर एक द्विप्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर दो तीन प्रदेशिक स्कंध होंगे। चार विभाग करने पर—एक ओर भिन्न-भिन्न तीन परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर पाचप्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर अलग-अलग दो परमाणु पुद्गल, एक द्विप्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर चार प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर अलग-अलग दो परमाणु पुद्गल, दूसरी ओर दो तीन प्रदेशिक स्कध, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, दो दो प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर एक तीन प्रदेशिक स्कध, अथवा चार द्विप्रदेशिक अलग

स्कंध होंगे पांच विभाग करने पर—एक ओर अलग-अलग चार परमाणु पुद्गल और एक चारप्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर अलग-अलग तीन परमाणु पुद्गल, एक द्विप्रदेशिक स्कंध और एक तीन प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर दो परमाणु पुद्गल, और दूसरी ओर तीन दो प्रदेशिक स्कंध होंगे। छः विभाग करने पर एक ओर अलग-अलग पांच परमाणु पुद्गल और दूसरी और एक त्रिप्रदेशिक स्कंच, अथवा एक ओर अलग-अलग चार परमाणु पुद्गल और दो दो प्रदेशिक स्कंध होंगे। सात विभाग करने पर अलग अलग छः परमाणु पुद्गल और एक दो प्रदेशिक स्कंध होगा। आठ विभाग करने पर अलग-अलग आठ परमाणु पुद्गल होंगे।

नव प्रदेशिक स्कंधके दो विभाग इसतरह होंगे :—एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर आठप्रदेशिक स्कंध, इस-प्रकार एक-एकका संचार करना चाहिये।

तीन विभाग करनेपर एक ओर दो अलग-अलग परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर सातप्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक दो प्रशिक स्कंध और दूसरी ओर एक छः प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक तीन प्रदेशिक स्कंध ओर एक पांच प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर दो चार प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर एक दो प्रदेशिक स्कंध, एक तीन प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर एक चार प्रदेशिक स्कंध, अथवा तीन-तीन प्रदेशिक स्कंध होंगे। चार विभाग करने पर—एक ओर तीन परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर छः प्रदेशिक स्कंध, अथवा

एक ओर दो परमाणु पुद्गल, एक त्रीप्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर एक चार प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक परमाणु पुद्गल, दो दोप्रदेशिक स्कध और दूसरी ओर एक चार प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक दो प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर दो तीन प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर तीन दो प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर एक तीन प्रदेशिक स्कंध होगा। पाच भाग करनेपर—एक ओर चार भिन्न भिन्न परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर एक पांच प्रदेशिक स्कन्ध अथवा एक ओर तीन परमाणु, पुद्गल, एक द्विप्रदेशिक स्कन्ध और एक चार प्रदेशिक स्कन्ध, अथवा एक ओर तीन परमाणु पुंद्गल और दूसरी ओर दो द्विप्रदेशिक स्कन्ध, अथवा एक ओर दो परमाणु पुद्गल, दो दोप्रदेशिक स्कन्ध और दूसरी ओर एक तीन प्रदेशिक स्कन्ध, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर चार दो प्रदेशिक स्कन्ध होंगे। छः भाग करने पर—एक ओर पाच परमाणु पुद्गल और एक चार प्रदेशिक स्कन्ध, अथवा एक ओर चार परमाणु पुद्गल, एक दो प्रदेशिक स्कन्ध और दूसरी ओर एक तीन प्रदेशिक स्कन्ध, अथवा एक ओर तीन परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर तीन द्विप्रदेशिक स्कन्ध होंगे। सात भाग करनेपर—एक ओर छः भिन्न-भिन्न परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर एक तीन प्रदेशिक स्कन्ध, अथवा एक ओर पाच परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर दो द्वि प्रदेशिक स्कन्ध होंगे। आठ भाग करने पर, एक ओर सात परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर एक दो प्रदेशिक स्कन्ध होगा। नव भाग करने पर भिन्न मिन्न नव परमाणु पुद्गल होंगे।

दश प्रदेशिक स्कंधके दो विभाग इस तरह होंगे :—एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर एक नवप्रदेशिक स्कंध अथवा एक ओर दो प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर आठ प्रदेशिक स्कंध होगा। इसप्रकार एक-एकका संचार करना चाहियें।

तीन विभागे करने पर—एक ओर दो परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर एक आठ प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक द्विप्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर एक सात प्रदेशिक स्कंध अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक तीनप्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर एक छः प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल एक चार प्रदेशिक स्कध और दूसरी ओर एक पाचप्रदेशिक स्कंध; अथवा एक ओर एक द्विप्रदेशिक स्कंध, एक त्रिप्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर एक पांचप्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर एक दो प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर दो चार प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर दो तीन प्रदेशिक स्कंध और दूसी ओर एक चारप्रदेशिक स्कंध होगा। चार विभाग करने पर—एक ओर तीन परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर एक सात प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर दो परमाणु पुद्गल, एक दो प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर एक छः प्रदेशिक स्कंध, अथवा, एक ओर दो परमाणु पुद्गल, एक तीन प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर एक पांच प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर दो परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर दो चार प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक द्विप्रदेशिक स्कंध, एक तीन प्रदेशिक स्कंध तथा दूसरी ओर एक चार प्रदे-

शिक स्कंध, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर तीन तीनप्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर तीन दो प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर एक चार प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर तीन तीन प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर दो दो प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर दो तीनप्रदेशिक स्कंध होंगे। पांच विभाग करने पर—एक ओर चार परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर छः प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर तीन परमाणु पुद्गल, एक दो प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर एक पांच प्रदेशिक स्कंध होगा, अथवा एक ओर तीन परमाणु पुद्गल, एक तीन प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर एक चार प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर दो परमाणु पुद्गल, दो दो प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर एक चार प्रदेशिक स्कध, अथवा एक ओर परमाणु पुद्गल, एक दो प्रदेशिक स्कंध तथा दूसरी ओर दो तीन प्रदेशिक स्कंध, अथवा पांच दो प्रदेशिक स्कंध होंगे। छः विभाग करने पर—एक ओर पाच अलग अलग परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर एक पंचप्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर चार परमाणु पुद्गल, एक दो प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर एक चार प्रदेशिक स्कध, अथवा एक ओर चार परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर दो तीन प्रदेशिक स्कंध अथवा एक ओर तीन परमाणु पुद्गल, दो दो प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर एक तीन प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर दो परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर चार दो प्रदेशिक स्कंध होंगे। सात विभाग करने पर—एक ओर छः परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर एक चार प्रदेशिक स्कंध,

अथवा एक ओर पांच परमाणु पुद्गल, एक दो प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर एक तीन प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर चार परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर तीन दो प्रदेशिक स्कंध होंगे। आठ विभाग करने पर—एक ओर भिन्न-भिन्न सात परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर एक तीन प्रदेशिक स्कंध अथवा, एक ओर छः परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर दो-दो प्रदेशिक स्कंध होंगे। नव विभाग करने पर—एक ओर आठ परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर एक दो प्रदेशिक स्कंध होगा। दश विभाग करने पर भिन्न-भिन्न दश परमाणु पुद्गल होंगे।

संख्येय परमाणु पुद्गल परस्पर मिलते है और संख्येय प्रदेशोंके एक पुद्गलस्कंधके रूपमें परिणत हो जाते हैं। यदि उसके विभाग किये जायं तो दो से ···· संख्येय विभाग होंगे। यदि उसके दो विभाग किये जायं तो एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर संख्येय प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर दो प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर संख्येय प्रदेशिक स्कंध,—इस-प्रकार यावत् एक ओर दश प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर संख्येय प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर संख्येय प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर संख्येय प्रदेशिक स्कध होगा। तीन विभाग करने पर—एक ओर दो परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर एक संख्येय प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक दो प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर एक सख्येय प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक तीन प्रदेशिक स्कन्ध और दूसरी ओर संख्येय प्रदेशिक स्कन्ध होगा—इसप्रकार यावत् एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक दशप्रदेशिक स्कन्ध

और एक संख्येय प्रदेशिक स्कन्ध, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, दो संख्येय प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर संख्येय प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर दो प्रदेशिक स्कंध यावत् दश प्रदेशिक स्कंध, संख्येय प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर संख्येय प्रदेशिक स्कन्ध, अथवा तीनों सख्येय प्रदेशिक स्कध होंगे।

चार विभाग करने पर—एक ओर तीन परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर संख्येय प्रदेशिक स्कध, अथवा एक ओर दो परमाणु पुद्गल, एक दो प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर संख्येय प्रदेशिक स्कध अथवा एक ओर दो परमाणु पुद्गल, तीन ··· दश ··· यावत् संख्येय प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर संख्येय प्रदेशिक स्कध, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक दो प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर दो संख्येय प्रदेशिक स्कंध—इसप्रकार एक ओर एक परमाणु पुद्गल, तीन यावत् दश···प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर दो संख्येय प्रदेशिक स्कध, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर तीन सख्येय प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर दो प्रदेशिक स्कंध······यावत् दश प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर तीन संख्येय प्रदेशिक स्कंध, अथवा चारों संख्येय प्रदेशिक स्कंध होंगे। इसीक्रमसे पांच, छः, सात, आठ और नव विभागके खंड जानने चाहिये। दश विभाग करने पर एक ओर नव परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर संख्येय प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर आठ परमाणु पुद्गल, एक दो प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर संख्येय प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर आठ परमाणु पुद्गल, एक दो प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर एक संख्येय प्रदेशिक स्कंध—इसक्रमसे एक-एककी संख्या बढ़ानी

चाहिये, अथवा दश संख्येय प्रदेशिक विभाग होंगे। यदि इसके संख्येय भाग करनेमें आयं तो संख्येय परमाणु पुद्गल होंगे।

असंख्येय परमाणु पुद्गल मिलने पर एक असंख्येयप्रदेशिक स्कंध होता है। यदि इसके विभाग किये जायं तो दो, यावत् दश, संख्येय अथवा असंख्येय विभाग होंगे।

दो विभाग करने पर—एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर एक असंख्येय प्रदेशिक स्कंध,......इसक्रमसे एक ओर एक-एक बढ़ाते हुए दश, संख्येय अथवा दो असंख्येय प्रदेशिक विभाग होंगे।

तीन विभाग करने पर—एक ओर दो परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर एक असंख्येय प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल एक दो प्रदेशिक......यावत् दश......संख्येय प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर असंख्येय प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दो असंख्येय प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर दो प्रदेशिक स्कंध ..... यावत् दश......संख्येय प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर दो असंख्येय प्रदेशिक स्कंध, अथवा तीन असंख्येय प्रदेशिक स्कंध होंगे।

चार विभाग करने पर एक ओर तीन परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर असंख्येय प्रदेशिक स्कंध—इसप्रकार चतुष्क-संयोगसे लेकर दश संयोग तक जानना चाहिये। शेष सर्व संख्येयकी तरह। मात्र असंख्येय शब्द अधिक कहना चाहिये। यदि संख्येय विभाग करनेमें आयं तो एक ओर संख्येय परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर असंख्येयप्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर संख्येय दो प्रदेशिक स्कंध .... यावत् संख्येय......यावत्

संख्येय-संख्येयप्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर असंख्येय प्रदेशिक स्कंध, अथवा संख्येय-असंख्येय प्रदेशिक स्कंध होंगे। यदि इसके असख्येय विभाग करनेमें आयं तो असंख्येय परमाणु पुद्गल होंगे।

अनन्त परमाणु पुद्गल एकत्रित होने पर एक अनन्तप्रदेशिक स्कंध होता है। यदि इसके विभाग किये जायं तो दो तीन······ यावत् दश, संख्येय, असंख्येय और अनन्त विभाग होंगे। यदि दो विभाग किये जायं तो एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर अनन्तप्रदेशिक स्कंध होगा। इसप्रकार यावत्— अथवा दो अनन्तप्रदेशिक स्कंध होंगे। तीन विभाग करने पर एक ओर दो परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर अनन्त प्रदेशिक स्कध, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक दो प्रदेशिक यावत् असंख्येय प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर अनन्त प्रदेशिक स्कंध होगा, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर दो अनन्त प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर दो प्रदेशिक स्कंध · · दश ·····संख्येय······यावत् असंख्येय प्रदेशिक स्कंध और दो अनन्त प्रदेशिक स्कंध, अथवा तीन अनन्त प्रदेशिक स्कंध होंगे। चार विभाग होने पर--एक ओर तीन परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर एक अनन्त प्रदेशिक स्कंध होगा। इस प्रकार चतुष्कसंयोग, यावत्··· · ···संख्येय संयोग जानने चाहिये। ये सर्व संयोग असंख्येयकी तरह अनन्तके लिये भी कहने चाहिये। मात्र अनन्त शब्द अधिक प्रयुक्त करना चाहिये। इसप्रकार एक ओर संख्येय संख्येय प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर अनन्त प्रदेशिक स्कंध, अथवा एक ओर संख्येयासंख्येय-प्रदेशिक स्कंध और दूसरी ओर अनन्त प्रदेशिक स्कंध, अथवा

संख्येय अनन्त प्रदेशिक स्कंध होंगे। असंख्येय विभाग करने पर—एक ओर असंख्येय परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर अनन्तप्रदेशिक स्कंध हो. अथवा एक ओर असंख्येय दो प्रदेशिक स्कन्ध और दूसरी ओर एक अनन्त प्रदेशिक स्कन्ध हो'''''इसप्रकार एक ओर यावत् असंख्येय-संख्येयप्रदेशिक स्कन्ध और दूसरी ओर एक अनन्त प्रदेशिक स्कन्ध. अथवा यावत् एक ओर असंख्येया-संख्येय प्रदेशिक स्कन्ध और दूसरी ओर अनन्त प्रदेशिक स्कन्ध. अथवा असंख्येय अनन्त प्रदेशिक स्कन्ध होंगे। यदि इसके अनन्त विभाग किये जायं तो अनन्त परमाणु पुद्गल होंगे।

पुद्गलपरिवर्त

(प्रश्नोत्तर नं० २८-२६)

(३२८) परमाणु पुद्गलों के संयोग और भेदनके सम्बन्धसे परमाणु पुद्गलोंके ये अनन्तानन्त पुद्गलपरिवर्त जानने योग्य है।

पुद्गल-परिवर्त सात प्रकारके हैं—औदारिकपुद्गलपरिवर्त, वैक्रियपुद्गलपरिवर्त. तैजसपुद्गलपरिवर्त, कार्मणपुद्गल-परिवर्त. मनपुद्गलपरिवर्त. वचनपुद्गल परिवर्त और आन-प्राण पुद्गलपरिवर्त।

नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त प्रत्येक जीव व सर्व जीवोंको उपर्युक्त सातों ही प्रकारके पुद्गल परिवर्त होते हैं। वैमानिक पर्यन्त प्रत्येक जीवको सातों ही प्रकारके अनन्त पुद्गलपरिवर्त हुए हैं। भविष्य में किसीको पुद्गल परिवर्त होंगे और किसीको नहीं। जिसको होंगे; उसको कम-से-कम एक, दो, तीन और अधिकसे अधिक संख्येय, असंख्येय और अनन्त पुद्गलपरिवर्त होंगे।

औदारिकपुद्गलपरिवर्त

एक-एक नैरयिक को नैरयिकरूपमें तथा असुरकुमारादि भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक के रूपमें एक भी औदारिक पुद्गल परिवर्त नहीं हुआ और न होगा ही। परन्तु वैक्रिय पुद्गलपरिवर्त अनन्त हुए हैं तथा भविष्यमें एकसे दो यावत् अनन्त होंगे।

एक-एक नैरयिकको पृथ्वीकाय रूपमें अनन्त औदारिक-पुद्गलपरिवर्त हुए हैं। भविष्यमें किसीको होंगे और किसीको नहीं। जिसको औदारिक पुद्गलपरिवर्त होंगे उसे कमसे कम एक, दो, तीन और अधिकसे अधिक संख्येय, असंख्येय तथा अनन्त होंगे। इसीप्रकार मनुष्य-पर्यन्त एक-एक नैरयिकके पुद्गलपरिवर्त जानने चाहिये।

नैरयिक की तरह ही वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवों के लिये जानना चाहिये।

वैक्रियपुद्गलपरिवर्त

एक-एक नैरयिकको पृथ्वीकायरूपमें एक भी वैक्रियपुद्गल-परिवर्त नहीं हुआ और न होगा। जिन जीवोंके वैक्रिय शरीर हैं उनके एकोत्तरिक—एक आदि, पुद्गलपरिवर्त जानने चाहिये। जिन जीवोंके वैक्रिय शरीर नहीं हैं उनके लिये पृथ्वी-कायके अनुसार जानना चाहिये। इसप्रकार वैमानिक-पर्यन्त वैमानिकको वैमानिक में कहना चाहिये।

तैजस और कार्मण पुद्गल-परिवर्त एकसे लेकर अनन्त पर्यन्त सर्वत्र (चउवीस दंडकीय जीव) जानने चाहिये। मनपुद्गल-

परिवर्त सर्व पंचेन्द्रिय जीवोंमें—एकसे अनन्त तक जानने चाहिये। विकलेन्द्रियों में मनपुद्गलपरिवर्त नहीं होते। वचन पुद्गलपरिवर्त एकेन्द्रियोंको छोड़कर सर्वत्र पूर्ववत् एकसे अनन्त पर्यन्त जानने चाहिये। श्वासोच्छ्वास पुद्गलपरिवर्त सर्वत्र-एकोत्तरिक—एकसे अनन्त हैं।

नैरयिकोंको नैरयिक-रूपमें या असुरकुमारादि भवनपति, बाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकके रूपमें एक भी औदारिक पुद्गलपरिवर्त व्यतीत नहीं हुआ और न होगा ही। पृथ्वीकाय से मनुष्य पर्यन्त भवोंमें अनन्त पुद्गलपरिवर्त व्यतीत हुए और अनन्त व्यतीत होंगे। वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये इसी-प्रकार जानना चाहिये यहाँ औदारिक की तरह ही सातों पुद्गल-परिवर्त कहने चाहिये। जहाँ परिवर्त होते हैं वहां व्यतीत तथा भावी—दोनों ही अनन्त जानने चाहिये।

औदारिक शरीरमें रहे हुए जीव-द्वारा औदारिकशरीरयोग्य जो द्रव्य औदारिक शरीररूप में ग्रहण—बद्ध, स्पृष्ट, स्थिर, स्थापित, अभिनिविष्ट, संप्राप्त—अवयवरूपमें गठित, परिणत निर्जीर्ण किये गये तथा जो जीवप्रदेश से निकल गये व सर्वथा भिन्न हो गये, वे द्रव्य औदारिकपुद्गलपरिवर्त कहे जाते हैं।

औदारिक की तरह ही अन्य वैक्रियशरीरपुद्गलपरिवर्त आदि जानने चाहिये।

अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालमें एक औदारिक पुद्गलपरिवर्त बन सकता है।

इसीप्रकार अन्य पुद्गलपरिवर्त जानने चाहिये।

इन सबोंके निष्पत्तिकालोंमें सबसे अल्प कार्मणपुद्गलपरिवर्त

का निष्पत्तिकाल है; इससे अनन्तगुणित तैजस का; इससे अनन्त-गुणित औदारिक का; इससे अनन्त गुणित आनप्राणका; इससे अनन्तगुणित मनका; इससे अनन्त गुणित वचनका और इससे अनन्तगुणित वैक्रियका है।

अल्पत्वबहुत्व की अपेक्षासे सबसे अल्प वैक्रियपुद्गल-परिवर्त हैं; इनसे अनन्तगुणित मनके; इनसे अनन्तगुणित आनप्राणके; इनसे अनन्तगुणित औदारिकके; इनसे अनन्त गुणित तैजसके और इनसे अनन्त गुणित कार्मणपुद्गल परिवर्त हैं।

बारहवां शतक

पंचम उद्देशक

पंचम उद्देशक में वर्णित विषय

[प्राणातिपात्तादि पुद्गल कितने वर्णादि संयुक्त हैं?--विविध अपेक्षाओंमें से विचार, जीव और जगत् कर्म-द्वारा विविधरूपसे परिणत होते हैं। प्रश्नोत्तर सख्या १९]।

(प्रश्नोत्तर नं० ५७-७५)

(३२६) प्राणातिपात, मृपावाद, अदत्तादान; मैथुन और परिग्रह आदि (कर्मपुद्गल) पाच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्शयुक्त हैं।

क्रोध, मान, माया, लोभ, और राग-द्वेपादिके (कर्मपुद्गल) भी पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस और आठ स्पर्शयुक्त हैं।

(क्रोध-मान-माया-लोभके निम्न पर्यायवाची नाम हैं)—

[१]क्रोध सम्बन्धी(१) क्रोध, (२) कोप, (३) रोष, (४) दोष, (५) अक्षमा, (६) संज्वलन, (७) कलह, (८) चाडिक्य, (९) भंडन और (१०) विवाद।

१—क्रोधके भावको समुत्पन्नकरनेवाले कर्मको क्रोध कहते हैं। क्रोध सामान्यभावका द्योतक है। कोपादि क्रोधकी विशिष्ट अवस्थाओंके द्योतक पर्यायवाची नाम हैं। २ कोप—क्रोधके उदयसे स्वभावसे चलित होना, ३ रोष—क्रोधका परिस्फुटित रूप, ४ दोष—खुदको अथवा दूसरोंको दोष देना, ५ अक्षमा—किसी दूसरेके अपराधको क्षमा न करना, ६ सज्वलन—क्रोधसे—बार-बार जलना—तिलमिलाना, ७ कलह—शोरमचाकर अनुचित बोलना, ८ चांडिक्य—रौद्ररूप धारण करना, ९ भडन—लकडी आदिसे लड़ना अथवा हाथापाई पर आजाना, १० विवाद—परस्पर एक दूसरेके लिये आक्षेपात्मक वचन कहना।

[1]मान-सम्बन्धी (१) मान (२) मद (३) दर्प, (४) स्तम्भ, (५) गर्व, (६) अत्युत्क्रोश (७) पर-परिवाद, (८) उत्कर्ष, (९) अपकर्ष, (१०) उन्नत, (११) उन्नतनाम और (१२) दुर्नाम।

[2]माया-सम्बन्धी—(१) माया, (२) उपधि, (३) निकृति, (४) वलय, (५) गहन, (६) नूम, (७) कल्क (८) कुरूपा, (९)

---

१ मान—अभिमानका भाव समुत्पन्नकरनेवाले कर्मको मान कहा जाता है। मद-दर्प आदि विशिष्टार्थ-द्योतक पर्यायवाची नाम हैं। २ मद—अहंभाव, ३ दर्प—उत्तेजनापूर्ण अहंभाव, ४ स्तंभ—अनम्र स्वभाव, ५ गर्व—अहंकार, ६ अत्युत्क्रोश—अन्यसे अपनेको श्रेष्ठ बताना, ७ पर-परिवाद—परनिन्दा, ८ उत्कर्ष—अभिमानसे अपने ऐश्वर्यको प्रकट करना, ९ अपकर्ष—अभिमानवश दूसरेको बदनाम करना, १० उन्नत—अपने अहंभावके समक्ष किसी दूसरेको कुछ नहीं समझना, ११ उन्नत नाम—अभिमानवश सम्मुख किसी नमित व्यक्तिके सामने भी नहीं झुकना। १२ दुर्नाम—अभिमानवश यथोचित रूपसे नहीं झुकना।

१—माया समान्य अर्थका द्योतक कर्म है। उपधि आदि उसके विशेषार्थ-द्योतक पर्यायवाची नाम हैं। २ उपधि—छलेजानेयोग्य व्यक्ति के पास जानेके कारणभूत भाव, ३ निकृति—छलनेकी दृष्टिसे अत्यधिक सम्मान करना अथवा एक मायाको छिपानेके लिये नवीन माया करनी, ४ वलय—वक्र वचन, ५ गहन—ठगनेकी दृष्टिसे अत्यन्त गम्भीर वचन बोलना, ६ नूम—दूसरेको ठगनेके लिये निम्नसे निम्न कार्य करना, ७ कल्क - हिंसा आदिके लिये दूसरेको तैयार करना, ८ कुरूप—निन्दित व्यवहार, ९ जिह्मता – दूसरेको ठगनेकी दृष्टिसे काममें शिथिलता लाना, १० किल्विषिक—किल्विशिक देवताओंकी तरह माया-प्रपंचमें व्यस्त रहना, ११ आदरणता—किसीको ठगनेके लिये अनइच्छित कार्योंको भी अपनाना, १२ गूहनता—अपने कार्योंको छिपानेका प्रयत्न, १३ वंचकता—ठगी, १४ प्रतिकुंचनता—सरलरूपसे कथित वचनका खडन, १५ सातियोग—उत्तम द्रव्यके साथ हीन द्रव्य मिलाना।

जिह्मता, (१०) किल्विषिक, (११) आदरणता, (१२) गूहनता, (१३) वंचकता, (१४) प्रतिकुंचनता और (१५) सातियोग।

[१]लोभसम्बन्धी—(१) लोभ, (२) इच्छा, (३) मूर्च्छा, (४) कांक्षा, (५) गृद्धि, (६) तृष्णा, (७) भिध्या, (८) अभिध्या, (९) आशंसना, (१०) प्रार्थना, (११) लालपनता, (१२) कामाशा, (१३) भोगाशा, (१४) जीविताशा, (१५) मरणाशा और (१६) नन्दिराग।

[२]प्राणातिपातविरमण, मृषावादविरमण, अदत्तादान विरमण, मैथुन विरमण, परिग्रह विरमण, क्रोध मान, माया यावत् मिथ्यादर्शनशल्यपरित्याग, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श रहित है।

१—लोभके सामान्य भावको उत्पन्न करनेवाले कर्मको लोभ कहते हैं। इच्छादि उसके पर्यायवाची विशेषार्थद्योतक नाम हैं। २ इच्छा—अभिलाषा, ३ मूर्च्छा—संरक्षण करनेकी निरन्तर अभिलाषा, ४ कांक्षा—प्राप्त करनेकी इच्छा, ५ गृद्धि—प्राप्त अर्थमें आसक्ति, ६ तृष्णा—अधिकाधिक वस्तुओंको प्राप्त करने इच्छा तथा पासकी वस्तुको व्यय न करनेकी भावना, ७ भिध्या—विषयोंका ध्यान, ८ अभिध्या—अपने निश्चयसे डिग जाना, ९ आशंसना—अपनी इष्ट वस्तुकी प्राप्ति की इच्छा, १० प्रार्थना—अर्थ आदिकी मांग, ११ लालपनता—खुशामद, १२ कामाशा—शब्द, रूप, रस आदिको प्राप्त करनेकी भावना, १३ भोगाशा—भोग्यपदार्थों की इच्छा, १४ जीविंताशा—जीवितव्य प्राप्तिकी इच्छा, १५ मरणाशा—मृत्यु प्राप्त करनेकी इच्छा, १६ नन्दिराग—अपने पास रही हुई समृद्धिका अनुराग।

२—प्राणातिपादविरमण आदि जीवके उपयोग स्व रूप हैं। उपयोग अमूर्त्त हैं। अमूर्त होनेसे वर्ण गंध आदि रहित है।

[1]औत्पत्तिकी [2]वैनयिकी; [3]कार्मिकी, और [4]पारिणामिकी बुद्धि वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श रहित हैं।

अवग्रह, ईहा अवाय, और धारणा भी उपर्युक्त वर्ण-गंध-रस आदि गुणोंसे रहित है।

उत्थान, कर्म, बल; वीर्य और पुरुषाकारपराक्रम वर्ण-गन्ध-रस और स्पर्श रहित हैं।

सप्तम पृथ्वीका अवकाशान्तर वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श रहित है।

सप्तम पृथ्वीके नीचेका तनुवात वर्ण-गन्ध-रस और स्पर्श सहित है। सप्तम तनुवात आठ स्पर्शयुक्त है।

सप्तम तनुवात की तरह ही सप्तम घनवात और सप्तम पृथ्वी आदि जानने चाहिये।

सप्तम पृथ्वीकी वक्तव्यता की तरह ही प्रथम पृथ्वी तक सर्व वर्णन जानना चाहिये।

जम्बूद्वीप, यावत् स्वयंभूरमणसमुद्र, सौधर्मकल्प यावत् ईषत्प्रागभारा पृथ्वी, नैरयिकावास यावत् वैमानिकावास आदि सभी वर्ण, गन्ध, रस और आठों स्पर्शयुक्त हैं।

---

१ औत्पत्तिकी—स्वाभाविक रूपसे उत्पन्न होनेवाली बुद्धि। इसमें शास्त्र, प्रमाण आदिके अभ्यासकी आवश्यकता नहीं। २ वैनयिकी—गुरु-सेवा आदिसे समुत्पन्न बुद्धि, ३ कार्मिकी—कर्मद्वारा समुत्पन्न, ४ पारिणामिकी—चिरकालके अध्ययन, मनन व चिन्तनसे समुत्पन्न बुद्धि।

बुद्धि जीवका स्वभाव है। जीव अमूर्त है अतः उसके स्वभाव बुद्धि, ज्ञान आदि भी अमूर्त्त हैं। अमूर्त्त होनेसे ये वर्ण, गन्ध, रूप, रस रहित हैं।

नैरयिक जीव और स्पर्शादि गुण

नैरयिक वैक्रिय और तैजस पुद्गलों की अपेक्षासे पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध व आठ स्पर्शयुक्त है। कार्मण पुद्गलों की अपेक्षा पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध तथा चार स्पर्शयुक्त है। जीवकी अपेक्षासे वर्ण, गन्ध रस और स्पर्श रहित है।

इसीप्रकार स्तनितकुमारों तक जानना चाहिये।

पृथ्वीकायिक, औदारिक और तैजस पुद्गलोंकी अपेक्षासे पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध व आठ स्पर्शयुक्त है। कार्मण और जीवकी अपेक्षासे नैरयिकोंकी तरह जानने चाहिये।

पृथ्वीकायिकी तरह ही चतुरिन्द्रिय पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना चाहिये। मात्र वायुकायिक औदारिक, वैक्रिय और तैजस् पुद्गलोंकी अपेक्षासे पांच वर्ण यावत् आठ स्पर्शयुक्त है। शेष सर्व वर्णन नैरयिकोंकी तरह जानना चाहिये।

वायुकायिककी तरह पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक जानने चाहिये।

मनुष्य औदारिक, वैक्रिय, आहारक और तैजस् पुद्गलोंकी अपेक्षासे पाच वर्ण यावत् आठ स्पर्शयुक्त है। कार्मण पुद्गल और जीवकी अपेक्षासे सर्व वर्णन नैरयिकों की तरह जानना चाहिये।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, और जीवास्तिकाय वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शरहित है। पुद्गलास्तिकाय पाच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्शयुक्त है।

ज्ञानावरणीय यावत् अन्तरायकर्म पाच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध और चार स्पर्शयुक्त है।

कृष्णादि छः लेश्यायें द्रव्यलेश्याकी अपेक्षासे पांच वर्ण यावत् आठ स्पर्शयुक्त है। भावलेश्याकी अपेक्षासे वर्णादि रहित हैं।

सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, चक्षुदर्शन आदि चार दर्शन, आभिनिबोधिक आदि पाच ज्ञान, तीन अज्ञान, और आहारादि संज्ञायें वर्णादि रहित है।

औदारिक यावत् तैजस शरीर पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्शयुक्त हैं। कार्मण, मनयोग और वचन-योग चार स्पर्शयुक्त हैं। काययोग आठ स्पर्शयुक्त हैं।

साकारोपयोग व निराकारोपयोग वर्णादिरहित हैं।

सर्व द्रव्योंमें कितने ही द्रव्य पांच वर्णयुक्त यावत् आठ स्पर्शयुक्त, कितने ही पाच वर्णयुक्त यावत् चार स्पर्शयुक्त, कितने ही एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और एक स्पर्शयुक्त हैं और कितने ही वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शविहीन है। इसप्रकार सर्व प्रदेश और सर्व पर्याय, अतीत, वर्तमान और भविष्यत्काल और सर्वकाल भी वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शरहित है।

गर्भमें उत्पद्यमान जीव पाच वर्ण, पाच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्शयुक्त परमाणु परिणत करता है।

कर्म-द्वारा जीव और जगत्—जीव समूह, विविध रूपोंमें परिणत होते है परन्तु विना कर्म परिणत नहीं होते।

बारहवां शतक

षष्ठम उद्देशक

षष्ठम उद्देशकमें वर्णित विषय

[ग्रहण और जनमान्यता—खंडन, कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष होनेके कारण, चन्द्रमाका नाम शशि और सूर्यका नाम आदित्य क्यों ? चन्द्र-सूर्य और उनके काम-भोगोंकी विशिष्टता । प्रश्नोत्तर सख्या ६]

चन्द्रादि ग्रहण

(प्रश्नोत्तर न० ७६)

(३२७) "राहु चन्द्रको निश्चितरूपसे ग्रसित करता है।" अनेक मनुष्य इसप्रकार जो कथन करते हैं, यह मिथ्या है। मैं इसप्रकार कहता हूं तथा प्ररूपित करता हूं :—

राहु निश्चित रूपसे महर्द्धिक यावत् महासुखसम्पन्न देव है। वह उत्तम वस्त्र, उत्तम माला, उत्तम सुगध व उत्तम आभूषण धारण करता है। राहु देवके नव नाम है :—शृङ्गाटक, जटिलक, क्षत्रक, खर, दर्दुर, मकर, मत्स्य, कच्छप और कृष्णसर्प। इसके पाच विमान हैं जो पांच वर्णवाले हैं। काला, नीला, लाल, पीला और श्वेत। इनमें काला विमान—खंजन—कज्जल, जैसे वर्णवाला और नीला विमान कच्चे तुम्बेके वर्णवाला है। लाल, पीला और श्वेतवर्ण विमान क्रमशः मजीठके सदृश, हल्दीके सदृश और राखके सदृश वर्णवाले हैं। जब राहु आते-जाते हुए या विकुर्वण करते हुए अथवा कामक्रीड़ा करते हुए पूर्वस्थित

चन्द्रके प्रकाशको ढक करके पश्चिमकी ओर जाता है तो पूर्वमें चन्द्रमा और पश्चिममें राहु दिखाई देता है जब वह पूर्वकी ओर जाता है तब पश्चिममें चन्द्र और पूर्वमें राहु दिखाई देता है। इसीप्रकार उत्तर-दक्षिण, ईशानकोण, नैऋत्यकोण, अग्निकोण और वायव्यकोणके लिये जानना चाहिये।

जब आता-जाता या विकुर्वण करता हुआ अथवा कामक्रीड़ा करता हुआ राहु चन्द्रकी ज्योत्सनाको ढक करके स्थित रहता है तब मनुष्यलोकमें मनुष्य कहते हैं—"वास्तवमें राहु चन्द्रमाको ग्रसित करता है" जब राहु चन्द्रके निकट होकर निकलता है तब लोग कहते हैं—"वास्तवमें चन्द्रमाने राहुकी कुक्षिका भेदन किया है और जब चन्द्रके तेजको आच्छन्न कर पुनः लौटता है तब वे कहते हैं" "वास्तवमें राहुने चन्द्रका वमन किया है"।

कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष

(प्रश्नोत्तर नं० ७७)

(३२८) राहु दो प्रकारके हैं—ध्रुव राहु और पर्वराहु। ध्रुव-राहु कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे अपने पन्द्रहवें भाग द्वारा चन्द्र-लेश्याको—चन्द्रके प्रकाशको, ढकता रहता है। जैसे प्रतिपदाको प्रथम भाग, द्वितीयाको दूसरा भाग-इसप्रकार क्रमशः अमावस्याको चन्द्रमाके पन्द्रहवे भागको आच्छादित करता है अर्थात् कृष्ण-पक्षके अन्तिम समयमें चन्द्रमा सर्वथा आच्छादित हो जाता है। शेष समयोंमें चन्द्रमा अंश रूपसे आच्छादित तथा अंश रूपसे अनाच्छादित होता है।

शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे वह चन्द्रकी पन्द्रहवीं कलाको प्रतिदिन दिखाता रहता है। इसप्रकार प्रतिपदाको प्रथम भाग, द्वितीयाको

तक सर्व वर्णन जानना चाहिये। चन्द्रकी तरह सूर्यके लिये भी जानना चाहिये।

जिसप्रकार किसी बलवान पुरुषने प्रथम यौवनकाल में ही किसी प्रथम यौवनकाल में प्रविष्ट बलवती भार्याके साथ नव विवाह किया। पश्चात् वह व्यक्ति अर्थोपार्जनके लिये सोलह वर्ष पर्यन्त विदेश चला गया। वहाँ से वह धनोपार्जन कर व सर्व कार्योंको समाप्त कर निर्विघ्न अपने घर आया। पश्चात स्नान, बलिकर्म, कौतुक और मंगलरूप प्रायश्चित्त कर तथा सर्वालंकारों से अलकृत हो मनोज्ञ, स्थालीपाकविशुद्ध अठारह प्रकार के व्यंजनोंका आहार कर शयनगृहमें (महाबल के उद्देशकमें वर्णित वासगृहके समान) शृङ्गारकी गृहरूप, सुन्दर वेषवाली यावत् कलित, कलायुक्त, अनुरक्त, अत्यन्त रागयुक्त, तथा मनोकूल स्त्रीके साथ वह इष्ट, शब्द-स्पर्श आदि पाँच प्रकारके मनुष्य सम्बन्धी काम-भोग सेवन करता है। वह पुरुष दोषोपशमन अर्थात् विकारशान्तिके पश्चात् जिस उदार सुखका अनुभव करता है; उससे वाणव्यन्तर देवोंके अनन्तगुणित विशिष्टतर काम-भोग होते हैं। वाणव्यन्तर देवोंसे भी क्रमशः उत्तरोत्तर अनन्तगुणित विशिष्टतर (असुरेन्द्र सिवाय) भवनवासी देवोंके, असुरकुमार, ज्योतिष्क—ग्रह, नक्षत्र-तारकों के होते हैं। ज्योतिष्क देवरूप ग्रहगण—नक्षत्र और ताराओंके कामभोगोंसे भी अनन्तगुणित विशुद्धतर कामभोग चन्द्र और सूर्यके हैं।

बारहवां शतक

सप्तम-अष्टम उद्देशक

सप्तम उद्देशक

सप्तम उद्देशक में वर्णित विषय

[जीव का लोकमें सर्वत्र उत्पाद—विस्तृत विवेचन। प्रश्नोत्तर संख्या २०।]

क्या जीव सर्वत्र समुत्पन्न है ?

(प्रश्नोत्तर नं० ८२-१०१)

(३३२) लोक अत्यन्त विशाल है। वह पूर्व दिशामें असंख्येय कोटिकोट्य योजन है। इसीप्रकार अन्य दिशाओंके लिये भी जानना चाहिये।

इतने विशाल लोकमें ऐसा कोई परमाणु पुद्गल जितना भी प्रदेश नहीं है जहां जीव उत्पन्न न हुआ हो अथवा मरा न हो। जिसप्रकार कोई पुरुष बकरियोंके लिये एक विशाल अजाव्रज—बकरियोंका बाड़ा, बनवाये और उसमें कमसे कम एक, दो, तीन और अधिकसे अधिक एक हजार बकरियां रखे। बाड़ेमें बहुत पानी व बहुत गोचर हो। यदि बकरियां वहां कमसे कम तीन दिन और अधिकसे अधिक छः मास पर्यन्त रहें तो उस बाड़ेकी एक परमाणु पुद्गल मात्र भी जगह शायद ही बकरियोंकी मिंग-णियों, मूत्र, श्लेष्म, नाकके मेल, वमन, पित्त, शुक्र, लोहित, चर्म, रोम, सींग, खुर और नख आदिसे अस्पर्शित रहे। इसीप्रकार

इस विशाल लोकमें लोकके शाश्वतभावकी अपेक्षासे, ससारके अनादित्व की अपेक्षासे, जीवके नित्यभावकी अपेक्षासे, कर्म-बहुलता की अपेक्षासे तथा जन्म-मरणकी बहुलताकी अपेक्षासे इस लोकमें ऐसा कोई परमाणु पुद्गल मात्र भी प्रदेश नहीं, जहाँ जीव न जन्मा न हो अथवा न मरा हो।

प्रत्येक जीव अथवा सर्व जीव रत्नप्रभादि सातो पृथ्वियोंमें तथा प्रत्येकके एक-एक नरकावासमें पृथ्वीकायिकके रूपमें तथा नैरयिकके रूपमें अनेक बार अथवा अनन्त बार पूर्व उत्पन्न हुए हुए हैं।

(प्रत्येक नैरयिकके आवासों की संख्याका वर्णन पूर्व आ ही चुका है।)

असुरकुमारों के चौंसठ लाख असुरकुमार-वासोंमें प्रत्येकमें पृथ्यीकायिकरूप में यावत् वनस्पतिकाय रूपमें तथा देव-रूपमें, देवीरूपमें, आसन, शयन और पात्रादि उपकरण रूपमें प्रत्येक जीव अथवा सर्वजीव अनन्त वार उत्पन्न हुए हुए है।

इसीप्रकार स्तनितकुमार तक जानना चाहिये। प्रत्येककी आवासों की संख्यामें भेद हैं ये भेद पूर्व कहे जा चुके हैं।

असख्येय लाख पृथ्वीकायिक आवासोंमेंसे प्रत्येक आवास में पृथ्वीकायिकरूपमें यावत् वनस्पतिकायिकरूपमें प्रत्येक जीव तथा सर्व जीव अनन्त बार उत्पन्न हुए हुए हैं।

इसीप्रकार वनस्पतिकायिकके लिये भी जानना चाहिये।

असंख्येय लाख द्वीन्द्रिय आवासोंमें से प्रत्येक आवासमें पृथ्वीकायरूपमें यावत् वनस्पतिकायरूपमें तथा द्वीन्द्रिय रूपमें प्रत्येक जीव तथा सर्व जीव अनन्त वार उत्पन्न हुए हुए हैं।

इसीप्रकार मनुष्य-पर्यन्त जानना चाहिये। विशेपान्तर यह है कि त्रीन्द्रियोंमें यावत् वनस्पतिकायिक रूपमें तथा त्रीन्द्रियरूप में, चतुरिन्द्रियोंमें चतुरिन्द्रिय रूपमें, पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यंचकयोनिकरूपमें और मनुष्योंमें मनुष्यरूपमें उत्पत्ति जाननी चाहिये। शेप वर्णन द्वीन्द्रियकी तरह ही है।

जिसप्रकार असुरकुमारोंके संबंधमें कहा गया है उसीप्रकार बाणव्यन्तर, ज्योतिष्क, सौधर्म और ईशानके लिये भी जानना चाहिये।

सनत्कुमारकल्पके बारह लाख विमानावासोंमें से प्रत्येक में पृथ्वीकायिक रूपमें यावत् वनस्पतिकायिक रूपमें तथा देवरूप में अनन्तवार प्रत्येक जीव तथा सर्व जीव उत्पन्न हुए हुए है। विशेपान्तर यह है कि वहाँ कोई देवीरूपमें उत्पन्न नहीं हुआ है।

इसीप्रकार अच्युत् तथा तीन सो अठारह ग्रैवेयक वैमानिक आवासोंके एक-एक आवासके लिये जानना चाहिये।

पांच अनुत्तर विमानोंमें प्रत्येकमें पृथ्वीकायिकरूपमें तथा यावत् वनस्पतिकायिकरूपमें प्रत्येक जीव तथा सर्व जीव अनन्त बार उत्पन्न हुए है परन्तु देव और देवी रूपमें नही।

प्रत्येक जीव सर्व जीवोंके माता, पिता, भाई, बहिन, स्त्री, पुत्र, पुत्री और पुत्रवधूके रूपमें पूर्व अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हुआ हुआ है।

इसीप्रकार सर्वजीवोंके लिये जानना चाहिये।

प्रत्येक जीव सर्व जीवोंके शत्रु, वैरी, घातक, वधिक, प्रत्यनीक तथा मित्रके रूपमें पूर्व अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हुआ हुआ है।

इसी प्रकार सर्वजीवोंके लिये जानना चाहिये।

प्रत्येक जीव सर्वजीवोंके राजा, युवराज यावत् सार्थवाह, दास, चाकर, भृत्य, भागीदार, भोग्यपुरुष, शिष्य, और शत्रु-रूपमें अनेक वार तथा अनन्त बार उत्पन्न हुआ हुआ है।

इसीप्रकार सर्व जीवोंके लिये जानना चाहिये।

अष्टम उद्देशक

अष्टम उद्देशकमें वर्णित विषय

[महर्द्धिसम्पन्न देव च्युत होकर दो शरीरवाले नाग, मणि और वृक्षके रूप जन्म लेता या नहीं? बानर आदि जीवोंके नर्कमें समुत्पन्न होनेके कारण। प्रश्नोत्तर संख्या ८]

(प्रश्नोत्तर नं० १०२-१०६)

(३३३) महाऋृद्धिसम्पन्न यावत् महा सुखसम्पन्न देव च्युत् हो [1]दो शरीरोंको धारण करनेवाले नागोंमें उत्पन्न होता है तथा वहाँ अर्चित; वंदित, पूजित, सत्कारित, मम्मानित, दिव्य प्रधान, सत्य, सत्यावपात रूप (जिसकी सेवा सफल है) हो, वह संसारका अन्त करता है। उसके पास रहे हुए (पूर्वके संवधी देव) उसका प्रतिहारकर्म करते हैं। वह वहाँसे मरकर सिद्ध-बुद्ध होता है।

इसीप्रकार दो शरीरवाले मणि के जीवके लिये जानना चाहिये।

महाऋृद्धिसम्पन्न यावत् महासुखसम्पन्न देव च्युत् हो दो शरीर धारण करनेवाले वृक्षमें उत्पन्न होता है। जिस

१—जो नागका शरीर छोड़कर मनुष्य-जीवन प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेंगे वे दो शरीर धारण करनेवाले नाग कहे जाते हैं।

वृक्षमें वह उत्पन्न होता है वह समीपस्थित देवकृत प्रतिहार्ययुक्त होता है। वह गोवरसे लीपा हुआ तथा खड़ीसे पोता हुआ होता है। शेष सर्व पूर्ववत् ।

(प्रश्नोत्तर नं० १०७-१०९)

(३३४) दीर्घकाय बन्दर, दीर्घकाय मूर्गा, दीर्घकाय मेंढक, ये सर्व शीलरहित, व्रतरहित, गुणरहित, मर्यादारहित, प्रत्याख्यान- और पौषधोपवास रहित हैं। अतएव मरणसमयमें काल करके रत्नप्रभाभूमिमें उत्कृट सागरोपमकी स्थितिवाले नर्कमें नैरयिक रूपमें उत्पन्न होते हैं। क्योंकि जो "उत्पन्न होता हो वह उत्पन्न हुआ" कहा जाता है।

सिंह, व्याघ्र काग, गिद्ध, चीलक और मेंढक मयूर आदिके लिये उपर्युक्त सर्व वर्णन जानना चाहिये ।

बारहवां शतक

नवम उद्देशक

नवम उद्देशकमें वर्णित विषय

[देव और उनके प्रकार—स्थिति, जन्म कहाँसे आकर समुत्पन्न होते हैं आदि विविध दृष्टियोंसे विचार। प्रश्नोत्तर संख्या ३७]

(प्रश्नोत्तर नं० ११०-१४६)

(३३५) देव पांच प्रकारके हैं:—(१) भव्यद्रव्यदेव (२) नरदेव, (३) धर्मदेव, (४) देवाधिदेव (५) और भावदेव।

—जो पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक अथवा मनुष्य देवोंमें उत्पन्न होने योग्य हैं; वे भव्यद्रव्यदेव कहे जाते हैं।

—जो नृपतिगण चारों दिशाओंके अधिपति चक्रवर्ती हैं, जिनके यहाँ सर्व रत्नोंमें प्रधान चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है, जो नवनिधियोंके अधीश्वर और समृद्ध भंडारके स्वामी है, जिनका मार्ग बत्तीस हजार राजाओं द्वारा अनुसरित होता है, ऐसे आसिन्धुभूमिपति—महासागर ही जिसकी उत्तम करधनी है, ऐसी पृथ्वीके स्वामी—नरेन्द्र, नरदेव कहे जाते है।

—ईर्यासमिति यावत् गुप्त ब्रह्मचारी अनगार भगवंत धर्मदेव कहे जाते है।

—अरिहंत भगवंत जो सम्पूर्ण ज्ञान-दर्शनके धारक तथा यावत् सर्वदर्शी है, वे देवाधिदेव कहे जाते हैं।

—भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक

देवगण देवगति सम्बन्धी नाम और गोत्र कर्मोंका वेदन करते हैं अतः वे भावदेव कहे जाते हैं।

भवद्रव्यदेव नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य और देवलोकोंसे भी आकर उत्पन्न होते है। [1]व्युत्क्रान्तिपदमें वर्णित सर्व विशेषताएँ तथा अनुत्तरोपपातिक-पर्यन्त इनकी सबमें उत्पत्ति जाननी चाहिये। असंख्येय वर्षायुषी जीव, अकर्मभूमिके जीव, अन्तर्द्वीपोंके जीव और सर्वार्थसिद्धके जीव उत्पन्न नहीं होते हैं। अपराजित तकके देव आकर उत्पन्न होते हैं। सर्वार्थसिद्धके देव उत्पन्न नहीं होते।

नरदेव नैरयिकों तथा देवलोकोंसे आकर उत्पन्न होते हैं परन्तु मनुष्य या तिर्यंचसे आकर उत्पन्न नहीं होते। नैरयिकोंमें भी रत्नप्रभाभूमिसे आकर उत्पन्न होते हैं शेष शर्कराप्रभा आदिसे नहीं। देवताओंमें—भवनवासी, वाणव्यन्तर; ज्योतिष्क और वैमानिक देवोंसे आकर उत्पन्न होते हैं। इसप्रकार व्युत्क्रान्तिपदमें वर्णित सर्वदेवों-संबन्धी विशेषताएँ यहाँ जाननी चाहिये। सर्वार्थसिद्ध-पर्यन्त देवताओंका उपपात जानना चाहिये। धर्मदेव नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य और सर्वार्थसिद्ध तकके देवताओंसे आकर उत्पन्न होते हैं परन्तु विशेषान्तर यह है कि तमःप्रभा और तमतमःप्रभा, तेजसकाय, वायुकाय, असंख्येय वर्षायुषी कर्मभूमिसमुत्पन्न, अकर्मभूमिसमुत्पन्न, अन्तर्द्वीपसमुत्पन्न मनुष्य तथा तिर्यंचोंसे आकर धर्मदेव समुत्पन्न नहीं होते।

देवाधिदेव नैरयिकोंसे तथा देवताओंसे आकर उत्पन्न होते हैं परन्तु मनुष्य या तिर्यंचयोनिसे आकर नहीं। नैरयिकोंमें प्रथम

[1]—प्रज्ञापना पद ६

तीन पृथ्वियोंसे आकार उत्पन्न होते है, शेप चार पृथ्वियोंसे नहीं। देवताओंमें सर्वार्थसिद्धपर्यन्त सर्व वैमानिक देवोंसे आकर उत्पन्न होते है परन्तु अन्य देवोंसे नहीं।

भावदेवोंके (अनेक स्थानोंसे आकर उत्पन्न होते हैं) सम्बन्ध में प्रज्ञापनासूत्रके व्युत्क्रान्ति पदसे भवनवासियोंके उपपात तक सर्व वर्णन जानना चाहिये।

भवद्रव्य देवोंकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपमकी, नरदेवोंकी जघन्य सातसो वर्ष और उत्कृष्ट चौरासी लाख पूर्व, धर्मदेवोंकी जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन्कोटिपूर्व, देवाधिदेवकी जघन्य वहोत्तर वर्षकी और उत्कृष्ट चौरासीलाखपूर्व, भावदेवोंकी जघन्य दश हजारवर्ष और उत्कृष्ट तैतीस सागरोपमकी स्थिति है।

भवद्रव्यदेव [1]एक रूप तथा अनेक रूप विकुर्वित करनेमें समर्थ हैं। एक रूप विकर्वित करते हुए एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय तकके जीवोंमेंसे किसी एकका रूप अथवा अनेक रूपोंको विकुर्वित करते हुए एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय तकके जीवोंके अनेक रूप विकुर्वित कर सकते है। वे संख्येय अथवा असंख्येय, सवद्ध अथवा असंवद्ध, समान अथवा असमान रूपोंको विकुर्वित करते है तथा विकुर्वित करनेके पश्चात् अपने यथेष्ट कार्योंको करते हैं।

इसीप्रकार नरदेव, धर्मदेव, तथा भवदेवोंके सम्बन्धमे जानना चाहिये।

देवाधिदेव एक रूप अथवा अनेक रूप विकुर्वित करनेमें

1—वैक्रियलब्धिसम्पन्न मनुष्य या तिर्यंच।

समर्थ हैं परन्तु उन्होंने प्रयोगरूपमें वैक्रियरूप विकुर्वित नहीं किया, करते नहीं और करेंगे भी नहीं। (क्योंकि उनमें उत्सुकता तथा कुतूहलका अभाव है।

भवद्रव्यदेव मृत्यु प्राप्तकर तत्क्षण नैरयिक, तिर्यंच या मनुष्यमें उत्पन्न नहीं होते परन्तु सर्वार्थसिद्ध पर्यन्त सर्व देवोंमें उत्पन्न होते हैं।

नरदेव मरकर तत्क्षण तिर्यंच, मनुष्य या देवलोकोंमें उत्पन्न नहीं होते परन्तु नैरयिकोंमें उत्पन्न होते है। नैरयिकोंमें भी सातों ही भूमियोंमें उत्पन्न होते है।

धर्मदेव मरकर तत्क्षण नैरयिकोंमें, तिर्यंचोंमें अथवा मनुष्योंमें उत्पन्न नहीं होते परन्तु परन्तु देवोंमें उत्पन्न होते हैं। देवताओंमें भी धर्मदेव भवनवासी, वाणव्यन्तर और ज्योतिष्कोंमें उत्पन्न नहीं होते परन्तु सर्वार्थसिद्ध-पर्यन्त वैमानिकोंमें उत्पन्न होते हैं। कितने ही सिद्ध भी होते है तथा सर्व दुःखोंका अन्त करते हैं।

देवाधिदेव तत्क्षण मरकर सिद्ध होते हैं तथा यावत् सर्व दुखों का अन्त करते है।

भावदेव मरकर कहाँ उत्पन्न होते हैं? इससम्बन्धमें प्रज्ञापना-सूत्रके व्युत्क्रान्तिपदमें वर्णित सर्व वर्णन जानना चाहिये।

कालकी अपेक्षासे भवद्रव्यदेव भवद्रव्यदेवरूपमें अपनी भवस्थितिके अनुसार रहते हैं।

इसीप्रकार भावदेवपर्यन्त सर्व देवोंके लिये अपनी-अपनी स्थिति जाननी चाहिये। मात्र धर्मदेवकी जघन्य एक समय और उत्कृष्ट किञ्चित् न्यून पूर्वकोटिवर्ष है।

१—प्रज्ञापना पद ६

[1]भवद्रव्यदेवका परस्पर अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दश हजार वर्ष और उत्कृष्ट अनन्तकाल—वनस्पतिकाल, नरदेवका परस्पर अन्तर्काल जघन्य किञ्चित् अधिक एक सागरोपम और उत्कृष्ट किञ्चित् न्यून अर्द्धपुद्गलपरावर्त है।

धर्मदेवका परस्पर अन्तर्काल जघन्य पल्योपम पृथक्त्व (दो से नव पल्योपम) और उत्कृष्ट अनन्तकाल किंचित्—न्यून अपार्द्धपुद्गलपरिवर्त्त है।

देवाधिदेवका परस्पर अन्तर्काल नहीं है (वे मोक्षमें चले जाते हैं)।

भावदेवका परस्पर अन्तर्काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल—वनस्पतिकाल है।

भवद्रव्यदेवों, नरदेवों, धर्मदेवों, देवाधिदेवों और भावदेवोंमें सबसे अल्प नरदेव है, इनसे सख्येयगुणित देवाधिदेव; इनसे संख्येयगुणित, धर्मदेव इनसे असख्येयगुणित भवद्रव्यदेव और इनसे भावदेव असंख्येयगुणित विशेषाधिक हैं।

भावदेवोंमें सबसे अल्प अनुत्तरोपपातिक भावदेव है; इनसे ऊपरके ग्रैवेयक संख्येयगुणित; इनसे मध्यम ग्रैवेयक संख्येय-गुणित, इनसे अधस्तन ग्रैवेयक संख्येयगुणित; इनसे अच्युत् कल्पके देव संख्येयगुणित, इनसे यावत् आनतकल्पके देव संख्येयगुणित है। इसप्रकार जीवाभिगम सूत्रमें वर्णित देवोंका अल्पत्वबहुत्व जानना चाहिये।

1—भवद्रव्यदेव होकर पुनः भवद्रव्यदेवरूपमें उत्पन्न होनेका काल।

बारहवाँ शतक

दशम उद्देशक

दशम उद्देशकमें वर्णित विषय

[आत्मा और उसके प्रकार, अष्टात्माओंका परस्पर सम्बन्ध, रत्नप्रभा पृथ्वी सद्‌रूप है अथवा असद्‌रूप—शर्कराप्रभा—सौधर्मदेवलोक—ग्रैवेयक विमान—एक परमाणु सद्‌रूप है या असत्‌रूप ? द्विप्रदेशिक स्कंधके सद्‌असद्-रूप होनेके कारण, त्रिप्रदेशिक स्कंध-आत्मा आदिके भंग। प्रश्नोत्तर संख्या २४]

आत्मा और उनके भेद

(प्रश्नोत्तर नं० १४७-१७०)

(३३६) आत्मा आठ प्रकारकी है :—[१](१) द्रव्यात्मा, (२) कषायात्मा, (३) योगात्मा, (४) उपयोगात्मा, (५) ज्ञानात्मा, (६) दर्शनात्मा (७) चारित्रात्मा, (८) और वीर्यात्मा।

—जिसके द्रव्यात्मा है उसके कषायात्मा कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं परन्तु जिसके कषायात्मा है उसके अवश्य ही द्रव्यात्मा है।

—जिसके द्रव्यात्मा है उसके उपयोगात्मा अवश्य होती है और जिसके उपयोगात्मा है उसके भी द्रव्यात्मा होती है। जिसके द्रव्यात्मा है उसके ज्ञानात्मा विकल्पसे होती है। जिसके ज्ञानात्मा है उसके द्रव्यात्मा अवश्य होती है। जिसके द्रव्यात्मा

१—देखो पारिभाषिक शब्द कोष।

है उसके दर्शनात्मा अवश्य है। जिसके दर्शनात्मा है उसके द्रव्यात्मा भी होती है। जिसके द्रव्यात्मा है उसके चारित्रात्मा विकल्पसे होती है। जिसके चारित्रात्मा है उसके द्रव्यात्मा अवश्य होती है। इसीप्रकार वीर्यात्माके साथ भी सम्बन्ध जानना चाहिये।

जिसके कषायात्मा है उसके योगात्मा अवश्य होती है परन्तु जिसके योगात्मा हो उसके कदाचित् कषायात्मा होती है और कदाचित नहीं भी।

इसीप्रकार उपयोगात्माके साथ कषायात्माका सम्बन्ध जानना चाहिये।

ज्ञानात्मा तथा कषायात्मा ये दोनों परस्पर विकल्पपूर्वक हैं।

जिसप्रकार कषायात्मा और उपयोगात्माका सम्वन्ध कहा गया है इसीप्रकार दर्शनात्मा और कषायात्माका सम्बन्ध जानना चाहिये।

चारित्रात्मा और कषायात्मा ये दोनों आत्मायें विकल्पपूर्वक जाननी चाहिये।

जिसप्रकार कषायात्मा और योगात्माका सम्बन्ध कहा गया है उसीप्रकार कषायात्मा और वीर्यात्माका सम्वन्ध भी जानना चाहिये।

जिसप्रकार कषायात्माके साथ अन्य (छः) आत्माओंके लिये कहा गया है उसीप्रकार योगात्माके साथ ऊपरकी (पांच) आत्माओंके लिये जानना चाहिये।

जिसप्रकार द्रव्यात्माके लिये कहा गया है उसीप्रकार उपयोगात्माके साथ भी उपर्युक्त सम्यन्ध जानना चाहिये।

जिसके ज्ञानात्मा है उनके दर्शनात्मा नियमतः होती है और जिसके दर्शनात्मा है उसके ज्ञानात्मा विकल्पतः होती है। जिसके ज्ञानात्मा हो उसके चारित्रात्मा विकल्पतः—कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं भी होती है परन्तु जिसके चारित्रात्मा है उसके ज्ञानात्मा नियमतः होती है। ज्ञानात्मा और वीर्यात्मा परस्पर विकल्पसे होती हैं।

जिसके दर्शनात्मा है उसके चारित्रात्मा और वीर्यात्मा दोनों विकल्पतः होती हैं परन्तु जिसके ये दोनों आत्मायें हैं उसे दर्शनात्मा नियमतः है।

जिसके चारित्रात्मा है उसे वीर्यात्मा नियमतः है और जिसके वीर्यात्मा है उसे चारित्रात्मा कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं भी होती है।

द्रव्यात्मा, कषायात्मा आदि आत्माओंमें सबसे अल्प चारित्रात्मा होती हैं; इससे ज्ञानात्मा अनन्तगुणित हैं; इससे कषायात्मा अनन्त गुणित हैं; इससे योगात्मा विशेषाधिक हैं; इससे वीर्यात्मा विशेषाधिक हैं, इससे द्रव्यात्मा, उपयोगात्मा और दर्शनात्मा विशेषाधिक और परस्पर तुल्य हैं।

आत्मा कदाचित् ज्ञानस्वरूप है और कदाचित् अज्ञानस्वरूप; पर ज्ञान तो नियमतः आत्मस्वरूप है।

नैरयिकोंकी आत्मा कदाचित् ज्ञानस्वरूप है और कदाचित् अज्ञानस्वरूप परन्तु उनका ज्ञान नियमतः आत्मस्वरूप है।

इसीप्रकार स्तनितकुमार तक जानना चाहिये।

पृथ्वीकायिकोंकी आत्मा नियमतः अज्ञानस्वरूप है परन्तु अज्ञान भी नियमतः आत्मस्वरूप है।

इसीप्रकार वनस्पतिकायिक पर्यन्त जानना चाहिये।

द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय यावत् वैमानिकोंको नैरयिकोंकी तरह जानाना चाहिये।

आत्मा नियमतः दर्शनस्वरूप है और दर्शन भी नियमतः आत्मस्वरूप है।

नैरयिकोंसे वैमानिक पर्यन्त (दंडक) दंडकोंकी आत्मायें नियमतः दर्शन रूप हैं और उनका दर्शन भी नियमतः (अवश्यमेव) आत्मरूप है।

[1]रत्नप्रभापृथ्वीआत्मा कदाचित् सद्रूप, कदाचित् नो आत्मा—असत्रूप, कदाचित् उभय-सद् और असद्रूप होनेसे अवक्तव्य है। क्योंकि रत्नप्रभापृथ्वीआत्मा अपने स्वरूपसे सत्रूप, पर-स्वरूपसे असत्रूप और उभयस्वरूपसे सद्-असद् रूप आत्मा अवक्तव्य है।

इसीप्रकार अधः सप्तम भूमि तक जानना चाहिये।

इसीप्रकार सौधर्म कल्प आत्मासे यावत् अच्युत् कल्प आत्मा-ग्रैवेयक विमानआत्मा, अनुत्तरविमान तथा ईषत्प्राग्भारा पृथ्वीतक जानना चाहिये।

जिसप्रकार सौधर्मकल्पआत्माके सम्बन्धमें कहा गया है इसीप्रकार एक परमाणु पुद्गल आत्माके संबन्धमें भी जानना चाहिये।

द्विप्रदेशिक स्कंध आत्मा (१) कथंचित् विद्यमान है (२) कथंचित् नोआत्मा—अविद्यमान है, (३) कथंचित् उभयरूप अवक्तव्य है, (४) कथंचित् आत्मा है, -कथंचित् नोआत्मा भी

१—रत्नप्रभा भूमिके पृथ्वीकायिक जीवोंकी अपेक्षासे।

है, (५) कथंचित आत्मा है तथा नोआत्मा—उभयरूपसे अव-क्तव्य है, (६) कथंचित् नो आत्मा है और आत्मा व नोआत्मा अवक्तव्य है।

(१) द्विप्रदेशिक स्कंध अपने स्वरूपसे आत्मा है, (२) पर-स्वरूपसे आत्मा नहीं है, (३) उभयस्वरूपसे आत्मा और नो आत्मा—उभयरूपमें अवक्तव्य है। (४) एक देशकी अपेक्षा से तथा सद्भाव पर्यायकी विवक्षासे और एक देशकी अपेक्षा से व असद्भाव पर्याय की विवक्षासे द्विप्रदेशिक स्कंध आत्मा विद्यमान तथा नोआत्मा—अविद्यमान है। (५) एक देशके स्वरूप से सद्भाव तथा असद्भाव-पर्यायोंकी विवक्षासे द्विप्रदेशिक स्कंध आत्मा विद्यमान तथा आत्मा व नो आत्मा उभयरूपमें अवक्तव्य हैं। (६) एक देशकी अपेक्षासे व असद्भाव पर्यायकी विवक्षासे और एक देशके आदेश—स्वरूपसे तथा असद्भाव इनदोनों पर्यायोंकी अपेक्षासे द्विप्रदेशिक स्कन्ध नो आत्मा—अविद्यमान तथा आत्मा तथा नो आत्मा रूपमें अवक्तव्य है।

त्रिप्रदेशिक स्कंध आत्मा—(१) कथंचित् विद्यमान है (२) कथंचित् नो आत्मा अविद्यमान है (२) आत्मा तथा नो आत्मा कथचित् अवक्तव्य है। (४) कथंचित् आत्मा तथा कथचित् नो आत्मा है, (५) कथंचित् आत्मा तथा नोआत्माये है (६) कथंचित् आत्मायें तथा नो आत्मा है, (७) कथंचित् आत्मा व नो आत्मा उभयरूप अवक्तव्य है, (८) कथंचित् आत्मा तथा आत्माये व नो आत्मायें उभयरूपसे अवक्तव्य है, (१०) कथंचित् आत्माएँ तथा नोआत्मा उभयरूपसे अवक्तव्य है। कथंचित् नो आत्मा तथा आत्मा व नोआत्मा उभयरूप अवक्तव्य है, (११) कथंचित् नोआत्मा

तथा आत्मायें तथा नोआत्मायें उभयरूप अवक्तव्य है, १२ कथं-चित् नो आत्माये तथा आत्मा व नो आत्मा उभयरूप अवक्तव्य है १३, कथंचित् आत्मा व नो आत्मा तथा आत्मा व नो आत्मा उभयरूप अवक्तव्य है।

त्रिप्रदेशिक स्कंध आत्मा १, अपने स्वरूपसे आत्मा है २, परके आदेशसे नो आत्मा है, ३, उभयके आदेशसे आत्मा और नो आत्मा उभयरूपमें अवक्तव्य है ४, एक देशके आदेशसे व सद्भाव पर्यायकी विवक्षासे व एक देशके आदेशसे व असद्भाव पर्यायकी अपेक्षासे त्रिप्रदेशिक स्कंध आत्मा और नो आत्मा है। ५, एक देशके आदेशसे तथा सद्भावपर्यायकी अपेक्षासे व अनेक देशोंके आदेशसे व असद्भावपर्यायकी अपेक्षासे त्रिप्रदेशिक स्कंध आत्मा तथा नो आत्माये है। ६, देशोंके आदेशसे व सद्भावपर्यायकी अपेक्षासे तथा देशके आदेशसे व असद्भाव पर्यायकी अपेक्षा त्रिप्रदेशिक स्कंध आत्माये तथा नोआत्मा रूप है। ७, देशके आदेशसे व सद्भाव पर्यायकी अपेक्षासे और देशके आदेशसे तथा उभय-सद्भाव और असद्भाव पर्यायोंकी अपेक्षासे आत्मा तथा आत्मा व नो आत्मा-उभयरूपमें अवक्तव्य है। ८, देशके आदेशसे व सद्भाव पर्यायकी अपेक्षासे व देशोंके आदेशसे तथा उभय पर्यायोंकी अपेक्षासे आत्मा तथा आत्मायें व नोआत्मायें—उभयरूपमें अवक्तव्य है। ९, देशोके आदेशसे व सद्भावपर्यायकी अपेक्षासे व देशके आदेशसे व तदुभय पर्यायकी अपेक्षासे आत्माये व आत्मा व नो आत्मा उभयरूपमे अवक्तव्य है। १०, देशके आदेशसे व असद्भाव पर्यायकी अपेक्षासे तथा देशके आदेशसे व उभय पर्यायकी

अपेक्षासे नो आत्मा व आत्मा तथा नो आत्मारूपमें अवक्तव्य है। ११, देशके आदेशसे व असद्भाव पर्यायकी अपेक्षासे तथा देशोंके आदेशोंसे व तदुभयपर्यायकी अपेक्षासे नो आत्मा तथा आत्मायें व नो आत्माये उभयरूपसे अवक्तव्य हैं। १२, देशोंके आदेशसे व असद्भाव पर्यायकी अपेक्षासे तथा देशके आदेश व तदुभयपर्यायकी अपेक्षासे नोआत्मायें 'तथा आत्मा व नो आत्मा उभयरूपमें अवक्तव्य हैं। १३, देशके आदेशसे व सद्भाव पर्यायकी अपेक्षासे, देशके आदेशसे व असद्भाव पर्यायकी अपेक्षासे तथा देशके आदेशसे व तदुभय पर्यायोंकी अपेक्षासे त्रिप्रदेशिक स्कंध आत्मा कथंचित् आत्मा व नोआत्मा तथा आत्मा व नोआत्मा उभयरूपमें अवक्तव्य है।

चतुष्क प्रदेशिक स्कंध, पंच प्रदेशिक स्कंध, छः प्रदेशिक स्कंघ यावत् अनन्तप्रदेशिक स्कंधके लिये इसीतरह त्रिप्रदेशिककी तरह विकल्पसे भंग जानने चाहिये। चतुष्कप्रदेशिक १६ भंग, पंच-प्रदेशिकके २२ भंग तथा छःप्रदेशिकके लिये द्विकसंयोग व त्रिकसंयोगसे सर्व भंग होते हैं।

तेरहवां शतक

प्रथम-द्वितीय उद्देशक

प्रथम उद्देशक

प्रथम उद्देशक में वर्णित विषय

[रत्नप्रभा आदि सप्त भूमियां और उनके आवास, एक समयमे नैरयिकोंका ाद, उद्वर्तन और सत्ता—विचार, दृष्टि, लेश्या, वेद, कषाय आदिकी क्षाओंसे विचार। प्रश्नोत्तर सख्या २०]

(प्रश्नोत्तर नं० १-२०)

(२३७) रत्नप्रभाभूमिमें तीस लाख निरयावास हैं। ये नरकावास संख्येय योजन विस्तारवाले और असंख्येय योजन विस्तारवाले भी हैं। संख्येय योजन विस्तारवाले नैरयिकावास में जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट संख्येय नैरयिक उत्पन्न होते हैं। इसी जघन्य और उत्कृष्ट सख्यानुसार कापोतलेश्यी, [1]कृष्णपाक्षिक, [2]शुक्लपाक्षिक, संज्ञी, असंज्ञी, भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मतिअज्ञानी; श्रुत अज्ञानी, और विभंगज्ञानी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी आहारसंज्ञोपयोगी, भयसंज्ञोपयोगी, मैथुनसंज्ञोपयोगी, परिग्रहसंज्ञोपयोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी, नोइन्द्रिय—मनरहित, काययोगी, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी नैरयिक उत्पन्न होते हैं परन्तु चक्षुदर्शनी,

१ - जिन जीवोंका किञ्चित् न्यून अर्द्धपुद्गल परावर्त संसार शेष रहा है उन्हें शुक्लपाक्षिक कहते हैं और जिन जीवोका इससे अधिक संसार शेष है, उन्हें कृष्णपाक्षिक कहते हैं।

स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, श्रोत्रेन्द्रियोपयोगी, चक्षुइन्द्रियोपयोगी, घ्राणेन्द्रियोपयोगी, मनयोगी और वचनयोगी नैरयिक उत्पन्न नही होते हैं।

इन नैरयिकावासोंसे एक समयमें जघन्य एक, दो, तीन, और उत्कृष्ट संख्येय नैरयिक उद्वर्तित—नैरयिकसे दूसरे भवमें जाना, होते हैं। इसी संख्यानुसार ये नैरयिक कापोतलेश्यी, कृष्णपाक्षिक, शुक्लपाक्षिक, संज्ञी, भवसिद्धिक; अभवसिद्धिक, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, आहारसंज्ञी, भयसंज्ञी, मैथुनसज्ञी, परिग्रहसंज्ञी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी, नोइन्द्रियोपयोगी, काययोगी, साकारोपयोगी और निराकारोपयोगी जीवोंमें उद्वर्तन करते हैं परन्तु [1]असंज्ञी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनी, श्रोत्रेन्द्रियोपयोगी, चक्षु इन्द्रियोपयोगी घ्राणेन्द्रियोपयोगी, रसनेन्द्रियोपयोगी; स्पर्शेन्द्रियोपयोगी, मनयोगी और वचनयोगी रूपमें उद्वर्तन नहीं करते हैं।

रत्नप्रभाभूमिके तीस लाख नरकावासोंमेंसे संख्येय योजनवाले नरकावासोंमें संख्येय नैरयिक जीव हैं। संख्येय कापोतलेश्यावाले यावत् संज्ञी नैरयिक हैं। [2]असंज्ञी जीव कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं भी। यदि होते है तो जघन्य एक-दो-तीन

१—उद्वर्तन परभवके प्रथम समयमें होता है। नैरयिक असंज्ञी जीवों उत्पन्न नही होते हैं अतः असंज्ञी-अनुद्वर्तन कहा है।

२—पूर्व जीवनकी अपेक्षासे कहा गया है—जो नैरयिकमें उत्पन्न होनेके पूर्व असंज्ञी हैं।

और उत्कृष्ट संख्येय होते हैं। भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, आहारसञ्ज्ञी यावत् परिग्रहसंज्ञी, नपुंसकवेदी, क्रोधकषायी, श्रोत्रेन्द्रियोपयोगी यावत् स्पर्शेन्द्रियोपयोगी, मनयोगी, वचनयोगी, काययोगी, साकारोपयोगी और निराकारोपयोगी संख्येय हैं।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी नहीं है। मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी और नोइन्द्रियोपयोगी कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं होते है। यदि होते है तो जघन्य एक, दो, तीन, और उत्कृष्ट संख्येय होते है। क्रोधकषायी संख्येय है।

अनन्तरोपपन्न—प्रथम समयमें समुत्पन्न, कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं होते है। यदि हों तो असञ्ज्ञीकी तरह समझना चाहिये। परम्परोपपन्न—द्वितीय समयमें समुत्पन्न, संख्येय है।

अनन्तरावगाढ, अनन्तराहारक, अनन्तरपर्याप्तक और चरम अनन्तरोपपन्नकी तरह हैं। परम्परावगाढ़, परम्पराहारक, परम्परपर्याप्तक और अचरम परम्परोपपन्नकी तरह है।

रत्नप्रभाभूमिके तीस लाख नरकावासोंमें असंख्येय योजनके विस्तारवाले नरकावासोंमें एक समयमें जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट असंख्येय नैरयिक उत्पन्न होते हैं।

जिसप्रकार संख्येय योजनवाले नैरयिकवासोंके लिये (उत्पाद, उद्वर्तन और सत्ता) तीनों विषयमें कहा गया है उसीप्रकार असंख्येय योजनवाले नरकावासोंके लिये भी तीनों आलापक जानने चाहिये। मात्र असंख्येय शब्दका विशेष प्रयोग करना चाहिये। शेष सर्व पूर्ववत्। लेश्यामें अन्तर है, यह प्रथम

शतकके अनुसार जानना चाहिये। एक विशेषान्तर यह है कि संख्येय योजन विस्तारवाले और असंख्येय योजन विस्तारवाले नरकावासोंमें अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी संख्येय ही उत्पन्न होते हैं।

शर्कराप्रभापृथ्वीमें पच्चीस लाख नैरयिकावास हैं। रत्नप्रभा की तरह ही संख्येय योजन विस्तारवाले और असंख्येय योजन विस्तारवाले। इनके लिये भी रत्नप्रभाकी तरह ही सर्व वर्णन जानना चाहिये। विशेषान्तर यह है कि शर्कराप्रभापृथ्वीमें असंज्ञी समुत्पन्न नहीं होते।

वालुकाप्रभामें पन्द्रह लाख नैरयिकावास हैं। शेष सर्व शर्कराप्रभावत्। लेश्यामें अन्तर है वह प्रथम शतकके अनुसार जानना चाहिये।

पंकप्रभामें दश लाख, धूमप्रभामें तीन लाख, तमप्रभामें पाच न्यून एक लाख नरकावास हैं। पंकप्रभासे अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी उत्पन्न नहीं होते। शेष सर्व शर्कराप्रभावत् जानना चाहिये। लेश्याओंका अन्तर प्रथम शतकके अनुसार जानना चाहिये।

अधःसप्तमपृथ्वीमें अनुत्तर एवं अत्यन्त विशाल पाच नरकावास हैं—काल, महाकाल, रोर, महारोर और अप्रतिष्ठान। मध्यका अप्रतिष्ठान नरकावास संख्येय योजनवाला है और शेष अन्य असंख्येय योजनवाले हैं। जैसे पंकप्रभाके लिये कहा गया है वैसे ही यहाँ भी जानना चाहिये। विशेषान्तर यह है कि सप्तम भूमिमें तीन ज्ञानयुक्त जीव न तो समुत्पन्न होते हैं और न यहांसे च्युत होते हैं। इसीप्रकार असंख्येय योजन विस्तार

वाले नरकावासोंके लिये भी जानना चाहिये। परन्तु वहाँ असंख्येय शब्दका प्रयोग करना चाहिये। रत्नप्रभाभूमिके तीस लाख नरकावासोंमे संख्येय योजन विस्तारवाले नरकावासोंमें सम्यग्दृष्टि भी और मिथ्यादृष्टि भी नैरयिक उत्पन्न होते हैं परन्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिक उत्पन्न नहीं होते। इसीप्रकार उद्वर्तनके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये। ये नरकावास सम्यग्दृष्टि नैरयिकोंसे और मिथ्यादृष्टि नैरयिकोंसे कदाचित् विरहित और कदाचित् अविरहित होते है।

इसीप्रकार असंख्येय योजनवाले नैरयिकवासोंके लिये भी वर्णन जानना चाहिये।

रत्नप्रभाके समान ही तमप्रभातक जानना चाहिये।

अध.सप्तम भूमिमें पांच अनुत्तर नरकावासोंमेसे संख्येय योजनवाले और असंख्येय योजनवाले आवासोंमें सम्यग्दृष्टि नैरयिक समुत्पन्न नही होते हैं परन्तु मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होते है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिक उत्पन्न नहीं होते। इसीप्रकार उद्वर्तन और सत्ताके लिये जानना चाहिये।

निश्चय ही कृष्णलेश्यी, नीललेश्यी, कापोतलेश्यी, तेजोलेश्यी, पद्मलेश्यी और शुक्ललेश्यी जीव कृष्णलेश्यवाले नैरयिकोंमें उत्पन्न होते है परन्तु वे कृष्णलेश्यी होकर ही उत्पन्न होते है। जब उनकी लेश्याओंके स्थान संक्लेश पाते-पाते [1]कृष्णलेश्यारूपमें

१-लेश्याका संबंध जीवके शुभाशुभ परिणामोंसे है। शुभाशुभ परिणामोंके अनुसार ही लेश्याओंमें भी परिवर्तन होता रहता है। अशुभ परिणामोंसे शुक्ललेश्यी जीव भी कृष्णलेश्यी हो सकता है और शुभ परिणामोसे कृष्णलेश्यी जीव भी शुक्ललेश्यी हो सकता है।

परिणत हो जाते हैं तब वे कृष्णलेश्यावाले नैरयिकोंमें उत्पन्न होते हैं। इसीप्रकार कृष्णलेश्यावाले स्थान विशुद्ध होते हुए नीललेश्या में और नीललेश्यासे कापोतलेश्यामें परिणत हो जाते हैं।

द्वितीय उद्देशक

द्वितीय उद्देशकमें वर्णित विषय

[देवताओंके प्रकार तथा उनके आवास—एक समयमें देवोंका उत्पाद उद्वर्तन और सत्ता—विचार, दृष्टि, लेश्या, वेद कपाय आदिकी अपेक्षाओंसे विचार। प्रश्नोत्तर संख्या १५.]

(प्रश्नोत्तर नं० २१-३५)

(३३८) असुरकुमार देवोंके चौंसठ लाख आवास हैं। ये आवास संख्येय योजनविस्तृत और असंख्येय योजनविस्तृत—दोनों ही प्रकारके हैं। असुरकुमार एक समयमें अपने आवासोंमें कितने उत्पन्न होते हैं, कितने उद्वर्तन होते हैं और कितने सत्तात्मकरूपमें रहते हैं, इस संबंधमे सर्व वर्णन रत्नप्रभाभूमि नरककी तरह ही जानना चाहिये। कुछ बातोंमें विशेषान्तर है; वह निम्न प्रकार है :—

असुरकुमारोंमें तेजोलेश्यी जीव भी समुत्पन्न होते हैं। वहाँ दोनों वेदी—स्त्री-पुरुष उत्पन्न होते है परन्तु नपुंसकवेदी उत्पन्न नहीं होते। उद्वर्तनमें ये असंज्ञियोंमें भी च्युत्—उत्पन्न, होते हैं। सत्ताकी अपेक्षासे असुरकुमारोंमें संख्येय स्त्रीवेदवाले, संख्येय पुरुषवेदवाले हैं। क्रोधकपायी, मानकपायी, मायाकपायी कदाचित् हों और कदाचित् न भी हों। यदि हों तो कमसे कम एक दो, तीन और अधिकसे अधिक संख्येय हों। लोभकपायी सख्येय हैं।

संख्येय योजन विस्तृतकी तरह ही असंख्येय योजन विस्तृतके लिये सर्व वर्णन जानना चाहिये परन्तु सर्वत्र—तीनों आलापकों में असंख्येय शब्द प्रयुक्त करना चाहिये।

असुरकुमारोंकी तरह ही स्तनितकुमारों तक जानना चाहिये। मात्र भवनोंमें अन्तर है।

वाणव्यन्तर देवोंके असंख्येय लाख आवास है। ये आवास संख्येययोजन विस्तृत हैं परन्तु असंख्येययोजन विस्तृत नहीं। संख्येययोजनविस्तृत असुरकुमारोंकी तरह सर्व वर्णन इनके लिये भी जानना चाहिये।

ज्योतिष्क देवोंके असंख्येय लाख विमानावास है। सर्व वर्णन वाणव्यन्तरोंकी तरह ही है परन्तु निम्न अन्तर है :—

ज्योतिष्कोंमें मात्र तेजोलेश्यी देव है। उत्पाद और सत्ताकी अपेक्षासे असज्ञी समुत्पन्न नहीं होते और न हैं। इनका न असंज्ञियोंमें उद्वर्तन ही है।

सौधर्मदेवलोकमें बत्तीस लाख विमानावास है। ये आवास संख्येययोजनविस्तृत और असंख्येययोजनविस्तृत—दोनों प्रकार के हैं। सर्व वर्णन ज्योतिष्कोंकी तरह ही है परन्तु निम्न विशेषान्तर है :—

यहांसे अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी उद्वर्तित होते है (भावी तीर्थंकरादि जन्मसे ही तीन ज्ञानके धारक होते हैं)

असंख्येययोजनविस्तृत विमानावासोंके लिये असंख्येय-शब्द प्रयोग करना चाहिये। शेष वर्णन संख्येयकी तरह है।

सौधर्म देवलोककी तरह ही ईशान और सनत्कुमारादिके लिये जानना चाहिये। विशेषान्तर यह कि यहाँ स्त्रीवेदवाले उत्पन्न

नहीं होते। सत्तामें भी नहीं होते। यहां सर्व [1]संज्ञी ही आकर उत्पन्न होते हैं तथा सर्व संज्ञियोंमें ही उद्वर्तन करते हैं।

इसीप्रकार सहस्रार-पर्यन्त जानना चाहिये। विमानों और लेश्याओंमें अन्तर है।

आनत एवं प्राणत देवलोकोंमें चारसौ विमानावास हैं। ये संख्येययोजनविस्तारवाले और असख्येययोजन विस्तारवाले भी हैं। सहस्रारकी तरह यहां भी सर्व वर्णन जानना चाहिये।

असंख्येययोजन विस्तारवाले विमानोंके विषयमें उत्पाद और उद्वर्तनमें असंख्येय ही कहना चाहिये। सत्तामें असंख्येय है। विशेषान्तर इस प्रकार है—नोइन्द्रिय, अनन्तरोपपन्नक, अनन्तरावगाढ़, अनन्तराहारक और अनन्तर पर्याय ये पांचों ही जघन्य एक-दो और तीन तथा उत्कृष्ट संख्येय उत्पन्न होते है। सत्तामें असंख्येय होते हैं। आरण, अच्युत और ग्रैवेयकके सम्बन्धमें आनत-प्राणतकी तरह जानना चाहिये। मात्र वि नों ि संख्यामें अन्तर है।

पांच अनुत्तर विमान हैं। ये संख्येययोजनविस्तृत भी है और असंख्येययोजन विस्तृत भी। इनमें एक समयमें कितने शुक्ल-लेश्यावाले आदि उत्पन्न होते हैं; इस सम्बन्धमें सख्येय योजन-वाले ग्रैवेयक विमानोंकी तरह यहाँ भी जानना चाहिये। जघन्य एक-दो और तीन व उत्कृष्ट संख्येय उत्पन्न होते है। विशेषान्तर यह है कि कृष्णपाक्षिक, अभव्य, तीन अज्ञानमें वर्तित जीव यहां उत्पन्न नहीं होते, नहीं उद्वर्तन करते है और न

[1]—मनके उपयोगवाले।

सत्तामें भी विद्यमान होते है। चरमका प्रतिषेध करना चाहिये। क्योंकि यहाँ चरम ही उत्पन्न होते हैं। शेष सर्व पूर्ववत्।

इसीप्रकार असंख्येय योजनवाले अनुत्तर विमानोंके लिये जानना चाहिये। शेष सर्व ग्रैवेयककी तरह ही जानना चाहिये।

असुरकुमारोंके संख्येय योजन विस्तारवाले तथा असंख्येय योजन विस्तारवाले आवासोंमें सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होते है या नहीं; इस सम्बन्धमें रत्नप्रभाके लिये वर्णित सर्व वर्णन यहाँ भी जानना चाहिये।

इसीप्रकार ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानके लिये जानना चाहिये। अनुत्तर विमानोंके उत्पाद, उद्वर्तन और सत्ता इन तीनों आलापकोंमें मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि नहीं होते है।

जीव कृष्णलेश्यी, नीललेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी होकर कृष्णलेश्यामें उत्पन्न होते हैं; इस सम्बन्धमें प्रथम उद्देशकमे जैसा कहा गया है उसीप्रकार यहाँ भी जानना चाहिये। परन्तु विशेषान्तर यह है कि लेश्याओंके स्थान विशुद्ध होते-होते शुक्ल लेश्यारूपमें परिणत होते है। शुक्ललेश्यामें परिवर्तित होनेके बाद ही जीव शुक्ललेश्यावाले देवोंमें उत्पन्न होते है।

वासोंसे अत्यन्त विशाल, अति विस्तारवाले अत्यन्त अवकाशवाले वहुजनविहीन और शून्य हैं। (यहाँ अन्य भूमियोंकी तरह अधिक जीव उत्पन्न नहीं होते।) ये न अति संकीर्ण और न अति व्याप्त हैं। इनमें रहे हुए नैरयिक छट्ठी तमःप्रभा भूमिके नैरयिकोंकी अपेक्षा महाकर्मयुक्त, महाक्रियायुक्त, महा-आश्रवयुक्त, और [1]महावेदनायुक्त है। परन्तु इनकी अपेक्षासे (छट्ठी नारकीके नैरयिकोंसे) अल्पकर्मयुक्त अल्पक्रियायुक्त, अल्प आश्रवयुक्त और अल्प वेदनायुक्त नहीं हैं। ये नैरयिक महान् ऋद्धिसम्पन्न तथा महाद्युति सम्पन्न नहीं है परन्तु अत्यन्त अल्प ऋद्धियुक्त तथा अल्पद्युति सम्पन्न हैं।

छट्ठी तमापृथ्वीमें पाँच न्यून एक लाख नरकावास है। ये नरकावास सातवीं पृथ्वीकी अपेक्षा अत्यन्त विशाल और महा-विस्तारवाले नहीं है। ये महाप्रवेशवाले तथा नैरयिकोसे अत्यन्त संकीर्ण है। सप्तम भूमिके नैरयिकोंकी अपेक्षा ये अल्पकर्मयुक्त, तथा अल्पक्रियायुक्त है परन्तु उनकी तरह महाकर्मयुक्त तथा महा-क्रियायुक्त नहीं है। ये उनकी अपेक्षा महाऋद्धिसम्पन्न तथा महाद्युति सम्पन्न हैं। ये उनसे अल्पऋद्धिसम्पन्न तथा अल्प-द्युतिसम्पन्न नहीं है।

छट्ठी तमा पृथ्वीके नरकावास पंचम धूमप्रभा नरकभूमिके नरकावासोंसे अत्यन्त विशाल, अत्यन्त विस्तारवाले, अत्यन्त अवकाशवाले तथा बहुजन-रहित व शून्य है। ये पचम भूमिके नैरयिकोंकी अपेक्षा महाकर्मयुक्त, महाक्रियायुक्त, महा आश्रव-युक्त तथा महावेदनायुक्त है परन्तु उनसे अल्पकर्मयुक्त, अल्प

[1]—दुःख, पीड़ा।

क्रिया-युक्त, अल्प आश्रवयुक्त अल्प वेदनायुक्त नहीं हैं। पंचम, भूमिकी नैरयिकोंकी अपेक्षा ये अल्पऋद्धिसम्पन्न तथा अल्प-द्युति सम्पन्न है। ये उनसे महाऋद्धिक तथा महा द्युतिसम्पन्न नहीं हैं।

इसीप्रकार शेष नर्क-भूमियोंके लिये भी परस्पर जानना चाहिये।

रत्नप्रभासे लेकर सप्तम भूमितकके नैरयिक अनिष्ट यावत् प्रतिकूल पृथ्वी; पानी यावत् वनस्पतिके स्पर्शका अनुभव करते हैं।

रत्नप्रभाभूमि दूसरी पृथ्वी शर्कराप्रभाकी अपेक्षा सतहकी अपेक्षा सबसे मोटी है और चारों दिशाओंमें लम्बाई चौड़ाई में सबसे छोटी है।

इस संबंधमें जीवाभिगम सूत्रके नैरयिक उद्देशकसे विशेष जानना चाहिये। रत्नप्रभाभूमिके नरकावासोंके आसपास जो पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक जीव हैं; उनके संबंधमें जीवाभिगमसूत्रके नैरयिक उद्देशकसे जानना चाहिये।

लोक और उसके आयाम

(प्रश्नोत्तर नं० ४२-४५)

(३४१) रत्नप्रभा भूमिके आकाशका असंख्येय भाग उल्लंघन करने पर लोकके आयामका मध्यभाग आता है। चतुर्थ पंकप्रभा-भूमिके आकाशका कुछ अधिक अर्द्धभाग उल्लंघन करनेपर अधोलोकके आयामका मध्यभाग आताहै। सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोकोंके ऊपर तथा ब्रह्मदेवलोकके नीचे रिष्टनामक तृतीय प्रतरमें ऊर्ध्वलोकके आयामका मध्यभाग है।

दश दिशायें और उनका उद्गम

(प्रश्नोत्तर नं० ४६-४९)

(३४२) जम्बूद्वीपमें मेरुपर्वतके बराबर मध्यभागमें रत्नप्रभा-भूमिके ऊपर दो सबसे छोटी प्रतरे हैं। वहीं तिर्यक्लोकका मध्य-भाग रूप आठप्रदेशवाला रुचक है। यहींसे पूर्व, पूर्वदक्षिण आदि दश दिशायें निकलती हैं। दिशाओंके नाम दशम शतकके प्रथम उद्देशकसे जाने जा सकते हैं।

पूर्व दिशाके आदिमें रुचक है। यहींसे यह निकलती है। इसके आदिमें दो प्रदेश हैं। इन दो प्रदेशोंकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। लोकाश्रयसे यह असंख्येय प्रदेशवाली, आदि एवं अंत-सहित तथा मृदंगके आकारकी है। अलोकाश्रयसे अनन्त प्रदेशा-त्मक, सादि एवं अनन्त है तथा गाड़ीके ऊधके आकारकी है।

आग्नेयी दिशाके आदिमें रुचक है। यहींसे यह निकलती है। इसकी आदिमें एक प्रदेश है। यह एक प्रदेशके विकासवाली है परन्तु उत्तरोत्तर वृद्धिरहित है। लोकाश्रयकी अपेक्षासे असं-ख्येय प्रदेशात्मक आदि एवं अन्तसहित तथा अलोकाश्रयापेक्षासे अनन्त प्रदेशात्मक, सादि एवं अनन्त है। यह टूटी हुई मालाके आकारकी है। याम्या—दक्षिण दिशा पूर्व दिशाकी तरह है। नैऋत्यदिशा आग्नेयी दिशाकी तरह है। पूर्व दिशाकी तरह चारों दिशायें तथा आग्नेयीकी तरह चारों विदिशायें है।

विमला—ऊर्ध्वदिशाके आदिमें रुचक है। यहींसे यह निक-लती है। इसके आदिमें चार प्रदेश हैं, जिनमे दो प्रदेश विस्तार-वाले है। यह उत्तरोत्तर वृद्धि [illegible] लोकाश्रयसे [illegible]य

प्रदेशात्मक है। शेप सर्व आग्नेयी दिशाकी तरह जानना चाहिये। विशेपान्तर यह है कि इसका आकार रुचककी तरह है। ऊर्ध्वकी तरह ही अधोदिशा जाननी चाहिये।

लोक और पंचास्तिकाय

(प्रश्नोत्तर नं० ७७)

(३४३) लोक पंचास्तिकाय रूप है—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय।

धर्मास्तिकाय के द्वारा जीवोंका आगमन, गमन, भापा, उन्मेष, मनोयोग, वचनयोग और काययोग प्रवर्तित होते हैं। इनके अतिरिक्त इसीप्रकार के गमनशील भाव है। ये सर्व धर्मास्तिकाय के द्वारा प्रवर्तित होते है। क्योंकि धर्मास्तिकाय का लक्ष्य गति है।

अधर्मास्तिकाय के द्वारा जीवोंका खड़ा रहना, बैठना, सोना और मनको स्थिर करना आदि होता है। इनके अतिरिक्त अनेक स्थिर पदार्थ है। वे सर्व इसके द्वारा ही स्थिर होते हैं; क्योंकि अधर्मास्तिकाय का लक्षण स्थिति है।

आकाशास्तिकाय जीव और अजीव द्रव्योंका आश्रयरूप है। इसके द्वारा जीव और अजीव द्रव्य अवगाहित होते है। एक परमाणुसे या दो परमाणुसे लेकर एक आकाश-प्रदेशमें सो परमाणु भी समाते हैं और सो कोटि भी सभा सकते है। सो कोटिसे पूर्ण एक आकाश-प्रदेशमें हजार कोटि परमाणु भी समा सकते है। क्योंकि अवगाहन आकाश का लक्षण है।

जीवास्तिकाय के द्वारा जीव अनन्त आभिनिबोधिक—मतिज्ञान की पर्यायें, अनन्त श्रुतज्ञान की पर्यायें प्रवर्तित करता है।

दूसरे शतकके अस्तिकाय उद्देशक की तरह सर्व वर्णन यहाँ जानना चाहिये। क्योंकि जीवका लक्षण उपयोग है।

पुद्गलास्तिकाय के द्वारा जीव औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण, श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय, मनयोग, वचनयोग, काययोग और श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते है। क्योंकि पुद्गलास्तिकाय का लक्षण ग्रहण है।

धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के जघन्य तीन और उत्कुष्ट छः, अधर्मास्तिकायके जघन्य चार व उत्कृष्ट सात, आकाशास्तिकायके सात, जीवास्तिकायके अनन्त, और पुद्गलास्तिकाय के अनन्त प्रदेशोंके द्वारा स्पर्शित है। कालके समयों-द्वारा कदाचित् स्पर्शित हो भी सकता है और कदाचित् नही भी। यदि स्पर्शित है तो निश्चय ही अनन्त समयों से स्पर्शित है।

अधर्मास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के जघन्य चार और उत्कृष्ट सात, अधर्मास्तिकाय के जघन्य तीन और उत्कृष्ट छः प्रदेशों द्वारा स्पर्शित है। शेष सर्व धर्मास्तिकायकी तरह जानना चाहिये।

आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश कदाचित् धर्मास्तिकाय के प्रदेशोंसे स्पर्शित है और कदाचित् नहीं भी। यदि स्पर्शित है तो जघन्य एक, दो, तीन, चार और उत्कृष्ट सात प्रदेशोंसे स्पर्शित है। अधर्मास्तिकाय के प्रदेशोंसे भी इसीप्रकार धर्मास्तिकायके प्रदेशोंकी तरह जानना चाहिये। आकाशास्तिकाय के छः प्रदेशोंसे स्पर्शित है। जीवास्तिकाय के प्रदेशोंसे कदाचित् स्पर्शित है और कदाचित् नहीं भी। यदि स्पर्शित है तो

निश्चय ही अनन्त प्रदेशोंसे स्पर्शित है। जीवास्तिकी तरह ही पुद्गलास्ति और कालके लिये जानना चाहिये।

जीवास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकायके जघन्य चार-चार और उत्कृष्ट सात-सात प्रदेशोंसे स्पर्शित है। आकाशास्तिकाय के सात प्रदेशोंसे स्पर्शित है। शेष सर्व धर्मास्तिकी तरह जानना चाहिये।

पुद्गलास्तिकाय का एक प्रदेश कितने धर्मास्तिकायादि के प्रदेशोंसे स्पर्शित है, इस सम्बन्धमें सर्व जीवास्तिकाय की तरह जानना चाहिये।

पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश धर्मास्ति व अधर्मास्तिकाय के जघन्य छः और उत्कृष्ट बारह प्रदेशोंसे व आकाशास्ति के बारह प्रदेशों से स्पर्शित है। शेष सर्व धर्मास्तिकी तरह जानना चाहिये।

पुद्गलास्तिकाय के तीन प्रदेश धर्मास्ति व अधर्मास्तिकाय के जघन्य आठ और उत्कृष्ट सत्रह प्रदेशोंसे व आकाशास्ति के सत्रह प्रदेशों से स्पर्शित है। शेष सर्व धर्मास्तिकी तरह जानना चाहिये।

इसप्रकार दश प्रदेशोंके लिये जानना चाहिये। विशेषान्तर यह है कि जघन्यमें दो का और उत्कृष्ट मे पांचका प्रक्षेप करना चाहिये। आकाशास्तिकायके लिये सर्वत्र उत्कृष्ट पद जानना चाहिये। जैसे—चार प्रदेश जघन्यमें १०, उत्कृष्ट में २२, पांचप्रदेश जघन्यमें १२, उत्कृष्टमें सत्ताईस, छः प्रदेश जघन्यमे चौदह, उत्कृष्टमें बत्तीस, सात प्रदेश जघन्यमें चौदह और उत्कृष्टमें सैंतीस, आठ प्रदेश जघन्यमें १६, उत्कृष्टमें ४२, नव प्रदेश जघन्यमें

१८, उत्कृष्टमें ४७, और दश प्रदेश जघन्यमें २० और उत्कृष्ट में ५२ प्रदेशोंसे स्पर्शित है। *आकाशास्तिकाय का सर्वत्र उत्कृष्ट पद जानना चाहिये।

संख्येय पुद्गलास्तिकस्य के प्रदेश धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशोंसे स्पर्शित हैं; इस सम्बन्धमें यह विधि जाननी चाहिये। जघन्यमें उन्हीं संख्येय प्रदेशोंको द्विगुणित करके दो जोड़ने चाहिये और उत्कृष्टमें पंचगुणित करके दो जोड़ने चाहिते। आकाशास्तिकाय के लिये कथित संख्याको पचगुणित करके दो जोड़ना चाहिये। जीवास्ति पुद्गलास्तिके अनन्त प्रदेशोंसे स्पर्शित है। कालसे कदाचित् स्पर्शित है और कदाचित् नहीं भी। यदि स्पर्शित हैं तो अनन्त समयोंसे स्पर्शित हैं।

पुद्गलास्तिकाय के असंख्येय और अनन्त प्रदेशोंके लिये भी संख्येयकी विधि ही जाननी चाहिये।

अद्धासमय—कालका एक समय धर्मास्ति और अधर्मास्ति कायके सात प्रदेशोंसे, आकाशास्तिकाय के सात प्रदेशोंसे, जीवास्तिकाय से अनन्त प्रदेशोंसे, पुद्गलास्तिकाय के अनन्त प्रदेशों से और अनन्त अद्धासमयों से स्पर्शित है।

धर्मास्तिकाय द्रव्य धर्मास्तिकायके एक भी प्रदेश से स्पर्शित नहीं है। अधर्मास्तिकाय के असंख्येय, आकाशास्तिकायके असंख्येय, जीवास्तिकाय के अनन्त, और पुद्गलास्तिकाय के अनन्त प्रदेशोंसे स्पर्शित है। अद्धा-समय-द्वारा कदाचित् स्पर्शित

* आकाश सर्वत्र विद्यमान है अतः आकाशका सर्वत्र उत्कृष्ट पद है।

है और कदाचित नहीं भी। यदि स्पर्शित हो तो अनन्त प्रदेशों से स्पर्शित है।

अधर्मास्तिकाय द्रव्य धर्मास्तिकाय के असंख्येय प्रदेशोंसे स्पर्शित है। अधर्मास्तिकाय के एक भी द्रव्यसे स्पर्शित नहीं है। शेष सर्व धर्मास्तिकाय द्रव्यकी तरह ही जानना चाहिये।

इसीप्रकार शेष द्रव्योंके लिये जानना चाहिये। स्व-अपेक्षासे एक भी द्रव्य एक प्रदेशसे स्पर्शित नहीं। पर-अपेक्षासे आदिके तीन—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय के असख्येय प्रदेशोंसे और पिछले तीन प्रदेशो की अपेक्षासे अनन्त प्रदेशों से स्पर्शित है। अद्धाकाल तक इसीप्रकार जानना चाहिये। अद्धाकाल एक समयसे भी स्पर्शित नहीं है।

जहा धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढित है वहां धर्मास्तिकायके प्रदेशों मे एक भी प्रदेश अवगाढित नहीं होता है। अधर्मास्तिकायका एक, आकाशास्तिकाय का एक, जीवास्तिकाय के अनन्त और पुद्गलास्तिकाय के अनन्त प्रदेश अवगाढित हैं। अद्धासमय कदाचित् अवगाढित हो और कदाचित् नहीं भी। यदि हो तो अनन्त अद्धासमय अवगाढित होते हैं।

जहा अधर्मास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढित है वहाँ धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढित होता है और अधर्मास्तिकायका एक भी नहीं। शेष सर्व धर्मास्तिकाय की तरह जानना चाहिये।

जहाँ आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढित है वहाँ धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय के प्रदेश और अद्धासमय के समय कदाचित् अवगाढित है और

कदाचित् नहीं भी। यदि अवगाढित हैं तो धर्मास्ति और अधर्मास्तिके एक-एक और जीवास्ति व पुद्गलास्तिके अनन्त प्रदेशों व अद्धा-समयके अनन्त समयोंसे अवगाढित है।

आकाशास्तिकाय का एक भी प्रदेश अवगाढित नहीं है।

जहाँ जीवास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढित है वहाँ धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय व आकाशास्तिकाय का एक-एक प्रदेश और जीवास्ति के अनन्त प्रदेश अवगाढित हैं। शेष द्रव्य धर्मास्तिकाय की तरह जानने चाहिये।

इसीप्रकार पुद्गलास्तिकाय के एक.प्रदेशके लिये जानना चाहिये।

जहाँ पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश अवगाढित है 'वहाँ धर्मास्तिकाय का कदाचित् एक और कदाचित् दो प्रदेश अवगाढित होते है। इसीप्रकार अधर्मास्ति और आकाशास्ति के लिये जानना चाहिये। शेष द्रव्योंके लिये धर्मास्तिकाय की तरह ही जानना चाहिये। (इनके अनन्त प्रदेश अवगाढ रहते हैं)।

तीन, चार, पांच, छः सात, आठ, नव, दश आदिके आदिके तीन अस्तिकायों के लिये एक एक प्रदेश क्रमशः बढ़ाना चाहिये। शेष द्रव्योंके लिये जैसे दो पुद्गलास्तिकाय के प्रदेशों के सम्बन्धमें कहा गया, उसीप्रकार जानना चाहिये।

संख्येय, असंख्येय और अनन्त प्रदेशोंके लिये भी धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकायके क्रमशः कदाचित् एक, दो यावत् असख्येय प्रदेश कहने चाहिये। पिछले तीन द्रव्योंके लिये पूर्ववत् जानना चाहिये।

जहाँ एक अद्धा-समय अवगाढित है वहाँ धर्मास्तिकाय,

अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकायका एक-एक प्रदेश अवगाढ़ित है। शेष द्रव्योंके लिये धर्मास्तिकाय की तरह जानना चाहिये।

जहाँ एक धर्मास्तिकाय द्रव्य अवगाढ़ित है वहाँ धर्मास्तिकायका एक भी प्रदेश नहीं होता है। अधर्मास्तिकायके असंख्येय, आकाशास्तिकाय के असंख्येय और जीवास्तिकाय के अनन्त प्रदेश अवगाढ़ित होते हैं। जीवास्तिकी तरह अद्धासमय तक जानना चाहिये।

जहा एक अधर्मास्तिकाय द्रव्य अवगाढ़ित है वहाँ धर्मास्तिकायके असंख्येय प्रदेश अवगाढ़ित होते है। अधर्मास्ति का एक भी प्रदेश नही होता। शेष द्रव्योंके लिये धर्मास्तिकाय द्रव्य की तरह जानना चाहिये।

इसप्रकार शेष द्रव्योंके लिये भी स्वस्थान की अपेक्षा से एक भी प्रदेश नही होता और परस्थानकों में आदिके तीन द्रव्यकी अपेक्षासे असंख्येय और अन्तके तीन द्रव्योंके लिये अनन्त प्रदेश अद्धासमय तक जानने चाहिये।

जहा एक पृथ्वीकायिक जीव अवगाढ़ित है वहाँ अन्य असंख्येय पृथ्वीकायिक, असंख्येय अप्कायिक, असंख्येय तेजसकायिक, असंख्येय वायुकायिक और अनन्त वनस्पतिकायिक जीव अवगाढ़ित हैं।

पृथ्वीकायिककी तरह ही शेष सर्व कायोंके लिये उपर्युक्त वर्णन जानना चाहिये।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकायके मध्य कोई भी व्यक्ति खड़े रहने, बैठने, नीचे बैठने, और लोटनेमें समर्थ

नहीं परन्तु इनमें अनन्त जीव अवगाढित हैं। जिसप्रकार कोई कूटागार शाला हो, वह अन्दर और बाहरसे लीपी हुई तथा चारों ओरसे ढकी हो, उसके द्वार भी बंद हो। उस कूटाकार शाला के ठीक मध्यम भागमें एक, दो, तीनसे लेकर एक हजार दीपक प्रज्वलित किये जायं। निश्चित ही उन दीपकोंका प्रकाश परस्पर मिलकर तथा स्पर्शकर एक दूसरेके साथ एक रूप हो जाता है। दीपकोंके उस प्रकाशमें कोई भी पुरुष खड़े रहने, बैठने, नीचे बैठने और लोटनेमें समर्थ नहीं है परन्तु उसमें अनन्त जीव अवगाढित हैं। उसीप्रकार धर्मास्तिकायिकमें अनन्त जीव अवगाढित है।

लोक और उसके भाग

रत्नप्रभा भूमिके ऊपर तथा नीचेकी क्षुद्र (लघु) प्रतरके मध्य लोकका बराबर सम भाग है तथा यहां ही लोकका सबसे सक्षिप्त भाग है।

जहाँ विग्रहकडक—वक्रतायुक्त अवयव (लोकरूपी शरीरके ब्रह्मदेवलोकरूप कोणका भाग है, वहाँ प्रदेशकी हानिवृद्धि होनेसे वक्र अवयव है) हैं वहाँ ही लोकरूपी शरीर वक्रतायुक्त है। लोक का संस्थान सुप्रतिष्ठककी तरह है। नीचेसे विस्तीर्ण, मध्यमें सक्षिप्त, जैसा कि सातवें शतकके प्रथम उद्देशकमें कहा गया है, जानना चाहिये।

अधोलोक, तिर्यक्लोक और ऊर्ध्वलोकमें सबसे छोटा तिर्यक्लोक है उससे असख्येय गुणित ऊर्ध्वलोक और उससे अधोलोक विशेषाधिक है।

तेरहवां शतक

पंचम-षष्ठम उद्देशक

पंचम उद्देशक

पंचम उद्देशकमें वर्णित विषय

[नैरयिक और उनका आहार—प्रज्ञापना। प्रश्नोत्तरसंख्या १]

(प्रश्नोत्तर नं०८५)

(३४४) नैरयिक सचित्ताहारी नहीं, मिश्राहारी नहीं परन्तु अचित्ताहारी हैं। असुरकुमारोंको भी इसीप्रकार जानना चाहिये। विशेष यहाँ प्रज्ञापनासूत्रके अट्ठाईसवें आहारपदसे नैरयिक उद्देशक सम्पूर्ण जानना चाहिये।

षष्ठम उद्देशक

षष्ठम उद्देशकमें वर्णित विषय

[नैरयिकोत्पत्ति, चमरचंचा नगरी व चमर। प्रश्नोत्तर संख्या ३]

(प्रश्नोत्तर नं० ८६)

(देखो पृष्ठ संख्या ३३६, क्रमसंख्या २८७)

(प्रश्नोत्तर नं० ८७-८८)

(३४५) रत्नप्रभाभूमिके चालीस हजार योजन दूर जानेपर चमरेन्द्रकी चमरचंचा नामक राजधानी है[1]। चमरचंचा राजधानीसे दक्षिण-पश्चिम—नैऋत्य कोणमें असुरकुमारके इन्द्र और असुरकुमारके राजा चमरका चमरचंच नामक आवास है। वह

१—इस सम्बन्धमें सम्पूर्ण वर्णन भगवतीसूत्र के द्वितीय शतकके ८ वें उद्देशकमें हैं। अतः यहाँ नहीं दिया गया है।

लम्बाई और चौड़ाईमें चौरासी हजार योजन है। उसकी परिधि दो लाख पैंसठ हजार छः सो बत्तीस योजनसे कुछ विशेषाधिक है। वह आवास एक परकोटेसे घिरा हुआ है। उसकी ऊँचाई डेढ़सो योजन है।

असुरेन्द्र चमर इस चमरचंच आवासमें निवास नहीं करता। जिसप्रकार इस मनुष्यलोकमें उपकारक पीठवद्ध घर, उद्यानस्थित गृह, नगर निर्गम गृह तथा फव्वारायुक्त घर होते हैं, जहाँ अनेक स्त्री-पुरुष बैठते, उठते तथा सोते हैं [1]परन्तु वहाँ निवास नहीं करते उसीप्रकार चमरचंच आवासमात्र अर्थात् क्रीड़ागृह और रतिनिमित्त है। चमरेन्द्र अन्यत्र दूसरे आवासमें निवास करता है।

१—उपर्युक्त सर्व वर्णन राज्यप्रश्नीयसूत्रमें विस्तृत है। वह सब यहाँ जानना चाहिये।

तेरहवां शतक

सप्तम उद्देशक

सप्तम उद्देशकमें वर्णित विषय

[भाषा और उसका स्वरूप, मन और आत्मा, मरण और उसके प्रकार।
प्रश्नोत्तर नं० ३२]

भाषा और उसका स्वरूप

(प्रश्नोत्तर नं० ८९-९६)

(३४६) भाषा आत्मा—जीवस्वरूप नहीं है। उससे भिन्न है (पुद्गलरूप)। भाषा सचित्त नहीं परन्तु अचित्त है। यह जीव-स्वरूप नही परन्तु अजीव स्वरूप है। भाषा जीवोंके होती है परन्तु अजीवोंके नहीं।

बोलनेके पूर्वकी तथा बोलनेके पीछेकी भाषा, भाषा नहीं कहीं जाती परन्तु जब भाषा बोली जाती है तब भाषा, भाषा कही जा सकती है। बोलनेके पूर्व भाषाका भेदन नहीं होता और न पश्चात् ही परन्तु बोली जाती हुई भाषाका ही भेदन होता है।

भाषा चार प्रकार की है: सत्यभाषा, असत्यभाषा सत्यमृषाभाषा, असत्यामृषा—सत्य भी नही असत्य भी नहीं।

मन और आत्मा

(प्रश्नोत्तर नं० ९७-१००)

(३४७) मन आत्मा नही हैं परन्तु इससे भिन्न है। मन सचित्त नहीं परन्तु अचित्त है। यह जीवरूप नहीं परन्तु अजीव-रूप है। यह जीवोंको होता है परन्तु अजीवोंको नहीं।

मन न पूर्व होता है और न पश्चात् ही परन्तु मनन समयमें होता है। मननके पूर्व मनका भेदन नहीं होता और न मननके पश्चात् ही। जब मनन-समयमें मन होता है तभी भेदन होता है।

मन चार प्रकारका है :—सत्यमन, असत्य मन, सत्यमृषा-मन, असत्यमृषा मन।

शरीर और आत्मा

(प्रश्नोत्तर नं० १०१-१०५)

(३४८) काय—शरीर, आत्मा भी है और उससे भिन्न भी है। यह रूपी भी है अरूपी भी है। यह सचित्त भी है और अचित्त भी है। यह जीवरूप भी है तथा अजीव रूप भी। यह जीवोंको भी होता है तथा अजीवोंको भी होता है।

काय—शरीर, (आत्मासे सम्बद्ध होनेके) पूर्व भी है, चीय-मान – पुद्गलोंको ग्रहण करनेके समय भी है तथा कायसमय—पुद्गल-ग्रहण समय बीतनेके पश्चात् भी है। यह पूर्व चीयमान समय भी तथा ग्रहण-समय बीतनेके पश्चात् भी भेदन होता है।

काय सात प्रकारका है :—

(१) औदारिक, (२) औदारिक मिश्र, (३) वैक्रिय, (४) वैक्रिय-मिश्र, (५) आहारक, (६) आहारकमिश्र, (७) कार्मण।

मरण और उसके भेद

(प्रश्नोत्तर नं० १०६-१२०)

(३४९) मरण पांच प्रकारका है—(१) आवीचिकमरण, (२) अवधिमरण, (३) आत्यंतिकमरण, (४) बालमरण, (५) पंडितमरण।

आवीचिक मरण पांच प्रकारका है :—(१) द्रव्यावीचिक

मरण, (२) क्षेत्रावीचिक मरण, (३) कालावीचिक मरण, (४) भवावीचिक मरण (५) भावावीचिकमरण।

द्रव्यावीचिक मरण चार प्रकारका है:—(१) नैरयिकद्रव्यावीचिक मरण, (२) तिर्यंचयोनिकद्रव्यावीचिक मरण, (३) मनुष्यद्रव्यावीचिक मरण (४) देवद्रव्यावीचिक मरण।

नैरयिकरूपमें वर्तित नैरयिकोंने जिन द्रव्योंको नरकायुष्के समय ग्रहित किये, बांधे, स्पृष्ट किये, प्रस्थापित किये, निविष्ट किये और अभिनिविष्ट किये हैं; वे द्रव्य उदयाभिमुख होनेपर निरंतर प्रति समय मरते हैं—अर्थात् नैरयिक उन्हें छोड़ते हैं अतः यह नैरयिकद्रव्यावीचिक मरण कहा जाता है।

इसीप्रकार ही तिर्यंचयोनिकद्रव्याविचिकमरण, मनुष्यद्रव्यावीचिकमरण और देवद्रव्यावीचिकमरण जानने चाहिये।

क्षेत्रावीचिक मरण चार प्रकारका है:—नैरयिकक्षेत्राविचिक मरण, तिर्यंचयोनिकक्षेत्राविचिक मरण, मनुष्यक्षेत्राविचिक मरण और देवक्षेत्रावीचिक मरण।

नरकक्षेत्रमें नैरयिकोंने जिन द्रव्योंको अपने नरकायुष्के समयमें ग्रहण किये हैं—यावत् प्रतिसमय छोड़ते हैं—जैसा द्रव्यावीचिक मरणके सम्बन्धमें कहा गया है; वह सर्व यहाँ जानना चाहिये। इसीकारण नैरयिकक्षेत्रावीचिक मरण कहा जाता है। इसीप्रकार भावावीचिक मरण पर्यन्त समझना चाहिये।

अवधिमरण पांच प्रकारका है:—द्रव्यावधिमरण, क्षेत्रावधिमरण, कालावधिमरण, भवावधिमरण व भावावधिमरण।

द्रव्यावधिमरण चार प्रकारका है:—नैरयिकद्रव्यावधि मरण, यावत् देवद्रव्यावधिमरण।

नैरयिक-रूपमें वर्तित नैरयिक जिन द्रव्योंको ग्रहणकर वर्तमानमें छोड़ते है, पुनः उन द्रव्योंको भविष्यकालमें नैरयिक होकर छोडेंगे। अतः नैरयिक द्रव्यावधि मरण कहा जाता है।

इसीप्रकार अन्यक्षेत्रावधि-मरण, कालावधिमरण और भवावधि मरण, और भावावधिमरणके लिये जानना चाहिये।

आत्यन्तिक मरण पाच प्रकारका है :—द्रव्यात्यंतिक मरण, क्षेत्रात्यंतिक मरण, यावत् भावात्यंतिक मरण।

द्रव्यात्यंतिक मरण चार प्रकारका है :—नैरयिक द्रव्यात्यंतिक मरण, क्षेत्रात्यंतिक मरण यावत् भावात्यंतिक मरण।

नैरयिकरूपमें वर्तित, नैरयिक जीव जिन द्रव्योंको वर्तमानमें छोड़ते हैं उन द्रव्योंको भविष्यकालमे पुनः नहीं छोड़ेंगे। इस कारण नैरयिकद्रव्यात्यंतिक मरण कहा जाता है।

इसीप्रकार भावात्यंतिक पर्यन्त समझना चाहिये।

वालमरण वारह प्रकारका है—वलन्मरण आदि। शेष भेद स्कंदकके अधिकारके अनुसार जानने चाहिये।

पडितमरण दो प्रकारका है :—पादपोपगमन और भक्त-प्रत्याख्यान।

पादपोपगमन दो प्रकारका है :—निर्हारिम-वस्तीके एक भाग में जहां मृत शरीर वाहर निकालना पड़ता है। अनिर्हारिम—वस्तीसे दूर पर्वत-गुफा आदिमें जहाँ मृत शरीर निकालना नहीं पड़े। दोनों प्रकारका पादपोपगमन मरण नियमतः अप्रतिकर्म है।

भक्तप्रत्याख्यानरूप मरणके भी उपर्युक्त दो भेद निर्हारिम और अनिर्हारिम जानने चाहिये। विशेषान्तर है कि ये दोनों प्रकारके मरण सप्रतिकर्म—शरीर संस्कार सहित है।

तेरहवां शतक

अष्टम-नवम-दशम उद्देशक

अष्टम उद्देशक

अष्टम उद्देशकमें वर्णित विषय

[अष्टकर्म—प्रज्ञापना सूत्र प्रश्नोत्तर संख्या १]

(प्रश्नोत्तर नं० १२१)

(३५०) आठ कर्म-प्रकृतियां है। यहां प्रज्ञापनासूत्रका बन्धस्थिति नामक सम्पूर्ण उद्देशक जानना चाहिये।

नवम उद्देशक

नवम उद्देशकमें वर्णित विषय

[भावितात्मा अनगार और विविध रूपविकुर्वण। प्रश्नोत्तर संख्या १८]

भावितात्मा अनगार और रूप-विकुर्वण

(प्रश्नोत्तर नं० १२२-१३९)

(३५१) जिसप्रकार कोई पुरुष डोरीसेबद्ध घटिकाको लेकर गमन करता है उसीप्रकार भावितात्मा अनगार डोरीसेबद्ध घटिकाका रूप विकुर्वित कर आकाशमें उड़ सकते है। तृतीय शतकके पंचम उद्देशकमें कथित युवक व युवतीके आलिंगनवत् सर्व वर्णन यहां जानना चाहिये परन्तु रूप-विकुर्वण करनेके लिये इसप्रकारके रूप किसीने विकुर्वित किये नहीं, विकुर्वित करते नहीं और विकुर्वित करेंगे नहीं।

जिसप्रकार कोई पुरुष हिरण्यकी पेटी, अथवा सुवर्णकी पेटी, अथवा वज्रकी पेटी, अथवा वस्त्रकी पेटी, अथवा आभरणोंकी

पेटी लेकर गमन करता है उसीप्रकार, भावितात्मा अनगार भी ऐसे रूप विकुर्वितकर गगनमें उड़ सकनेमें समर्थ हैं परन्तु इस प्रकारके रूप कभी विकुर्वित किये नहीं, करते नहीं और करेंगे नहीं।

इसीप्रकार विदलकट–वासकी भारी, शुवकट- घासकी चटाई, चर्मकट—चमड़ेकी भारी, कांवलकट—ऊनके कम्बलोंका गट्ठर, लोहेके भार, तांबेके भार, कलईके भार, शीशेके भार, हिरण्यके भार, सुवर्णके भार और वज्रके भारको लेजानेवाले व्यक्तियोंके रूपोंके लिये भी समझना चाहिये।

वागुली (चिमगादड़) जो अपने दोनों पैर ऊंचे लटकाकर सिर नीचे रखती है, की तरह, यज्ञोपवित धारण किये व्यक्तिकी तरह, जलोय—जो अपने शरीरको पानीमें डूबाडूबाकर गमन करती है, की तरह, बीज-बीजक पक्षी जो अपने दोनों पावोंको घोड़ेकी तरह उठाकर गमन करता है, की तरह, बिडालक—जो एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर गमन करता रहता है, की तरह, जीवं-जीव पक्षी—जो अपने दोनों पैरोंको घोड़ेकी तरह उठाता हुआ गति करता है, की तरह, समुद्रवायस जो कि एक तरंगसे दूसरे तरंगपर गति करता फिरता है, की तरह, हंस जो एक तटसे दूसरे तट की ओर विहार करता रहता है, की तरह भावितात्मा अनगार भी ये रूप विकुर्वित कर सकते है परन्तु सम्प्राप्ति की अपेक्षा किसीने ऐसे रूप विकुर्वित किये नहीं, वर्तमानमें करते नहीं और भविष्यमें करेंगे भी नहीं।

चक्रधारक, छत्रधारक, चामरधारक, रत्नवाहक, वैडुर्यवाहक, वज्रवाहक, रिष्टवाहक, उत्पलहस्तक, पद्महस्तक, सहस्रपत्रहस्तक व्यक्तियोंकी तरह तथा कमलनालको तोड़-तोड़कर गति करते हुए

व्यक्तिकी तरह और मृणालिका पर्यन्त अपने शरीरको पानीमें डुबायेहुए व्यक्तिकी तरह भी भावितात्मानगार रूप विकुर्वित करनेमें समर्थ है परन्तु सम्प्राप्तिकी अपेक्षा ये रूप भूतमें विकुर्वित किये नहीं, वर्तमान करते नहीं, और भविष्यमें करेंगे नही।

जिसप्रकार कोई एक वनखण्ड, जो कृष्णवर्ण है तथा मेघके सदृश आनन्ददायी व दर्शनीय है, ऐसे वनखंडकी तरह भावितात्मा अनगार भी वनखण्डके आकारको विकुर्वित कर गगनमें उड़ सकते है परन्तु ऐसा कभी किया नही, वर्तमानमें करते नहीं और भविष्यमें करेंगे नहीं।

चौखण्डी, समान किनारोंवाली यावत् शुकादि पक्षियोंके कलरवसे सुशोभित, मधुरस्वरयुक्त, आनन्ददायी पुष्करणीकी तरह भावितात्मा अनगार भी रूप विकुर्वित कर आकाशमें उड़ सकने में समर्थ है परन्तु सम्प्राप्तिकी अपेक्षासे पूर्वमें कभी ऐसा रूप विकुर्वित नही किया, वर्तमानमें नही करते और भविष्यमें करेंगे नहीं।

मायायुक्त अनगार ऐसे रूपको विकुर्वित करता है, अमायावी नहीं। मायायुक्त साधु विकुर्वणा-प्रमाद-स्थानकी आलोचना तथा प्रतिक्रमण किये बिना ही काल कर जाय तो उसे आराधना नहीं होती। विस्तृत सर्व वर्णन तृतीय शतकके चतुर्थ उद्देशकके अनुसार जानना चाहिये।

दशम उद्देशक

(प्रश्नोत्तर नं० १४०)

(देखो—पृष्ठ सख्या ७१, क्रम सख्या ७१—छाद्मस्थिकसमुद्घात)

चौदहवां शतक

प्रथम उद्देशक

प्रथम उद्देशकमें वर्णित विषय

[भावितात्मा अनगार और चरम देवावासका उल्लंघन, नैरयिकोंकी शीघ्र गति—रूपक, अनन्तरोपपन्न, परपरोपपन्न और अनन्तरपरम्परोपपन्न नैरयिकका आयुष्यबंध, निर्गत नैरयिकादि । प्रश्नोत्तर संख्या १२]

(प्रश्नोत्तर नं० १-२)

(३५२) [1]भावितात्मा अनगार जिसने चरम देवावासका उल्लंघन किया है परन्तु परम देवावासको प्राप्त नहीं किया है; उस कालमें मृत्यु प्राप्त होजाय तो वह चरम देवावास और परम-देवावासके पास जो उसी लेश्यावाले देवावास हैं, उनमें उत्पन्न होता है। वहीं उसकी गति और उत्पाद है। यदि वह साधु वहाँ जाकर अपनी पूर्व लेश्याको छोड़ दे तो कर्मलेश्या—भावलेश्यासे गिरता है। वहाँ जाकर पूर्वलेश्या नहीं छोड़ता है तो उसी लेश्या का आश्रय करके रहता है।

भावितात्मा अनगार जिसने चरम असुरकुमारावासका उल्लंघन किया है और परम असुरकुमारावासका उल्लंघन नहीं

१—उत्तरोत्तर अध्यवसायोंमें वर्तित अनगार जो चरम—सौधर्मादि देवलोकोंके इस ओर स्थित देवावासोंके स्थितियोग्य अध्यवसायोंका समुल्लंघन कर गया है परन्तु परम—ऊपरके सनत्कुमारादि देवलोकोंकी स्थिति-योग्य अध्यवसायोंको नहीं प्राप्त कर सका है, वह इस अवस्थामें मृत्यु प्राप्त हो जाय तो कहाँ उत्पन्न होगा ? इसीका प्रत्युत्तर है।

किया है, उस समय यदि मृत्यु प्राप्त हो जाय तो वह यावत् स्तनितकुमारावास, ज्योतिषिकावास और वैमानिकावास पर्यन्त उत्पन्न होता है।

नैरयिकादि जीव

(प्रश्नोत्तर नं० ३-१२)

(३५३) जिसप्रकार कोई तरुण, बलिष्ट और युगकालीन पुरुष जोकि शिल्पशास्त्रमें निपुण है, वह अपने संकुचित हाथको (त्वरासे) फैलाता है और फैलाये हाथको संकुचित करता है, फैलाई हुई मुट्ठीको संकुचित करता है और संकुचित मुट्ठीको फैलाता है, बन्द की हुई आंखको खोलता है और खोली हुई आँख को बन्द करता है उसीप्रकारसे नैरयिकोंकी शीघ्र गति होती हो अथवा गतिका विषय होता हो, यह यथार्थ नहीं। नैरयिक एक समयमें (ऋजुगति), दो समयमे या तीन समयमें विग्रहगतिसे उत्पन्न होते है। इसप्रकारकी नैरयिकोंकी शीघ्र गति अथवा शीघ्र गतिका विषय कहा गया है।

इसीप्रकार वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना चाहिये। मात्र एकेन्द्रियोंके लिये चार समयकी (उत्कृष्ट) विग्रहगति जाननी चाहिये।

नैरयिक अनन्तरोपपन्न, परंपरोपपन्न और अनन्तरपरम्परोपपन्न भी हैं।

जो नैरयिक प्रथम समयमें उत्पन्न हुए हों वे अनन्तरोपपन्न, जो प्रथम समयके अतिरिक्त द्वितीयादि समयमें समुत्पन्न हों वे परम्परोपपन्न और जो विग्रहगतिको प्राप्त हुए हों वे अनन्तर-परम्परानुपपन्न हैं।

इसीप्रकार वैमानिक तकके जीवोंके लिए जानना चाहिये।

अनन्तरोपपन्न नैरयिक, नैरयिक और देवताका आयुष्य नहीं बाधते हैं परन्तु मनुष्य और तिर्यंचका बांधते हैं। परम्परोपपन्न और अनन्तरपरम्परानुपपन्न नैरयिक भी इसीप्रकार नैरयिक और देवताका आयुष्य नहीं, परन्तु मनुष्य और तिर्यंचका बांधते हैं।

नैरयिकोंकी तरह ही वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना चाहिये। विशेषान्तर यह है कि परम्परोपपन्न पचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक और मनुष्य चारों प्रकारका आयुष्य बांधते है।

नैरयिक अनन्तरनिर्गत, परम्परनिर्गत और अनन्तरपरम्पर-निर्गत भी होते है। जो नैरयिक नर्कसे प्रथम समयमें निकलते है वे अनन्तरनिर्गत, जो प्रथम समयातिरिक्त द्वितीयादि समयमें निकलते हैं वे परम्परनिर्गत और जो विग्रहगतिसे निकलते है वे अनन्तरपरम्परनिर्गत होते है।

अनन्तरनिर्गत नैरयिक नरकायुष् और देवायुष् नही बांधते हैं। परम्परनिर्गत नैरयिक नरकायुष् और देवायुष् भी बांधते हैं।

अनन्तरपरम्परनिर्गत नैरयिक नरकायुष् और देवायुष बांधते है।

इसीप्रकार वैमानिक-पर्यन्त जीवोंके लिये जानना चाहिये।

नैरयिक अनन्तरखेदोपपन्न (समयादिके अन्तर-रहित जिनकी दुखमय उत्पत्ति है) अनन्तरपरम्परखेदोपपन्न (जिनकी उत्पत्ति अनन्तर और परम्पर खेदयुक्त नहीं है) और अनन्तर खेदोपपन्न तीनों ही प्रकारके हैं।

इसीप्रकार अभिलापसे उपर्युक्त चारों दण्डक जानने चाहिये।

चौदहवां शतक

द्वितीय उद्देशक

द्वितीय उद्देशकमें वर्णित विषय

[उन्माद और उसके भेद, पर्जन्य—मेघ और देवताओं द्वारा की जाने-वाली वर्षा, देव और तमस्काय। प्रश्नोत्तर संख्या ८]

उन्माद

(प्रश्नोत्तर नं० १३-१५)

(३५४) उन्माद दो प्रकारका है :—यक्ष-आवेशरूप और मोहनीयकर्मके उदयसे समुत्पन्न। यक्षावेशरूप उन्माद सुखपूर्वक वेदन किया जा सकता है और सुखपूर्वक ही छोड़ा जा सकता है परन्तु मोहनीयकर्मके उदयसे समुत्पन्न उन्माद दुखपूर्वक वेदन होता है और दुखपूर्वक ही उन्मुक्त होता है।

नैरयिकोंको दोनों प्रकारका उन्माद होता है। देवगण नैरयिकों पर अशुभ पुद्‌गल प्रक्षेप करते हैं ; जिससे वे यक्षावेश-रूप उन्माद प्राप्त करते हैं। मोहनीयकर्मके उदयसे मोहनीय-जन्य उन्माद प्राप्त होता है।

असुरकुमारोंको भी इसीप्रकार दो प्रकारका उन्माद होता है। क्योंकि उनसे महर्द्धिक देव उनपर अशुभ पुद्‌गल प्रक्षेप करते हैं जिससे वे यक्षावेशरूप उन्मादसे उन्मादित होते हैं। मोहनीय-कर्मके उदयसे मोहनीयजन्य उन्माद प्राप्त होता है।

असुरकुमारोंकी तरह वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों के लिये भी जानना चाहिये।

वर्षा

(प्रश्नोत्तर नं० १६-१८)

(३५५) समयपर वरसनेवाले पर्जन्य—मेघ वृष्टिकाय—जल वरसाते हैं।

जब देवेन्द्र देवराज शक्र वृष्टि करनेकी इच्छा करता है तो वृष्टि इसप्रकार होती है। सवप्रथम वह आभ्यन्तर परिपद्के देवों को बुलवाता है। आगत आभ्यन्तर परिषद्के देव मध्यपरिषद् के देवोंको बुलवाते है। मध्यपरिपद्के देव वाह्यपरिपद्के देवोंको बुलवाते है। वाह्यपरिपद्के देव आभियोगिक देवोंको बुलवाते हैं। पश्चात् वृष्टिकायिक देव वर्षा करते है।

असुरकुमार देव भी वृष्टि करते है परन्तु वे अरिहंत भगवन्तोंके जन्मोत्सव, दीक्षोत्सव, ज्ञानोत्पत्ति-उत्सव और निर्वाणोत्सवके निमित्त करते है।

असुरकुमारोंकी तरह ही स्तनितकुमार तकके भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकोंके लिये जानना चाहिये।

तमस्काय

(प्रश्नोत्तर न० १९-२०)

(३५६) देवेन्द्र देवराज ईशान जव तमस्काय उत्पन्न करनेकी इच्छा करता है तो इसप्रकार तमस्काय उत्पन्न की जाती है। वह प्रथम आभ्यन्तर परिषद्के देवताओंको बुलवाता है। देवराज शक्रके क्रमकी तरह यहाँ भी क्रम जानना चाहिये। विशेपान्तर

यह कि आभियोगिक देव तमस्कायिक देवोंको बुलवाते हैं। पश्चात् आगत तमस्कायिक देव तमस्काय उत्पन्न करते हैं।

[1]असुरकुमार देव भी तमस्काय उत्पन्न करते हैं। वे रतिक्रीड़ा-निमित्त, शत्रुको विमूढ़ित करनेके निमित्त, छिपाये हुए धनको ठीक तरहसे रखनेके लिये अथवा अपनेको प्रच्छन्न करनेके लिये तमस्कायका निर्माण करते हैं।

इसीप्रकार वैमानिकपर्यन्त जानना चाहिये,

१—वर्तमानमें जिस तरह सेनाको अथवा अपनेको छिपानेके लिये प छोड़कर धूंआ उत्पन्न किया जाता है।

चौदहवाँ शतक

तृतीय-चतुर्थ-पंचम उद्देशक

तृतीय उद्देशक

तृतीय उद्देशकमें वर्णित विषय

[भावितात्मा अनगार और महर्द्धिक देव, चउवीस दण्डकीय जीव और स्वागत-सम्मान आदि कार्य, अल्प ऋद्धिसम्पन्न देव और महर्द्धिक सम्पन्न देव, नैरयिक और वेदना-परिणाम। प्रश्नोत्तर संख्या १०]

(प्रश्नोत्तर नं० २१-२२)

(३५७) विशालकाय तथा महत्‌शरीरसम्पन्न देवोंमें कोई देव भावितात्मा अनगारके मध्य होकर निकल जाता है और कोई नहीं। क्योंकि देवता दो प्रकारके हैं—मायीमिथ्यादृष्टि-उपपन्न और अमायीसम्यक्‌दृष्टिउपपन्न। मायीमिथ्यादृष्टि-उपपन्न भावितात्मा अनगार को देखते हैं परन्तु देखकर भी उन्हें वन्दन-नमस्कार नहीं करते, उनका सम्मान नहीं करते, और न उनको कल्याणरूप, मंगलरूप व देवचैत्यकी तरह समझ पर्युपासना ही करते है। अतः वे भावितात्मा अनगार के मध्य होकर निकल जाते है। अमायीसम्यग्‌दृष्टि उपपन्न देव भावितात्मा अनगारको देखकर उन्हें वन्दन-नमस्कार करते है तथा पर्युपासना करते है। अतः वे भावितात्मा अनगारके मध्य होकर नहीं निकलते। यही वैमानिक तकके देवोंके लिये जानना चाहिये।

चउवीसदंडकीय जीव और विनय

(प्रश्नोत्तर नं० २३-२५)

(३५७) नैरयिकों में सत्कार, सम्मान, अभ्युत्थान, दोनों

हाथ जोड़ना, आसनाभिग्रह, आसनानुप्रदान, स्वागतार्थ सम्मुख गमन, बैठे हुए की सेवा, जाते हुए के पीछे जाना आदि विनय नहीं है।

असुरकुमारादि भवनवासियोंमें उपर्युक्त सर्व विनय है। नैरयिकोंकी तरह ही पृथ्वीकायिक से चतुरिन्द्रिय पर्यन्त जीवोंके सम्बन्धमे भी यही जानना चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यंच-योनिकोंमे विनय है परन्तु आसनाभिग्रह, आसनानुप्रदान आदि विनय नहीं है।

मनुष्य तथा वैमानिक-पर्यन्त देवोंमे असुरकुमारों की तरह जानना चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० २६-२९)

(३५९) अल्पऋद्धिसम्पन्न देव महर्द्धिसम्पन्न देवके मध्य होकर नहीं जाता, समानऋद्धिवाला देव समानऋद्धिवाले देवके मध्य होकर नहीं जाता परन्तु प्रमत्त हो तो जा सकता है। वह शस्त्र-प्रहार करके जाता है परन्तु प्रहार किये विना नहीं जाता।

इस सम्बन्धमे [1]दशम शतकके अनुसार सर्व वर्णन यहाँ भी जानना चाहिये।

नैरयिक और वेदनापरिणाम

(प्रश्नोत्तर नं० ३०)

(३६०) रत्नप्रभाभूमिके नैरयिक अनिष्ट यावत् अप्रिय पुद्गल-परिणाम का अनुभव करते है। इसीप्रकार सातवीं भूमि तक जानना चाहिये। वेदनापरिणाम तथा परिग्रहसंज्ञा-

---

[1] देखो पृष्ठ संख्या ३५५ क्रमसंख्या ३०२।

परिणामका भी पुद्गलपरिणामकी तरह अनिष्ट व अप्रिय अनुभव करते हैं। विशेष जीवाभिगमसूत्रके नैरयिक उद्देशकके अनुसार जानना चाहिये।

चतुर्थ उद्देशक

चतुर्थ उद्देशकमें वर्णित विषय

[परमाणु स्कंध और रूप-परिणमन, जीव और सुख, परमाणु पुद्गल और शाश्वतता, जीव-परिणाम। प्रश्नोत्तर संख्या ७]

(प्रश्नोत्तर नं० ३१-३३)

(३६१) पुद्गल (परमाणु या स्कंध) अनन्त शाश्वत अतीतकालमें एक समय तक रूक्षस्पर्शयुक्त, एक समय तक स्निग्धस्पर्शयुक्त और एक समय तक स्निग्ध और रूक्ष-स्पर्शयुक्त था। पूर्वकरण—प्रयोगकरण और विस्रसाकरणसे अनेक वर्णों और अनेक रूपयुक्त परिणामों में परिणत हुआ है। अनेक वर्णादि परिणाम क्षीण होनेपर प्रत्येक पुद्गल एक रूपयुक्त था।

अतीत की तरह ही शाश्वत वर्तमान और अनागत कालके लिये भी जानना चाहिये। पुद्गलकी तरह ही पुद्गलस्कंधके विषयमें भी जानना चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० ३४)

(३६२) यह जीव अनन्त और शाश्वत अतीत कालमें एक समय अदुखी - सुखी और एक समय दुःखी या सुखी था। पूर्वकरण—काल-स्वभावादि कारणोंसे शुभाशुभ कर्म-बन्धनकी हेतुभूत क्रियाओंसे, अनेक प्रकारके सुख-दुखात्मक भावों तथा अनेक रूपवाले परिणामों में परिणत हुआ है। तदनन्तर

वेदनयोग्य ज्ञानावरणादि कर्मोंकी निर्जरा होनेके पश्चात् एक भाववाला तथा एक रूपवाला हुआ है।

इसीप्रकार शाश्वत वर्तमान तथा अनन्त शाश्वत भविष्य-कालके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये।

परमाणु और शाश्वतता

(प्रश्नोत्तर न० ३५-३६)

(३६३) परमाणु पुद्गल कदाचित शाश्वत है और कदाचित अशाश्वत है। द्रव्यरूपसे परमाणु पुद्गल शाश्वत है और वर्ण-पर्यायकी अपेक्षासे अशाश्वत है।

द्रव्यापेक्षा से परमाणु पुद्गल अचरम है तथा क्षेत्रादि की अपेक्षासे कदाचित् चरम और कदाचित् अचरम है। काल और भावकी अपेक्षासे भी कदाचित् चरम और कदाचित् अचरम है।

(प्रश्नोत्तर न० ३७)

(३६४) दो प्रकारके परिणाम है—जीव परिणाम और अजीव परिणाम। यहाँ प्रज्ञापनासूत्र का सम्पूर्ण परिणामपद जानना चाहिये।

पंचम उद्देशक

पचम उद्देशकमें वर्णित विषय

[विग्रहगति—समापन्न नैरयिक और अग्निकाय—चउवीस दंडकीय जीव, नैरयिक और उनकी अनुभूति—चउवीस दडकीय जीव, महर्द्धिक देव और समुल्लंघन। प्रश्नोत्तर संख्या १३]

विग्रहगति और चउवीस दंडकीय जीव

(प्रश्नोत्तर नं० ३८-४०)

(३६५) कोई नैरयिक अग्निकायके मध्य होकर जाते हैं और कोई नहीं। नैरयिक दो प्रकारके है—विग्रहगतिसमापन्न और अविग्रहगतिसमापन्न। विग्रहगतिसमापन्न नैरयिक अग्निकायके मध्य होकर जा सकते है और अविग्रहगतिसमापन्न नैरयिक नहीं जाते हैं। [1]अग्निके मध्य जानेपर अग्निरूपीशस्त्रका उनपर प्रभाव नहीं होता अतः वे नहीं जलते है।

नैरयिकोंकी तरह असुरकुमारोंके लिये भी जानना चाहिये। विशेषान्तर यह है कि अविग्रहगतिसमापन्न असुरकुमारोंमें भी कोई अग्निके मध्य होकर जाता है और कोई नहीं। अग्निके मध्य जानेपर वे नहीं जलते हैं।

इसीप्रकार स्तनितकुमारों तक जानना चाहिये।

एकेन्द्रिय जीवोंके लिये नैरयिकोंकी तरह जानना चाहिये। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंके लिये असुरकुमारोंकी तरह जानना चाहिये। विशेषान्तर यह कि द्वीन्द्रिय जीव अग्निके मध्य होकर जानेपर जलते है।

विग्रहगतिसमापन्न पंचेंद्रिय तिर्यंचयोनिकोंके संबंधमें नैरयिकोंकी तरह जानना चाहिये। अविग्रहगतिसमापन्न पंचेंद्रिय तिर्यंचयोनिक दो प्रकारके है :—ऋद्धिप्राप्त और अऋद्धिप्राप्त

१—विग्रहगतियुक्त जीव कार्मण शरीरयुक्त होता है। कार्मण शरीर अत्यन्त सूक्ष्म होता है अतः अग्नि आदि शस्त्रोका इसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

(वैक्रियलब्धिरहित)। ऋद्धिप्राप्त तिर्यंचयोनिकोंमें भी कोई अग्निके मध्य होकर जाता है और कोई नहीं। जो जाता है वह नहीं जलता है। अऋद्धिप्राप्त तिर्यंचपंचेंद्रिययोनिकोंमें भी कोई अग्निके मध्य होकर जाता है और कोई नहीं। इनमे जो जाता है वह जलता है। पंचेंद्रिय तिर्यंचयोनिकोंकी तरह ही मनुष्योंके लिये जानना चाहिये।

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकोंके लिये असुरकुमारों की तरह जानना चाहिये।

चउवीस दंडकीय जीव और अनुभव

(३६६) नैरयिक निम्न दश बातोंका अनुभव करते हैं :—(१) अनिष्ट शब्द, (२) अनिष्ट रूप, (३) अनिष्ट गंध, (४) अनिष्ट रस, (५) अनिष्ट स्पर्श, (६) अनिष्ट गति, (७) अनिष्ट स्थिति, (८) अनिष्ट लावण्य, (९) अनिष्ट यशःकीर्ति, (१०) अनिष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, और पुरुषाकार पराक्रम।

असुरकुमार निम्न दश बातोंका अनुभव करते हैं :—(१) इष्ट शब्द, (२) इष्ट रूप, (३) इष्ट गंध, (४) इष्ट रस, (५) इष्ट स्पर्श, (६) इष्ट गति, (७) इष्ट स्थिति, (८) इष्ट लावण्य, (९) इष्ट यशकीर्ति और (१०) इष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषाकार पराक्रम।

इसीप्रकार स्तनितकुमार तक जानना चाहिये।

पृथ्वीकायिक निम्न छः बातोंका अनुभव करते है :—(१) इष्टानिष्ट स्पर्श, (२) इष्टानिष्ट गति, (३) इष्टानिष्ट स्थिति, (४) इष्टानिष्ट लावण्य, (५) इष्टानिष्ट यशःकीर्ति, (६) इष्टानिष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषाकार-पराक्रम।

द्वीन्द्रिय जीव निम्न सात बातोंका अनुभव करते है :—
एकेन्द्रियोंकीछ और सातवीं इष्टानिष्ट रस।
त्रीन्द्रिय जीव निम्न आठ बातोंका अनुभव करते है :—
इष्टानिष्ट गंध और द्वीद्रियकी सात।
चतुरिन्द्रिय जीव निम्न नव बातोंका अनुभव करते हैं :—
इष्टानिष्ट रूप और त्रीन्द्रियोंकी आठ।
पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक निम्न दश बातोंका अनुभव करते है :—
इष्टानिष्ट शब्द और चतुरिन्द्रियोंकी नव।
इसीप्रकार मनुष्यके दश स्थान जानने चाहिये।

असुरकुमारोंकी तरह वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों के अनुभव जानने चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० ४८-४९)

(३६७) महान् ऋद्धिसम्पन्न यावत् महान् सुख सम्पन्न देव बाह्य पुद्गलोंके ग्रहण किये बिना तिर्यक् पर्वत अथवा तिर्यक् प्राकारका उल्लघन नहीं कर सकता परन्तु बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण कर कर सकता है।

भोगनेकी अभिलाषा करता है तब वह एक वृत्ताकार स्थान विकुर्वित करता है।

(यहां वृत्तकी लंबाई-चौड़ाई, भूमि-भाग, प्रासाद, प्रासादावतसक, शैय्या आदिका वर्णन जाननेका निर्देश किया गया है)

यहा शक्र अपने परिवार, आठ अग्रमहिषियों व अनीकोंके साथ विविध नाट्य-गीतोंके साथ दिव्य भोग भोगता है।

शक्रेन्द्रकी तरह ही ईशानेन्द्र, सनत्कुमार और देवेन्द्र देवराज अच्युत पर्यन्त जानना चाहिये। शक्रेन्द्रकी तरह ये शैय्या विकुर्वण न कर सिंहासन विकुर्वण करते हैं। जिसके जितना परिवार है उतना परिवार जानना चाहिये। भवनोंकी ऊँचाई तथा प्रत्येकके सामानिक देवोकी संख्या भी जाननी चाहिये।

सप्तम उद्देशक

सप्तम उद्देशकमे वर्णित विषय

[अनुत्तरोपपातिक देव और मनोद्रव्य-वर्गणायें, तुल्य और उसके प्रकार, लवसत्तम देव, अनुत्तरोपपातिकदेव। प्रश्नोत्तर संख्या ९]

(प्रश्नोत्तर नं० ५४)

(३७०) [१]अनुत्तरोपपातिक देवोंने मनोद्रव्यकी अनन्त वर्गणाएँ लब्ध की है, प्राप्त की हैं तथा परिज्याप्त की है अतः वे "हम भविष्यकालमें तुल्य होंगें" जैसा हम जानते तथा देखते है; वैसा ही वे भी जानते तथा देखते हैं।

१—गौतम स्वामी श्रमण भगवान् महावीरसे कहते है—"मैं भविष्यकालमे आपके तुल्य होऊँगा" यह आप केवलज्ञानसे जानते हैं तथा मैं आपके उपदेशसे जानता है। उसीप्रकार क्या अनुत्तरोपपातिक देव भी जानते हैं तथा देखते हैं? इसी प्रश्नका यह प्रत्युत्तर है।

तुल्य

(प्रश्नोत्तर नं० ५५-६१)

(३७१) छः प्रकारके तुल्य है :—

(१) द्रव्यतुल्य, (२) क्षेत्रतुल्य, (३) कालतुल्य, (४) भवतुल्य, (५) भावतुल्य और (६) संस्थानतुल्य।

द्रव्यतुल्य—एक परमाणु पुद्गल दूसरे परमाणु पुद्गलके साथमें द्रव्यापेक्षासे तुल्य है परन्तु परमाणु पुद्गलके अतिरिक्त अन्य पदार्थोंके साथ द्रव्यसे तुल्य नहीं है। इसीप्रकार द्विप्रदेशिक स्कंध द्विप्रदेशिक स्कंधके अतिरिक्त अन्य पदार्थोंके साथ द्रव्यसे तुल्य नहीं है। इसीप्रकार संख्येय, असंख्येय और अनन्तप्रदेशिक स्कंधोंके सम्बन्धमें जानना चाहिये।

क्षेत्रतुल्य – आकाशके एक प्रदेशावगाढ—एक प्रदेशमें स्थित, पुद्गल द्रव्य एक प्रदेस्थित पुद्गलद्रव्यके साथ क्षेत्रतुल्य है परन्तु एक प्रदेशस्थित पुद्गल द्रव्योंके अतिरिक्त द्रव्योंके साथ क्षेत्रतुल्य नही है। इसीप्रकार दशप्रदेशावगाढ, संख्येयप्रदेशावगाढ और असंख्येय प्रदेशागाढ स्कंधोके सम्बन्धमे भी जानना चाहिये।

कालतुल्य—कालापेक्षासे एक समयकी स्थितिवाला पुद्गल द्रव्य एक समयकी स्थितिवाले पुद्गलके साथ तुल्य है परन्तु एक समयकी स्थितिवाले द्रव्यके अतिरिक्त स्थितिवाले द्रव्योंके साथ तुल्य नहीं है। इसीप्रकार दश समयकी स्थितिवाले, संख्येय समयकी स्थितिवाले और असंख्येय समयकी स्थितिवाले द्रव्योंके लिये भी जानना चाहिये।

भवतुल्य—नैरयिक जीव नैरयिक जीवोंके साथ भवरूपमें तुल्य हैं और नैरयिकोंके अतिरिक्त अन्य जीवोंके साथ भवरूपमें

तुल्य नहीं हैं। इसीप्रकार तिर्यंचयोनिक, मनुष्य और देवताओंके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये।

भावतुल्य—एकगुण कृष्णवर्ण पुद्गल द्रव्य एकगुण कृष्णवर्ण पुद्गल द्रव्यके साथमें भावसे तुल्य है परन्तु एकगुण कृष्णवर्ण सिवाय अन्य पुद्गल द्रव्योंके साथ भावतुल्य नहीं है। इसी-प्रकार यावत् दशगुण कृष्णवर्ण संख्येयगुण कृष्णवर्ण और असंख्येयगुण कृष्णवर्ण पुद्गल द्रव्योंके सम्बन्धमे जानना चाहिये।

कृष्णवर्ण पुद्गलकी तरह ही नीले, लाल, पीले, और श्वेत वर्ण पुद्गलोंके सम्बन्धमें जानना चाहिये।

इसीप्रकार सुगन्धित, दुर्गन्धित यावत् मधुर द्रव्योंके संबन्धमें तथा कर्कश यावत् रूक्ष द्रव्योंके सम्बन्धमें जानना चाहिये।

[१]औदायिक भाव औदायिक भावके साथ भावसे तुल्य है परन्तु औदायिक भावके अतिरिक्त अन्य भावोंके साथ भावसे तुल्य नहीं है। इसीप्रकार औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक भावोंके सम्बन्धमें जानना चाहिये।

सानिपातिक (संयुक्त, अनेक भावोंसे संयुक्त) सानिपातिक भावके साथमें तुल्य है।

---

* १, औदायिक—कर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाला जीवका परिणाम, २, औपशमिक—कर्मोंके उपशमसे उत्पन्न होनेवाला आत्मपरिणाम, क्षायिक—कर्मोंके क्षयसे समुत्पन्न भाव, ४, क्षायोपशमिक—कर्मोंके क्षय तथा उपशमसे समुत्पन्न भाव, ५, पारिणामिक—अनादिकालिक स्वाभाविक परिणाम—६, सानिपातिक—औदायिकादि दो-तीन भावोके संयोगसे समुत्पन्न भाव।

(३७२) [1]संस्थानतुल्य—परिमंडलसंस्थान, परिमंडल संस्थानके साथ संस्थानकी अपेक्षासे तुल्य है परन्तु अन्य संस्थानोंके साथ संस्थानकी अपेक्षा तुल्य नहीं है। इसीप्रकार वृत्तसंस्थान, त्र्यस्र-संस्थान, चतुरस्रसंस्थान, आयतसंस्थान, समचतुरस्रसस्थान, न्यग्रोध परिमंडल यावत् हुंडसंस्थानके सम्बन्धमें जानना चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० ६२)

(३७३) भक्तप्रत्याख्यान (आहार-त्याग) करनेवाला अन-गार मूर्च्छित यावत् गृद्ध होकर प्रथम अहार करता है परन्तु तदनन्तर स्वभावसे मारणान्तिक समुद्घात करता है। पश्चात् अमूर्च्छित, अगृद्ध और अनासक्त होकर आहार करता है।

लवसत्तम देव

(प्रश्नोत्तर नं० ६३)

(३७४) लवसत्तमदेव निम्न कारणसे लवसत्तम कहे जाते हैं:

जिसप्रकार कोई युवक पुरुष जो शिल्पशास्त्रमें यावत् निपुण हैं, वह पके हुए, काटने योग्य, पीले पड़ेहुए, और पीले डंठल-वाले शालि, व्रीही, यव और जवजव (धान्यविशेष) को इकट्ठे कर तथा अपनी मुट्ठीमें पकड़कर "यह काटे" इसप्रकार नवीन

१—आकार विशेषको संस्थान कहते हैं। यह दो प्रकारका है जीव-सस्थान और अजीवसंस्थान। जीवसंस्थानके छः और अजीवसंस्थाके पांच भेद हैं। १, परिमंडलसंस्थान—चूडीके सदृश वृत्ताकार—गोल और मध्यमें पोला होता हैं। इसके घन और प्रतर दो भेद होते हैं। २, वृत्त—कुम्हारके चक्रके सदृश बाहरसे गोल और अन्दरसे भी पोलरहित। इसके भी घन और प्रतर दो भेद हैं। ३, त्र्यस्र—त्रिकोणाकार ४, चतुरस्र—चोकोण, आयत—लम्बा, समचतुरस्र—जिसके चारों कोनोंका अन्तर समान हो।

धार दिये हुए तीक्ष्ण हंसियेसे उनको सात लव जितने समयमें ही काट देता है इतना ही सात लव जितना जिन देवोंका यदि आयुष्य और होता तो वे उसी भवमें सिद्ध होते तथा सर्व दु:खोंका अन्त करते। इसप्रकारके देव इसीकारण लवसत्तम कहे जाते हैं।

अनुत्तरोपपातिक देव

(प्रश्नोत्तर नं० ६४-६५)

(३७५) अनुत्तरोपपातिक देवोंके पास अनुत्तर शब्द यावत् अनुत्तर स्पर्श होते हैं अतः वे अनुत्तरोपपातिक कहे जाते हैं।

एक श्रमण-निर्ग्रन्थ छट्ठभक्तके द्वारा जितने कर्म-क्षय करता है उतने कर्म शेष रहनेसे अनुत्तरोपपातिक देव अनुत्तरोपपातिक देवरूपमें उत्पन्न होते हैं।

चौदहवां शतक

अष्टम-नवम-दशम उद्देशक

अष्टम उद्देशक

अष्टम उद्देशकमें वर्णित विषय

[भूमियां और उनका परस्पर व्यवधान, अव्याबाध देव, जृम्भक देव। प्रश्नोत्तर संख्या १७]

भूमियां और उनका परस्पर व्यवधान

(प्रश्नोत्तर नं० ६६-७६)

(३७६) रत्नप्रभापृथ्वी और शर्कराप्रभा पृथ्वीमें असंख्येय लाख योजनका व्यवधान—अन्तर, है। इसीप्रकार सप्तमभूमि पर्यन्त अन्तर जानना चाहिये। सातवीं पृथ्वी और अलोकके मध्य व्यवधान असंख्येय लाख योजन है। रत्नप्रभा पृथ्वी और ज्योतिष्कोंके मध्य अबाधित अन्तर—व्यवधान, सात सो नव्वे योजन है।

ज्योतिष्क और सौधर्म—ईशानकल्पका अबाधित अन्तर असंख्येय लाख योजन है। इसीप्रकार सौधर्म-ईशान और सनत्कुमार-माहेन्द्र और ब्रह्मलोक और लांतक, लातक और महाशुक, महाशुक्र और सहस्रार, सहस्रार और आनत-प्राणत, आनत-प्राणत और आरण-अच्युतकल्प, आरण-अच्युत-कल्प और ग्रैवेयक,ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानका अबाधित —व्यवधान, असंख्येय लाख योजन है।

अनुत्तर विमान और ईशत्प्राग्भारा पृथ्वीका अबाधित अन्तर बारह योजन है। ईशत्प्राग्भारा पृथ्वी और अलोकका अबाधित अन्तर कुछ न्यून एक योजन है।

अव्याबाध देव

(प्रश्नोत्तर नं० ७७)

(३७७) अव्याबाध देव अव्याबाध—पीड़ा उत्पन्न नहीं करने वाले, कहे जाते है। एक-एक अव्याबाध देव एक-एक व्यक्ति की एक-एक नैत्र-पलक पर दिव्य देवद्युति व देवानुभावके साथ बत्तीस प्रकारके दिव्य नाट्य दिखा सकता है। ऐसा करते हुए वह उस पुरुषको स्वल्प भी दुख नहीं होने देता और न किसी प्रकारका छविच्छेद ही होने देता है। इसप्रकार सूक्ष्मतापूर्वक कार्य करनेके कारण ये अव्याबाध देव कहे जाते हैं।

(प्रश्नोत्तर नं० ७८)

(३७८)देवराज शक्र किसी पुरुषके मस्तकको तलवारसे काट-कर कमडलमें भर सकता है। वह शक्र उस मस्तकके टुकड़े-टुकड़े कर व कूट-कूटकर चूर्ण बनाकर कमंडलमें डालता है और तुरन्त ही सर्व अवयवोंको एकत्रित कर लेता है। इसप्रकार इतने सूक्ष्म टुकड़े तथा अवयवोंका छेदन करनेपर भी उस पुरुषको किंचित् भी पीड़ा उत्पन्न नहीं होने देता।

जृम्भक देव

(प्रश्नोत्तर नं० ७९-८२)

(३७९) जृम्भक देव—स्वेच्छाचारी हैं। ये सदैव प्रमोदयुक्त अत्यन्त क्रीड़ाशील, रतियुक्त और कुशीलरत रहते हैं। जिस

व्यक्तिपर ये देव क्रुद्ध हो जाते है उसका ये अपयश करते हैं तथा जो इनको तुष्ट रखता है उसको ये यश प्रदान करते है।

जृम्भकदेव दश प्रकारके है :—(१) अन्नजृम्भक, (२) पाण-जृम्भक, (३) वस्त्रजृम्भक, (४) गृहजृम्भक, (५) शयनजृम्भक, (६) पुष्पजृम्भक, (७) फलजृम्भक, (८) पुष्प-फलजृम्भक (९), विद्याजृम्भक और (१०) अव्यक्तजृम्भक।

दीर्घ वैताढ्य, चित्र, विचित्र, यमक, समक और कांचन पर्वतोंमें जृम्भक देव रहते हैं। इनकी स्थिति एक पल्योपम है।

नववां उद्देशक

नवम उद्देशकमें वर्णित विषय

[भावितात्मा अनागार और कर्म-लेश्या, लेश्यापुद्गल, आत्त-अनात्त पुद्गल, महर्द्धिक देव और भाषा, सूर्य, श्रमण-निर्ग्रन्थका सुख। प्रश्नोत्तर सख्या १२]

(प्रश्नोत्तर नं० ८३)

(३८०) भावितात्मा अनगार यद्यपि अपनी कर्मलेश्याको जानता अथवा देखता नहीं है फिर भी अपनी सशरीर और कर्मलेश्यायुक्त आत्माको अवश्य जानता तथा देखता है।

(प्रश्नोत्तर नं० ८४-८५)

(३८१) रूपी कर्मयोग्य कृष्णादि लेश्याके पुद्गल प्रकाशित होते हैं। सूर्य और चन्द्रके विमानोंसे निकलते हुए सर्व रूपी और सलेश्य पुद्गल अवभासित और प्रकाशित होते हैं।

(प्रश्नोत्तर न० ८६-८९)

(३८२) नैरयिकोंको आत्त—सुखकारक, पुद्गल नहीं हैं परन्तु अनात्त—दुखकारक, पुद्गल हैं। असुरकुमारोंको आत्त पुद्गल

होते है। इसप्रकार स्तनितकुमार तक जानना चाहिये। पृथ्वीकायिकसे मनुष्य-पर्यन्त जीवोंको आत्त और अनात्त दोनों पुद्गल होते है। वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकोंके सुखकारक पुद्गल होते हैं दुखकारक नहीं।

(प्रश्नोत्तर नं० ९०-९१)

नैरयिकसे वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवोंको इष्ट, कांत, प्रिय और मनोज्ञ पुद्गल होते है या नहीं; इस सम्बन्धमें आत्त और अनात्त पुद्गलों की तरह ही जानना चाहिये।

(३८३) महर्द्धिक यावत् महासुख-सम्पन्न देव हजार रूपोंको विकुर्वित कर हजार भाषायें बोलनेमें समर्थ है परन्तु वह एक भाषा ही होती है (बोली जाती हुई भाषा) हजार भापाएं नहीं।

सूर्य

(प्रश्नोत्तर नं० ९२-९३)

(३८४, सूर्य एक शुभ पदार्थ है और इसका अर्थ भी शुभ है। सूर्यप्रभा, छाया, लेश्या—प्रकाशके पुद्गलसमूह भी शुभ पदार्थ है और प्रत्यकके का अर्थ भी शुभ है।

श्रमण-निर्ग्रन्थका सुख

(प्रश्नोत्तर नं० ९४)

(३८५) जो श्रमण-निर्ग्रन्थ आर्यत्वरूपमें—पापरहित हो, विचरण करते है उनका सुख इसप्रकार है :—

एक मासकी दीक्षा-पर्यायवाला श्रमण-निर्ग्रन्थ वाणव्यन्तर देवोंकी तेजोलेश्या—सुखको, अतिक्रमण करता है। दो मासकी दीक्षा-पर्यायवाला श्रमण असुरेन्द्रके अतिरिक्त भवनवासी देवों

की तेजोलेश्याको, तीन मासकी दीक्षा-पर्यायवाला असुरकुमारों की तेजोलेश्याको, चार मासकी दीक्षा-पर्यायवाला ग्रहगण-नक्षत्र और ताराख्प ज्योतिष्क देवोंकी तेजोलेश्याको, पांच मासकी दीक्षा-पर्यायवाला ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्क राज सूर्य और चन्द्र की तेजोलेश्याको, छ:मास की दीक्षा पर्यायवाला सौधर्म और ईशानवासी देवोंकी तेजोलेश्या को, सात मासकी दीक्षा-पर्याय-वाला सनत्कुमार और माहेन्द्र देवकी तेजोलेश्या को, आठ मासकी दीक्षा-पर्यायवाला ब्रह्मलोक और लान्तक देवोंकी तेजोलेश्याको, नव मासकी दीक्षा पर्यायवाला महाशुक्र और सहस्रार देवोंकी तेजोलेश्या को, दश मासकी दीक्षा-पर्यायवाला आनत-प्राणत, आरण और अच्युत देवोंकी तेजोलेश्या को, ग्यारह मासकी दीक्षा-पर्यायवाला ग्रैवेयक देवोंकी तेजोलेश्याको और बारह मासकी दीक्षा-पर्यायवाला श्रमण-निर्ग्रन्थ अनुत्तरो पपातिक देवोंकी तेजोलेश्या-सुखको अतिक्रमण करता है। पश्चात् शुद्ध और शुद्धतर परिणामयुक्त होकर सिद्ध होता है तथा सर्व दुखोंका अन्त करता है।

दशम उद्देशक

दशम शतक में वर्णित विषय

[केवलज्ञानी और सिद्ध—अन्तर। प्रश्नोत्तर संख्या १२]

केवलज्ञानी व सिद्ध

(प्रश्नोत्तर नं० ९५-१०७)

(३८६) केवलज्ञानी छद्मस्थको जानते अथवा देखते हैं। केवल-
तरह ही सिद्ध भी छद्मस्थको जानते तथा देखते हैं।

केवलज्ञानी आधोवधिक—नियत क्षेत्र-विषयक अवधिज्ञानी को, परमावधिज्ञानीको, केवलज्ञानीको तथा सिद्धोंको भी जानते तथा देखते हैं। केवलज्ञानीकी तरह सिद्ध भी इनको जानते तथा देखते हैं। केवलज्ञानी बोलते हैं तथा प्रश्नोत्तर भी कहते हैं। केवलज्ञानी की तरह सिद्ध न बोलते हैं और न प्रश्नोत्तर ही कहते है। केवलज्ञानी खड़े होना, चलना आदि क्रियाओं, बल, वीर्य और पुरुषाकार-पराक्रम सहित होते हैं परन्तु सिद्ध उत्थान तथा पुरुषाकार-पराक्रम रहित होते है। अतः सिद्ध केवलज्ञानी की तरह प्रश्नोत्तर नहीं कहते हैं।

केवलज्ञानी अपनी आखको खोलते हैं तथा बन्द करते है। इसीप्रकार वे अपने शरीरको संकुचित करते है, प्रसारित करते हैं, खड़े रहते है, बैठते है, लेटते हैं तथा शैय्या (वसति) व नैषेधिकी क्रिया करते है। केवलज्ञानी रत्नप्रभाभूमिको "यह रत्नप्रभाभूमि है, शर्कराप्रभा भूमिको, यह शर्कराप्रभा भूमि है" इस तरह सप्त ही नर्कभूमियोंको जानते है तथा देखते हैं।

नैरयिक भूमियोंकी तरह ही वे सौधर्मकल्प, अच्युतकल्प पर्यन्त "यह सौधर्म है, यह ग्रैवेयक है", इस तरह जानते तथा देखते हैं।

ईषत्प्राग्भरा पृथ्वीको भी वे इसी तरह "यह ईषत्प्राग्भरा पृथ्वी है" जानते तथा देखते है।

केवलज्ञानी परमाणु पुद्गलको "यह परमाणु पुद्गल है", इस तरह जानते तथा देखते है। परमाणु की ही तरह वे द्विप्रदेशिक तीनप्रदेशिक यावत् अनन्त प्रदेशिक स्कन्धोंको जानते तथा देखते है।

पन्द्रहवां शतक

[प्रस्तुत शतकमें गोशालकके सम्बन्धमें विस्तृत वर्णन है परन्तु सैद्धान्तिक चर्चा नहीं। अतः इस सम्पूर्ण शतकका अनुवाद परिशिष्ट चारित्र-खण्डमें दिया गया है। भगवान् महावीर तथा उनकी समकालीन परिस्थितियों से सम्बन्धित यह शतक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। रागद्वेषविहीन व्यक्ति पर भी व्यक्ति आघात कर सकता है। महावीर पर गोशालक द्वारा तेजोलेश्याका प्रहार इसी बातका सूचक है। इस घटनाका बहुत सुन्दर और रोचक वर्णन किया गया है। इसमें ऐसे भी स्थल हैं जो चर्चास्पद व मननीय हैं।]

सोलहवां शतक

प्रथम उद्देशक

प्रथम उद्देशकमें वर्णित विषय

[एरणपर उत्पन्न वायुकाय, सिगडी और अग्निकायिक जीव, लुहार और क्रिया, अधिकरण और अधिकरणी। प्रश्नोत्तर संख्या १२]

(प्रश्नोत्तर नं० १)

(३८७) अधिकरणी (एरण) पर (हथोड़ा मारते हुए) वायुकाय उत्पन्न होता है। [1]वायुकाय के जीव अन्य पदार्थोंका संस्पर्श होनेपर ही मरते हैं परन्तु स्पर्श हुए विना नहीं। ये जीव मरकर भवान्तरमें शरीर रहित नहीं जाते। विशेष स्कंदक उद्देशकके अनुसार जानना चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० २)

(३८८) सिगड़ीमें अग्निकायके जीव जघन्य एक अन्तर्-मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन रात्रीदिवस तक रहते हैं। वहां अन्य वायुकायिक जीव भी उत्पन्न होते हैं। क्योंकि वायुके विना अग्नि प्रज्वलित नहीं होती।

क्रिया

(प्रश्नोत्तर नं० ३-४)

(३८९) लोहा तपानेकी भट्टीमें लोहेकी संडासियोंसे लोहे

१—पृथ्वीकायिक आदि स्थावर जातीय जीवोंका जब विजातीय जीव अथवा विजातीय पदार्थोंमें संघर्ष होता है तब उनके शरीरकी घात होती है।

को ऊपर-नीचे करनेवाले व्यक्तिको जबतक वह कार्य करता है तबतक प्राणातिपात क्रिया आदि पांचों ही क्रियाये लगती हैं। जिन जीवोंके शरीरों-द्वारा लोहा, लोहेकी भट्टी, संडासिया, अगारे, चिमटे, अंगाराकर्षणी और धमक बनते हैं उनको भी पांचों क्रियायें लगती हैं।

लोह-भट्टीमेंसे लोहेकी संडासीके द्वारा लोहेको पकड़कर एरणपर रखते और लेते व्यक्तिको तबतक पाचों ही क्रियायें लगती हैं जबतक वह यह कार्य करता है और जिन जीवोंके शरीरोंसे लोहा, संडासियें, छड़, हथोड़ा, एरण, एरणका लक्कड़, गर्म लोहेको ठंडा करनेकी कुंडी और अधिकरणशाला—लुहारका कारखाना, बनी है उनको भी पांचों क्रियाये लगती हैं।

अधिकरणी और अधिकरण

(प्रश्नोत्तर नं० ५-१७)

(३६०) अविरति—ममत्वकी अपेक्षासे जीव [१]अधिकरणी भी है और अधिकरण भी है। यह बात वैमानिक-पर्यन्त प्रत्येक जीव तथा सर्व जीवोंके लिये जाननी चाहिये।

अविरतिकी अपेक्षासे जीव [२]साधिकरणी है परन्तु निरधि-

१—हिंसादिके कारणभूत पदार्थोंको अधिकरण कहते हैं। अधिकरण के दो भेद हैं—आन्तरिक और बाह्य। शरीर, इन्द्रिय, योग आदि आन्तरिक अधिकरण हैं और तलवार आदि शस्त्र बाह्य अधिकरण हैं। सशरीरी जीव शरीररूपी अधिकरण रखनेकी अपेक्षा अधिकरणी और शरीरादिसे अभिन्न होनेकी अपेक्षासे अधिकरण हैं।

२—शरीररूपी शस्त्रको सदैव साथमें रखनेके कारण जीव साधिकरणी है क्योंकि तलवार आदि बाह्य शस्त्र व्यक्ति सदैव साथमें नहीं रखे जाते।

करणी नहीं। इसप्रकार वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना चाहिये।

अविरतिकी अपेक्षासे जीव आत्माधिकरणी, पराधिकरणी और तदुभयाधिकरणी हैं। इसीप्रकार वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवों के लिये जानना चाहिये।

अविरतिकी अपेक्षासे जीवोंका अधिकरण [1]आत्म-प्रयोगसे, परप्रयोगसे और तदुभयप्रयोगसे भी होता है। इसप्रकार वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके संबधमें जानना चाहिये।

अविरतिकी अपेक्षासे औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण शरीर बाधते हुए जीव अधिकरणी भी हैं और अधिकरण भी है। जिन जीवोंके जो-जो शरीर है, उन जीवोंके लिये उन २ शरीरोंकी अपेक्षासे जानना चाहिये।

तैजस और कार्मण शरीर सर्व सांसारिक जीवोंके होते है।

प्रमादकी अपेक्षासे आहारक शरीर बांधता हुआ जीव अधिकरणी भी है और अधिकरण भी है।

औदारिकादि शरीरोंकी तरह ही श्रोत्रेन्द्रिय आदि पांच इन्द्रियों और तीन योगोंके संबंधमें जानना चाहिये। जिनके जितनी इन्द्रियां और जितने योग हैं, उनके संबंधमें उन इन्द्रियों या योगोंकी अपेक्षासे जानना चाहिये।

इसप्रकार वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके संबंधमें जानना चाहिये।

---

१ हिंसादि पापकार्योंमें प्रवृत्त मन आदिके व्यापारसे समुत्पन्न अधिकरण।

सोलहवां शतक

द्वितीय-तृतीय उद्देशक

द्वितीय उद्देशक

द्वितीय उद्देशकमें वर्णित विषय

[शोक और जरा—चउवीस दंडकीय जीवोंकी अपेक्षासे विचार, अवग्रह, शक्रेन्द्र और उसकी भाषा, कर्म चैतन्यकृत हैं। प्रश्नोत्तर संख्या ८]

शोक और जरा

(प्रश्नोत्तर नं० १८-१९

(३६१) जीवोंको जरा—वृद्धावस्था भी होती है और शोक भी होता है। जिन जीवोंको शारीरिक वेदना होती है उन्हें जरा—वृद्धावस्था होती है और जिन जीवोंके मानसिक वेदना होती है उन्हें शोक होता है।

नैरयिकसे स्तनितकुमार-पर्यन्त जीवोंको शारीरिक और मानसिक दोनों वेदनायें होती हैं।

पृथ्वीकायिक जीवोंको जरा होती है परन्तु शोक नहीं होता। क्योंकि वे शारीरिक वेदना अनुभव करते हैं परन्तु मानसिक वेदनाका अनुभव नहीं करते। इसीप्रकार चतुरिन्द्रिय-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना चाहिये।

वैमानिक-पर्यन्त शेष जीवोंके लिये सामान्य जीवोंकी तरह जानना चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० २०-२१)

(३६२) [1]अवग्रह *पाँच प्रकारका है :—देवेन्द्रावग्रह, राजावग्रह, गृहपति अवग्रह, सागरिकावग्रह और साधर्मिकावग्रह। मैं महावीर (विचरनेवाले निर्ग्रन्थों) अवग्रहकी—आज्ञा देता हूं।

(प्रश्नोत्तर नं० २२-२५)

(३६३) [2]देवेन्द्र देवराज शक्र सत्यवादी है परन्तु मिथ्यावादी नहीं। वह सत्य भाषा, यावत् असत्यामृषा भाषा भी बोलता है। वह सावद्य और निरवद्य दोनों भाषाये बोलता है। जब वह सूक्ष्मकाय—मुख ढके विना बोलता है तब सावद्य भाषा बोलता है और जब मुख ढक कर बोलता है तब निरवद्य भाषा बोलता है। देवेन्द्र देवराज शक्र भवसिद्धिक या अभवसिद्धिक अथवा सम्यग्दृष्टि है; इस सम्बन्धमें तृतीय शतक के प्रथम उद्देश्यकमें जिसप्रकार सनत्कुमारके लिये कहा गया है, उसीप्रकार यहा भी जानना चाहिये।

(प्रश्नोत्तर न० २६)

(३६४) जीवोंके कर्म चैतन्यकृत होते है परन्तु अचैतन्यकृत नहीं। क्योंकि जीवोंके द्वारा ही आहाररूपमें, शरीररूपमें और कलेवररूपमें उपचित किये गये पुद्गल उसी रूपमें परिणत होते है। ये पुद्गल दुःस्थानरूपमे, दुःशय्यारूपमें, दुर्निषद्यारूपमें

* देवेन्द्र शक्रेन्द्र द्वारा पूछे गये प्रश्न।

१—स्वामित्वको अवग्रह कहते हैं। देवेन्द्रो द्वारा अपने २ भागपर आधिपत्य देवेन्द्रावग्रह, चक्रवर्तियोंका अधीन क्षेत्रोंमे आधिपत्य—राजावग्रह, ३, मांडलिक राजाका अपने राज्यमे आधिपत्य गृहपति अवग्रह ४, गृहस्थका अपने घर, कुटम्ब आदि पर आधिपत्य सागरिकावग्रह, ५, समान धर्मवाले साधुओंका अधिपत्य साधर्मिकावग्रह। २ गौतम प्रश्न।

परिणत होते हैं। आतंकरूपमे, संकल्परूपमें और मरणान्त रूपमें परिणत हो ये जीव-वधके कारण बनते हैं। अतः कर्म-पुद्गल अचैतन्यकृत नहीं है।

इसीप्रकार नैरयिकसे लेकर वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिए जानना चाहिये।

तृतीय उद्देशक

तृतीय उद्देशकमें वर्णित विषय

[ज्ञानावरणीय कर्म-वेदन और अन्य कर्म-प्रकृतिया, वैद्य और क्रिया। प्रश्नोत्तर संख्या ३]

(प्रश्नोत्तर नं० २७-२८)

(२९५) ज्ञानावरणीय कर्म-वेदन करताहुआ जीव अष्ट-कर्म-प्रकृतिया वेदन करता है। इस संबंधमें प्रज्ञापनासूत्रमें कथित 'वेदावेद' 'वेदावंध' बंधावेद, और बंधावंध नामक उद्देशक जानने चाहिये। इसीप्रकार वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना।

वैद्य और क्रिया

(प्रश्नोत्तर नं० २९)

(२९६) निरन्तर छट्ठतपके साथ आतापना लेते हुए भावितात्मा अनगारको दिवसके पूर्वभागमें अपने हाथ पांव यावत् उरु आदि संकुचित या प्रसारित करने नहीं कल्पते है परन्तु पश्चिमार्ध भागमें कल्पते है। यदि (कायोत्सर्गमें स्थित) अनगारके (नासिकासे) अर्श लटकते हों और उन अर्शोको कोई वैद्य देखे। यदि वह अर्श काटनेके लिये उस ऋषिको भूमि पर सुलाकर उसके अर्श काट देता है तो उस वैद्यको क्रिया (शुभ) लगती है। जिसके अर्श काटे जाते हैं उसको धर्मान्तरायके अतिरिक्त अन्य क्रिया नहीं लगती।

सोलहवां शतक

चतुर्थ उद्देशक

चतुर्थ उद्देशकमें वर्णित विषय

[श्रमण-निर्ग्रन्थ और उसकी निर्जरा—उदाहरण तथा विवेचन। प्रश्नोत्तर सख्या ६]

श्रमण-निर्ग्रन्थ और निर्जरा

(प्रश्नोत्तर नं० ३०-३५)

(३६७) अन्नग्लायक श्रमण जितनी निर्जरा करता है उतनी नैरयिक जीव एक वर्पमें, अनेक वर्पमें या सो वर्षमें करते हों; यह वात नहीं। इसीप्रकार चार भक्त (उपवास) करनेवाला श्रमण-निर्ग्रन्थ या छः भक्त करनेवाला श्रमण-निर्ग्रन्थ, अथवा अष्टभक्त करनेवाला श्रमण-निर्ग्रन्थ, अथवा दशभक्त करनेवाला श्रमण-निर्ग्रन्थ जितने कर्मोंकी निर्जरा करता है उतनी नैरयिक जीव हजार, अनेक हजार, एक लाख, अनेक लाख, एक करोड़, अनेक करोड़ या कोटिकोट्य वर्षमें करते हों, यह भी उपयुक्त नहीं। क्योंकि जिसप्रकार कोई वृद्ध पुरुष, जिसका शरीर वृद्धावस्थासे जर्जरित है, जिसके देहकी चमड़ी ढीली होगई है तथा जिसमे अनेक झुर्रियां पड़गई हैं, जिसके प्रायः दांत गिर चुके हैं, जो गर्मीसे व्याकुल, तृष्णासे पीड़ित, दुखी, भूखा, तृपित, दुर्वल तथा मानसिक क्लेशसे पीड़ित है, वह एक वड़े कोशंव वृक्षकी सूखी, टेढ़ीमेढ़ी गांठोंवाली, चिक्कण, टेढ़ी लकड़ीकी गंडिकापर

धारविहीन कुल्हाड़ेसे प्रहार करता है, वह जोर २ से हुंकार करता है, फिर भी लकड़ीके टुकड़े नहीं कर सकता है। उसी-प्रकार नैरयिकोंने भी अपने पापकर्म प्रगाढ व चिक्कण बांधे हैं, अतः (अत्यन्त वेदनाका अनुभव करते हुए भी) वे तत्प्रकारका निर्वाणरूप फल नहीं प्राप्त करते है। अथवा जिसप्रकार कोई पुरुप एरणपर घनकी चोट करता है फिर भी वह एरणके स्थूल पुद्गलोंको तोड़नेमें समर्थ नहीं होता है उसीप्रकार नैरयिक भी प्रगाढकर्मयुक्त है। वे महापर्यवसानयुक्त नहीं हैं। इसके विपरीत जिस-प्रकार कोई तरुण, बलवान् यावत् मेधावी व निपुण कारीगर एक विशाल शालवृक्षकी हरी, जटारहित, गाठरहित, चिक्कणता-रहित, सीधी और आधारयुक्त गंडिकापर—लकड़ीके टुकडेपर, तीक्ष्ण कुल्हाड़े द्वारा प्रहार करता है और काट देता है। इसप्रकारके वह विशाल दलके दल काट कर फेक देता है, इतनेपर भी वह हुंकारादि नहीं करता। उसीप्रकार जिन श्रमण-निर्ग्रन्थोंने अपने कर्म यथास्थूल, शिथिल यावत् निष्ठित किये हैं वे अपने कर्म शीघ्र नष्ट कर देते है। क्योंकि वे महा-पर्यवसानयुक्त हैं। अथवा जिसप्रकार कोई व्यक्ति घासकी पूलीको आगमें फेंके या तप्त कड़ाह पर पानीका बिन्दु डाले तो वे जल्दी ही नष्ट हो जाते हैं उसीप्रकार श्रमण-निर्ग्रन्थोंके कर्म भी शीघ्र ही विध्वंस हो जाते हैं।*

*शेष वर्णन छट्ठे शतकके अनुसार जानना चाहिये। देखो पृष्ठसंख्या १६०

सोलहवां शतक

पंचम उद्देशक

पंचम उद्देशकमें वर्णित विषय

[ऋद्धिसम्पन्न देव और पुद्गल, परिणमनप्राप्त पुद्गल। प्रश्नोत्तर संख्या २]

(प्रश्नोत्तर नं० ३६)

(३६८) [1]महान् ऋद्धिसम्पन्न यावत् महासुखसम्पन्न देव बाह्य पुद्गलोंको ग्रहण किये विना आने, जाने, बोलने, उत्तर देने, आंख खोलने या आंख बन्द करने, शरीरके अवयवोको संकुचित करने, फैलाने, स्थान, शैय्या या निषद्या—स्वाध्यायभूमिका उपभोग करने, विकुर्वण करने और परिचारणा—विषय-भोग, करने में समर्थन नहीं। बाह्य पुद्गलको ग्रहण कर ही वह उपर्युक्त कार्य कर सकता है।

पुद्गल और परिणमन

(प्रश्नोत्तर नं० ३७)

(३६६) परिणमन-प्राप्त पुद्गल परिणत कहा जाता है परन्तु अपरिणत नहीं।

१, देवेन्द्र शक्रेन्द्र द्वारा पूछा गया प्रश्न।

सोलहवां शतक

षष्ठम उद्देशक

षष्ठम उद्देशकमें वर्णित विषय

[स्वप्न और उसके भेद, सुप्त और असुप्त जीव, ७२ प्रकारके स्वप्न, भगवान् महावीरके दश स्वप्न, विविध स्वप्न और उनके फल। प्रश्नोत्तर संख्या १६]

स्वप्न

(प्रश्नोत्तर नं० ३८-५२)

(४००) स्वप्नदर्शन पांच प्रकारका है:—यथातथ्यस्वप्नदर्शन, चिन्तास्वप्नदर्शन, तद्विपरीतस्वप्नदर्शन और अव्यक्तस्वप्नदर्शन।

सुप्त या जागृत व्यक्ति स्वप्न नहीं देखता परन्तु सुप्तजागृत व्यक्ति स्वप्न देखता है। जीव सुप्त भी है, जागृत भी है और सुप्तजागृत भी है। नैरयिक सुप्त हैं परन्तु जागृत या सुप्तजागृत नहीं हैं। इसीप्रकार चतुरिन्द्रिय-पर्यन्त जानना चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक सुप्त भी है और सुप्तजागृत भी हैं। मनुष्य सुप्त भी है, जागृत भी हैं और सुप्त-जागृत भी हैं। वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव नैरयिकोंकी तरह सुप्त हैं परन्तु जागृत या सुप्तजागृत नहीं।

संवृत, असंवृत व संवृतासंवृत—ये तीनों ही जीव स्वप्न देखते हैं परन्तु संवृत जीव सत्य स्वप्न देखते हैं। असंवृत और संवृतासंवृत जीव जो स्वप्न देखते हैं वह सत्य भी हो सकता है और असत्य भी।

जीव संवृत, असंवृत संवृतासंवृत—तीनों ही प्रकारके है।

साधारण स्वप्न ४२ प्रकारके है और महास्वप्न ३० प्रकारके है। इसप्रकार समस्त ७२ स्वप्न है।

जब तीर्थंकरका जीव माके गर्भमें आता है तब तीर्थंकरकी माता तीस महास्वप्नोंमेंसे चौदह महास्वप्न देखकर जागती है। वे चौदह स्वप्न इसप्रकार हैं—हाथी, बैल, सिंह अग्नि आदि।

चक्रवर्तीका जीव जब अपनी मांके गर्भमें आता है तब उसकी माता भी तीर्थंकरकी माताकी तरह उक्त चौदह महास्वप्न देखकर जागती है।

जब वासुदेवका जीव अपनी मांके गर्भमें आता है तब उसकी माता इन चौदह महास्वप्नोमेंसे कोई सात; बलदेवकी मां कोई चार ओर मांडलिक राजाकी माता कोई एक स्वप्न देखकर जागती है।

भगवान् महावीरके स्वप्न

(४०१)जब श्रमण भगवान महावीर छद्मस्थ अवस्थामें थे तब एक रात्रिके अन्तिम प्रहरमें वे निम्न दश महास्वप्न देखकर जागे।

(१) एक महा भयंकर और तेजस्वी ताड़के सदृश पिशाचको पराजित किया। (२) एक श्वेत पंखयुक्त पुंस्कोकिल (३) एक चित्र-विचित्र पुंस्कोकिल। (४) महान् सर्वरत्नमय माला-युगल। (५) एक श्वेत गायका स्तनप्रदेश। (६) चारों ओरसे कुसुमित पद्म-सरोवर। (७) सहस्रोर्मियों से तरंगित महासमुद्रको अपने हाथोंसे तैरकर पार किया। (८) तेजसे प्रज्वलित एक महा सूर्य। (९) विशाल मानुषोत्तरपर्वतको अपनी वैडुर्यवर्ण सदृश

आतड़ियोंसे सर्व ओरसे आवेष्टित और परिवेष्टित। (१०) महान् सुमेरु पर्वत की मंदर चूलिका पर अपनी आत्माको सिंहासनारूढ़ देखा।

इन दश महास्वप्नोंका फल क्रमशः इसप्रकार हुआ (१) उन्होंने मोहनीयकर्म मूलतः नष्ट किया। (२) उन्हें शुक्लध्यान प्राप्त हुआ। (३) उन्होंने चित्र-विचित्र स्वसमय और परसमय युक्त (विविध विचारयुक्त) द्वादशांगी गणिपिटक कहा, प्ररूपित किया, दर्शित किया, निदर्शित किया और उपदर्शित किया। उन द्वादशागों के नाम इसप्रकार है,—आचार, सूत्रकृत यावत् दृष्टिवाद। (४) उन्होंने सागारधर्म और अनगार धर्म, यह दो प्रकारका धर्म-प्ररूपित किया। (५) उनका चार प्रकारका संघ स्थापित हुआ—साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका। (६) उन्होंने भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवोंको प्रतिबोधित किया। (७) उन्होंने अनादि और अनन्त ससाररूपी कातार पार किया। (८) उन्हें अनन्त, अनुत्तर, निरावरण, निर्व्याघात, समग्र और प्रतिपूर्ण केवलज्ञान प्राप्त हुआ। (९) देवलोक, असुरलोक और मनुष्यलोकमें भी उनकी उदार कीर्ति, स्तुति, सम्मान और यश परिव्याप्त हुआ। (१०) केवली होकर देवताओं, मनुष्यों और असुरोंसे युक्त परिषद्में बैठकर धर्मोपदेश दिया।

विविध स्वप्न और उनका फल

(४०२)कोई स्त्री या पुरुष स्वप्नमें एक वृहत् अश्वपंक्ति, गज-पंक्ति यावत् वृषभपंक्ति देखे, उनपर आरूढ हो तथा अपनेको

उनपर चढ़ा हुआ समझे और उसी समय जाग जाय तो उसी भवमें सिद्ध हो तथा सर्व दुखोंका अन्त करे।

कोई स्त्री या पुरुप स्वप्नमें समुद्रको दोनों किनारों में अड़ा हुआ तथा पूर्व और पश्चिम की ओर एक विशाल दामन तथा उससे अपनेको बंधा हुआ देखे तथा अपनेको बंधा हुआ माने तो उसी भवमें सिद्ध हो तथा सर्व दुखोंका अन्त करे।

कोई स्त्री यापुरुष दोनों बाजुओंसे लोकान्तको स्पर्श करता हुआ तथा पूर्व और पश्चिम तक लंबी डोरी देखे तथा उसको काट डाले, मैंने उसको काटा है, इसप्रकार माने तो उसी जन्ममें सिद्ध हो तथा सर्व दुखोंका अन्त करे।

कोई स्त्री या पुरुप एक बड़े कृष्णवर्ण यावत् श्वेतवर्ण सूतके गोले को देखे, उसको उधेड़े तथा मैंने उधेड़ा, इसप्रकार समझे तो उसी जन्ममें सिद्ध हो तथा सर्व दुखोंका अन्त करे।

कोई स्त्री या पुरुप एक बड़े लोहेके, तांबेके, रांगेके और शीशेके ढेरपर चढ़े तथा अपनेको चढ़ा समझे तो उसी भवमें सिद्ध हो तथा सर्व दुखोंका अन्त करे।

कोई स्त्री या पुरुप स्वप्नमें बड़े-बड़े हिरण्य, सुवर्ण, रत्न और वज्ररत्नके ढेरोंको देखे, उनपर चढे तथा अपनेको चढा समझे और उसी समय जाग जायतो उसी भवमें सिद्ध हो तथा सर्व दुखोंका अन्त करे।

कोई स्त्री या पुरुप एक बड़े शरस्तम्भ, वीरणस्तम्भ, वंशीमूलस्तम्भ या वल्लिमूलस्तम्भको देखे, उसको उखाड़े तथा मैंने उखाड़ा, ऐसा समझे और तुरन्त जाग जाय तो उसी भवमे सर्व दुःखोंका अन्त कर सिद्ध हो।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्नमें एक बड़े क्षीरकुंभ, दधिकुंभ, घृतकुंभ और मधुकुंभ को देखे तथा उसको उठाये तथा यह समझे कि मैंने इसे उठाया और तत्क्षण जाग जाय तो उसी भवमें सिद्ध हो तथा सर्व दुखोंका अन्त करे।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्नमें एक बड़े सुराकुंभ, सौवीरकुंभ, तैलकुंभ या वसाकुंभको भेदे तथा यह समझे कि मैंने इसे भेदा, यदि उसी समय वह जाग जाय तो सर्व दुखोंका अन्त करे।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्नमें खिले हुए कमलयुक्त पद्मसरोवरको देखे तथा उसमें प्रवेश करे और अपनेको प्रवेश किया हुआ माने, तत्क्षण जाग जाय तो सर्व दुखोंका अन्त करे।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्नमें तरंगित, कल्लोलयुक्त एक बड़े समुद्र को देखे और तिरे तथा अपनेको तिरा हुआ समझे, और तत्क्षण जाग जाय तो उसी भवमें सिद्ध हो तथा सर्व दुखोंका अन्त करे।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्नमें रत्नमय एक विशाल भवनको देखे तथा उसमें प्रवेश करे तथा अपनेको प्रवेश किया हुआ समझे और तत्क्षण जाग जाय तो उसी भवमें सिद्ध हो तथा सर्व दुखोंका अन्त करे।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्नमें एक रत्नमय विशाल विमान देखे तथा उसपर चढ़े और अपने को चढ़ा हुआ माने तथा तत्क्षण जाग जाय तो उसी भवमें सिद्ध हो।

(प्रश्नोत्तर नं० ५३)

(४०३) एक स्थानसे दूसरे स्थान ले जाते हुए कोष्ठपुट यावत् कुतकी पुट पवनानुसार प्रवाहित नहीं होते परन्तु उनके गन्ध-पुद्गल प्रवाहित होते हैं।

सोलहवां शतक

उद्देशक ७-१४

सप्तम उद्देशक

(प्रश्नोत्तर नं० ५४-)

(४०४) उपयोग दो प्रकारका है। इस सम्बन्धमें प्रज्ञापना-सूत्रका समग्र उपयोगपद तथा समग्र पश्यत्तापद[1] (तीसवां) जानना चाहिये।

अष्टम उद्देशक

अष्टम उद्देशकमें वर्णित विषय

[लोकके चरमान्त और जीव देश-प्रदेश, परमाणु-गति, क्रिया। प्रश्नोत्तर संख्या ९]

(प्रश्नोत्तर नं० ५५-६०)

(४०५) लोकके पूर्व चरमान्तमें जीव नहीं हैं परन्तु जीवदेश, जीवप्रदेश, अजीव, अजीवदेश और अजीव प्रदेश है। वहां जो जीव देश हैं वे अवश्य ही एकेन्द्रिय जीवके देश है अथवा एकेन्द्रिय जीवोंके देश है और अनिन्द्रियका (एक) देश है। इस सम्बन्धमें दशम शतकमें आग्नेयी दिशामें वर्णित सर्व वर्णन यहांजानना चाहिये। विशेषान्तर यह कि देशोंके विषयमें

१—प्रकृष्टबोधके परिणामको पश्यत्ता कहते हैं। इसके दो भेद हैं—साकार और निराकार। साकार पश्यत्ताके मतिज्ञानके अतिरिक्त चार ज्ञान और मतिअज्ञानके अतिरिक्त दो अज्ञान—इस तरह छः भेद होते हैं। अनाकार पश्यन्ताके अचक्षुदर्शनके अतिरिक्त तीन भेद हैं।

अनिन्द्रियके लिये प्रथम भंग नहीं कहना चाहिये। वहाँ रहे हुए अरूपी छः प्रकारके हैं। वहाँ अद्धासमय नहीं है।

लोकके दक्षिण चरमान्त और पश्चिम चरमान्तके लिये भी इसीप्रकार जानना चाहिये।

लोकके ऊर्ध्व चरमान्तमें जीव नहीं है परन्तु जीवदेश, जीवप्रदेश, अजीव, अजीवदेश और अजीव-प्रदेश है। वहाँ जो जीवप्रदेश हैं वे अवश्य ही एकेन्द्रियके और अनिन्द्रियके है १, अथवा एकेन्द्रिय व अनिन्द्रियोंके देश तथा द्वीन्द्रियका एक देश, है २, अथवा एकेन्द्रिय, अनिन्द्रिय और द्वीन्द्रियके देश हैं। इसप्रकार मध्य भगको छोड़कर त्रिकसंयोगी सर्व भंग जानने चाहिये। इसीप्रकार पंचेन्द्रिय-पर्यन्त कहने चाहिये। तत्रस्थ जीव-प्रदेशोंके सम्बन्धमें भी प्रथम भंगको छोड़कर सर्व भंग पंचेन्द्रिय तक कहने चाहिये। दशम शतकमें वर्णित तमा दिशा-सम्बन्धी वर्णन अजीवोंके सम्बन्धमें जानना चाहिये।

लोकके चरमान्तमे जीवदेशके सम्बन्धमें भी मध्य भंगको छोड़कर सर्व भंग जानने चाहिये। सर्व प्रदेशोंके सम्बन्धमें पूर्व चरमान्तके प्रदेशोंकी तरह जानना चाहिये परन्तु उनमें मध्य भंग नहीं कहना चाहिये। अजीवोंके सम्बन्धमें भी उपर्युक्त वर्णन जानना चाहिये।

लोकके चरमान्तकी तरह रत्नप्रभाके भी चारों चरमान्त जानने चाहिये। दशम शतकमें वर्णित विमला दिशाके वर्णन की तरह रत्नप्रभाके ऊपरके चरमान्तका वर्णन जाना चाहिये। रत्नप्रभापृथ्वीके नीचेका चरमान्त-लोकके नीचेके चरमान्तकी तरह जानना चाहिये। विशेषान्तर यह है जीव-

देशोंके सम्बन्धमें पंचेन्द्रियोंमें तीनों भंग कहने चाहिये।

रत्नप्रभापृथ्वीकी तरह शर्कराप्रभा तथा शेष नर्कभूमियोंके चरमान्त जानने चाहिये। इन भूमियोंके रत्नप्रभाके नीचेके चरमान्तकी तरह यों ऊपरके चरमान्त भी जानने चाहिये।

सौधर्म यावत् अच्युत तक भी इसीप्रकार जानना चाहिये।

ग्रैवेयक, अनुत्तरविमान और ईषत्प्राग्भारापृथ्वीके लिये भी इसी तरह जानना चाहिये परन्तु इनमें विशेषान्तर इसप्रकार है—ऊपरके तथा नीचेके चरमान्तोंमें देशके सम्बन्धमें पंचेन्द्रियोंमें भी मध्य भंग नहीं कहना चाहिये।

परमाणु गति

(प्रश्नोत्तर नं ६१)

(४०६) परमाणु पुद्गल एक समयमें लोकके पूर्व चरमान्तसे पश्चिम चरमान्तमें, पश्चिम चरमान्तसे पूर्व चरमान्तमें, दक्षिण चरमान्तसे उत्तर चरमान्तमें और उत्तर चरमान्तसे दक्षिण चरमान्तमें, ऊर्ध्व चरमान्तसे नीचेके चरमान्तमें और नीचेके चरमान्तसे ऊपरके चरमान्तमें जाते हैं।

क्रिया

(प्रश्नोत्तर नं० ६२)

(४०७) "बरसात बरसती है अथवा नहीं", यह जाननेके लिये जो पुरुष हाथ, पाव, वाहु, उरु आदि संकुचित करता है, उसे कायिकी आदि पाचो ही क्रियाये लगती है।

अलोक

(प्रश्नोत्तर नं० ६३)

(४०८) महाऋद्धिसम्पन्न यावत् महासुखसम्पन्न देव

लोकान्तमें रहकर अलोकान्तमें अपने हाथ-पांव, बाहु-उरु आदि संकुचित करने या फैलानेमें समर्थ नहीं है; क्योंकि जीवों-द्वारा पुद्गल ही आहार, शरीर और कलेवररूपमें उपचित होते है। इनकी अपेक्षासे ही जीवों अथवा अजीवोंमें गति-पर्याय कही जाती है। अलोकमें जीव भी नहीं हैं और पुद्गल भी नहीं हैं। इनके अभावसे हाथ-पाव कैसे फैलाये जा सकते हैं?

उद्देशक ९—१४

वर्णित विषय

[बलिकी सुधर्मासभा, अवधिज्ञान और उसके प्रकार—प्रज्ञापना, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिक्कुमार और स्तनितकुमार। प्रश्नोत्तर संख्या ७]

उद्देशक ९

(प्रश्नोत्तर नं० ६४)

(४०९) वैराचनेन्द्र और वैरोचनराज बलिकी सुधर्मासभा कहाँ है; इस सम्बन्धमें चमरेन्द्रके वर्णन की तरह सर्व वर्णन जानना चाहिये। विशेषान्तर यह कि उसका रुचकेन्द्र नामक उत्पात पर्वत हैं जो १७२१ योजन ऊँचा है। वैरोचनेन्द्र वैरोचन राज बलिकी स्थिति सागरोपमसे कुछ अधिक हैं। शेष सर्व वर्णन चमरेन्द्रकी सुधर्मासभाकी तरह समझना चाहिये। विशेष यह कि यहाँ रुचकेन्द्ररत्न की प्रभावाले उत्पलादि होते हैं।

(प्रश्नोत्तर नं० ६५)

(४१०) अवधिज्ञान दो प्रकारका है। यहां प्रज्ञापनासूत्र का सम्पूर्ण अवधिपद (तैंतीसवां) जानना चाहिये।

११ उद्देशक

द्वीपकुमार

(प्रश्नोत्तर नं० ६६-६९)

(४११) सर्व द्वीपकुमार समान आहारवाले अथवा समान श्वासोच्छ्वासनिःश्वासवाले तथा समान आयुष्यवाले नहीं होते। इससम्बन्धमें प्रथम शतकके द्वितीय उद्देशकसे द्वीपकुमारों सम्बन्धी सर्व वर्णन जानना चाहिये।

द्वीपकुमारोंमें कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या और तेजोलेश्या, चारों ही लेश्याये होती है। लेश्याकी अपेक्षासे द्वीपकुमारोंमें सबसे अल्प तेजोलेश्यी है; इनसे कापोतलेश्यी असंख्येय गुणित है; इनसे नीललेश्यी विशेषाधिक है; इनसे कृष्णलेश्यी विशेषाधिक है।

ऋद्धिकी अपेक्षासे कृष्णलेश्यी द्वीपकुमारों से नीललेश्यी, नीललेश्यीसे कापोतलेश्यी और इनसे क्रमशः तेजोलेश्यी द्वीपकुमार महर्द्धिक है।

उद्देशक १२-१४

(प्रश्नोत्तर नं० ७०)

(४१२) द्वीपकुमारोंकी तरह ही उदधिकुमारों, दिक्कुमारों और स्तनितकुमारों के लिये जानना चाहिये। प्रत्येकके लिये एक एक उद्देशक समझना चाहिये।

सत्रहवां शतक

प्रथम उद्देशक

प्रथम उद्देशकमें वर्णित विषय

[क्रिया--ताड़वृक्ष और पुरुष, फल और क्रिया, मूल और क्रिया, सशरीरी और क्रिया। प्रश्नोत्तर संख्या १७]

क्रिया

*(प्रश्नोत्तर-नं० ५-१७)

(४१३) कोई व्यक्ति ताड़ वृक्षपर चढ़कर तत्रस्थित फलोंको हिलाता है अथवा नीचे गिराता है तो उस व्यक्तिको तबतक कायिकी आदि पांचों ही क्रियायें लगती है जबतक कि वह वृक्ष हिलाता है। जिन जीवोंके शरीर-द्वारा ताड़वृक्ष अथवा ताड़का फल उत्पन्न हुआ है उनको भी कायिकी आदि पांचों ही क्रियायें लगती है।

× × × ×

ताड़का फल यदि स्वतः ही अपनी गुरुता—भारके कारण नीचे गिरे और उसके गिरनेसे यदि जीव हनन हों अथवा जीव प्राणोंसे विलग हों, तो उस फल तोड़ते हुए पुरुषको कायिकी आदि चार क्रियायें, जिन जीवोंसे ताड़वृक्ष उत्पन्न हुआ उनको भी चार क्रियायें और जिन जीवोंके शरीरसे ताड़फल उत्पन्न हुआ उनको कायिकी आदि पांचों क्रियायें लगती हैं। जो जीव स्वाभाविक

*प्रथम चार प्रश्नोत्तरोंमें राजा श्रेणिकके प्रधान हस्तियोंके बारेमें वर्णन है। उनमें सैद्धान्तिक बात नहीं। अतः उनका वर्णन चारित्रखंडमें दिया गया है।

रूपसे नीचे गिरते हुए ताड़फलके द्वारा उपकारित होते हैं उनको भी कायिकी आदि पांचों ही क्रियायें लगती हैं।

× × × ×

कोई पुरुष झाड़के मूलको हिलावे अथवा गिरावे तो उस पुरुषको कायिकी आदि पांचों ही क्रियायें लगती हैं। जिन जीवोंके शरीरसे मूल, कंद और बीज उत्पन्न होते हैं उनको भी पांचों ही क्रियायें लगती हैं।

× × × ×

तदनन्तर (हिलानेके पश्चात्) वह मूल स्वतः अपने भारसे नीचे गिर जाय जिससे अन्य जीवोंको घात हो तो उस मूलको हिलानेवाले पुरुषको कायिकी आदि चार क्रियायें, जिन जीवोंके शरीरसे कंद, बीज आदि उत्पन्न हुए उनको चार क्रियायें तथा जिन जीवोंके शरीरोंसे मूल-कंद उत्पन्न हुआ, उनको कायिकी आदि पांचों ही क्रियायें लगती हैं। जो जीव स्वाभाविक रूपसे नीचे गिरे हुए मूलसे उपकारित होते हैं उनको भी पांचों ही क्रियायें लगती है।

मूलकी तरह ही कंद और बीजका वर्णन जानना चाहिये।

× × × ×

औदारिक शरीरका बंधन करता हुआ जीव कभी तीन क्रियायुक्त, कभी चार क्रियायुक्त और कभी पांच क्रियायुक्त होता है। वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण शरीरोंके सम्बन्धमें भी एक और बहुवचनकी अपेक्षासे इसीप्रकार जानना चाहिये।

श्रोत्रेन्द्रिय आदि पांचों इन्द्रियों, मनोयोग, वचनयोग और काययोग के विषयमें भी इसीप्रकार जानना चाहिये। जिस

जीवके जितनी इन्द्रिया और योग है उनके अनुसार उस जीवको जानना चाहिये।

इसप्रकार एक वचन और बहुवचन की अपेक्षासे ये सर्व छव्वीस भंग होते हैं।

(प्रश्नोत्तर नं० १६-१७)

(४१४) भाव छः प्रकार के हैं :—औदयिकभाव, औपशमिकभाव यावत् सांनिपातिक भाव।

औदयिक भाव दो प्रकारका है [1]औदयिक और [2]उदयनिष्पन्न। अनुयोग-द्वारका छः नामोंके सम्बन्धसे वर्णित वर्णन यहाँ जानना चाहिये।

१—कर्म-प्रकृतियों का उदय औदयिक भाव है।

२—उदयनिष्पन्न के दो भेद हैं —जीवोदयनिष्पन्न और अजीवोदय निष्पन्न। कर्मोदयसे जीवोंमें निष्पन्न—नरक, तिर्यंच आदि पर्यायें जीवोदय निष्पन्न हैं और कर्मोदयसे अजीवोंमें निष्पन्न—औदारिकादि शरीर, वर्ण आदि, विविध रूप अजीवोदयनिष्पन्न हैं।

सत्रहवाँ शतक

द्वितीय-तृतीय उद्देशक

द्वितीय-उद्देशक

द्वितीय उद्देशकमें वर्णित विषय

[धर्ममें स्थित जीव, धर्माधर्ममें स्थित जीव, अधर्ममें स्थित जीव, पंडित, बालपंडित और बाल, जीवात्माके सम्बन्धमें अन्यतीर्थिकोंकी मान्यता और खडन, रूपीका अरूपी रूप-विकुर्वण। प्रश्नोत्तर संख्या ११]

धर्म-अधर्म

(प्रश्नोत्तर नं० १८-२१)

(४१५) संयत और विरत—जिसने पापकर्मका प्रतिघात और प्रत्याख्यान किया है, जीव चारित्रधर्ममें स्थित रहते हैं। असयत और अविरत जीव अधर्ममें तथा संयतासंयत जीव धर्माधर्ममें स्थित रहते है।

× × ×

धर्म, अधर्म और धर्माधर्ममें कोई जीव बैठने, सोने तथा लोटनेमें समर्थ नहीं है। क्योंकि सयत और विरत जीव धर्ममें स्थित रहते है, अतः वे धर्मका आश्रय स्वीकार करते हैं। इसी-प्रकार असंयत और अविरत जीव अधर्ममें स्थित रहते हैं अतः वे अधर्मका आश्रय स्वीकार करते है। सयतासयत जीव धर्माधर्ममें स्थित रहते हैं अतः वे धर्माधर्मका—देशविरतिका आश्रय स्वीकार करते रहते हैं। (इस अपेक्षासे धर्म-अधर्ममें स्थित रहना है)

× × ×

है। औत्पातिकी यावत् पारिणामिकी बुद्धिमें, अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणामें, उत्थान यावत् पुरुषाकार पराक्रममें नैरयिकत्वमें, पंचेन्द्रियतिर्यंचत्वमें, मनुष्यत्वमें, देवत्वमें ज्ञानावरणीय यावत् अन्तरायमें, कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्यामें, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टिमें, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शनमें, मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञानमें, मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, विभंगज्ञानमें,आहारसंज्ञा,भयसंज्ञा,परिग्रहसंज्ञा और मैथुनसंज्ञामें, औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण शरीरमें, मनोयोग, वचनयोग और काययोगमें, साकारोपयोग और निराकारोपयोगमें वर्तित वर्तमान प्राणीका जीव अलग है और उसका जीवात्मा अन्य है।"

अन्यतीर्थिकोंका इसप्रकारका प्ररूपण मिथ्या है। वास्तवमें उपर्युक्त सर्व अवस्थाओंमें वर्तित प्राणी ही जीवात्मा है, वही जीव है।

रूपी-अरूपी रूप-विकुर्वण

(प्रश्नोत्तर नं० २७-२८)

(४१८) महान ऋद्धिसम्पन्न यावत् महासुखसम्पन्न देव रूपी होकर अरूपी रूप विकुर्वित करनेमें समर्थ नहीं है। क्योंकि ऐसा मैं जानता हूं, देखता हूँ, निश्चित रूपसे जानता तथा देखता हूं, मैंने देखा है तथा निश्चित रूपसे देखा है, मैंने जाना है तथा निश्चित रूपसे जाना है। रूपयुक्त, कर्मयुक्त, रागयुक्त वेदयुक्त, मोहयुक्त, लेश्यायुक्त शरीरयुक्त और शरीरसे अविभाजित जीवमें ही अरूपीत्व दिखाई देता है। शरीरयुक्त जीव

में ही कालापन यावत् श्वेतपन, सुगन्ध, दुर्गन्ध, कटुता या मधुरता तथा कर्कशत्व यावत् रूक्षत्व विद्यमान है। अतः देव अरूपी रूप विकुर्वित नहीं कर सकते।

इसीप्रकार वह देव प्रथम अरूपी होकर पश्चात् रूपी आकारोंको विकुर्वित करनेमें भी समर्थ नहीं है। क्योंकि रूप-विहीन, कर्मविहीन, रागविहीन, वेदविहीन, मोहविहीन, लेश्याविहीन, शरीरविहीन और शरीरसे विमुक्त जीवोंमें इसप्रकारके रूप सम्भव नहीं।

तृतीय उद्देशक

तृतीय उद्देशकमें वर्णित विषय

[शैलेशी अनगार, एजना और उसके भेद, चलना और उसके भेद, संवेगादिका परिणाम। प्रश्नोत्तर संख्या १६]

(प्रश्नोत्तर सं० २९)

(४१९) [१]शैलेशी अवस्था प्राप्त अनगार पर-प्रयोग विना प्रकंपित नहीं होता।

(प्रश्नोत्तर सं० ३०-३५)

(४२०) [२]एजना पांच प्रकारकी है—द्रव्यएजना, क्षेत्रएजना, कालएजना, भावएजना और भवएजना।

द्रव्यएजना चार प्रकारकी है—नैरयिकद्रव्यएजना, तिर्यंच-योनिकद्रव्यएजना, मनुष्यद्रव्यएजना, देवद्रव्यएजना।

जिस कारण नैरयिक नैरयिकद्रव्यमें वर्तित थे, वर्तित हैं

१—शैलेशी अवस्थामें आत्मा अत्यन्त स्थिर हो जाती है अतः पर-प्रयोग विना प्रकंपित नहीं हो सकती।

२—एजना—योग-द्वारा आत्म-प्रदेशों अथवा पुद्गल द्रव्योंका प्रकंपन।

तथा वर्तित होंगे, वह नैरयिकद्रव्यएजना है। क्योंकि नैरयिकों ने नैरयिक द्रव्यमें वर्तित नैरयिक द्रव्योंकी एजना की थी।

इसीप्रकार तिर्यंचयोनिकद्रव्यएजना, मनुष्यद्रव्यएजना और देवद्रव्यएजनाके लिये जानना चाहिये।

क्षेत्रएजना चार प्रकारकी है :—नैरयिकक्षेत्रएजना, तिर्यंच-योनिकक्षेत्रएजना, मनुष्यक्षेत्रएजना और देवक्षेत्रएजना। इसीप्रकार चारों प्रकारकी एजनाओं के लिये भी उपर्युक्त कारण जानने चाहिये परन्तु नैरयिकद्रव्यके स्थानपर तिर्यंचयोनिक आदि द्रव्य कहने चाहिये।

कालएजना, भवएजना और भावएजनाके सम्बन्धमें भी इसीप्रकार जानना चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० ३६-४३)

(४२१) चलना तीन प्रकारकी है: शरीरचलना इन्द्रिय-चलना और योग चलना।

शरीर चलना पांच प्रकारकी है—औदारिक यावत् कार्मण।

इन्द्रिय चलना पाच प्रकारकी है—श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय चलना।

योग चलना तीन प्रकारकी है—मनोयोग चलना, वचनयोग चलना और काययोग चलना।

जिस हेतुसे औदारिकशरीरमें वर्तित जीव औदारिक शरीर-योग्य द्रव्योंकी औदारिक शरीररूपमें परिणमन-क्रिया की, करते हैं और करेंगे, उसे औदारिकशरीरचलना कहते हैं।

इसीप्रकार कार्मणशरीरचलना-पर्यन्त शेप शरीर-चलनाओं के लिये जानना चाहिये।

श्रोत्रेन्द्रियादि पांचों इन्द्रियचलनाओं तथा मनोयोग आदि तीनों योग-चलनाओंके सम्बन्धमें भी इसीप्रकार जानना चाहिये।

संवेगादिका परिणाम

(प्रश्नोत्तर नं० ४४)

(४२२) संवेग, निर्वेद, गुरु तथा साधर्मिकोंकी सेवा, पापोंकी आलोचना, आत्मनिन्दा, गर्हा, क्षमापना, उपशान्तता, श्रुत-सहायता, श्रुताभ्यास, भावप्रतिबद्धता, पापस्थानोंसे विरक्ति, विविक्तशयनासनता—स्त्रीआदिरहितस्थान, तथा आसन-प्रयोग, श्रोत्रेन्द्रियसंवर, योगप्रत्याख्यान, शरीरप्रत्याख्यान, कषायप्रत्याख्यान, [1]संभोगप्रत्याख्यान, [2]उपधिप्रत्याख्यान, [3]भक्तप्रत्याख्यान, क्षमा, विरागता, भावसत्य, योगसत्य, करणसत्य, मनसंगोपन, वचनसंगोपन, कायसंगोपन, क्रोध-परित्याग यावत् मिथ्यादर्शनशल्यपरित्याग, ज्ञानसम्पन्नता, दर्शनसम्पन्नता, चारित्रसम्पन्नता, क्षुधादि वेदना, सहनशीलता मारणान्तिक कष्ट-सहिष्णुता आदि सबका अन्तिम फल मोक्ष है।

---

१ परस्पर एक मडलीमें बैठकर साधु-वृन्दका भोजन करना संभोग कहा जाता है। जिनकल्पादिको स्वीकार कर इस पद्धतिका त्याग करना संभोग-प्रत्याख्यान कहा जाता है। २—अधिक वस्त्रादिका त्याग। ३—भोजन-प्रत्याख्यान।

सत्रहवां शतक

चतुर्थ-पंचम उद्देशक

चतुर्थ उद्देशक

चतुर्थ उद्देशकमें वर्णित विषय

[जीवोंके प्राणातिपातादि कर्म, दुख और वेदना आत्मकृत है। प्रश्नोत्तर संख्या ११]

जीव और प्राणातिपातादिकर्म

(प्रश्नोत्तर नं० ४५-५१)

(४२३) जीवोंके द्वारा प्राणातिपात क्रिया—कर्म, की जाती है। वह क्रिया आत्मा-द्वारा स्पृष्ट होती है परन्तु अस्पृष्ट नहीं। इससवंधमें [1]प्रथम शतकके छट्ठे उद्देशकके अनुसार वैमानिक पर्यन्त जीवोंके लिये जानना चाहिये। विशेष यह कि जीव और एकेन्द्रिय व्याघातरहित होने पर छओं दिशाओंसे आगत कर्म (वन्धन) करते है और व्याघात होने पर कदाचित् तीन दिशाओंसे, कदाचित् चार दिशाओंसे, कदाचित् पांच दिशाओं से आगत कर्म (वन्धन) करते हैं।

मृपावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रहके संवंधमें भी उपर्युक्त पाचों ही भंग जानने चाहिये।

स्पृष्टकर्म, क्षेत्रकर्म और प्रदेशस्पृष्टके संवधमें भी उपर्युक्त प्रकारसे पाचों भंग जानने चाहिये। ये सव वीस भंग होते हैं।

---

१ देखो पृ० सख्या ४१, क्रम संख्या ४२

जीव और वेदना

(प्रश्नोत्तर नं० ५२-५५)

(४२४) जीव जो दुख भोग रहे है, वह आत्मकृत है परन्तु परकृत या उभयकृत नहीं। वे जो दुख-वेदन करते हैं वह आत्मकृत दुख वेदन करते हैं परन्तु परकृत या उभयकृत नहीं। इसीप्रकार उन्हें जो वेदना प्राप्त है वह भी आत्मकृत है परन्तु परकृत या उभयकृत नहीं। जीव जो वेदना अनुभव करते हैं वह आत्मकृत होती है परन्तु उभयकृत नहीं।

वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये इसीप्रकार जानना चाहिये।

पंचम उद्देशक

पंचम उद्देशकमें वर्णित विषय

[ईशानेन्द्रकी धर्मसभा। प्रश्नोत्तर संख्या १]

ईशानेन्द्रकी सुधर्मासभा

(प्रश्नोत्तर न० ५६)

(४२५) जम्बूद्वीपमें मदराचलके उत्तरमें रत्नप्रभाभूमिके अत्यन्त सम और रमणीय भूभागसे ऊपर चंद्र और सूर्यसे भी आगे निकल जाने पर ईशानावतंसक विमान आता है। वह ईशानावतंसक विमान साढ़े वारह लाख योजन लंवा-चौड़ा है। वहाँ देवेन्द्र देवराज ईशानकी सुधर्मासभा है। शेप सर्व वर्णन प्रज्ञापनासूत्रके स्थानपद तथा दशम शतकमें शक्रके वर्णनके अनुसार जानना चाहिये। ईशानेन्द्रका आयुष्य किञ्चित् अधिक दो सागरोपम है।

सत्रहवां शतक

षष्ठम-सप्तम उद्देशक

पृथ्वीकायिक जीव और समुद्घात

(प्रश्नोत्तर नं० ५७-६०)

(४२६) रत्नप्रभाभूमिमें पृथ्वीकायिक जीव मरणसमुद्घात करके सौधर्मकल्पमें पृथ्वीकायिकरूपमें उत्पन्न हो सकते है। वे प्रथम उत्पन्न हो पश्चात् आहार करते है, अथवा प्रथम आहार करते हैं और पश्चात् उत्पन्न होते हैं। क्योंकि पृथ्वीकायिकोंके तीन समुद्घात है—वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणान्तिक समुद्घात। जब जीव मारणान्तिक समुद्घात करता है तब वह देशरूपसे भी और सर्वरूप से भी मारणान्तिक समुद्घात करता है। जब वह देशरूपसे करता है तब प्रथम पुद्गल ग्रहण करता है और जब सर्वरूपसे करता है तब पश्चात् पुद्गल ग्रहण करता है।

रत्नप्रभाभूमिके पृथ्वीकायिक जीवोंकी तरह शर्कराप्रभा आदिसे लेकर ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तकके पृथ्वीकायिक जीव भी सौधर्मकल्पकी तरह ईशानकल्प यावत् अच्युत, ग्रैवेयक, अनुत्तर और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वीमें भी मारणान्तिक समुद्घात कर उत्पन्न हो सकते हैं। इसीप्रकार सौधर्मकल्पके पृथ्वीकायिक जीव मरणसमुद्घात कर रत्नप्रभाभूमिमें पृथ्वीकायिक रूपसे उत्पन्न हो सकते है। शेष सर्व वर्णन ऊपरके अनुसार है।

सत्रहवाँ शतक

उद्देशक ८—११

८—११ उद्देशकमें वर्णित विषय

[अप्कायिकादिक एकेन्द्रिय जीव और समुद्घात प्रश्नोत्तर संख्या ४]

(प्रश्नोत्तर नं० ६१-६४)

(४२७) अप्कायिक जीव रत्नप्रभाभूमिमें मरणसमुद्घात करके सौधर्मकल्पमे अप्कायिकरूपमें, वायुकायिक जीव रत्नप्रभाभूमि में मरणसमुद्घात करके सौधर्मकल्पमें वायुकायमें उत्पन्न होते हैं उसीप्रकार सौधर्मकल्पमें मरण समुद्घात करके अप्कायिक जीव रत्नप्रभाभूमिमें और वायुकायिक भी रत्नप्रभामें उत्पन्न होते हैं। यही बात रत्नप्रभासे लेकर ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक सर्व पृथ्वियों और ईषत्प्राग्भारासे लेकर रत्नप्रभाभूमि तक पृथ्वी-कायिककी तरह जाननी चाहिये। विशेषान्तर यह कि वायुकायिकके चार समुद्घात है :—वेदनासमुद्घात, कषाय-समुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और वैक्रियसमुद्घात।

बारहवां उद्देशक

बारहवें उद्देशकमें वर्णित विषय

[एकेन्द्रिय जीव और आहार, सलेश्य जीव प्रश्नोत्तर संख्या ४]

(प्रश्नोत्तर नं० ६५)

(४२८) समस्त एकेन्द्रिय जीव समान आहार तथा समान शरीरवाले नहीं है। इस संबंधमें प्रथम शतकके द्वितीय उद्देशक का पृथ्वीकायिक संबंधी सर्व वर्णन जानना चाहिये।

(प्रश्नोत्तर संख्या ६६-६८)

(४२६) एकेन्द्रियोंमें चार लेश्यायें है-कृष्णलेश्या यावत् तेजोलेश्या। इनमें सबसे अल्प तेजोलेश्यावाले है; इनसे अनन्तगुणित कापोतलेश्यावाले है; इनसे नीललेश्यावाले विशेषाधिक हैं; इनसे कृष्णलेश्यावाले विशेषाधिक है।

ऋद्धिकी अपेक्षासे कृष्णलेश्यावाले एकेन्द्रियोंसे नीललेश्यावाले, नीललेश्यावालोंसे कपोतलेश्यावाले, कपोतलेश्यावालोंसे तेजोलेश्यावाले क्रमशः महर्द्धिक है।

उद्देशक १३—१७

(प्रश्नोत्तर नं० ६८-७२)

(४३०) नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युत्कुमार, वायुकुमार, और अग्निकुमार समान आहारवाले या समान लेश्यावाले हैं या नहीं; इस संबंधमें सबोंके लिये सोलहवें शतकसे द्वीपकुमारोंका वर्णन जानना चाहिये।

इसप्रकार प्रत्येकका एक-एक उद्देशक समाप्त होता है।

अठारहवाँ शतक

प्रथम उद्देशक

अठारहवें शतकमें वर्णित विषय

[प्रथम-अप्रथम, चरम-अचरम,—सर्व दृष्टिसे विचार। प्रश्नोत्तर सं० ३५]

प्रथम-अप्रथम

(प्रश्नोत्तर नं० १-१९)

(४३१) जीव जीवभाव—जीवत्वकी अपेक्षा प्रथम नहीं परन्तु [1]अप्रथम हैं। यह बात वैमानिकपर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जाननी चाहिये।

एकसिद्ध अथवा अनेकसिद्ध सिद्धभावकी अपेक्षा प्रथम हैं परन्तु अप्रथम नहीं।

एक आहारक जीव अथवा अनेक आहारक जीव आहारक भावकी अपेक्षासे प्रथम नहीं परन्तु अप्रथम हैं। यह बात वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये समझनी चाहिए।

अनाहारक जीव अथवा अनेक अनाहारक जीव अनाहारक भावकी अपेक्षासे कदाचित् प्रथम और कदाचित् अप्रथम भी होते है। नैरयिकसे वैमानिक पर्यन्त जीव अप्रथम और सिद्ध प्रथम हैं।

१—जिस जीवको जो भाव पूर्वसे ही प्राप्त हैं, उस भावकी अपेक्षासे वह अप्रथम है। जीवत्व अनादिकालसे जीवको प्राप्त है अतः जीवत्वकी अपेक्षासे जीव अप्रथम है। जो पूर्वमें प्राप्त नहीं थे परन्तु पश्चात् प्राप्त हुए, ऐसे भाव प्रथम कहे जाते हैं। सिद्धत्वकी अपेक्षासे सिद्ध प्रथम हैं।

भवसिद्धिक एक जीव अथवा अनेक जीव, अभवसिद्धिक एक जीव अथवा अनेक जीव आहारकजीवकी तरह प्रथम नहीं परन्तु अप्रथम हैं।

नोभवसिद्धिक—नोअभवसिद्धिक (सिद्ध) जीव नोभवसिद्धिक—नोअभवसिद्धिकभावकी अपेक्षा प्रथम है परन्तु अप्रथम नहीं। इसीतरह बहुवचनके लिये भी जानना चाहिये।

एक संज्ञी जीव अथवा अनेक संज्ञी जीव संज्ञीभावकी अपेक्षा प्रथम नहीं परन्तु अप्रथम हैं। यह बात विकलेन्द्रियको छोड़कर वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जाननी चाहिये।

असंज्ञी जीवोंके लिये भी यही बात जाननी चाहिये परन्तु यह वाणव्यन्तरों तक ही समझनी चाहिये। नोसंज्ञी—नोअसंज्ञी जीव—मनुष्य और सिद्ध नोअसंज्ञीभावकी अपेक्षासे प्रथम है परन्तु अप्रथम नहीं।

सलेश्य एक जीव अथवा अनेक जीव सलेश्यभावकी अपेक्षा अप्रथम हैं। यह बात वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जाननी चाहिये। कृष्णलेश्यासे शुक्ललेश्यापर्यन्त जीवोंके लिये भी यही समझना चाहिये। लेश्यारहित जीव प्रथम हैं।

एक सम्यग्दृष्टि अथवा अनेक सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्व की अपेक्षासे कदाचित् प्रथम भी होते हैं और कदाचित् अप्रथम भी। इसप्रकार एकेन्द्रियको छोड़कर सर्व विकल्पोंके लिये समझना चाहिये। सिद्ध प्रथम हैं।

एक अथवा अनेक मिथ्यादृष्टि मिथ्यादृष्टित्वकी अपेक्षासे अप्रथम है। यह बात वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये समझनी चाहिये। मिश्रदृष्टिभावकी अपेक्षासे सम्यग्दृष्टि जीवकी तरह है।

एक अथवा अनेक संयत जीव तथा मनुष्योंके संबंधमें सम्यग्-दृष्टि जीवकी तरह जानना चाहिये। असंयत आहारक जीवकी तरह, संयतासंयत, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक तथा मनुष्य; इन तीनोंके एकवचन या बहुवचनके लिये सम्यग्दृष्टिकी तरह जानना चाहिये। नोसंयत, नोअसंयत, नोसंयतासंयत और सिद्ध प्रथम है परन्तु अप्रथम नहीं। एक सकषायी, क्रोधकषायी यावत् लोभकषायी आहारककी तरह अप्रथम और अकषायी कदाचित् प्रथम और कदाचित् अप्रथम भी है। इसीप्रकार अक-षायी मनुष्योंके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये। सिद्ध प्रथम हैं अप्रथम नहीं। बहुवचनकी अपेक्षासे अकषायी जीव और मनुष्य प्रथम भी होते हैं और अप्रथम भी।

एक या अनेक ज्ञानी जीव सम्यग्दृष्टिकी तरह कदाचित् प्रथम और कदाचित् अप्रथम हैं। मतिज्ञानीसे मन-पर्यन्त ज्ञानी के लिये भी यही समझना चाहिये। केवलज्ञानी, मनुष्य और सिद्ध एक वचन या बहुवचनसे प्रथम हैं। अज्ञानी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी और विभंगज्ञानी आहारक जीवकी तरह हैं।

सयोगी, मनयोगी, वचनयोगी और काययोगी एक या अनेक, अप्रथम हैं। अयोगी, मनुष्य और सिद्ध एक या अनेक, प्रथम हैं।

एक या अनेक साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी अना-आहारककी तरह हैं। एक या अनेक, सवेदक यावत् नपुंसकवेदक आहारकके सदृश अप्रथम हैं। अवेदक जीव, मनुष्य और सिद्धों को अकषायीके सदृश जानना चाहिये।

एक या अनेक सशरीरी आहारक जीवके सदृश हैं। यह

वात कार्मणशरीर-पर्यन्त समझनी चाहिये। एक या अनेक आहारक शरीरवाले सम्यग्दृष्टिकी तरह कदाचित् प्रथम है और और कदाचित् अप्रथम हैं।

एक या अनेक पाच पर्याप्तियोंकी अपेक्षा पर्याप्त और पांच अपर्याप्तियोंकी अपेक्षासे अपर्याप्त आहारककी तरह अप्रथम हैं। यह वात वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये समझनी चाहिये। प्रथम और अप्रथमका लक्षण निम्न प्रकार है :—

जिस जीवने जो भाव—अवस्थाएँ, पूर्व प्राप्त कर रखे हैं उन भावोंकी अपेक्षा वह जीव अप्रथम कहा जाता है। जो अवस्था पूर्व प्राप्त नहीं थी परन्तु प्रथमवार प्राप्त हुई है, इस अपेक्षासे जीव प्रथम कहा जाता है।

चरम-अचरम

(प्रश्नोत्तर नं० २०-२५)

(४३२) जीव जीवत्व भावकी अपेक्षा अचरम है।

नैरयिक नैरयिकभावकी अपेक्षा कदाचित् चरम हैं और कदाचित् अचरम है। यह वात वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जाननी चाहिये।

सिद्ध जीवके सदृश अचरम हैं।

एक या अनेक आहारक कदाचित् चरम भी होते है और कदाचित् अचरम भी। एक या अनेक अनाहारक और सिद्ध अचरम होते हैं। शेष स्थानोंमें आहारककी तरह।

भवसिद्धिक एक या अनेक, चरम है। शेप स्थानोंमें आहारककी तरह कदाचित् चरम और कदाचित् अचरम होते है। अभवसिद्धिक जीव एकवचन अथवा वहुवचनकी अपेक्षा अच-

रम हैं। नोभवसिद्धिक, नोअभवसिद्धिक तथा सिद्ध एक या अनेक सभी अभवसिद्धिककी तरह अचरम हैं।

संज्ञी और असंज्ञी आहारककी तरह, नोसंज्ञी, नोअसंज्ञी, और सिद्ध अचरम, मनुष्य चरम है।

सलेश्य - शुक्लेश्या तकके जीव आहारककी तरह और लेश्यारहित जीव नोसंज्ञी नोअसंज्ञीकी तरह जानने चाहिये।

सम्यग्दृष्टि अनाहारककी तरह और मिथ्यादृष्टि आहारक की तरह जानने चाहिये। एकेन्द्रिय तथा विकलेन्द्रिके अतिरिक्त मिश्रदृष्टि जीव कदाचित् चरम भी होते हैं और कदाचित् अचरम भी।

संयत जीव तथा मनुष्य आहारककी तरह है। असंयत और संयतासंयत भी इसीप्रकार जानने चाहिये। केवलज्ञानी नोसंज्ञी व नोअसंज्ञीकी तरह तथा अज्ञानी—यावत् विभंगज्ञानी आहारककी तरह हैं।

सकषायी-यावत् लोभकषायीको सर्व स्थानोंमें आहारककी तरह, अकषायी जीव तथा सिद्ध अचरम है। अकषायी मनुष्य कदाचित् चरम होते है और कदाचित् अचरम।

ज्ञानी सर्वत्र सम्यग्दृष्टिकी तरह दोनों प्रकारके है। मति-ज्ञानी यावत् मनःपर्यवज्ञानीको आहारककी तरह समझना चाहिये। केवलज्ञानी अचरम है। अज्ञानी-यावत् विभंगज्ञानी आहारक की तरह हैं।

सयोगी यावत् काययोगी आहारककी तरह है। अयोगी अचरम हैं। साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी अनाहारक की तरह चरम और अचरम हैं। सवेदक यावत् नपुंसकवेदक

आहारककी तरह है। अवेदक चरम है। सशरीरी यावत् कार्मण शरीरवाले आहारककी तरह है। अशरीरी चरम हैं।

पांच पर्याप्तिकी अपेक्षा पर्याप्त और पांच अपर्याप्तिकी अपेक्षा अपर्याप्त एक या अनेक, आहारककी तरह हैं।

चरम और अचरमका स्वरूप इसप्रकार है :—जो जीव जिस भावको पुनः प्राप्त करेगा, उस भावकी अपेक्षासे वह अचरम कहा जाता है, और जिस भावका जिस भावसे एकान्त वियोग हो जाता है वह चरम कहा जाता है।

अठारहवां शतक

द्वितीय उद्देशक

[कार्तिक श्रेष्ठि—देखो चारित्र खण्ड]

अठारहवां शतक

तृतीय उद्देशक

तृतीय उद्देशकमें वर्णित विषय

[पृथ्वीकायिक जीव और मुक्ति, निर्जरा-पुद्गल, बध और उसके भेद, कर्म। प्रश्नोत्तर संख्या २०]

(प्रश्नोत्तर नं० ३६-३८)

(५३३) कापोतलेश्यायुक्त पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायसे मरकर तत्क्षण मनुष्य जन्मको प्राप्त कर तथा केवलज्ञान प्राप्त कर अपने सर्व दुखोंका अन्त कर सिद्ध हो सकता है।

कापोतलेश्यी पृथ्वीकायिकके सदृश ही कृष्णलेश्यी और नील-लेश्यी पृथ्वीकायिक भी मनुष्य देह प्राप्त कर सिद्ध-बुद्ध हो सकता है।

उपर्युक्त लेश्याओंवाले पृथ्वीकायिक जीवोंकी तरह ही उपर्युक्त लेश्याओंवाले अप्कायिक तथा वनस्पतिकायिक जीवोंके लिये भी इसीप्रकार जानना चाहिये।

निर्जरा-पुद्गल

(प्रश्नोत्तर नं० ३९-४३)

(५३४) सर्व कर्म वेदन करते हुए, सर्व कर्म निर्जीर्ण करते हुए, सर्व मरणसे मरते हुए, सर्व शरीरों का त्याग करते हुए, चरम कर्म वेदन करते हुए, चरम शरीरका त्याग करते हुए, चरम मरणसे मरते हुए, मारणान्तिक कर्म-वेदन करते हुए, मारणान्तिक कर्म निर्जीर्ण करते हुए, मारणान्तिक मरणसे मरते हुए तथा

मारणान्तिक शरीरका त्याग करते हुए भावितात्मा अनगारके चरम-निर्जरा पुद्गल समग्र लोकमें व्याप्त होकर रहते हैं तथा ये पुद्गल सूक्ष्म होते हैं।

छद्मस्थ मनुष्य इन निर्जरा-पुद्गलोंका परस्परका पृथक्त्व यावत् लघुत्व देख सकते या नहीं; इस संबंधमें इन्द्रियोद्देशक की तरह जानना चाहिये। छद्मस्थोंमें जो उपयोगयुक्त हैं वे पुद्गलोंको जानते, देखते तथा ग्रहण करते हैं। उपयोग-रहित पुद्गलोंको न जानते हैं और न देखते हैं परन्तु इनको आहाररूपमें ग्रहण करते है।

नैरयिक निर्जरा-पुद्गल न जानते हैं और न देखते है परन्तु उनका आहार करते है। यही वात पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक तक जाननी चाहिये।

मनुष्योंमें कितने ही जानते है, देखते हैं तथा आहार करते हैं। कितने ही नहीं जानते व नहीं देखते हैं परन्तु आहार करते हैं। मनुष्य दो प्रकारके है—संज्ञी—मनवाले, और असंज्ञी—विना मनवाले। असंज्ञी जीव निर्जरा-पुद्गल देखते या जानते नहीं परन्तु आहार करते हैं। संज्ञी जीव दो प्रकारके हैं—उपयुक्त और अनुपयुक्त। जो जीव विशिष्ट ज्ञानके उपयोगरहित हैं; वे इन्हें न जानते है और न देखते है परन्तु आहार करते हैं। विशिष्ट ज्ञानधारक जानते, देखते तथा आहार करते हैं।

मनुष्योंके की तरह वैमानिकों के लिये भी जानना चाहिये परन्तु निम्न विशेषान्तर है :—

वैमानिक दो प्रकार के है—मायीमिथ्यादृष्टि ओर अमायी-सम्यग्दृष्टि। मायीमिथ्यादृष्टि देव निर्जरा-पुद्गलोंको जानते व

देखते नहीं परन्तु उनका आहार करते हैं। अमायीसम्यग्दृष्टि भी दो प्रकारके हैं—अनन्तरोपपन्नक और परम्परोपपन्नक। परम्परोपपन्नक भी दो प्रकारके हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त पर्याप्तके भी दो भेद हैं उपयुक्त और अनुपयुक्त। इनमें मात्र उपयुक्त पर्याप्त परम्परोपपन्नक देव ही निर्जरा-पुद्गल जानते, देखते तथा आहार करते हैं, अन्य न जानते हैं और न देखते ही हैं परन्तु आहार करते हैं।

बंध

(प्रश्नोत्तर नं० ४४-५१)

(५३५)बंध दो प्रकारका है—द्रव्यबंध और भावबंध। द्रव्यबंध दो प्रकारका है—प्रयोगबंध और विस्रसाबंध। [1]विस्रसाबंध दो प्रकारका है—सादिविस्रसाबंध और अनादिविस्रसाबंध। प्रयोगबंध दो प्रकारका है—शिथिलबंध और प्रगाढ़बंध।

भावबंध दो प्रकारका है—मूलप्रकृतिबंध और उत्तरप्रकृतिबंध। नैरयिकसे वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंको दोनों ही प्रकारके भावबंध हैं।

कर्मोंकी अपेक्षासे—ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मोंके उपर्युक्त दोनों ही प्रकारके भावबंध वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवोंके होते हैं।

(प्रश्नोत्तर नं० ५२-५३)

(५३६) जिसप्रकार कोई पुरुष किसी आकृति विशेष में खड़ा हो और धनुषको कान तक खींचकर बाण छोड़ दे। आकाश में ऊपर फेंके गये बाणके प्रकंपनमें अन्तर (तीव्र या मंद) होता

1—विस्रसा—बादल आदिका स्वाभाविक बंध विस्रसा बंध कहा जाता है। यह सादि है। धर्मास्तिकाय आदिका परस्पर बंध अनादिविस्रसा है।

जाता है और उसके उन-उन स्वरूप-परिणामोंमें भी अन्तर होता जाता है। उसीप्रकार [1]जीवने पाप-कर्म किया, करता है, और करेगा, में भी प्रभेद है और कर्म-परिणामोंमें भी प्रभेद है।

यह भेद-व्याख्या वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जाननी चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० ५४)

(५३७) नैरयिक जो पुद्गल आहाररूपमें ग्रहण करते हैं उन पुद्गलोंका भविष्यकालमें असंख्येय भाग आहाररूपमें गृहीत होता है और अनन्तवां भाग निर्जीर्ण होता है।

(प्रश्नोत्तर नं० ५५)

(५३८) निर्जराके पुद्गलोंपर कोई भी सोने, बैठने और लोटने में समर्थ नहीं है। क्योंकि ये अनाधार है। अनाधार होनेसे कोई भी इन्हें धारण नहीं कर सकता।

१—जीवके भूतकालमें कृत, वर्तमान कालमें किये जाते और भविष्यकालमें किये जानेवाले कर्मोंमें तीव्र-मंदादि परिणामोंकी अपेक्षासे अन्तर होता है। इसी भावको व्यक्त करनेके लिये फेंके हुए वाणका उदाहरण दिया गया है।

अठारहवाँ शतक

चतुर्थ उद्देशक

चतुर्थ उद्देशकमें वर्णित विषय

[प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य आदि परिभोग में आते भी हैं और नहीं भी, कषायके भेद, युग्म और उसके भेद। प्रश्नोत्तर संख्या ८]

(प्रश्नोत्तर नं० ५६)

(५३६) [1]प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य, प्राणातिपातविरमण यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविवेक, पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, शरीररहित जीव, परमाणु पुद्गल, शैलेशी अनगार स्थूलाकर सर्व कलेवर और द्वीन्द्रियादि जीव आदि दो प्रकारके हैं—जीवद्रव्यरूप और अजीवद्रव्यरूप। इनमें कितने ही जीवके परिभोगमें आते हैं और कितने ही नहीं। प्राणातिपातसे मिथ्या-

---

१—प्राणातिपातादि सामान्यरूपसे दो प्रकारके हैं। किन्तु इनमें प्रत्येक के दो-दो प्रकार नहीं हैं। इनमें पृथ्वीकायादि जीवद्रव्य हैं और अधर्मास्तिकायादि अजीवद्रव्य हैं। हिंसा आदि आत्माका अशुद्ध स्वभाव है और इनसे विरमण होना आत्माका शुद्ध स्वरूप है। अतः ये जीवस्वरूप कहे जा सकते हैं। जब जीव हिंसादि कार्य करता है तब चारित्रमोहनीयकर्मका उदय होता है। इसके द्वारा प्राणातिपातादि जीवके परिभोग में आते हैं। प्राणातिपातविरमण आदि चारित्रमोहनीय कर्मके हेतुभूत नहीं, अतः परिभोगमें नहीं आते। धर्मास्तिकाय आदि चार द्रव्य अमूर्त होनेसे, परमाणु सूक्ष्म होनेसे, शैलेशी अनगार उपदेशादि द्वारा प्रेरणा न करनेसे अनुपयोगी हैं अतः परिभोगमें नहीं आते हैं।

दर्शनशल्य पर्यन्त, पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक, सर्व स्थूलाकार द्वीन्द्रियादि जीव, सर्व जीवोंके परिभोगमें आते हैं। प्राणातिपातविरमणव्रत यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविवेक, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, शरीररहित जीव, परमाणु पुद्गल, और शैलेशी अनगार जीवके परिभोगमें नहीं आते है।

(प्रश्नोत्तर नं० ५७)

(५४०) कषाय चार प्रकारके है। यहाँ प्रज्ञापनासूत्रका सम्पूर्ण कषायपद जानना चाहिये।

युग्म

(प्रश्नोत्तर नं० ५८-६२)

(५४१) युग्म - राशि, चार प्रकारके हैं—कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापर और कल्योज। जिस राशीमें से चार-चार निकालते हुए अन्तमें चार बाकी रहें, वह राशि कृतयुग्म कही जाती है। जिस राशिमें से चार-चार निकालते हुए अन्तमें तीन बाकी रहें उसे त्र्योज कहते है। जिस राशिमें से चार २ निकालते हुए दो बाकी रहें उसे द्वापर और जिसमें एक बाकी रहे उसे कल्योज कहते है।

नैरयिक जघन्य रूपसे कृतयुग्म, उत्कृष्ट रूपसे त्र्योज और जघन्योत्कृष्ट—मध्यरूपमें कदाचित् कृतयुग्म, कदाचित् त्र्योज, कदाचित् द्वापरयुग्म और कदाचित् कल्योजरूप भी है।

इसीप्रकार स्तनितकुमारों तक जानना चाहिये।

वनस्पतिकायिक जघन्य तथा उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा से

अठारहवाँ शतक

पंचम उद्देशक

पंचम उद्देशकमें वर्णित विषय

[विभूषित देव और अविभूषित देव—मनुष्यसे वैमानिक तकके जीवों की अपेक्षा से विचार, महाकर्मयुक्त नैरयिक और अल्पकर्मयुक्त नैरयिक, उदयाभिमुख जीव, देव और इच्छित रूप-विकुर्वण । प्रश्नोत्तर संख्या ८]

(प्रश्नोत्तर नं० ६४-६५)

(५४३) असुरकुमारावास में समुत्पन्न देव दो प्रकारके है—वैक्रिय—विभूषित शरीरवाले और अवैक्रिय—अविभूषित शरीरवाले। विभूषित शरीरवाले असुरकुमार देव दर्शनीय, मनोहर, सुन्दर और आह्लादजनक होते हैं और अविभूषित शरीरवाले देव उस तरहके नहीं होते। उदाहरणार्थ—जिसप्रकार मनुष्य-लोकमें होता है। जैसे—कोई दो पुरुष हैं, इनमें एक पुरुष अलंकारोंसे विभूषित और दूसरा अविभूषित है। दोनों व्यक्तियोंमें अलंकृत पुरुष मनमें आनन्द उत्पन्न करनेवाला तथा मनोहर होता है परन्तु अनलंकृत पुरुष नहीं होता। इसीकारण एक ही असुरकुमारावासमें उत्पन्न होनेपर भी एक देव मनोहर एवं दर्शनीय होता है और एक देव नहीं होता।

इसीप्रकार सर्व असुरकुमारों, वाणव्यन्तरों, ज्योतिष्कों और वैमानिकोंके लिये भी जानना चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० ६६-६७)

(५४४) दो नैरयिकोंमें एक नैरयिक तो महाकर्मयुक्त और यावत महावेदनायुक्त और एक अल्पकर्मयुक्त और यावत् अल्पवेदनायुक्त भी होता है। इसका भी कारण है। नैरयिक दो प्रकार के हैं। मायीमिथ्यादृष्टि और अमायीसम्यग्दृष्टि। इनमें मायी मिथ्यादृष्टि नैरयिक महाकर्मयुक्त यावत् महावेदनायुक्त होते हैं और अमायी सम्यग्दृष्टि अल्पकर्मयुक्त यावत् अल्पवेदना युक्त होते हैं।

इसप्रकार एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंको छोड़कर वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० ६८-६९)

(५४५) जो नैरयिक मरकर तत्क्षण पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिकके भवमें उत्पन्न होने योग्य है; वे मृत्यु समयमें नैरयिकका आयुष्य अनुभव करते हैं और पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकका आयुष्य उदयाभिमुख करते हैं।

इसीप्रकार मनुष्य व वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये भी जानना चाहिये।

जीव जहाँ उत्पन्न होनेवाला है, वहाँका वह आयुष्य उदयाभिमुख करता है और जहाँ है, वहाँका आयुष्य अनुभव करता हैं। जो जीव जहाँ है और पुनः मरकर वहीं अगले भवमें उत्पन्न होनेवाला है तो वह उस भवका आयुष्य उदयाभिमुख करता है और वर्तमान भवका आयुष्य अनुभव करता है।

पृथ्वीकायिकसे मनुष्य-पर्यंत इसीप्रकार जानना चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० ७०-७१)

(५४६) असुरकुमारावासमें समुत्पन्न दो असुरकुमारोंमें एक असुरकुमार इच्छित रूप विकुर्वित कर सकता है और एक नहीं। इसका कारण यह है—असुरकुमार दो प्रकारके हैं—मायीमिथ्यादृष्टिसमुत्पन्न और अमायीसम्यग्दृष्टिसमुत्पन्न। मायीमिथ्यादृष्टिसमुत्पन्न देवको ऋजुरूप विकुर्वित करनेकी इच्छा करने पर वक्ररूप धारण हो जाता है और वक्ररूप धारण करनेकी इच्छा करने पर ऋजुरूप धारण हो जाता है। अमायीसम्यग्दृष्टिसमुत्पन्नको इसप्रकार नहीं होता। वह जैसा चाहता है वैसा ही रूप विकुर्वित होता है।

इसीप्रकार सर्व असुरकुमारों, वाणव्यन्तरों, ज्योतिष्कों और वैमानिकोंके लिये समझना चाहिये।

अठारहवां शतक

षष्ठम उद्देशक

षष्ठम उद्देशकमें वर्णित विषय

[व्यावहारिक और नैश्चयिक नयोंकी अपेक्षाओंसे पदार्थ। प्रश्नोत्तर संख्या ८]

(प्रश्नोत्तर नं० ७२-७९)

(५४७) फणित—प्रवाहित गुड़, व्यावहारिक नयकी अपेक्षासे मधुर और सरस है। नैश्चयिक नयकी अपेक्षासे यह पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध और आठ स्पर्शयुक्त है।

व्यावहारिक नयकी अपेक्षासे भ्रमर काला, और तोता हरा है। नैश्चयिक नयकी अपेक्षासे इनमें पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध और आठ स्पर्श हैं।

इसी तरह लाल मजीठ, पीली हल्दी, श्वेत शंख, सुगंधित कुष्ठ, दुर्गन्धित मयद, कड़वा नीम, तीखी सोंठ, तूरा कोट; खट्टी इमली, मधुर शक्कर, कर्कश वज्र, मृदुल मक्खन, भारी लोहा, हल्का बेरका पता, शीतल वर्फ, उष्ण अग्नि और स्निग्ध तैलके लिये समझना भी चाहिये।

व्यावहारिक नयकी अपेक्षा राख रूक्षस्पर्शयुक्त है परन्तु निश्चयनयकी अपेक्षासे इसमें पांचों वर्ण, पांचों रस, दोनों गंध, व आठों ही स्पर्श हैं।

परमाणु पुद्गल एक वर्ण, एक गंध, एकरस और दो स्पर्शयुक्त है।

द्विप्रदेशिक स्कंध कदाचित् एक वर्ण, एक गंध, एक रस और

दो स्पर्शयुक्त होता है और कदाचित् दो वर्ण, दो गंध, दो रस और तीन या चार स्पर्शयुक्त होता है।

इसीप्रकार तीन प्रदेशिक स्कंध, चार प्रदेशिक स्कंध और पाच प्रदेशिक स्कंधके लिये जानना चाहिये। विशेपान्तर यह है कि तीन प्रदेशिक स्कंध कदाचित् एक वर्ण, कदाचित् दो वर्ण कदाचित् तीन वर्णयुक्त होता है। इस सम्बन्धमें भी इसी-प्रकार रसके लिये भी जानना चाहिये। चतुष्कप्रदेशिकके लिये कदाचित् चार और पांच प्रदेशिकके लिये कदाचित् पांच वर्ण-रस कहने चाहिये। गंध और स्पर्श द्विप्रदेशिककी तरह होते हैं।

पंचप्रदेशिक स्कंधकी तरह असंख्येय प्रदेशिक स्कंधके लिये भी जानना चाहिये।

सूक्ष्मपरिणामवाले अनन्तप्रदेशिक स्कंधके लिये पंचप्रदेशिक स्कन्धकी तरह जानना चाहिये।

वादर—स्थूलपरिणामी अनन्तप्रदेशिक स्कंध कदाचित् एक वर्ण यावत् पांच वर्ण, कदाचित् एक गंध, दो गंध, कदाचित् एक रस यावत् उष्ण रस, कदाचित् चार, पांच छ., सात व आठ स्पर्शयुक्त भी होता है।

अठारहवां शतक

सप्तम उद्देशक

सप्तम उद्देशकमें वर्णित विषय

[केवली और यक्षावेश—खंडन, उपधि, परिग्रह, प्रणिधान, दुष्प्रणिधान, सुप्रणिधान, केवलिप्ररूपित धर्मकी आराधना करनेवाला व्यक्ति, महर्द्धिक देव और रूप-विकुर्वण, देवासुर संग्राम, देव और अनन्त कर्मांशोंका क्षय। प्रश्नोत्तर संख्या २६]

(प्रश्नोत्तर नं० ८०)

(५४८) "निश्चय ही केवली यक्षके आवेशसे आवेष्टित होकर दो प्रकारकी भाषायें—मृषाभाषा और सत्यमृषा—मिश्रभाषा, बोलते हैं।"

अन्यतीर्थिकोंका इसप्रकारका प्ररूपण मिथ्या है। निश्चय ही केवलज्ञानी यक्षके आवेशसे आवेष्टित नहीं होते और न इसप्रकारकी दो भाषाएँ ही बोलते हैं। केवली पाप-व्यापार रहित और किसीको उपघात नहीं पहुँचानेवाली निम्न दो भाषाएँ बोलते हैं—सत्य और असत्यमृषा—सत्य भी नहीं और असत्य भी नहीं।

उपधि

(प्रश्नोत्तर संख्या ८१-८३)

(५४९) [1]उपधि तीन प्रकारकी है—कर्मोपधि, शरीरोपधि, और वाह्यभंडोपकरणोपधि,।

१—जीवन-निर्वाहमें उपयोगी शरीर-वस्त्रादिको उपधि कहा जाता है।

नैरयिकोंको दो प्रकारकी उपधियाँ प्राप्त हैं—कर्मोपधि और शरीरोपधि।

एकेन्द्रियके अतिरिक्त वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवोंको तीनों ही उपधियाँ प्राप्त हैं। एकेन्द्रियोंको कर्मोपधि और शरीरोपधि, ये दो उपधियां प्राप्त हैं।

उपधि तीन प्रकारकी है :—सचित्त, अचित्त और मिश्र।

नैरयिकोंसे वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंको ही तीनों प्रकारकी उपधियाँ प्राप्त हैं।

परिग्रह

(प्रश्नोत्तर नं० ८४-८५)

(५५०) परिग्रह तीन प्रकार का है :—कर्मपरिग्रह, शरीर-परिग्रह और वस्त्रपात्रादिउपकरणपरिग्रह।

नैरयिकों को दो परिग्रह हैं कर्मपरिग्रह और शरीरपरिग्रह। उपधि की तरह ही शेष सर्व वर्णन जानना चाहिये।

प्रणिधान

(प्रश्नोत्तर नं० ८६-९२)

(५५१) प्रणिधान तीन प्रकारका है—मनप्रणिधान, वचन-प्रणिधान और कायप्रणिधान।

नैरयिकों और असुरकुमारों को तीनों प्रणिधान होते हैं। पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय जीवोंको एक-कायप्रणिधान, द्वीन्द्रियसे चतुरिन्द्रिय-पर्यन्त जीवोंको दो—वचनप्रणिधान और कायप्रणिधान होते है। अन्य सर्व जीवोंको तीनों ही प्रणिधान होते हैं।

दुष्प्रणिधान तीन प्रकारका है—मनदुष्प्रणिधान, वचन दुष्प्रणिधान और काय दुष्प्रणिधान।

जिसप्रकार प्रणिधानके विषय मे कहा गया है इसीप्रकार सर्व जीवों के दुष्प्रणिधान भी जानने चाहिये।

सुप्रणिधान तीन प्रकारका है—मनसुप्रणिधान, वचन-सुप्रणिधान और कायसुप्रणिधान।

मनुष्यमें तीनों प्रकारके प्रणिधान होते हैं। इसीप्रकार वैमानिक-पर्यन्त जानना चाहिये।

(५५२) [1]कोई मनुष्य विना जाने, देखे या सुने किसी अदृष्ट, अश्रुत, असंम्मत या अविज्ञात अर्थ, हेतु या प्रश्नके सम्बन्धमें मनुष्योंके मध्य कहता है, वात करता है और प्ररूपित करता है, वह अर्हतोंकी, अर्हत्-प्ररूपित धर्मकी, केवलज्ञानी और केवली-कथित धर्मकी आशातना करता है।

(प्रश्नोत्तर नं० ९३-९६)

(५५३) महर्द्धिक यावत् महासुख-सम्पन्न देव हजार रूप विकुर्वित कर परस्पर संग्राम करने में समर्थ है। ये विकुर्वित देह एक जीवसे संबंधित होते हैं परन्तु अनेक जीवोंसे नहीं। इन देहोंके मध्यमे परस्पर का अन्तर भी एक ही जीवसे सवद्ध होता है। इन अन्तरोंको कोई पुरुष हाथ-द्वारा, पाव-द्वारा अथवा तीक्ष्ण शस्त्र-द्वारा छेदन कर पीड़ा उत्पन्न नहीं कर सकता। आठवें शतकके तृतीय उद्देशक के अनुसार यहाँ सर्व वर्णन जानना चाहिये।

१—मद्रुक श्रावक की भगवान् महावीर द्वारा की गई प्रशंसा। देखो परिशिष्ट चारित्रखण्ड। यह अंश प्रश्नोत्तर नही, परन्तु इसमें सिद्धान्त निहित है अतः यहाँ दिया गया है।

(प्रश्नोत्तर नं० ९७-९९)

(५५४) देवताओं और असुरोंमें संग्राम होता है। जब इनका संग्राम होता है तब देवताओं को तृण, लकड़ी, पल्लव और कंकड़ आदि कोई भी वस्तु, जिसे वे छूएं, वही शस्त्र बन जाती है। असुरकुमारों के स्पर्श मात्रसे ऐसा नहीं होता। इनके पास सदैव विकुर्वित शस्त्ररत्न रहते हैं।

(प्रश्नोत्तर नं० १००-१०१)

(५५५) महान् ऋद्धिसम्पन्न यावत् सुखसम्पन्न देव लवणसमुद्र, धातकीखण्ड द्वीप और यावत् रुचकवर द्वीपके चारों ओर शीघ्र चक्कर मारकर आनेमें समर्थ है। तद् अनन्तर वह अगले द्वीप-समुद्रों तक जाता है परन्तु उनके चारों ओर परिक्रमा नहीं कर सकता।

(प्रश्नोत्तर नं० १०१-१०४)

(५५६) —ऐसे भी देव है जो अनन्त कर्मांशोंको जघन्य एक सो, दो-सो, तीन सो वर्षोंमें और उत्कृष्ट पाचसो वर्षोंमें क्षय करते है।

—ऐसे भी देव हैं जो अनन्त कर्मांशोंको जघन्य एक हजार, दो हजार और तीन हजार वर्षोंमें और उत्कृष्ट पांच हजार वर्षोंमें क्षय करते हैं।

—ऐसे भी देव है जो अनन्त कर्मांशों को जघन्यमें एक लाख, दो लाख और तीन लाख वर्षोंमें और उत्कृष्ट पांच लाख वर्षोंमें क्षय करते हैं।

—अनन्त कर्मांशोंको बाणव्यन्तर एक सो, असुरेन्द्र सिवाय भवनवासी दो सो, असुरकुमार तीन-सो, ग्रह, नक्षत्र और

तारकरूप ज्योतिष्क देव चार सौ, ज्योतिष्क राज चन्द्र और सूर्य पांच सौ, सौधर्म और ईशानकल्पके देव एक हजार, सनत्कुमार और माहेन्द्रके देव दो हजार वर्ष, ब्रह्मलोक और लान्तक के देव तीन हजार वर्ष, महाशुक्र और सहस्रारके देव चार हजार वर्ष, आनत-प्राणत, आरण और अच्युतके देव पांच हजार वर्ष, ग्रैवेयकके एक लाख वर्ष, मध्य ग्रैवेयकके दो लाख वर्ष, ऊपरके ग्रैवेयकके तीन लाख वर्ष, विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजितके देव चार लाख वर्षमें और सर्वार्थसिद्ध के देव पांच लाख वर्षमें क्षय कर सकते है।

अठारहवाँ शतक

उद्देशक ८-९-१०

अष्टम उद्देशक

अष्टम उद्देशकमें वर्णित विषय

[भावितात्मा अनगार और ईर्यापथिकी क्रिया, छद्मस्थ मनुष्य और परमाणु पुद्गल, परमावधिज्ञानी और जानना व देखना, केवलज्ञानी और ज्ञान-दर्शन-प्रयोग । प्रश्नोत्तर संख्या ७] ।

(प्रश्नोत्तर नं० १०५)

(५५७) आगे और बाजुमें युग-प्रमाण भूमि देखकर गमनके करते हुए भावितात्मा अनगारके पाँवके नीचे मुर्गीका बच्चा, बतख का बच्चा या कुलिंगच्छाय—चींटी या सूक्ष्म कीट, आकर मर जाय तो उस अनगारको ईर्यापथिकी क्रिया लगती है साम्परायिकी नहीं। इस सम्बन्धमें [1]सातवें शतक के संवृत उद्देशकके अनुसार जानना चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० १०६-१११)

(५५८) छद्मस्थ मनुष्योंमें परमाणु पुद्गलको कोई जानता है परन्तु देखता नहीं, कोई जानता भी नही और देखता भी नहीं। इसप्रकार द्विप्रदेशिक से लेकर असंख्येय प्रदेशिक स्कंधके लिये जानना चाहिये।

अनन्त प्रदेशिक स्कंधको कोई जानता है परन्तु देखता नहीं,

१—देखो पृष्ठसंख्या २३१ क्रमसख्या २२९

कोई जानता नहीं परन्तु देखता है और कोई जानता भी नहीं और देखता भी नहीं।

छद्मस्थकी तरह अधोऽवधिक—अवधिज्ञानीके लिये अनन्तप्रदेशिक पर्यन्त समझना चाहिये।

*परमावधिज्ञानीका ज्ञान साकार होता है और दर्शन अनाकार होता है अतः वह जिस समय परमाणु पुद्गलको जानता है उस समय देखता नहीं और जिस समय देखता है उस समय जानता नहीं।

इसीप्रकार अनन्तप्रदेशिक स्कंध तक समझना चाहिये।

जिसप्रकार परमावधिज्ञानीके लिये कहा गया है उसी प्रकार केवलज्ञानीके लिये भी समझना चाहिये।

नवम उद्देशक

नवम उद्देशकमें वर्णित विषय

[भवद्रव्यजीव—चउवीस दण्डकीय जीवोंकी दृष्टिसे विचार। प्रश्नोत्तर संख्या ५]

भवद्रव्य नैरयिकादि

(प्रश्नोत्तर नं० ११२-११६)

(५५६) भवद्रव्य नैरयिक हैं। भवद्रव्य[1] नैरयिक उन्हें कहा जाता है जो पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य नैरयिकोंमें उत्पन्न होनेवाले हैं।

इसीप्रकार भवद्रव्य स्तनितकुमार पर्यन्त जानना चाहिये।

---

* यह प्रश्नोत्तर अत्यन्त गम्भीर एवं विचारणीय है।

१—भूत अथवा भावी पर्यायके कारण द्रव्य कहाजाता है।

भवद्रव्य पृथ्वीकायिक हैं। भवद्रव्य पृथ्वीकायिक उन्हें कहते हैं जो तिर्यंच, मनुष्य और देव पृथ्वीकायमें उत्पन्न होनेवाले है।

इसीप्रकार भवद्रव्य अप्कायिक और वनस्पतिकायिक भी जानने चाहिये।

अग्निकाय, वायुकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियमें जो कोई तिर्यंच या मनुष्य उत्पन्न होनेयोग्य हैं वे भवद्रव्य अग्निकायिकादि कहे जाते हैं।

जो नैरयिक, तिर्यंचयोनिक, मनुष्य, देव और पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक, पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिकोंमें उत्पन्न होनेयोग्य हैं वे भवद्रव्य पंचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक कहेजाते हैं।

इसीप्रकार मनुष्यके सम्बन्धमें जानना चाहिये।

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकोंको नैरयिकोंकी तरह जानना चाहिये।

भवद्रव्य नैरयिककी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष है।

भवद्रव्य असुरकुमारकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टमें तीन पल्योपम है।

इसप्रकार स्तनितकुमार तक जानना चाहिये।

भवद्रव्य पृथ्वीकायिककी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सागरोपम है।

इसीप्रकार भवद्रव्य अप्कायिकऔर वनस्पतिकायिककी भी स्थिति जाननी चाहिये।

भवद्रव्य अग्निकायिक, भवद्रव्य वायुकायिक, भवद्रव्य

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियकी स्थिति नैरयिककी तरह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष है।

भवद्रव्य पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक और भवद्रव्य मनुष्यकी जघन्य स्थिति एकमुहूर्त और उत्कृष्ट तैतीस सागरोपम है। भवद्रव्य वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क तथा वैमानिकोंकी स्थिति भवद्रव्य असुरकुमारोंकी तरह है।

दशम उद्देशक

दशम उद्देशकमें वर्णित विषय

[भावितात्मा अनगार और वैक्रियलब्धि, परमाणु पुद्गल और वायुकाय, भूमियां और पुद्गल, यात्रा, यापनीय, अव्याबाध, प्रासुक विहार—व्याख्या, सरिसव, मास और कुलत्था आदि भक्ष्य हैं या अभक्ष्य विविध अपेक्षाओंसे विचार, आत्मा और उसके प्रकार। प्रश्नोत्तर संख्या १९]

(प्रश्नोत्तर संख्या ११७)

(५६०) भावितात्मा अनगार (वैक्रियलब्धिके सामर्थ्यसे) तलवारकी धार अथवा उस्तरेकी धारपर चल सकते हैं। वे वहां न छेदित होते हैं और न भेदित होते हैं। यहां पंचम शतकमें वर्णित परमाणु पुद्गल'सम्बन्धी सर्व वर्णन जानना चाहिये।

(प्रश्नोत्तर नं० ११८-१२०)

(५६१) परमाणु पुद्गल वायुकाय-द्वारा परिव्याप्त है परन्तु वायुकाय परमाणु पुद्गलसे नहीं। इसीप्रकार द्विप्रदेशिक स्कंधसे लेकर असंख्येय प्रदेशिक स्कंध तक समझना चाहिये। अनन्त प्रदेशिक स्कंध द्वारा वायुकाय कदाचित् स्पृष्ट है और कदाचित् नहीं।

(प्रश्नोत्तर नं० १२१)

(५६२) मसक वायुकायके द्वारा स्पृष्ट है परन्तु वायुकाय मसक द्वारा स्पृष्ट नहीं।

(प्रश्नोत्तर नं० १२२)

(५६३) रत्नप्रभा भूमिके नीचे वर्णसे काले, नीले, पीले, लाल और श्वेत, गंधसे-दुर्गन्धित और सुगन्धित, रससे – कड़वे, तीखे, तूरे, खट्टे और मीठे, स्पर्शसे—कोमल, भारी, हल्के, ठण्डे, गर्म, चीकने और रूक्ष द्रव्य अन्योन्यवद्ध, अन्योन्यस्पृष्ट और अन्योन्य सवद्ध है।

इसीप्रकार सातों ही भूमियों, सौधर्मादि विमानों और ईषत् प्राग्भारापृथ्वी पर्यन्त समझना चाहिये।

यात्रा

(प्रश्नोत्तर नं० १२३)

(५६४) [1]तप, नियम, संयम, स्वाध्याय, ध्यान और आवश्यकादि योगोंमें यतना—प्रवृत्ति ही यात्रा है।

यापनीय

(प्रश्नोत्तर न० १२४-१२६)

(५६५) यापनीय दो प्रकारका है :—इन्द्रिययापनीय और नोइन्द्रिययापनीय।

[1]श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय, इन पाच इन्द्रियोंका उपघातरहित आधीन रहना ही इन्द्रिय - यापनीय है।

---

१ सोमिल ब्राह्मण-द्वारा पूछे गये प्रश्नोंके उत्तर। महावीरने स्वयं अपने ऊपर ही घटित कर इनकी व्याख्या की हैं।

क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चारों कषायोंका व्युच्छिन्न होजाना तथा पुनः उदयमें न आना ही नोइन्द्रिय यापनीय है।

अव्याबाध

(प्रश्नोत्तर स० १२७)

(५६६) वात, पित्त, कफ और संनिपातजन्य अनेक प्रकारके शरीर-सम्बन्धी दोषोंका उपशान्त होना तथा पुनः उदयमें न आना ही अव्याबाध है।

विहार

(प्रश्नोत्तर न० १२८)

(५६७) आरामों, उद्यानों, देवकुलों, सभाओं, परबों तथा स्त्री-पशु और नपुंसकरहित वस्तियोंमें निर्दोष और ऐषणीय पीठ, फलक, शैय्या और संस्थारक प्राप्त कर रहना ही प्रासुक विहार है।

सरिसव (सर्षव), मास (माष), कुलत्था

(प्रश्नोत्तर न० १२९-३१)

(५६८) सरिसव भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी। ब्राह्मणशास्त्रों में दो प्रकारके सरिसव कहे गये हैं :—मित्रसरिसव और धान्य-सरिसव। मित्रसरिसव तीन प्रकारके है: - सहजात, सहवर्द्धित और सहपांशुक्रीड़क—धूलमें साथ खेले हुए। ये तीनों प्रकारके सरिसव श्रमण-निर्ग्रन्थोंको अभक्ष्य हैं। धान्य सरिसव दो प्रकार के हैं :—शस्त्रपरिणत और अशस्त्रपरिणत। श्रमण-निर्ग्रन्थोंको अशस्त्रपरिणत सरिसव अग्राह्य हैं और शस्त्रपरिणतमें भी ऐषणीय, याचित, व लब्ध सरिसव ही ग्राह्य है परन्तु अनेषणीय, अयाचित व अलब्ध ग्राह्य नहीं।

श्रमण-निर्ग्रन्थोंको [1]मास (माष) भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी। ब्राह्मण नयसे मास दो प्रकारके हैं :—द्रव्यमास और कालमास। कालमास श्रावणसे आषाढ़ तक बारह प्रकारके हैं। वे इसप्रकार है :—श्रावण, भाद्र, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पोष, माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, जेष्ठ और आषाढ़। कालमास श्रमण-निर्ग्रंथों को अभक्ष्य हैं। द्रव्यमास भी दो प्रकारके हैं :—अर्थमास और धान्यमास। अर्थमास दो प्रकारके हैं :—स्वर्णमास और रौप्य-मास। ये भी श्रमण-निर्ग्रन्थोंको अभक्ष्य हैं। धान्यमास भी दो प्रकारके हैं :—शस्त्रपरिणत और अशस्त्रपरिणत। श्रमण-निर्ग्रन्थों को शस्त्रपरिणत ऐषणीय, याचित और प्राप्त द्रव्यमास ही ग्राह्य हैं।

कुलत्था भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी। ब्राह्मणशास्त्रोंके अनुसार कुलत्था दो प्रकारकी है :—स्त्रीकुलत्था और धान्य-कुलत्था। स्त्रीकुलत्था तीन प्रकारकी है :—कुलकन्यका, कुलवधू, और कुलमाता। ये श्रमण-निर्ग्रन्थोंको अभक्ष्य हैं। धान्यसरि-सवके वर्णन अनुसार धान्यकुलत्था श्रमण-निर्ग्रन्थोंको भक्ष्य है।

(प्रश्नोत्तर नं० १३२)

(५६६) [1]आत्मा द्रव्यरूपसे एक व ज्ञान और दर्शनरूपसे दो प्रकारकी है। आत्म-प्रदेशरूपसे यह अक्षय, अव्यय और अवस्थित है। उपयोगकी अपेक्षा अनेक भूत, वर्तमान और भावी परिणाम योग्य भी है।

१—महावीर स्वयं अपने पर ही घटित कर यह सिद्धान्त प्ररूपित कर रहे हैं उसीका भावानुवाद है। वे कहते हैं—द्रव्यरूपसे मैं एक, ज्ञान और दर्शनरूपसे दो प्रकारका हूँ। प्रदेशरूपसे मैं अक्षय, अव्यय और अवस्थित हूँ। उपयोगकी अपेक्षासे मैं अनेक भूत, वर्तमान और भावी परिणामयोग्य हूँ।

उन्नीसवाँ शतक

प्रथम-द्वितीय-तृतीय उद्देशक

प्रथम-द्वितीय उद्देशक

(प्रश्नोत्तर नं० १-२)

(५७०) लेश्यायें छः है। जीवोंको कितनी लेश्यायें होती हैं; इस सम्बन्धमें प्रज्ञापना सूत्रसे लेश्या सम्बन्धी वर्णन जानना चाहिये।

तृतीय उद्देशक

तृतीय उद्देशकमें वर्णित विषय

[पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय जीवोंके सम्बन्धमें आहार, लेश्या, समुद्घात, और अवगाहना आदिकी अपेक्षाओंसे विचार। पृथ्वीकायिक जीव और उनकी अवगाहना—उदाहरण। प्रश्नोत्तर संख्या ३२]

पृथ्वीकायिकादि

(प्रश्नोत्तर नं० ३-३२)

(५७१) दो, तीन या चार पृथ्वीकायिक एकत्रित होकर एक साधारण शरीर बाधकर आहार करते हों या परिणत करते हों; ऐसा नहीं। प्रत्येक पृथ्वीकायिक अलग २ आहार करता है और अलग-अलग परिणत करता है। वह अलग ही अपना शरीर भी निर्माण करता है।

पृथ्वीकायिक जीवोंमें चार लेश्यायें होती है—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या और तेजोलेश्या। ये जीव मिथ्या-दृष्टि हैं परन्तु सम्यगदृष्टि या मिश्रदृष्टि नहीं। ये ज्ञानी नहीं परन्तु अज्ञानी हैं। इनमें मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान दोनों है।

पृथ्वीकायिक मनयोगी या वचनयोगी नहीं होते परन्तु काययोगी होते है। इन्हें साकार और निराकार दोनों प्रकार का उपयोग होता हैं। ये द्रव्यापेक्षासे अनन्त प्रदेशात्मक पुद्गलोंका आहार करते हैं और आत्म-प्रदेशों-द्वारा आहार ग्रहण करते हैं। ये जो पदार्थ आहार रूपमें ग्रहण करते है वह चय और उपचय होता है तथा शरीरेन्द्रियरूपमें परिणत भी होता है। जो पदार्थ आहाररूपमें ग्रहणमें नहीं आता वह चय-उपचय नही होता। "हम आहार करते है" इसप्रकारकी पृथ्वी-कायिक जीवोंको मन या वचनसे संज्ञा या प्रज्ञा नहीं होती परन्तु वे आहार अवश्य करते हैं। इन्हें 'हम इष्ट या अनिष्ट स्पर्श अनुभव करते है" इसप्रकारकी मन-वचनके द्वारा प्रतिपत्ति नहीं होती है परन्तु स्पर्शका अनुभव अवश्य करते है।

पृथ्वीकायिक जीव भी प्राणातिपातादि अठारह पापस्थानोंमें लिप्त है। अन्य जीव जो इनकी हिंसा करते है इन्हें उनका ज्ञान नही होता।

पृथ्वीकायिक जीव नैरयिकोंसे आकर उत्पन्न नही होते है परन्तु तिर्यंचयोनिकों, मनुष्यों और देवलोकोंसे आकर उत्पन्न होते है। प्रज्ञापनासूत्रके व्युत्क्रान्तिपदके अनुसार पृथ्वीकायिकों का उत्पाद जानना चाहिये।

पृथ्वीकायिक जीवोंकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति बाईस हजार वर्ष है। इनके तीन समुद्घात हैं—वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणान्तिक समुद्घात। ये मारणान्तिक समुद्घात द्वारा भी मृत्यु प्राप्त होते है और विना समुद्घातके भी। पृथ्वीकायिक मरकर कहाँ

जाते हैं, इस सम्बन्धमें प्रज्ञापनाके व्युत्क्रान्तिपदके अनुसार उद्वर्तन जानना चाहिये।

अप्‌कायिक, तैजसकायिक और वायुकायिकके सम्बन्धमें भी उपर्युक्त सर्व वर्णन जानना चाहिये परन्तु इनमें निम्न विशेषान्तर है :—

अप्‌कायिककी उत्कृष्ट स्थिति सात हजार वर्ष है। [1]अग्नि-कायिकोंके उपपात, स्थिति एवं उद्वर्तनमें अन्तर है। वायुकायिकोंको भी अग्निकायिकोंकी तरह जानना चाहिये। वायुकायिकोंमें विशेषान्तर यह है कि इन्हें चार समुद्घात होते हैं।

चार या पांच वनस्पतिकायिक जीव एकत्रित होकर एक साधारण शरीर नहीं बांधते परन्तु अनन्त वनस्पतिकायिक जीव एकत्रित होकर एक साधारण शरीर बांधते हैं। तदनन्तर वे आहार करते हैं तथा परिणत करते हैं।

शेष सर्व वर्णन अग्निकायिकोंकी तरह जानना चाहिये। निम्न विशेषान्तर है।

ये नियमतः छः दिशाओंसे आहार करते हैं। इनकी जघन्य व उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त है।

सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त पृथ्वीकायिकों, अप्-कायिकों, वायुकायिकों और वनस्पतिकायिकोंमें जघन्य एवं उत्कृष्ट अवगाहनाकी विशेषाधिकता निम्न प्रकार हैं :—

१—तैजसकायिक जीव तिर्यंच और मनुष्योंसे आकर उत्पन्न होते हैं। इनकी उत्कृष्ट स्थिति तीन अहोरात्रि है। वे यहांसे च्युत होकर तिर्यंच-योनिकोंमें ही उत्पन्न होते हैं। पृथ्वीकायिकोंमें जहाँ चार लेश्यायें होती हैं वहाँ इनमें तीन लेश्यायें ही होती हैं।

अपर्याप्त सूक्ष्म निगोदकी जघन्य अवगाहना सबसे अल्प है। अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिककी जघन्य अवगाहना इससे असंख्येय गुणित है; इससे अपर्याप्त सूक्ष्म अग्निकायिककी जघन्य अवगाहना असंख्येयगुणित है; इससे अपर्याप्त सूक्ष्म अप्-कायिककी असंख्येयगुणित है; इससे अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वी-कायिककी असंख्येयगुणित है; इससे अपर्याप्त बादर वायु-कायिककी जघन्य अवगाहना असंख्येयगुणित है; इससे अपर्याप्त अग्निकायिक, पर्याप्त बादर अप्कायिक तथा अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिककी जघन्य अवगाहना उत्तरोत्तर असंख्येय-गुणित है; अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिककी अवगाहनासे पर्याप्त प्रत्येकशरीरी बादर वनस्पतिकायिक और निगोदकी जघन्य अवगाहना असंख्येगुणित है तथा दोनोंमे परस्पर समान हैं। सूक्ष्म पर्याप्त निगोदकी जघन्य अवगाहना असंख्येयगुणित और इससे सूक्ष्म निगोदकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है; इससे पर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिककी जघन्य अवगाहना असंख्येय गुणित है; इससे अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है; इससे पर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिककी उत्कृष्ट अव-गाहना विशेषाधिक है।

इसप्रकार वायुकायिककी तरह पर्याप्त अग्निकायिककी जघन्य अवगाहना असंख्येय गुणित और इससे अपर्याप्त सूक्ष्म अग्नि-कायिककी उत्कृष्ट अवगाहना और पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना उत्तरोत्तर विशेषाधिक है।

इसीप्रकार सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, बादर वायुकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अप्कायिक और बादर

पृथ्वीकायिकके सम्बन्धमें जानना चाहिये। इन सबोंको इसीप्रकार त्रिविध-त्रिविध प्रकारसे कहना चाहिये। इससे पर्याप्त वादर निगोदकी जघन्य अवगाहना असंख्येय गुणित है ; इससे अपर्याप्त निगोदकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेपाधिक है ; इससे पर्याप्त वादर निगोदकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेपाधिक है ; इससे प्रत्येकशरीरी पर्याप्त वादर वनस्पतिकायिककी जघन्य अवगाहना असंख्येय गुणित है ; इससे प्रत्येकशरीरी अपर्याप्त वादर वनस्पतिकायिककी उत्कृष्ट अवगाहना असंख्येय गुणित है। इससे प्रत्येकशरीरी व वादर वनस्पतिकायिककी उत्कृष्ट अवगाहना असंख्येय गुणित है।

पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिकमें वनस्पतिकायिक जीव सवसे सूक्ष्म और सूक्ष्मतर हैं।

पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक में वायुकायिक सवसे सूक्ष्म और सूक्ष्मतर हैं।

पृथ्वीकायिक, अप्कायिकऔर अग्निकायिकमें अग्निकायिक सवसे सूक्ष्म और सूक्ष्मतर हैं।

पृथ्वीकायिक और अप्कायिकमें अप्कायिक सूक्ष्म और सूक्ष्मतर हैं।

पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिकमें वनस्पतिकायिक सवसे वादर और वादर तर हैं। वनस्पतिकायको छोड़कर चारमें पृथ्वीकाय, पृथ्वीकायको छोड़कर तीनमें अप्काय, अप्कायको छोड़कर दो में तेजसकाय, वादर और वादरतर है।

अनन्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिकों के जितने शरीर होते हैं उतना एक सूक्ष्म वायुकायिकका शरीर है। असंख्येय सूक्ष्म वायु-कायिकोंके जितने शरीर होते हैं उतना एक सूक्ष्म अग्निकायिक का शरीर है। असंख्येय सूक्ष्म अग्निकायिकोंके जितने शरीर होते हैं उतना एक सूक्ष्म अपूकायिकका शरीर है। असंख्येय सूक्ष्म अपू-कायिकोंके जितने शरीर होते हैं उतना एक सूक्ष्म पृथ्वीकायिक का शरीर है। असंख्येय सूक्ष्म पृथ्वीकायिकोंका जितना शरीर होता है उतना एक बादर वायुकायिक का शरीर है। असंख्येय बादर वायुकायिकों के जितने शरीर होते हैं उतना एक बादर अग्निकायिकका शरीर है। असंख्येय बादर अग्निकायिकों के जितने शरीर होते है उतना एक बादर अपूकाय का शरीर होता है। असंख्येय बादर अपूकायिकोंके जितने शरीर होते है उतना एक बादर पृथ्वीकायिक का शरीर है।

जिसप्रकार किसी चारों दिशाओंके अधीश्वर—स्वामी, चक्रवर्ती सम्राटकी चन्दन घिसनेवाली दासी जो युवा, बलिष्ट, युगवान्—सुषमादि कालमें समुत्पन्न, स्वस्थ तथा योग्यवय है। वह चूर्ण पीसनेकी वज्रशिला पर वज्रमय कठिन पाषाण द्वारा लाखके पिण्ड ऊसे एक पृथ्वीकायिक पिण्डको बार-बार इकट्ठा कर-करके तथा थोड़ा-थोड़ा करके इक्कीस बार पीसे। तो भी कितने ही पृथ्वीकायिक जीवोंका तो उस शिला और बांटने के पत्थरसे मात्र स्पर्श होता है और कितनों ही का स्पर्श भी नहीं होता, कितनों ही का संघर्ष होता है और कितनों ही का संघर्ष तक नहीं होता। कितनोंहीको पीड़ा होती हैं कितनों ही को पीड़ा भी नहीं होती। कितने ही मर जाते है और कितने ही मरते तक

नहीं। कितने ही पीसा जाते हैं और कितने ही पीसाते तक नहीं। पृथ्वीकायिक की अवगाहना कितनी होती है; इस उदाहरण द्वारा अनुमान की जा सकती है।

पृथ्वीकायकी पीड़ा

(प्रश्नोत्तर नं० ३३-३४)

(५७२) जिसप्रकार कोई युवक और वलिष्ट पुरुष जो कलासें अत्यन्त पारंगत है, वह किसी जर्जरित, जीर्ण शरीर दुर्वल और ग्लान व्यक्तिके मस्तकमें अपने दोनों हाथोंसे चोट करे तो उस पुरुषको अत्यन्त पीड़ा होती है उसीप्रकार पृथ्वी-कायिक जब दबते हैं तो उस पुरुष की पीड़ासे भी अधिक असहनीय वेदनाका उन्हें अनुभव होता है।

जिसप्रकार पृथ्वीकायिक की पीड़ाके संबंधमें कहा गया है उसीप्रकार शेष अपकायिकादि एकेन्द्रिय जीवों के लिये भी समझना चाहिये।

उन्नीसवां शतक

उद्देशक ४—७

वर्णित विषय

[चउवीस दण्डकीय जीव और आश्रव, क्रिया, वेदना और निर्जराकी अपेक्षासे विचार, चरमायुषी और परमायुषी, वेदनाके प्रकार, देवताओंके भवनावास। प्रश्नोत्तर संख्या ३२]

चतुर्थ उद्देशक

नैरयिकादि

(प्रश्नोत्तर नं० ३५-५२)

(५७३)[1]नैरयिक महाआश्रवयुक्त, महाक्रियायुक्त, महावेदनायुक्त, और अल्पनिर्जरायुक्त है। असुरकुमार महाआश्रवयुक्त, महाक्रियायुक्त, अल्पवेदनायुक्त तथा अल्पनिर्जरायुक्त हैं। इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त समझना चाहिये। पृथ्वीकायिक महाआश्रवयुक्त, महाक्रियायुक्त, महावेदनायुक्त और महानिर्जरायुक्त तथा अल्पआश्रवयुक्त, अल्पक्रियायुक्त, अल्पवेदनायुक्त और अल्प निर्जरायुक्त भी है।

पृथ्वीकायिकके सदृश ही मनुष्य पर्यन्त जानना चाहिये।

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क व वैमानिक असुरकुमारोंके सदृश है।

पंचम उद्देशक

(प्रश्नोत्तर नं० ५३-५५)

(५७४) नैरयिकोंमें चरम—अल्पायुषी और परम—दीर्घायुषी नैरयिक होते है। चरम नैरयिकोंकी अपेक्षा परम नैरयिक महाकर्म

१—यहां अल्पत्व और वहुत्वकी अपेक्षा १६ भंग होते हैं।

युक्त, महाक्रियायुक्त, महाआश्रवयुक्त, महावेदनायुक्त हैं तथा परम नैरयिकोंकी अपेक्षा चरम नैरयिक अल्पकर्मयुक्त, अल्पआश्रवयुक्त व अल्पवेदनायुक्त हैं। आयुष्यके अनुसार ऐसा कहा गया है।

असुरकुमार भी चरमायुषी तथा परमायुषी होते हैं परन्तु यहां परमायुषी असुरकुमार चरमायुषी असुरकुमारोंकी अपेक्षा अल्पकर्मयुक्त होते हैं और चरमायुषी परमायुषीकी अपेक्षा महा-कर्मयुक्त होते हैं।

इसीप्रकार अन्य सर्व भवनवासियों, वाणव्यन्तरों, ज्योतिष्कों और वैमानिकोंके लिये जानना चाहिये।

पृथ्वीकायिक लेकर मनुष्य-पर्यन्त जीव नैरयिकोंकी तरह हैं।

वेदना

(प्रश्नोत्तर संख्या ५६-५७)

(५७५) वेदना दो प्रकारकी है—निदा—ज्ञानपूर्वक वेदना और अनिदा—अज्ञानपूर्वक वेदना।

[1]नैरयिकादि जीवोंको कैसी वेदना होती है वह सर्व प्रज्ञापना सूत्रके अनुसार जानना चाहिये।

१—नैरयिक दोनों प्रकारकी वेदना अनुभव करते हैं। जो संज्ञीसे आकर उत्पन्न होते हैं उन्हें निदावेदना होती है और जो असंज्ञीसे आकर उत्पन्न होते हैं उन्हें अनिदा वेदना होती है। पृथ्वीकायिकसे चतुरिन्द्रिय पर्यन्त जीवोंको मात्र अनिदा वेदना होती है। तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों को दोनों प्रकारकी वेदनायें होती हैं। असुरकुमार आदि भवनवासियों, वाणव्यन्तरों, ज्योतिष्कों और वैमानिकोंको भी दोनों प्रकारकी वेदनायें हैं। कारण भिन्न २ हैं।

षष्ठम उद्देशक

(प्रश्नोत्तर नं० ५८)

(५७६) द्वीप और समुद्र कहां है, कितने हैं, किस आकारके है, इस सम्बन्धमें जीवाभिगम सूत्रमें वर्णित ज्योतिष्क मंडित उद्देशकको छोड़कर द्वीप-समुद्रोद्देशक जानना चाहिये।

सप्तम उद्देशक

(प्रश्नोत्तर नं० ५९-६६)

(५७७) असुरकुमारोंके चौंसठ लाख भवनावास है। ये भवनावास सर्वरत्नमय, स्वच्छ, चिक्कण तथा सुन्दर है। वहा अनेक जीव और पुद्गल उत्पन्न होते है, विनाश पाते है, च्युत होते हैं तथा उत्पन्न होते हैं। ये भवन द्रव्यार्थिक रूपसे शाश्वत और वर्णपर्यायकी-अपेक्षा अशाश्वत है।

इसीप्रकार स्तनितकुमारोंके भवनावास जानने चाहिये।

वाणव्यन्तरोंके भूमिके अन्तर्गत असंख्येय नगर है। शेष उपर्युक्त वर्णन। ज्योतिष्कों और वैमानिकोंके असंख्येय लाख विमानावास हैं। ये सर्व विमानावास स्फटिकमय तथा स्वच्छ है। शेष पूर्ववत्।

सौधर्मकल्पमे बत्तीस लाख विमानवास है। ये सर्व विमान रत्नमय तथा स्वच्छ है। शेष पूर्ववत्।

इसीप्रकार अनुत्तर विमान तक जानना चाहिये। पर यहा जितने विमान है उतने कहने चाहिये।

निर्वृत्ति है—ज्ञानावरणीय कर्मनिर्वृत्ति यावत् अन्तरायकर्म निर्वृत्ति।

वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके ये कर्म-निर्वृतियां जाननी चाहिये।

शरीरनिर्वृत्ति पांच प्रकारकी है—औदारिकशरीरनिर्वृत्ति यावत् कार्मणशरीरनिर्वृत्ति।

पृथ्वीकायिकसे वैमानिकपर्यन्त जिस-जिस जीवके जितने शरीर हैं उसके उतनी ही शरीरनिर्वृत्तियां जाननी चाहिये।

सर्वेन्द्रियनिर्वृत्ति पांच प्रकारकी है—श्रोत्रेन्द्रियनिर्वृत्ति यावत् स्पर्शेन्द्रियनिर्वृत्ति।

वैमानिक-पर्यन्त जिसके जितनी इन्द्रिया हैं उसको उतनी ही सर्वेन्द्रियनिर्वृत्ति जाननी चाहिये।

भाषानिर्वृत्ति पांच प्रकारकी है—सत्यभाषानिर्वृत्ति, मृषाभाषानिर्वृत्ति, सत्यमृषाभाषानिर्वृत्ति और असत्यामृषाभाषानिर्वृत्ति।

वैमानिक-पर्यन्त एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियके अतिरिक्त जिस जीवको जितनी भाषाएँ हैं उसको उतनी ही भाषानिर्वृत्ति जाननी चाहिये।

मनोनिर्वृत्ति चार प्रकारकी है—सत्यमनोनिर्वृत्ति यावत् असत्याऽमृषामनोनिर्वृत्ति।

इसप्रकार एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियके छोड़कर वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना चाहिये।

कषायनिर्वृत्ति चार प्रकारकी है—क्रोधकषायनिर्वृत्ति यावत् लोभकषायनिर्वृत्ति।

वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंको सर्व निर्वृत्तियां जाननी चाहिये।

वर्णनिर्वृत्ति पाच प्रकारकी है—कृष्णवर्णनिर्वृत्ति यावत् श्वेतवर्णनिर्वृत्ति। इसप्रकार दो प्रकारकी गंधनिर्वृत्ति, पांच प्रकारकी रसनिर्वृत्ति और आठप्रकारकी स्पर्शनिर्वृत्ति वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंको जाननी चाहिये।

संस्थाननिर्वृत्ति छः प्रकारकी है—समचतुस्र संस्थाननिर्वृत्ति यावत् हुण्डसंस्थाननिर्वृत्ति।

नैरयिकोंके हुण्डसंस्थाननिर्वृत्ति, असुरकुमारोंके समचतुरस्र संस्थाननिर्वृत्ति, पृथ्वीकायिकोंके मसूर या चन्द्राकार संस्थान-निर्वृत्ति होती है।

इसप्रकार वैमानिक-पर्यन्त जिसके जो संस्थान है, उसके वह निर्वृत्ति जाननी चाहिये।

संज्ञानिर्वृत्ति चार प्रकारकी है—आहारसंज्ञानिर्वृत्ति यावत् परिग्रहसंज्ञानिर्वृत्ति।

इसप्रकार वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जाननी चाहिये।

लेश्यानिर्वृत्ति छः प्रकारकी है—कृष्णलेश्यानिर्वृत्ति यावत् शुक्ललेश्यानिर्वृत्ति।

इसप्रकार वैमानिक-पर्यन्त जिसको जितनी लेश्यायें हैं उसको उतनी लेश्यानिर्वृत्तियां जाननी चाहिये।

दृष्टिनिर्वृत्ति तीन प्रकारकी है—सम्यग्दृष्टिनिर्वृत्ति, मिथ्यादृष्टिनिर्वृत्ति और सम्यग्मिथ्यादृष्टिनिर्वृत्ति।

इसप्रकार वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंको जिसके जितनी दृष्टियाँ हैं उतनी दृष्टिनिर्वृत्ति जाननी चाहिये।

ज्ञाननिर्वृत्ति पांच प्रकारकी है—आभिनिबोधिक ज्ञान-निर्वृत्ति यावत् केवलज्ञाननिर्वृत्ति।

एकेन्द्रियको छोड़कर वैमानिक-पर्यन्त जिसको जितने ज्ञान है उसको उतनी ही ज्ञाननिर्वृत्तियाँ जाननी चाहिये।

अज्ञाननिर्वृत्ति तीन प्रकारकी है—मतिअज्ञाननिर्वृत्ति, श्रुतअज्ञाननिर्वृत्ति, विभंगज्ञाननिर्वृत्ति।

इसप्रकार वैमानिक-पर्यन्त जिसको जितने अज्ञान है उसके उतनी अज्ञाननिर्वृत्तियाँ जाननी चाहिये।

योगनिर्वृत्ति तीन प्रकारकी है—मनयोगनिर्वृत्ति, वचन-योगनिर्वृत्ति और काययोगनिर्वृत्ति।

वैमानिक-पर्यन्त जिसके जितने योग होग होते हैं उसके उतनी ही योगनिर्वृत्तियाँ जाननी चाहिये।

उपयोगनिर्वृत्ति दो प्रकारकरकी है—साकारोपयोगनिर्वृत्ति, निराकारोपयोगनिर्वृत्ति।

इसप्रकार वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना चाहिये।

उन्नीसवां शतक

उद्देशक ९—१०

नवम उद्देशक

नवम उद्देशकमें वर्णित विषय

[करण और उसके प्रकार। प्रश्नोत्तर संख्या ८]

करण और उसके भेद

(प्रश्नोत्तर नं० ९१-९८)

(५७६) करण पांच प्रकारके हैं—द्रव्यकरण, क्षेत्रकरण, कालकरण, भवकरण और भावकरण।

नैरयिकसे लेकर वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवोंको पांचों ही प्रकारके करण होते हैं।

शरीरकरण पांच प्रकारका है—औदारिकशरीरकरण यावत् कार्मणशरीरकरण।

इसप्रकार वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानने चाहिये। जिसके जितने शरीर हों उसके उतने ही करण होते हैं।

इन्द्रिय करण पांच प्रकारका है—श्रोत्रेन्द्रियकरण यावत् स्पर्शेन्द्रिय करण।

इसप्रकार वैमानिक-पर्यन्त जानना चाहिये। जिस जीवके जितनी इन्द्रियां हैं उसके उतने ही करण होते हैं।

इसीक्रमसे चारप्रकारका भाषाकरण, चारप्रकारका मनकरण,

१—क्रियाके साधनको तथा करनेको भी करण कहा जाता है।

चारप्रकारका कषायकरण, सातप्रकारका समुद्घातकरण, चार-प्रकारका संज्ञाकरण, छः प्रकारका लेश्याकरण, तीन प्रकारका दृष्टिकरण, तीन प्रकारका वेदकरण, नैरयिकसे लेकर वैमानिके पर्यन्त सर्व जीवोंके, जिसको जितने है, उतने जानने चाहिये।

प्राणातिपातकरण पांच प्रकार है एकेन्द्रिय प्राणातिपात-करण यावत् पचेन्द्रिय प्राणातिपातकरण।

इसप्रकार वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना चाहिये।

पुद्गलकरण पाच प्रकारका है :—वर्णकरण, गंधकरण, रसकरण, स्पर्शकरण और संस्थानकरण।

वर्णकरण—कृष्णवर्णकरण आदि पाच प्रकारका, गन्धकरण दो प्रकारका, रसकरण पांच प्रकारका और स्पर्श करण आठ प्रकारका है।

संस्थानकरण पाच प्रकारका है—परिमंडलसंस्थानकरण यावत् आयतसंस्थानकरण।

१० उद्देशक

(प्रश्नोत्तर नं० ९९)

(५८०) वाणव्यन्तर समान आहारवाले है या नही, इस सम्बन्धमें सोलहवें शतकके द्वीपकुमारोद्देशकके अनुसार जानना चाहिये।

इसीप्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंके लिये भी जानना चाहिये। मात्र इन्द्रियों और [1]स्थितिमें अन्तर है।

द्वीन्द्रियकी तरह उपर्युक्त सर्व वर्णन पंचेन्द्रियोंके लिये भी जानना चाहिये। विशेषान्तर यह कि इन्हें पाच लेश्याये, सम्यग्, मिथ्या और मिश्र तीनों दृष्टियां, चार ज्ञान और तीन अज्ञान विकल्पसे और तीनों योग होते है।

"हम आहार करते है" इसप्रकारकी प्रतिपत्ति मन, वचनसे कुछ जीवोंको होती है और कुछ जीवों (असंज्ञी) को नहीं। जिन्हें ऐसी प्रतीति होती वे भो आहारकरते है और जिन्हे नहीं होती वे भी आहार करते है। इष्ट रूप, इष्ट गंध, इष्ट रस और इष्ट स्पर्शके बारेमें भी इसीप्रकार जानना चाहिये।

इनमें कितने ही जीव प्राणातिपात आदि १८ पापस्थानोंमे लिप्त हैं और कितने ही नहीं। जिन जीवोंकी हिंसा होती है उनमें वहुतसे जीव यह अनुभव करते है "हम हनन हो रहे है तथा यह हमारा घातक है" और वहुतोंको ज्ञान भी नहीं होता।

इनमे सर्वार्थसिद्ध पर्यन्त सवका उपपात है। जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति तैतीस सागरोपम है। केवलि-समुद्घातके अतिरिक्त शेष छः समुद्घात होते हैं। मरकर सर्वार्थसिद्ध पर्यन्त जाते है।

इन द्वीन्द्रियादि जीवोंमें सवसे अल्प पंचेन्द्रिय जीव हैं। इनसे चतुरिन्द्रिय जीव विशेपाधिक है ; इनसे त्रीन्द्रिय जीव विशेषाधिक और इनसे द्वीन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं।

१—त्रीन्द्रियकी उत्कृष्ट स्थिति उनपचास दिन और चतुरिन्द्रियकी छः मास है। जघन्य स्थिति दोनोंकी अन्तर्मुहूर्त है।

बीसवां शतक

द्वितीय-उद्देशक

द्वितीय उद्देशकमें वर्णित विषय

[आकाश और उसके प्रकार । प्रश्नोत्तर संख्या ८]

(प्रश्नोत्तर नं० ९-१६)

(५८२) आकाश दो प्रकारका है—लोकाकाश और अलोकाकाश। इस सम्बन्धमें द्वितीय शतकके अस्तिउद्देशकके अनुसार सर्व वर्णन जानना चाहिये।

धर्मास्तिकाय लोकरूप, लोकमात्र, लोकप्रमाण और लोकद्वारा स्पर्शित है। यह लोकको अवगाहित कर स्थित है।

अधोलोकने धर्मास्तिकायके कुछ अधिक अर्द्ध भागको अवगाहित कर रखा है। ईपत्प्राग्भारा पृथ्वीने लोकाकाशके असंख्यातवें भागको अवगाहित कर रखा है।

धर्मास्तिकायके अनेक अभिधायक शब्द हैं। वे इसप्रकार हैं :—धर्म, धर्मास्तिकाय, प्राणातिपातविरमण, मृषावादविरमण यावत् परिग्रहविरमण, क्रोधत्याग यावत् मिथ्यादर्शनशल्यत्याग, ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदानभांडमात्रनिक्षेपणसमिति, उच्चारप्रस्रवणखेलजल्लसिंघानक पारिष्ठापनिकका समिति, मनगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति। इसप्रकारके अन्य शब्द भी धर्मास्तिकायके अभिधायक शब्द हैं।

अधर्मास्तिकायके अनेक अभिधायक शब्द हैं। वे इसप्रकार हैं। अधर्म, अधर्मास्तिकाय, प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शन

शल्य, ईर्यासम्बन्धीअसमिति - यावत् उच्चारणप्रस्रवण-पारिष्ठापनिकाअसमिति, मनअगुप्ति, वचनअगुप्ति और कायअगुप्ति। इसप्रकार अन्य शब्द भी अधर्मास्तिकायके अभिधायकब्द है।

आकाशास्तिकायके अनेक अभिधायक शब्द है, वे इस-प्रकार हैं :—

आकाश, आकाशास्तिकाय, गगन, नभ, सम, विषम, खह, विहाय, वीचि, विवर, अंबर, अम्बरस, छिद्र, शुपिर, विमुख, (मुख रहित) अर्द, व्यर्द, आधार, व्योम, भाजन, अन्तरिक्ष, अवकाशान्तर, अगम, स्फटिक।

ये सर्व तथा इसप्रकारके अन्य शब्द भी आकाशास्तिकायके अभिधायक शब्द है।

जीवास्तिकायके अनेक अभिधायक शब्द हैं। वे इसप्रकार है :

जीव, जीवास्तिकाय, प्राण, भूत, सत्त्व, विज्ञ, चेता, जेता, आत्मा, रगण, (रागयुक्त) हिंडुक—गमन करनेवाला, पुद्गल, मानव (नवीन नहीं) कर्ता, विकर्ता, जगत्, जन्तु, योनि, स्वय-भूति, शरीरी, नायक और अन्तरात्मा।

ये सर्व तथा इनके जैसे अन्य शब्द भी जीवास्तिकायके अभिधायक शब्द है।

पुद्गलास्तिकायके निम्न अभिधायक शब्द है :—

पुद्गल, पुद्गलास्तिकाय, परमाणुपुद्गल, द्विप्रदेशिक यावत असंख्येय व अनन्त प्रदेशिक स्कंध।

इसप्रकारके अन्य शब्द भी पुद्गलास्तिकायके अभिधायक है।

बीसवां शतक

तृतीय उद्देशक

तृतीय उद्देशक मे वर्णित विपय

[प्राणातिपातादि आत्मासे अन्यत्र परिणत नहीं होते । प्रश्नोत्तर स०२]

(प्रश्नोत्तर नं० १७)

(५८३) प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य, प्राणातिपात विरमण यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविवेक, औत्पत्तिकी यावत् पारिणामिकी, अवग्रह यावत् धारणा, उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुपाकारपराक्रम, नैरयिकत्व, असुरत्व, यावत् वैमानिकत्व, ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय, कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या, सम्यग्दृष्टि यावत् मिश्रदृष्टि, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन, आभिनिबोधिकज्ञान यावत् विभंगज्ञान, आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, औदारिक शरीर यावत् कार्मणशरीर, मनोयोग, वचनयोग, काययोग, साकार उपयोग और निराकार उपयोग ये सब तथा इनके जैसे अन्य धर्म आत्माके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं परिणत नहीं होते ।

(प्रश्नोत्तर नं० १८)

(५८४) गर्भमें उत्पद्यमान जीव कितने वर्ण, गंध, रस और स्पर्शयुक्त होता है, इस सम्बन्धमे बारहवे शतकके पचम उद्देशकके अनुसार जानना चाहिये ।

चतुर्थ उद्देशक

(प्रश्नोत्तर स० १९)

(५८५) इन्द्रियोपचय पांच प्रकारका है :—श्रोत्रेन्द्रियोपचय आदि । विशेष प्रज्ञापनासूत्रके द्वितीय इन्द्रियोद्देशकके अनुसार जानना ।

बीसवां शतक

पंचम-षष्ठम उद्देशक

पंचम उद्देशकमें वर्णित विषय

[वर्ण-गंधादिकी अपेक्षासे परमाणुपुद्गल और विकल्प । दो-तीन-चार-पांच यावत् अनन्तप्रदेशिक पुद्गल और उनके विकल्प । परमाणु और उसके भेद । प्रश्नोत्तर संख्या १६]

(प्रश्नोत्तर नं० २०-३०)

(५८६) परमाणुपुद्गल एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्शयुक्त है । यदि यह एक वर्णयुक्त हो तो कदाचित् काला, नीला, लाल, पीला, या श्वेत हो । एक गंधयुक्त हो तो कदाचित् सुगंधित या दुर्गन्धि हो । एक रसयुक्त हो तो कदाचित् कड़वा, तीखा, तूरा, खट्टा या मीठा हो । दो स्पर्श हो तो कदाचित् शीत और स्निग्ध, शीत और रूक्ष, ऊष्ण और स्निग्ध, ऊष्ण और रूक्ष हो ।

द्विप्रदेशिक स्कंध कदाचित् एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्शयुक्त होता है और कदाचित् दो वर्ण, दो गध, दो रस और तीन या चार स्पर्शयुक्त होता है ।

द्विप्रदेशिक स्कंधके एक वर्णकी अपेक्षा पांच और द्विक-संयोगीकी अपेक्षा दश भंग होते है । एक गधकी अपेक्षा एक और द्विकसंयोगी दो भंग होते है । रसके वर्णकी तरह एक सयोगी पांच और द्विकसंयोगी दश भंग होते हैं । स्पर्शके द्विकसंयोगी परमाणुकी तरह चार, तीन स्पर्शकी अपेक्षा चार और चार स्पर्शकी अपेक्षा इस तरह नव भंग होते है ।

त्रिप्रदेशिक स्कंधके वर्णके ४५, गंधके ५ रसके ४५, और स्पर्शके २५ भंग होते है।

चतुष्क प्रदेशिक स्कंधके वर्णके ९०, गंधके ६, रसके ९०, स्पर्श, के ३६, भंग होते हैं।

पाच प्रदेशिक स्कंधके वर्णके १४१, गंधके ६, रसके १४१ और स्पर्शके ३६ भंग होते हैं।

छः प्रदेशिक स्कंधके वर्णके १८६, गंधके ६, रसके १८६, स्पर्श के ३६ भंग होते हैं।

सात प्रदेशिक स्कंधके वर्णके २१६, गंधके ६, रसके २१६ और स्पर्शके ३६ भंग होते हैं।

आठ प्रदेशिक स्कंधके वर्णके २३१, गंधके ६, रसके २३१ और स्पर्शके ३६ भंग होते हैं।

नव प्रदेशिक स्कंधके वर्णके २३६, गंधके ६, रसके २३६, और स्पर्शके ३६ भंग होते हैं।

दश प्रदेशिक स्कधके वर्णके २३७, गंधके ६, रसके २३७ और स्पर्शके ३६ भंग होते हैं।

दश प्रदेशिक स्कंधकी तरह संख्येयप्रदेशिक, असंख्येयप्रदेशिक और सूक्ष्म परिणामी अनन्तप्रदेशिक स्कंध जानने चाहिये।

अनन्तप्रदेशिक स्थूलपरिणामी पुद्गल स्कंधके भंग दश-प्रदेशिक स्कंधकी तरह ही वर्ण, गन्ध और रसकी अपेक्षासे होते है परन्तु स्पर्शके भंग इसप्रकार होते हैं। चार स्पर्शके, चतुष्क संयोगीके १६, पाच स्पर्शके, पंचसंयोगी १२८, छः स्पर्शके छः संयोगी ३८४, सातस्पर्शके, सप्तसयोगी ५१२, और आठ स्पर्श के अष्टसंयोगी २५६ भंग होते हैं।

(प्रश्नोत्तर नं० ३१-३५)

(५८७) परमाणु चार प्रकारके हैं—द्रव्यपरमाणु, क्षेत्र-परमाणु, कालपरमाणु और भावपरमाणु।

द्रव्यपरमाणु चार प्रकारका है—अछेद्य, अभेद्य, अदाह्य और अग्राह्य। क्षेत्रपरमाणु चारप्रकारका है—अनर्ध, अमध्य, अप्रदेश और अविभाग। कालपरमाणु चार प्रकारका है :—अवर्ण,अगन्ध, अरस और अस्पर्श। भावपरमाणु चार प्रकारका है :—वर्णयुक्त, गन्धयुक्त रसयुक्त और स्पर्शयुक्त।

षष्ठम उद्देशक

(प्रश्नोत्तर न० ३६-४३)

(५८८) पृथ्वीकायिक जीव रत्नप्रभा पृथ्वी और शर्कराप्रभा भूमिसे मरणसमुद्घात करके सौधर्मकल्पमें पृथ्वीकायिकरूपमें उत्पन्न होते है। वे वहाँ उत्पन्न होकर आहार करते है।

इसप्रकार ईषत्प्राग्भारापृथ्वी-पर्यन्त पृथ्वीकायिक जीवोंका उपपात समझना चाहिये। इसी क्रमसे तमा और तमतमा पृथ्वीसे पृथ्वीकायिक जीवोंके मरणसमुद्घातके सम्बन्ध में भी जानना चाहिये।

इसीप्रकार सौधर्म व ईशान, सानत्कुमार व माहेन्द्रसे पृथ्वीकायिक मरणसमुद्घात करके शर्करापृथ्वीमे पृथ्वी-काय रूपमे उत्पन्न हो सकते है। इसीप्रकार सप्तम भूमि पर्यन्त क्रमशः उपपात जानना चाहिये।

पृथ्वीकायिककी तरह अप्कायिकके लिये जानना चाहिये।

वायुकायिक के लिये सत्रहवें शतक के अनुसार उपपात जानना चाहिये।

बीसवां शतक

सप्तम उद्देशक

(प्रश्नोत्तर नं० ४४-५१)

(५८६) बंध तीन प्रकारका है—जीवप्रयोगबंध; अनन्तर-बंध और परम्परबंध।

वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवों को तीनों बंध होते हैं।

(५६०) ज्ञानावरणीय आदि अष्टकर्म, ज्ञानावरणीयोदय स्त्री आदिवेद,दर्शनमोहनीयकर्म, चारित्रमोहनीयकर्म, औदारिक शरीर यावत् कार्मणशरीर, आहारसंज्ञा यावत् परिग्रहसंज्ञा, कृष्ण-लेश्या यावत् शुक्ललेश्या, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सम्यग् मिथ्यादृष्टि, मतिज्ञान यावत् केवलज्ञान, मतिअज्ञान यावत् विभंगज्ञान, मतिज्ञान के विषय यावत् केवलज्ञान के विषय, मतिअज्ञानके विषय यावत् विभंगज्ञानके विषय आदिके बंध भी तीन प्रकार के हैं। नैरयिक से लेकर वैमानिक पर्यन्त चौवीसों ही दण्डकों के लिये ये भेद समझने चाहिये परन्तु जिसको जो-जो हैं उसे वे-वे ही कहे जाने चाहिये।

वैमानिकों के विभंगज्ञान के भी उपर्युक्त तीनों ही बंध हैं।

बीसवां शतक

अष्टम उद्देशक

अष्टम उद्देशकमें वर्णित विषय

[कर्मभूमियां और अकर्मभूमियां, कर्मभूमिया और तीर्थंकर, भरत-क्षेत्र और वर्तमान चौबीस तीर्थंकर। प्रश्नोत्तर संख्या १६]

(प्रश्नोत्तर नं० ५२-६७)

(५६१) पन्द्रह कर्मभूमियां है—पांच भरत, पाच ऐरावत और पाच महाविदेह।

तीस अकर्मभूमिया हैं—पांच हैमवंत, पांच हैरण्यवत, पांच हरिवर्ष, पांच रम्यक्, पाँच देवकुरु और पाच उत्तरकुरु।

तीस अकर्मभूमियों में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल नहीं है परन्तु कर्मभूमियों में पांच भरत और पांच ऐरावतमे ऊपर्युक्त दोनों प्रकारका काल है। पांच महाविदेहक्षेत्रमें एक ही अवस्थित काल है।

पाच भरत और पांच ऐरावत में प्रथम और अन्तिम अरिहंत भगवन्त पाच महाव्रतयुक्त तथा प्रतिक्रमण सहित धर्मका उपदेश देते है और शेष अरिहंत भगवन्त (तीर्थंकर) चार महाव्रतवाले धर्मका प्ररूपण करते हैं। महाविदेहक्षेत्रमें भी अरिहत भगवन्त चार महाव्रतयुक्त धर्मका उपदेश देते है।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्रमें इस अवसर्पिणी कालमें चौवीस तीर्थंकर हुए है। उनके नाम इसप्रकार है :—ऋृषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, सुप्रभ, सुपार्श्व, शशि—चन्द्रप्रभ, पुष्पदंत—सुविधि, शीतल, श्रेयास, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति, कुंथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व और वर्द्धमान।

इन चौवीस तीर्थंकरोंमें तेवीस अन्तर है। इनमें प्रथम और अन्तिम आठ-आठ जिनान्तरों में कालिकश्रुत विच्छेद नहीं है परन्तु मध्यके सात-सात अन्तरोंमें इसका विच्छेद है। दृष्टिवाद का विच्छेद तो समस्त जिनान्तरोंमें है।

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें इस अवसर्पिणीकालमें कितने ही तीर्थकरोंका पूर्वगत श्रुत संख्येयकाल पर्यन्त और कितने हो तीर्थ-करोंका असंख्येय काल तक रहा है। मेरा (वर्द्धमानका) पूर्व-गत श्रुत एक हजार वर्ष तक तथा तीर्थ इक्कीस हजार वर्ष तक अवस्थित रहेगा। भावी तीर्थकरोंमे अन्तिम तीर्थंकर का तीर्थ कोशल देशके ऋषभदेव अरिहंत के जिनपर्याय जितना (हजार वर्ष न्यून लाख पूर्व) होगा।

अरिहन्त

अरिहंत तीर्थ नहीं परन्तु नियमतः तीर्थकर है, चार प्रकारका श्रमणसंघ—साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका, तीर्थरूप हैं।

अरिहंत नियमतः प्रवचनी हैं और द्वादशांगगणिपिटक प्रवचन हैं। वह इसप्रकार है :—आचारांग यावत् दृष्टिवाद।

उग्रकुल, भोगकुल, राजन्यकुल, इक्ष्वाकुकुल, ज्ञातकुल, और कौरवकुलके सर्व व्यक्ति इस धर्ममें प्रवेश करते है तथा प्रवेश करके आठप्रकारके कर्म-रजमलको धोते हैं। इनमे कितने ही सिद्ध होकर सर्व दुखोंका अन्त करते है और कितने ही देवलोकोंमें देवरूपसे उत्पन्न होते हैं।

बीसवां शतक

नवम उद्देशक

चारण

(प्रश्नोत्तर नं० ६८-७६)

(५६२) चारण दो प्रकारके है :—विद्याचारण व जंघाचारण। निरन्तर छट्ठ तपके द्वारा तथा पूर्वगतश्रुतरूपीविद्या-द्वारा तपोलब्धि प्राप्त मुनियोंको विद्याचारण नामक लब्धि प्राप्त होती है। इससे ये मुनि विद्याचारण कहे जाते है।

जिसप्रकार कोई महर्द्धिक यावत् महा सुखसम्पन्न देव सम्पूर्ण जम्बूद्वीपकी तीन ताली वजाने जितने समयमे ही तीन वार परिक्रमा करके चला आता है उसीप्रकार विद्याचारण मुनियोंकी शीघ्र गति होती है।

विद्याचारणकी तिर्यक् और ऊर्ध्व जानेकी शक्ति इस प्रकार है : –

तिर्यक् में ये प्रथम उत्थान द्वारा मानुषोत्तर पर्वत पर स्थित होते है और वहाँ जाकर तत्रस्थ चैत्योंको वंदन करते है। वहाँसे द्वितीय उत्थान द्वारा नंदीश्वर द्वीपमे पहुचते है और तत्रस्थ चैत्योंको वंदन करते है। तदनन्तर वे यहाँ आकर यहांके चैत्योंको वन्दन करते है।

ऊपर में एक उत्थान द्वारा नंदनवनमें स्थित होते है और वहाँ जाकर तत्रस्थ चैत्योंको वंदन करते है। पश्चात् द्वितीय उत्थान-द्वारा वे पांडुकवनमें पहुॅच जाते है। जहाँ जाकर वे तत्रस्थ चैत्योंको वंदन करते है। पुनः वहांसे लौट कर अत्रस्थ चैत्योंको वंदन करते है।

ये विद्याचारण मुनि यदि गमनागमन सम्बन्धी पाप-स्थानकी आलोचना या प्रतिक्रमण किये बिना ही कालकर जायं तो आराधक नहीं होते। पाप-स्थानकी आलोचना और प्रतिक्रमण करके काल करते हैं तो अराधक होते हैं।

निरन्तर अट्ठतप—तीन उपवास, द्वारा अपनी आत्माको विशुद्ध करते हुए मुनिको जंघाचारण नामक लब्धि उत्पन्न होती है। इस लब्धिकी अपेक्षा वह जंघचारण कहा जाता है।

कोई महर्द्धिक देव तीन ताली बजाते जितने समयमें इक्कीस बार सम्पूर्ण जम्बूद्वीपकी जिस तीव्र गतिसे परिक्रमा करके चला आता है उसी तीव्र गतिसे जंघाचारण मुनि भी गमन करते हैं।

तिर्यक् में जघाचारण मुनि एक उत्थान द्वारा रुचकवर द्वीपमें पहुँच जाते हैं। वहाँके चैत्योंको वंदनकर पुनः दूसरे उत्थान द्वारा नंदीश्वरद्वीपमें पहुंचते हैं। वहाँके चैत्योंको वंदन कर वह यहाँ आकर अत्रस्थ चैत्योंको वंदन करते हैं।

ऊर्ध्वगतिकी अपेक्षा जंघाचारण एक उत्थान द्वारा पाडुकवनमे पहुँच जाते हैं। वहाँके चैत्योंको वंदन कर दूसरे उत्थान द्वारा नन्दनवनमें पहुँच जाते हैं। वहाँके चैत्योंको वंदन कर तथा आकर पुनः अत्रस्थ चैत्योंको वंदन करते हैं। इतनी इनकी ऊर्ध्वगति है।

जंघाचारण मुनि यदि गतिविषयक पापस्थानकी आलोचना या प्रतिक्रमण किये बिना ही कालकर जायं तो आराधक नहीं होते। उस स्थानकी आलोचना करके काल करें तो आराधक होते हैं।

बीसवां शतक

दशम उद्देशक

दशम उद्देशकमें वर्णित विषय

[सोपक्रमायुषी और निरुपक्रमायुषी —चउवीस दंडकीय जीव, जीव और उसका सामर्थ्य, कतिसंचित और अकतिसचितादि जीव – विस्तृत विवेचन । प्रश्नोत्तर संख्या २५]

(प्रश्नोत्तर न० ७७-१०१)

(५६३) जीव सोपक्रमायुषी[1] और निरुपक्रमायुषी दोनों प्रकारके है ।

नैरयिक निरुपक्रम आयुष्यवाले है। सोपक्रम आयुष्यवाले नहीं हैं।

भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक निरुप्रकमायुषी हैं। पृथ्वीकायिकसे मनुष्य पर्यन्त जीव दोनों प्रकारके है ।

नैरयिक आत्मोपक्रम द्वारा, परोपक्रम द्वारा और निरुपक्रम द्वारा उत्पन्न होते है। इसीप्रकार वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिये ।

नैरयिक आत्मोपक्रमद्वारा अथवा परोपक्रमद्वारा उद्वर्तन-मृत्युप्राप्त, नहीं करते परन्तु निरुपक्रम द्वारा उद्वर्तित होते है।

1—जो अप्राप्त समयमें आयुष्य क्षय करते हैं वे सोपक्रमायुषी इसके विपरीत निरुपक्रमायुषी हैं।

भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक भी निरुपक्रमद्वारा उद्वर्तित होते है। ज्योतिष्कों और वैमानिकोंके लिये च्यवन शब्द प्रयोग करना चाहिये।

पृथ्वीकायिकसे लेकर मनुष्य-पर्यन्त सर्व जीव तीनों प्रकारसे उद्वर्तित होते हैं।

नैरयिक अपने सामर्थ्य द्वारा ही उत्पन्न होते हैं, मरते हैं परन्तु दूसरोंके सामर्थ्य द्वारा न उत्पन्न होते और न मरते हैं। इसीप्रकार अपने कर्मो-द्वारा तथा आत्मप्रयोग-द्वारा ही उत्पन्न होते तथा मरते हैं परन्तु दूसरोंके कर्मों तथा प्रयोगों द्वारा न मरते है और न उत्पन्न होते हैं।

इसीप्रकार वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना चाहिये।

नैरयिक कतिसंचित—एक समयमे सख्येय उत्पन्न, अकति-संचित—एक समयमें असंख्येय उत्पन्न और अवक्तव्य संचित—एक समयमें एक ही समुत्पन्न भी है। क्योंकि जो नैरयिक नर्कगति में एक समयमें संख्येय रूपमें प्रवेश करते हैं, वे कतिसंचित हैं। जो नैरयिक असंख्येयरूपमें प्रवेश करते हैं वे अकतिसचित और जो एक-एक करके प्रवेश करते हैं वे अवक्तव्यसंचित कहे जाते हैं।

इसप्रकार पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रियोंको छोड़कर वैमानिक-पर्यन्त जीवोंके लिये जानना चाहिये। पृथ्वीकायिक कतिसचित तथा अवक्तव्यसंचित नहीं है परन्तु अकतिसंचित है। क्योंकि वे एक साथ असंख्येयरूपमें उत्पन्न होते हैं।

सिद्ध कतिसंचित और अवक्तव्यसंचित है परन्तु अकति-सचित नहीं। जो सिद्ध संख्येयरूपसे प्रविष्ट होते है वे कतिसंचित

है और जो सिद्ध एक-एक करके प्रवेश करते है वे अवक्तव्य-संचित हैं।

कतिसचित, अकतिसचित और अवक्तव्यसंचित नैरयिकोंमे अवक्तव्यसचित नैरयिक सबसे अल्प हैं। इनसे संख्येयगुणित कतिसंचित और कतिसंचितसे असख्येय गुणित अकतिसंचित है।

इसीप्रकार एकेन्द्रियको छोड़कर वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवों का अल्पत्वबहुत्व समझना चाहिये। एकेन्द्रियोंमें अल्पत्वबहुतत्व नहीं है।

सिद्धोंमे कतिसंचित सिद्ध सबसे अल्प है, इनसे असख्येय-गुणित अवक्तव्यसंचित सिद्ध है।

नैरयिक एक षट्कसमर्जित—एक साथ छः उत्पन्न, एक नोषट्कसमर्जित—एकसे पाच तक एक साथ समुत्पन्न, एक षट्क या एक नोषट्कसमर्जित, अनेक षट्कसमर्जित, अनेक षट्क और एक नोषट्कसमर्जित भी है। जो नैरयिक एक समयमे छः की सख्यामें प्रविष्ट होते हैं वे षट्कसमर्जित कहे जाते है। जो नैरयिक जघन्य एक दो या तीन व उत्कृष्ट पांचकी संख्यामें प्रविष्ट होते है, उन्हें नोषट्कसमर्जित कहा जाता है। जो नैरयिक एक षट्कसंख्यासे और अन्य एक, दो, तीन या पाचकी संख्यामे प्रविष्ट होते है उन्हे एक षट्कसमर्जित और एक नोषट्क-समर्जित कहा जाता है। शेष भी इसीप्रकार समझने चाहिये।

एकेन्द्रियको छोड़कर वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवों व सिद्धोंके लिये भी इसीप्रकार समझना चाहिये।

पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीव एक षट्कसमर्जित या एक नोषट्कसमर्जित नहीं है परन्तु अनेक षट्कसमर्जित या अनेक षट्क तथा अनेक नोषट्कसमर्जित है।

परिशिष्ट : चारित्रखंड

(छायानुवाद)

[१]

भगवान् महावीर

भगवान् महावीर श्रुतधर्म के आदिकर्ता, तीर्थंकर—स्वयं तत्त्वके ज्ञाता, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुषोंमें श्रेष्ठ कमलके समान, पुरुषोंमें श्रेष्ठ गन्धहस्तिके समान, लोकनाथ, लोकमे प्रदीप के समान, लोकमें प्रद्योत करनेवाले, अभयदान देनेवाले, ज्ञानरूपी नेत्रोंके दाता, धर्म-मार्गके दाता, शरण देनेवाले, बोधि—सम्यक्त्व देनेवाले, धर्मके दाता, धर्मके उपदेशक, धर्मके नायक, धर्मरूपी रथके सारथी, धर्मचातुरंत चक्रवर्ती, अप्रतिहत ज्ञान-दर्शनके धारक, छद्मस्थतारहित, स्वयं राग-द्वेषके विजेता, सकल तत्त्वोंके ज्ञाता, स्वयंबुद्ध, अन्योंको ज्ञान करानेवाले, स्वयं-मुक्त, दूसरोंको मुक्त करनेवाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, शिव—कल्याण-कारक, अचल, रोग-ग्लानि-रहित, अनन्त, अक्षय-अव्याबाध-ज्ञानस्वरूप, पुनरागमन-रहित और सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त करनेकी कामनावाले थे।

शतक १—प्रश्नोत्थान

[२]

इन्द्रभूति गौतम गणधर

इन्द्रभूति अनगार श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ शिष्य थे। ये गौतम गोत्री थे। तप और संयमके द्वारा अपनी आत्मा को सदैव निर्मल रखनेकी चेष्टा करते थे। इनका शरीर सात हाथ ऊँचा और समचतुरस्रसंस्थानयुक्त था। इनके देहका

संघयण – गठन, वज्रऋषभनाराच था। कसौटी पर खींची हुई स्वर्णरेखा के सदृश अथवा पद्म केशरके सदृश इनका गौरवर्ण था। अत्यन्त उग्र तपस्वी, दीप्त तपस्वी, तप्त तपस्वी, महातपस्वी, उदार, घोर – अन्य पुरुषों द्वारा जिसका आचरण न हो सके ऐसे कठिन, आचारयुक्त घोर तपस्वी, घोर—कठिन, ब्रह्मचर्य पालक, शरीर-संस्कारों—आवश्यकताओंको न्यून करने के कारण त्यक्त-शरीरी, संक्षिप्त और विपुल तेजोलेश्यायुक्त, चौदह पूर्वके ज्ञाता, चार ज्ञानके धारक और सर्वाक्षरसन्निपाती—सर्व अक्षररूप ज्ञानके ज्ञाता थे।

प्रथम शतक १—(प्रश्नोत्थान)

भगवान् महावीरका आश्वासन

(केवलज्ञान संप्राप्त न होनेसे खिन्न गौतम गणधरको भगवान् महावीर द्वारा दिया गया आश्वासन।)

हे गौतम! तू बहुत समय से मेरे साथ स्नेहसे संबद्ध है। तू बहुत समय से मेरी प्रशंसा करता आ रहा है। तेरा मेरे साथ चिरकाल से परिचय है। तूने चिरकाल से मेरी सेवा की है, मेरा अनुसरण किया है, कार्यों में प्रवर्तित हुआ है। पूर्व-वर्ती देव भव तथा मनुष्य भवमें भी तेरा मेरे साथ सम्बन्ध रहा है और क्या, मृत्युके पश्चात् भी—इन शरीरोंके नाश हो जानेपर, दोनों समान, एक प्रयोजनवाले तथा भेदरहित (सिद्ध) होंगे।

चौदहवां शतक, उद्देशक ७

[२]

आर्य स्कन्दक

उस समयकी बात है। श्रावस्तीनगरीमें कात्यायन गोत्री गर्दभालनामक परिव्राजकका स्कन्दक परिव्राजक नामक शिष्य रहता था। स्कन्दक ऋग्वेदादि चार वेद, पाचवें इतिहास तथा छट्ठे निघन्टु—कोषका सांगोपांग ज्ञाता था। बार २ मनन करते रहनेसे वह इनके रहस्यका पूर्ण ज्ञाता था तथा होनेवाली गल्तियोंको शीघ्र ही पकड़ लेता था। वह वेदादि शास्त्रोंका पारंगत विद्वान तथा छः अंगोंका ज्ञाता होनेके साथ २ कापिलीय-शास्त्र, गणितशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, आचारशास्त्र, व्याकरण-शास्त्र, छन्दशास्त्र, व्युत्पत्तिशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र आदि अनेक ब्राह्मण तथा परिव्राजकीय नीति तथा दर्शनशास्त्रमें भी अत्यन्त पटु था। उसी श्रावस्तीनगरीमें महावीरका श्रावक (उपदेश सुननेवाला) पिंगलनामक निर्ग्रन्थ रहता था। एकदिन पिंगल निर्ग्रन्थ स्कन्दक परिव्राजकके निवासस्थान पर गया और उससे आक्षेपपूर्वक बोला—हे मागध! क्या लोक सान्त है या अनन्त? क्या जीव सान्त है या अनन्त? सिद्धि सान्त है या अनन्त? सिद्ध सान्त है या अनन्त है? किसप्रकारकी मृत्युसे म्रियमाण जीव घटता तथा बढ़ता है?

अपने प्रश्न उसने दो-तीन वार दुहराये।

पिंगल निर्ग्रन्थके प्रश्न सुनकर स्कन्दक परिव्राजक शंकित—प्रश्नोंका क्या प्रत्युत्तर होगा, कांक्षित—प्रश्नोंका प्रत्युत्तर मुझे किस प्रकार देना चाहिये और विचिकित्सक—अपने

प्रत्युत्तर पर अविश्वासी, हो गया। उसकी बुद्धि कुंठित हो गई तथा वह बहुत क्लेशित हुआ। वह कोई प्रत्युत्तर न देसका तथा मौन धारणकर बैठा रहा।

वैशालिक श्रावक पिंगलने पुनः आक्षेपपूर्वक अपने प्रश्न दो-तीन बार दुहराये परन्तु पूर्ववत् वह कुछ भी प्रत्युत्तर न दे सका।

इसी मध्य निकटस्थ कृतंगलानगरीके बाहर छत्रपलाश चैत्यमें श्रमण भगवान् महावीर पधारे। उनके आगमनका संवाद सुनकर श्रावस्तीनगरीके निवासी उनके दर्शनार्थ उमड़ पड़े। त्रिकमार्ग व चौराहे दर्शनार्थ जानेवाले मनुष्योंसे भर गये। भगवान् महावीरके आगमनकी बात अनेक मनुष्योंसे सुनकर स्कन्दक परिव्राजकके मनमें भी विचार आया कि उसे भी कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप और चैत्यरूप श्रमण भगवान् महावीरके पास जाना चाहिये तथा वन्दन, नमस्कार व सत्कार-सम्मानके साथ पर्युपासनाकर इन प्रश्नोंका समाधान करना चाहिये। यह सोचकर स्कन्दक परिव्राजक अपने तापसोंके मठ में आया और त्रिदण्ड, कमण्डल, रुद्राक्ष माला, (कांचनिका) करोटिका (मिट्टीका पात्र) केसरिका (पोंछनेका कपड़ा) षड्-नालक, अंकुशक, पवित्रक (अंगूठी) गणेत्रिका (कलईपर बांधा जानेवाला तापसोंका आभरण) छत्र, जूते, पादुका और भगवा वस्त्र धारण किये तथा कृतंगलानगरीकी ओर चल पड़ा।

इधर श्रमण भगवान् महावीरने गौतम गणधरको सम्बोधित करते हुए कहा—"हे गौतम ! आज तू अपने पुराने सम्बन्धीको देखेगा"—गौतमको कुतूहल हुआ और उन्होंने पुनः पूछा। इस

पर उन्होंने स्कन्दकका सर्व वृत्तान्त सुनाया और कहा—यह मेरे पास मुंडित होकर अनगार धर्म स्वीकार करेगा।

महावीर गौतमसे स्कन्दकके विषयमें चर्चा कर ही रहे थे कि स्कन्दक तापस वहां आ पहुंचा। स्कन्दक परिव्राजकको आते देखकर भगवान् गौतमस्वामी तत्क्षण अपने आसनसे उठकर उसके सम्मुख गये और बोले—हे स्कंदक! तुम्हारा स्वागत है, हे स्कंदक! तुम्हारा सुस्वागत है, हे स्कंदक! तुम्हारा अन्वागत है, हे स्कंदक! तुम्हारा स्वागत अन्वागत है। तदनन्तर गौतम स्वामी ने उसके आनेका सर्व वृत्तान्त सुनाया। इससे वह अत्यन्त विस्मित हुआ और उसने भगवान् गौतमसे पूछा—यह सब तुमने अपनी शक्तिसे जानलिया है अथवा किसीने तुमसे कहा है? वह ऐसा कौन ज्ञानी और तपस्वी पुरुष है जिसने मेरी गुप्त बातको जानकर तुमसे पूर्व ही कह दी?

गौतम बोले—हे स्कन्दक! मेरे धर्मगुरु, धर्मोपदेशक, श्रमण भगवान् महावीर सम्पूर्ण ज्ञान-दर्शनके धारक, अरिहंत, जिन और केवली हैं। वे भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालोंके ज्ञाता तथा सर्वज्ञ व सर्वदर्शी हैं। उन्होंने ही मुझे तुम्हारी यह गुप्त बात कह दी थी।

स्कदकके अनुरोधपर भगवान् गौतम उसे भगवान् महावीरके पास ले गये। उस समय श्रमण भगवान् महावीर व्यावृत्तभोजी (सदैव जीमनेवाले) थे। उनके अशृंगारित परन्तु शृंगारित सदृश, कल्याणरूप, शिवरूप, धन्य, मगलरूप, अलंकारविहीन पर अत्यन्त सुशोभित और शुभलक्षणयुक्त शरीरको देखकर वह

अत्यन्त प्रमुदित, हर्षित तथा पुलकित हुआ। उसने तीन बार प्रदक्षिणापूर्वक वंदना की।

[1]भगवान् महावीरने उसकी शंकाओंका समाधान कर दिया।

स्कन्दक परिव्राजकको बोध प्राप्त हुआ। उसने भगवान्के निकट केवलीप्ररूपित धर्मकी दीक्षा ग्रहण करनेकी इच्छा व्यक्त की।

भगवान्ने स्कन्दक तथा उपस्थित जनसमुदायको धर्मोपदेश दिया। महावीर द्वारा धर्मोपदेश सुनकर वह अत्यन्त हर्षित व संतुष्ट हुआ। वह खड़ा हुआ और तीन बार वंदन-नमस्कारकर बोला—हे भगवन्! निर्ग्रंथ-प्रवचनमें मैं श्रद्धा, विश्वास और प्रीति रखता हूं। निर्ग्रन्थ-प्रवचनमें मेरी अभिरुचि है और इसे मैं स्वीकार करता हूं। यह निर्ग्रन्थ-प्रवचन सत्य, सन्देहविहीन, इष्ट और प्रतीष्ट है।

पश्चात् स्कन्दक परिव्राजकने ईशानकोणमें जाकर अपने परिव्राजकीय त्रिदंडादि उपकरणोंका विसर्जन कर दिया और पुनः भगवान् महावीरके पास आकर वंदन-नमस्कारकर बोला - हे भगवन्! यह संसार जल रहा है और उसकी ज्वालायें अधिकाधिक प्रज्वलित हो रही हैं। जिसप्रकार कोई गृहस्थ अपने घरमें आग लग जानेपर उस प्रज्वलित घरमेंसे बहुमूल्य तथा कम वजनवाले पदार्थोंको बचानेकी चेष्टा करता है; क्योंकि वह जानता है कि अल्प सामानही उसको आगे-पीछे हितप्रद, सुखप्रद, कल्याणरूप और कुशलरूप होगा। उसीप्रकार हे भगवन्! मेरी

१—देखो पृष्ठ संख्या ३७—स्कंदक प्रश्न—क्रमसंख्या ३३।

यह आत्मा भी एक प्रकारके सामानकी तरह है। यह आत्मारूपी सामान इष्ट, कांत, प्रिय, सुन्दर, मनोज्ञ, मनोरम, स्थिर, विश्वस्त, संमत, अनुमत, बहुमत और रत्नके आभरणोंकी पेटीके सदृश है। इसका भी सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, चोर, व्याघ्र, सर्प, डास, मच्छर, वात-पित्त-कफादिजनित रोग, संन्निपातादि रोग, महामारी, परिषह और उपसर्ग आदि नुक्सान करते है। अतः इनके पहले अर्थात् किसी दुर्घटनाके पूर्व ही मैं इसे बचा लूँ तो यह आत्मा मुझे परलोकमें हितप्रद, कुशलप्रद तथा कल्याण-प्रद होगी। अतः हे भगवन्! मैं चाहता हूँ कि मैं आपके पास प्रव्रजित होऊँ, मुंडित होऊँ तथा प्रतिलेखनादि आचार-क्रियाओं को सीखू। अतः आप आचार, विनय, विनयफल, चारित्र, पिंडशुद्धि, संयमयात्रा तथा संयम-निर्वाहक आहारका निरूपण करें।

तदनन्तर भगवान् महावीरने स्वयं स्कंदक परिव्राजकको प्रव्रजित किया तथा साध्वाचारके सर्व नियमोंसे अवगत किया।

इसप्रकार प्रव्रजित हो जानेके पश्चात् स्कन्दक मुनि भगवान्के धार्मिक उपदेश सम्यक् रूपसे स्वीकृत कर व्यवहारमें लाने लगे। वे चलते, बैठते, आहारादि लाने, वस्त्र-पात्रादि रखने, उठाने व मलमूत्रादि उत्सर्ग करनेमें सावधान रहते थे। वे मन, वचन और शरीरकी क्रियाओंमें सावधान रहते तथा इन्हे अपने वशमे रखते थे। वे इन्द्रियनिग्रही, गुप्त, ब्रह्मचारी, त्यागी, सरल, धन्य, क्षमा-शील, जितेन्द्रिय, शुद्धव्रती, निराकांक्षी, संयममें दत्तचित्त, सुन्दर साधुमार्गमे निरत तथा दमनशील थे। सतत निर्ग्रन्थ-प्रवचनानुसार अपनी दिनचर्या व्यतीत करते थे।

शनैः शनैः स्कन्दक मुनिने श्रमण भगवान् महावीरके तथारूप स्थविरोंके पाससे ग्यारह अंग सीखे। पश्चात् भगवान् महावीर की आज्ञासे क्रमशः भिक्षुकी बारह प्रतिमाओंकी आराधना की। बारह प्रतिमाओंको आराधनाके पश्चात् गुणरत्नसंवत्सर नामक तप भगवान्की आज्ञासे प्रारंभ किया। गुणरत्न सम्वत्सर तपकी विधि निम्न प्रकार है :—

प्रथम मासमें निरन्तर उपवास करना। दिनमें सूर्यके सन्मुख दृष्टिकर जहाँ धूप आती हो, वहाँ आतापना भूमिमें बैठे रहना। रात्रिमें किसी भी वस्त्रको ओढे या पहिने विना वीरासनसे बैठे रहना।

इसप्रकार द्वितीय मासमें दो-दो उपवास, तृतीय मासमें तीन २ उपवास, चौथे मासमे चार-चार उपवास, पांचमें मासमे पांच-पांच उपवास, छट्ठे मासमें छः २ उपवास, सातवें, आठवें, नवमें, दशवें, ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें, चौदहवे, पन्द्रहवें और सोलहवें मासमें क्रमशः सात, आठ, नव, दश, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह और सोलह २ उपवास करने चाहिये। दिनमें पूर्ववत् आतापना भूमिमें सूर्यके सन्मुख बैठे रहना तथा रात्रिमें वीरासनसे किसी वस्त्रको विना ओढे-पहने बैठना।

(इस तपमें कुल तेरह मास और ७० दिन उपवासके होते हैं ७३ दिन पारणके होते हैं।)

इसप्रकार स्कन्दक मुनि अनेक उपवास—छट्ठतप—दो उपवास, अट्ठतप - तीन उपवास, दशतप—चार उपवास, द्वादशतप—पांच उपवास—मासक्षमण, अर्धमासक्षमण आदि तप-कर्मोंद्वारा अपनी आत्मा निर्मल करने लगे।

उदार, विपुल, प्रगृहीत, कल्याणरूप, शिवरूप, मंगल-रूप, शोभायुक्त, उत्तम, उदात्त, सुन्दर, और महान् प्रभावपूर्ण विविध तपकर्मों-द्वारा स्कन्दक अनगार का शरीर रूक्ष, शुष्क, और मांसरहित हो गया। मात्र चर्मवेष्टित हड्डियाँ ही रह गईं। वे जब चलते तब उनकी शरीर की हड्डियां खड़खड़ करती थीं। सारे शरीर पर नसें तिर आई थी। मात्र अपनी आत्म-शक्तिसे ही चलते और बैठते थे। यदि कभी बोलने का कार्य पड़ता तो वे बोलते-बोलते थक जाते और ग्लानि अनुभव करते थे। जिसप्रकार कोई लकड़ियोंसे भरी हुई गाड़ी, पत्रोंसे भरी हुई गाड़ी, पत्र, तिल अथवा अन्य किन्ही सूखे उपकरणों से भरी हुई गाड़ी, एरंड की लकड़ियों से भरी हुई गाड़ी अथवा कोयले से भरी हुई गाड़ी, कोई खींचे तो वह गाड़ी आवाज करती हुई गति करती है अथवा आवाज करती हुई ही ठहरती है उसी प्रकार स्कन्दक अनगार जब चलते अथवा खड़े होते तो खड़खड़ की ध्वनि होती थी। यद्यपि वे रक्त एवं मांससे क्षीण थे पर तपसे परिपुष्ट थे। राखमें दबी हुई अग्निकी तरह तप और तेज-द्वारा बहुत दीप्त थे।

एक दिन रात्रिके अन्तिम प्रहर में धर्म-जागरण करते हुए स्कन्दक अनगार के मनमें इसप्रकारके विचार आये—"मैं अनेक प्रकार की तपक्रियाओं के द्वारा अत्यन्त दुर्बल हो गया हूँ। बोलते-बोलते भी थक जाता हूं। चलता हूं तब पत्रसे भरी हुई गाड़ी की तरह आवाज होती है। ऐसी स्थिति में जहाँतक मेरेमें उठने की शक्ति, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषाकारपराक्रम है और जहाँ तक मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान्

महावीर विद्यमान हैं वहाँतक मेरा कल्याण है। अतः प्रातः इस अन्धकारमय रात्रिके प्रकाशरूप में परिणत हो जाने पर, कोमल कमलों के खिलने पर, कमल नामक मृगके नैत्रोंके उन्मिलित होने पर, निर्मल प्रभात होजानेपर, शुक-चोंचके सदृश, किंशुक पुष्पकी तरह, चिरमोठीके सदृश लाल, कमलवनों को विकसित करनेवाले, सहस्रकिरणयुक्त प्रकाशपुंज सूर्य के उदय होनेपर (राजगृह आये हुए) भगवान् महावीर के पास जाकर उनकी अनुमति लेकर पांच महाव्रतों को आरोपित कर, समस्त श्रमण-श्रमणियों से क्षमा-याचना कर तथारूप स्थविरोंके साथ विपुलाचल पर धीरे-धीरे चढ़कर मेघके सदृश वर्णवाले और देवताओंके भी उतरने योग्य काले शिलापट्ट का प्रतिलेखन कर, उसपर घासका संस्तारक बिछाकर, खान-पानका त्यागकर संलेपना-व्रत अगीकार कर, मृत्युकी आकांक्षा न कर वृक्षके सदृश स्थित होना चाहिये।"

प्रातःकाल होनेपर स्कन्दक अनगार भगवान् महावीरके पास गये और विधिपूर्वक वन्दन-नमस्कार किया। भगवान् महावीरने भी स्कन्दकके आगमन का कारण जानकर "तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो परन्तु विलम्ब न करो" कह, आज्ञा प्रदान की।

इसप्रकार भगवान् महावीर आज्ञा प्राप्त कर स्कन्दक मुनि विपुलाचल पर धीरे धीरे चढ़े। वहाँ काले शिलापट्ट को देखकर तथा मलमूत्र-उत्सर्गका स्थान शोधकर उसके ऊपर घासका संस्तारक बिछाकर पूर्व दिशामें मुख करके, पद्मासन से बैठे। पश्चात् दोनों हाथ जोड़कर तथा मस्तक को स्पर्शित कर

इसप्रकार बोले "अरिहंत भगवंत तथा सिद्धोंको नमस्कार, अचलस्थान प्राप्त करनेके इच्छुक श्रमण भगवान् महावीरको नमस्कार। यहाँ बैठा हुआ मैं वहाँ बैठे हुए श्रमण भगवान् महावीरको वन्दन-नमस्कार करता हूं। वहाँ बैठे हुए भगवान् मुझे देखे।

पूर्व मैंने श्रमण भगवान् महावीर के पासमें किसी भी जीव के विनाश न करनेका तथा किसीको किसी भी प्रकारका कष्ट न देनेका नियम आजीवन के लिये लिया था। ऐसे अन्य अनेक नियम भी लिये थे। "वस्तुका ज्ञान—जैसी वस्तु हो वैसा ही करना, परन्तु उससे विपरीत न करना" यह नियम भी जीवन-पर्यन्त पालन करने के लिये लिया था। अब पुनः मैं उन सर्व नियमों को भगवान् महावीर की साक्षीसे लेता हूं तथा खान-पान-मेवा-मिठाई, मुखवास आदि चारों प्रकारके आहारोंका जीवन-पर्यन्त परित्याग करता हूं। मेरे क्लेश न देने योग्य, इष्ट, कान्त, मनोज्ञ और प्रिय शरीरका भी अन्तिम श्वासोच्छ्वास समयमे परित्याग करता हूं।"

इसप्रकार खान-पानका परित्याग कर तथा वृक्षके सदृश स्थिर होकर मृत्युकी आकांक्षा न करते हुए अपनी आत्माको उज्ज्वल करने लगे।

साठ समय अर्थात् एक मास-पर्यन्त विना खाये-पीये स्कंदक अनगार संलेषणा-द्वारा आत्माको संज्वलित कर, आलोचन तथा प्रतिक्रमण कर, समाधिपूर्वक देहका उत्सर्ग कर, मृत्यु प्राप्त हुए।

स्कंदक मुनिको मृत्यु प्राप्त जानकर साथमे आए हुए स्थविरोंने

उनके परिनिर्वाण निमित्त कायोत्सर्ग (ध्यान) किया तथा उनके वस्त्र और पात्र लेकर भगवान् महावीर के पास आये। उन्होंने स्कन्दक मुनिके अवसानका समाचार दिया तथा उनके वस्त्र-पात्र सम्मुख उपस्थित किये।

इसप्रकार स्कन्दक अनगार ने १२ वर्ष पर्यन्त निर्ग्रन्थ-धर्म का पालन किया। वे प्रकृतिसे भद्र, विनयी, शान्त, अल्पक्रोधी अल्प मान, माया और लोभयुक्त, अत्यन्त निरभिमानी, गुरुकी आज्ञामें रहनेवाले तथा किसीको भी संताप न देनेवाले थे।

स्कन्दक अनगार काल करके अच्युत कल्पमें बावीस सागरोपम की स्थितिवाले देव हुए हैं। वहांसे च्युत होकर महा-विदेह-क्षेत्रमें उत्पन्न होंगे। वहां सिद्ध, बुद्ध व मुक्त होंगे और सर्व दुखोंका अन्त करेंगे।

द्वितीय शतक : उद्देशक १

[४]

रोह अनगार

रोह अनगार श्रमण भगवान् महावीर के शिष्य थे। स्वभाव से भद्र, कोमल, विनयी, शान्त, अल्प क्रोध-मान-माया-लोभयुक्त अत्यन्त निरभिमानी, गुरुकी आज्ञाके पालक, किसीको क्लेशित नहीं करनेवाले तथा गुरुभक्त थे।

—प्रथम शतक : उद्देशक ६

[५]

कालास्यवेषी अनगार

कालास्यवेषी अनगार भगवान् पार्श्वनाथसंतानीय श्रमण थे

एक दिन वे स्थविर भगवंतों के पास गये और बोले—'हे स्थविरों! आप सामायिक का अर्थ, प्रत्याख्यान, प्रत्याख्यानका अर्थ, संयम, संयमका अर्थ, संवर, सवरका अर्थ, विवेक, विवेकका अर्थ, व्युत्सर्ग और व्युत्सर्ग का अर्थ नहीं जानते हैं। यदि जानते हैं तो मुझे इनका अर्थ बताओ?"

[1]स्थविरों ने उनके प्रश्नोंके योग्य उत्तर दिये। स्थविरों' के प्रत्युत्तर से कालास्यवेर्षी अनगार संबुद्ध हुए और स्थविरोंको वन्दन-नमस्कार कर बोले—"हे भगवंतों! मुझे पूर्व इन प्रश्नोंका ज्ञान न था। क्योंकि मै श्रुतरहित, बोधिरहित, अभिगम—विस्तार-पूर्वक ज्ञानरहित, अवलोकनरहित, चिन्तनरहित, अश्रुत, विशेप ज्ञानरहित, निर्णयरहित, अवधारणरहित, और अनुद्धरित था। अतः मैंने इन कार्योमें कभी श्रद्धा, प्रीति और रुचि व्यक्त नहीं की थी। अब इनका वास्तविक अर्थ जानकर मेरा अज्ञान दूर हो गया है। मैं इन कार्योमें श्रद्धा, प्रीति और अभिरुचि रखता हूं।"

स्थविर बोले—हे आर्य! जैसा हमने प्रतिपादन किया है, उसमें तुम श्रद्धा और विश्वास रखो!

कालास्यवेषी अनगार वन्दन और नमस्कार कर पुनः बोले-हे भगवन्तों! मैं आपके पास में चार महाव्रतवाला धर्म छोड़-कर प्रतिक्रमण सहित पांच महाव्रतवाला धर्म स्वीकार करना चाहता हूं।

स्थविर बोले—जिसमें तुम्हें सुख हो, वैसा करो।

1—देखो पृष्ठ संख्या ५९, क्रमसंख्या ५७।

कालास्यवेषी अनगार ने प्रतिक्रमणयुक्त पंच व महाव्रतयुक्त धर्म स्वीकार किया। वे अनेक वर्षों तक साधु-धर्मका पालन करते रहे। अपने प्रयोजन की सिद्धिके लिए—नग्नत्व, मुंडत्व, अस्नान, दातुन न करना, छत्र न रखना, जूते न पहिनने, भूमि-शयन, काष्ठपट्टशयन, केशलूँचन, ब्रह्मचर्यपालन, भिक्षार्थ दूसरोंके घर जाना, कहीं—अल्प मिलना अथवा नहीं मिलना, अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थितियों में समभाव, इन्द्रियोंको कंटक तुल्य बावीस परिषह-सहन आदि कठिन कार्य करते रहे। अन्तमें वे अपने प्रयोजन में सिद्ध हुए और अपने अन्तिम उच्छ्वासनिःश्वासके साथ ही सिद्ध, बुद्ध, परिनिर्वृत्त और सर्व दुखविहीन हुए।

प्रथम शतक उद्देशक ९

[६]

देवराज ईशानेन्द्र

एक दिन देवेन्द्र देवराज ईशान राजगृह नगरमें श्रमण-भगवान् महावीर के दर्शनार्थ आया। उसकी समृद्धिको देख-कर गौतम स्वामीने भगवान् से पूछा—हे भगवन्! देवेन्द्र देवराज ईशानने यह दिव्य ऋद्धि, दिव्य कान्ति और दिव्य प्रभाव किस प्रकार संप्राप्त और लब्ध किया है? यह पूर्वभव में कौन था, किस ग्राम या सन्निवेश का निवासी था, इसने क्या सुना, क्या दिया, क्या खाया, क्या आचरण किया तथा किस श्रमण या ब्राह्मण के धार्मिक वचनको सुना और अवधारण किया, जिनके फलस्वरूप इसने यह ऋद्धि प्राप्त की?

महावीर बोले—उस कालकी बात है। भारतवर्षमें ताम्रलिप्ति नामक नगरीमें तामली नामक [1]मौर्यपुत्र गृहपति रहता था। तामली गृहपति धनाढ्य और प्रभावसम्पन्न था। वह अनेक मनुष्योंसे भी पराभूत नहीं हो सकता था।

एक दिन रात्रिके अन्तिम प्रहरमें जागते-जागते तथा कौटुम्बिक चिन्ता करते २ उसके मनमें इसप्रकार विचार उत्पन्न हुए—मेरे पूर्वकृत शुभ एवं कल्याणप्रद कर्मोका प्रभाव अभी तक विद्यमान है, जिससे मेरे घरमें हिरण्य, सुवर्ण, रुपैया-पैसा, धन-धान्यकी तथा पारिवारिक जनकी अभिवृद्धि है। तो क्या मैं इसी प्रकार अपने पूर्वकृत तथा सम्यक्रूपसे आचरित कर्मोका क्षय ही देखता रहूँगा और भविष्यके प्रति लापरवाह बना रहूँगा? जबतक मेरे पास धनधान्य है तबतक मेरे मित्र, सम्बन्धी, पारिवारिक बंधु, मातुलपक्षीय (मामाके परिवारवाले) ससुरालपक्षीय तथा भृत्यवर्ग आदि सभी जन आदर, सम्मान और स्वागत करते है और मुझे कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप समझकर चैत्यके सदृश सेवा करते है। (पर धन न रहने पर पूछेंगे नहीं) अतः समृद्धिके विद्यमान रहते ही मुझे अपना कल्याण कर लेनेकी आवश्यकता है। मैं कल प्रातः होते ही अपने सर्व सम्बन्धियों—पारिवारिक

---

[1] सम्राट चन्द्रगुप्तके मौर्य होनेके सम्बन्धमें इतिहासकारोंकी धारणा कितनी गलत है, यह इस वर्णनसे जानी जा सकती है। वास्तवमें मौर्य उस समयकी एक प्रतिष्ठित जाति थी और सम्राट चन्द्रगुप्त भी उसी मौर्य जातिके थे। उनकी यह जाति उनकी मुरा नामक मां या मोरोंको पालने-वाली जातिमें उत्पन्न होनेसे नहीं है।

बंधु, मातुलपक्षीय, ससुरालपक्षीय और भृत्यवर्गको विविध मिष्टान्न जिम्हाकर, वस्त्र, इत्र, माला आदि सुगंधित द्रव्योंद्वारा सम्मान-सत्कार कर तथा अपने द्वारा निर्मापित काष्ठ पात्र लेकर व मुंडित होकर प्राणामा नामक दीक्षा ग्रहण करूं। दीक्षाग्रहणके साथ ही निरन्तर दो-दो उपवास करूंगा तथा सूर्यके सम्मुख ऊंचे हाथकर आतापना ग्रहण करूंगा। पारणके दिवस स्वयं अपने हाथमें काष्ठ पात्र लेकर ताम्रलिप्ति नगरीमें शुद्ध ओदन-मात्र—चावलही लाकर तथा उन्हें भी इक्कीस बार पानीसे धोकर खाऊंगा—इसप्रकारका उसने अभिग्रह करनेका निश्चय किया।

प्रातःकाल हुआ। उसने अपने निश्चयानुसार सर्व कार्य सम्पादित किये। सर्व कुटुम्बियोंका सत्कार एवं सम्मान किया तथा सबकी आज्ञा लेकर प्राणामा नामक दीक्षा अंगीकार की। दीक्षाके साथ ही उसने पूर्व निश्चित अभिग्रहके अनुसार तप प्रारंभ कर दिया।

जिस पुरुषने प्राणामा दीक्षा ग्रहणकी हो, वह जिसको जहाँ देखे, उसको वहीं नमस्कार करता है। चाहे वह इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, शिव, कुबेर, आर्या, पार्वती, महिषासुरवधिका चंडिका, राजा, सार्थवाह, कौआ, कुत्ता अथवा चांडाल हो। ऊपर देखने पर ऊपरकी ओर नीचे देखने पर नीचेकी ओर नमस्कार करता है।

शनैः शनैः मौर्यपुत्र तामली उदार, विपुल, प्रखर और परिगृहीत बालतप-द्वारा रूक्ष-शुष्क हो गया। उसकी नसे उसके देहपर तिरने लगी और वह अत्यन्त दुर्बल हो गया। एक दिन मध्य रात्रिमें जागते-जागते उसके मनमें यह संकल्प हुआ—"मैं इस उदार, विपुल, उदग्र, उदात्त श्रेष्ठ तप-कर्म द्वारा सूख गया हूँ

तथा मेरा शरीर अत्यन्त कृश व दुर्बल हो गया है इसलिये जबतक मेरेमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषाकार पराक्रम है तबतक मेरा श्रेय इसीमें है कि कल सूर्योदयके पश्चात् मेरे सर्व परिचित गृहस्थों तथा साधुओंको पूछकर कमंडल, काष्ठपात्र आदि उपकरणोंका परित्याग कर ताम्रलिप्ति नगरके ईशानकोणमें अपने स्थित रहने जितनी भूमिका प्रतिलेखन कर व खाने-पीनेका त्याग कर मृत्युकी बिना आकांक्षा किये पादपोपगमन अनशन करूँ।"

दूसरे दिन उसने अपने निश्चयानुसार अनशन स्वीकार किया। उस समय बलिचंचा—उत्तर दिशाके असुरकुमारोंके इन्द्र बलिकी राजधानी इन्द्र और पुरोहितसे रहित थी। अतः तत्रस्थ असुरकुमार देव-देवियोंने परस्पर विचार-विमर्श किया कि सम्प्रति बलिचंचा नगरी इन्द्र और पुरोहितसे रहित है। हम सब इन्द्रके अधीन रहनेवाले हैं। अतः हमें तामली तपस्वीसे बलीचंचा नगरी में इन्द्ररूपमें उत्पन्न होनेके लिए संकल्प करवाना चाहिये।

यह सोचकर वे दिव्य गतिसे बालतपस्वी तामलीके पास आये और उसके समक्ष खड़े होकर दिव्य देवऋद्धि, देवकान्ति और दिव्य देव-प्रभाव तथा बत्तीस प्रकारके नाट्य दिखाने लगे। तदनन्तर तीन बार प्रदक्षिणपूर्वक वन्दन-नमस्कार कर बलिचंचामें इन्द्ररूपमें उत्पन्न होनेके लिये निवेदन किया। तामली मौन रहा। उसने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। अतः वे पुनः लौट गये।

पश्चात् दो मास-पर्यन्त अनशन व्रतका पालन कर वह तामली बालतपस्वी मृत्युप्राप्त कर ईशानकल्पमें ईशानावतंसक

विमानमें ईशानेन्द्रके रूपमें समुत्पन्न हुआ। उससमय ईशान-कल्प इन्द्र और पुरोहितसे रहित था।

इधर जब असुरकुमारोंको यह ज्ञात हुआ कि तामली ईशान-कल्पमें ईशानेन्द्रके रूपमें समुत्पन्न हुआ है तो वे अत्यन्त क्रोधित हुए। वे तत्क्षण ताम्रलिप्ति नगरीमें पहुँचे और तामलीके मृत देहके बाए पांवमें रस्सी बांधकर उसके मुँहमें तीन बार थूंका। तदनन्तर रस्सीसे मृत देहको उस नगरकी सर्व गलियों तथा मार्गोंमें खींचते-खींचते लेगये और उसके देहकी अत्यन्त हीलना, अपमान, निन्दा और कदर्थना की। पश्चात् एक ओर उस शरीरको फेंककर चले गये।

इधर ईशानकल्पके देव-देवांगनाओंने यह सब देखा। वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उन्होंने उसी समय देवेन्द्र देवराज ईशानको खबर दी। उनकी बात सुनकर ईशानेन्द्र अत्यन्त क्रोधित हुआ। उसने देव-शैय्यामें बैठे-बैठे ही बलिचंचा नगरीके चारों ओर कपालमें तीन सल पड़े, इसतरह भृकुटी चढ़ाकर देखा।

उसी समय दिव्य प्रभा-द्वारा बलिचंचा नगरी अंगारों के सदृश, मुम्मुरके सदृश, गर्म राखके सदृश और तप्त रेतके सदृश उत्तप्त अग्नि-ज्वालाओं के सदृश तप्त हो गई। यह देखकर असुरकुमार अत्यन्त व्याकुल, भयभीत, त्रस्त, शुष्क और उद्विग्न हुए। चारों ओर भागदौड़ मच गई। जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि ईशानेन्द्र कुपित हुआ है तो वे हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे। पश्चात् ईशानेन्द्र ने अपनी प्रभा (तेजोलेश्या) पुनः खींच ली। उसी समयसे असुरकुमार देवांगनायें तथा देव ईशानेन्द्रकी आज्ञामें रहते हैं।

देवेन्द्र देवराज ईशानेन्द्रने अपनी यह दिव्य देवऋद्धि इस-प्रकार प्राप्त की है।

तृतीय शतक उद्देशक ३

[७]

असुरराज चमर

[1]एक बार राजगृहनगरमें असुरराज चमर श्रमण भगवान् महावीर के दर्शनार्थ आया। उसकी समृद्धि देखकर भगवान् गौतमने पूछा—असुरराज चमर ने यह समृद्धि किस प्रकार प्राप्त की ?

महावीर बोले—भारतवर्ष में विंध्याचल की तलहटीमें वेभेल नामक सन्निवेश था। वहाँ पूरण नामक एक गृहपति रहता था (सर्व वर्णन तामली की तरह जानना चाहिये)। उसने भी समय आनेपर तामली के सदृश ही विचार कर खंड-वाले काष्ठके पात्रको लेकर दानामा नामक दीक्षा स्वीकृत की। दानामा दीक्षामे पात्रके पहले खंडमें जो भिक्षा प्राप्त होती है, वह मार्गवर्ती पथिकों को दे दी जाती है, दूसरे खानेमे मिली हुई भिक्षा कौओं-कुत्तोंमें बांट दी जाती है, तीसरे खानेमें मिली हुई भिक्षा मछलियों या कछुओं को खिला दी जाती है। चौथे खानेमें मिली हुई भिक्षा स्वयं आहार की जाती है।

१—असुरकुमार अधिकसे अधिक सौधर्मकल्प तक जा सकते हैं। इसी बातकी पुष्टिके लिये असुरेन्द्र चमरकी यह कथा तथा सौधर्मकल्पमें उसके जानेकी घटनाका वर्णन किया गया है।

इसप्रकार पूरण बाल तपस्वी भी तामली के सदृश ही अनशन स्वीकार कर मृत्यु प्राप्त हुआ।

उस समय चमरचंचा—असुरेन्द्र चमर की राजधानीमें इन्द्र और पुरोहित न था। पूरण तपस्वी साठ समय – दो मास पर्यन्त अनशनका पालन कर चमरचचामें इन्द्ररूपमें समुत्पन्न हुआ। एक बार अवधिज्ञान द्वारा सौधर्मकल्पमें देवेन्द्र देवराज शक्रको शक्रनामक सिंहासनपर बैठकर दिव्य भोग भोगते हुए देखा। यह देखकर चमरेन्द्र सोचने लगा—यह कौन कुलक्षणी, लज्जाविहीन, हीनचतुर्दशीका जन्मा, मृत्युका आकांक्षी देव है, जो निर्द्वन्द्वरूपसे मेरे ऊपर भोग भोग रहा है ?

उपस्थित सामानिक देवोंने कहा—यह देवेन्द्र देवराज शक्र है। उनकी बात सुनकर चमरेन्द्र अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और अपने हाथों उसने शक्रेन्द्र को शोभाभ्रष्ट करनेका निश्चय किया।

उस समय मैं (स्वयं महावीर) छद्मस्थ अवस्था में था। दीक्षा लिये हुए ग्यारह वर्ष व्यतीत हो चुके थे। मैं निरन्तर दो उपवास किया करता था। ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ मैं सुसुमार नगरमें आया हुआ था और अशोकवनखंड से एक अशोक वृक्षके नीचे शिलापट्ट पर अष्टम तप करके ध्यानस्थ—दोनों पाव समेटकर, हाथ नीचे झुकाकर, मात्र एक पदार्थ पर दृष्टि स्थिर करके, पलकें भी प्रकंपित न कर, शरीरके अग्र प्रदेशको कुछ झुकाकर, सर्व इन्द्रियोंको गुप्त करके, एक रात्रिकी महत् प्रतिमा धारण कर, बैठा हुआ था।

इधर चमरेन्द्रने देवेन्द्र देवराजशक्रको भ्रष्ट करनेकी कामनासे अवधिज्ञानका प्रयोग किया और मुझे उपर्युक्त प्रतिमा धारण

किये हुए देखा। वह उठा और अपने शस्त्रागारसे परिघरत्न नामक शस्त्र लेकर मेरे पास आया। मुझे वंदन-नमस्कार कर अपना अभिप्राय व्यक्त किया और बोला—हे भगवन्! मैं आपका आश्रय ग्रहणकर स्वय देवेन्द्र देवराज शक्रको उसकी समृद्धिसे भ्रष्ट करने जाना चाहता है। इतना कह, उसने वैक्रिय समुद्घात-द्वारा भयंकर विशाल देह बनाया और हाथोंको उछालता व कूदता ऊपरकी ओर चला। वह मेघके सदृश गर्जन करता, घोड़ेके सदृश हिनहिनाता, हाथीके सदृश चिघाड़ मारता, सिहके सदृश गर्जन करता हुआ बढ़ा। वह मानो अधो-लोकको क्षुभित करते हुए, अवनितलको प्रकंपित करते हुए, तिर्यक्लोकको खीचते हुए और गगन तलको फोड़ते हुए चला जा रहा था। इसप्रकार वह कहीं गर्जन करता, कहीं बिजलीके सदृश चमकता, कहीं वर्षाके सदृश बरसता, कहीं धूलि-वर्षण करता, वाणव्यन्तर देवोंको त्रास उपजाता, ज्योतिष्क देवोंके दो भाग करता और आत्मरक्षक देवोंको भगाता हुआ सौधर्मावतसक विमानमें पहुँचा। वहां से सुधर्मासभामें हुंकार करता हुआ गया। अपने परिघ शस्त्र द्वारा इन्द्र कीलको तीन बार पीटा। तदनन्तर उसने चिल्लाकर कहा—देवेन्द्र देवराज शक्र कहाँ है? आज मैं उसका वध करूंगा तथा करोड़ों अप्सराओंको अपने अधिकारमें करूगा। इसप्रकार अकांत, अप्रिय, अशुभ, असुन्दर और असहनीय वचन बोलने लगा।

देवेन्द्र देवराज शक्रने यह देखा और सुना। उसका हृदय क्रोधसे भर आया। उसने सिंहासन पर बैठे-बैठे ही वज्रको हाथमें लिया तथा चमरेन्द्र पर फेंका। ज्वाज्वल्यमान, आग

बरसाते हुए, शोले छोड़ते हुए, उल्कापातके सदृश ध्वनि करते हुए, आँखोंको चमत्कृत करते हुए भयंकर वज्रको सामने आते देखकर चमरेन्द्र उल्टेमुंह भागा। वह मन ही मन सोचता था, ऐसा अस्त्र मेरे पास होना तो कितना अच्छा होता। भागते-भागते "हे भगवन् मुझे तुम्हारी शरण है" कहता हुआ वह मेरे दोनों पावोंके मध्य गिर पड़ा।

उसी समय देवेन्द्र, देवराज शक्रके मनमें विचार उत्पन्न हुआ। किसी अरिहंत आदि परम पुरुषका आश्रय लिये बिना असुरराज चमर इतना ऊँचा नहीं आसकता है। यदि वह किसी तथारूप अरिहंत भगवंत अथवा भावितात्मा अनगारका आश्रय लेकर आया होगा तो मेरे द्वारा फेंके गये वज्रसे उनकी अत्यन्त आशातना होगी। अतः उसने अवधिज्ञानका प्रयोग किया। प्रयोग करते ही उसने मुझे देखा और चिल्लाया—"अरे! मैं तो मर गया!" यह कह, उत्कृष्ट त्वरापूर्णगतिसे दौड़ा और मेरेसे चार अंगुल दूरस्थ वज्रको पकड़ लिया। जब उसने वज्रको मुट्ठीमें पकड़ा तब उसकी मुट्ठी इतनी तेजीसे बन्द हुई कि उस मुट्ठीकी वायुसे मेरे केशाग्र हिलने लगे। पश्चात् उसने तीन प्रदक्षिणापूर्वक वन्दन-नमस्कार किया और सर्व वृत्त सुनाया। तदनन्तर जाते हुए वह चमरेन्द्रसे बोला—हे चमर! श्रमण भगवान् महावीरके प्रभावसे आज तू बच गया है। अब तुझे किञ्चित् भी भय नहीं करना चाहिये। यह कहकर वह अपने स्थान पर लौट गया।

इधर वज्रके भयसे विमुक्त चमरेन्द्र भी अपना अपमान,

दुख, शोक व उदासीनता भूलकर मुझे वन्दन-नमस्कार करके चमरचचा लौट गया।

—तृतीय शतक उद्देशक २

[८]

अतिमुक्तक कुमार श्रमण

उस समयकी बात है। भगवान् महावीरके अतिमुक्तक नामक एक कुमार श्रमण शिष्य थे। वे स्वभावसे अत्यन्त भद्र और विनयी थे। एक दिन बहुत जोरसे वर्षा हो रही थी। वे (शौचार्थ) कांखमें रजोहरण और पात्र लेकर बाहर गये। मार्गमें उन्होंने एक खड्ड देखा। उससे पानी बह रहा था। उन्होंने उसके चारों ओर मिट्टीकी पाल बांधी और उसमे अपना पात्र तिरनेके लिये छोड़ दिया। तदनन्तर नाविक और नावकी तरह 'यह मेरी नाव है' इसप्रकार चिल्ला-चिल्ला कर खेलने लगे। यह बनाव कुछ स्थविरोंने देखा। वे भगवान् महावीरके पास आये और उनसे पूछा—हे भगवन् ! आपके शिष्य अतिमुक्तक नामक कुमार श्रमण कितने भवोंके पश्चात् सिद्ध होंगे ?

महावीरने कहा —हे आर्यो! वह इसी भवको ही पूर्ण करके सिद्ध होगा। अतः आप उसकी अवहेलना, निन्दा, तिरस्कार और अपमान नहीं करे परन्तु बिना किसी ग्लानिसे उसकी सम्हाल करें, सहायता दें और सेवा करें। वह अन्तकर और चरम शरीरी है। स्थविरोंने भगवान्की आज्ञा स्वीकृत की और बिना किसी ग्लानिके उसकी सेवा-सुश्रुषा करने लगे।

—पंचम शतक : उद्देशक ४

[९]

राजर्षि शिव

हस्तिनापुर नामक नगर था। वहाँ शिव नामक राजा था। उसके धारिणी नामक पटरानी तथा शिवभद्र नामक पुत्र था।

एक दिन राजाको रात्रिके पिछले प्रहरमें राज्यशासन संबंधी विचार करते-करते अपने आत्म-कल्याणका विचार आया। अतः दूसरे दिन उसने अपने पुत्रका राज्याभिषेक करवाया और अन्य किसी दिवस अपने सर्व सम्बन्धियों व स्नेहियोंसे आज्ञा लेकर गंगा नदीके किनारे निवास करनेवाले वानप्रस्थ तापसोंसे दीक्षा लेकर वह [1]दीक्षाप्रोक्षक तापस हुआ। वह अपने साथ अनेक प्रकारकी लोढिये, लोहकड़ाह, कुड़छे और तांबेके अनेक उपकरण बनवाकर ले गया। दीक्षाके साथ ही निरंतर दो-दो उपवासका नियम लेकर दिक्चक्रपाल तप करने लगा।

इसप्रकार तप करते-करते राजर्षि शिवको प्रकृतिकी भद्रता, स्वभावकी सरलता, विनय तथा आवरणभूत कर्मोंके क्षयोपशमसे एक दिन विभंगज्ञान उत्पन्न हुआ। अपने विभंगज्ञानके द्वारा इस लोकमें वे सात द्वीप और सात समुद्र प्रत्यक्ष देखने लगे। अतः उन्होंने सोचा—इस लोकमें सात द्वीप और सात समुद्र ही हैं। पश्चात् द्वीप और समुद्र नही है।

उनके द्वीप-समुद्र-सम्बन्धी ज्ञानकी यह बात हस्तिनापुर

१—शुद्धिके लिये चारो दिशाओंमें पानी छिड़ककर फल-फूल आदि ग्रहण करनेवाला तापस दीक्षाप्रोक्षक कहा जाना है। इसका विस्तृत वर्णन उव्वईसूत्रमें हैं।

नगरमें सर्वत्र फैल गई। उसी कालमें भगवान् महावीर हस्तिनापुर नगर पधारे। उनके प्रधान शिष्य गौतम गणधर भिक्षार्थ नगरमें गये। उन्होंने जाते हुए राजर्षि शिवकी द्वीप-समुद्रों संबन्धी मान्यता सुनी। भिक्षासे लौटकर [1]आनेपर उन्होंने इस सम्बन्धमें भगवान्से पूछा। महावीरने शिव राजर्पिकी मान्यता असत्य बतायी।

यह बात सर्वत्र नगरमें प्रसृत हो गई। शिव राजर्षिने भी सुनी। वे शंकित, कांक्षित और संदिग्ध हो गये। उसी समय उनका विभंगज्ञान नष्ट हो गया। उन्हें विचार आया—भगवान् महावीर सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी हैं अतः मैं उनके पास जाऊँ तथा उनका उपदेश श्रवण करूं। उनका उपदेश मुझे इस भव और परभव—दोनों भवोंमें श्रेयस्कर होगा।

शिव राजर्षिने भगवान् महावीरके पाससे धर्मकथा सुनी। वे निर्ग्रन्थ-धर्ममें श्रद्धायुक्त हुए। तदनन्तर उन्होंने भगवान्के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। ग्यारह अंगोंका ज्ञान प्राप्त किया। विचित्र तप-कर्मों द्वारा आत्माको अनेक वर्षों पर्यन्त निर्मल करते रहे। विशुद्ध साधुपर्यायका पालन किया। अन्तमें मासिक संलेषणाके साथ मृत्यु प्राप्तकर सिद्ध-बुद्ध तथा सर्व दुखोंसे विमुक्त हुए।

—ग्यारहवां शतक : उद्देशक ९

[१०]

नागपुत्र वरुण

उस कालकी बात है। वैशाली नामक नगरी थी। उस

१—देखो पृष्ठ सख्या ३७६ क्रमसंख्या ३११।

नगरी में वरुण नामक नागपुत्र रहता था। वह धनाढ्य, प्रभावसम्पन्न तथा अनेक व्यक्तियों से भी पराभूत नहीं हो सकता था। वह श्रमणोपासक तथा जीवाजीव का ज्ञाता था। वह निरन्तर छट्ठ तप—दो दो उपवास किया करता था।

एकबार राज्याज्ञा, गणआज्ञा एवं बलाभियोगसे उसे रथमूसलसंग्राममें युद्धार्थ जाना पड़ा। तब उसने छः समयके स्थान पर आठ समय का उपवास किया। तदनन्तर स्नानादि कार्योंसे निवृत्त हो वह गणानायक, दूत और संधिपालके साथ बाहर निकला और चार घन्टेवाले रथमें चढ़कर रथमूसल संग्राम में उतरा। युद्धमें उतरने के पूर्व उसने यह नियम लिया— 'इस रथमूसलसंग्राममें जो मुझ पर पहले वार करे उसे ही मुझे मारना है।" एक योद्धा रथी उसके सामने आया और उसने लड़नेकी चुनौती दी। वरुणने उसे अपना नियम सुना दिया। अतः उस योद्धाने वरुणको अपने बाणसे घायल कर दिया। बाण लगते ही वरुण अत्यन्त क्रोधित हुआ उसने धनुष पर बाण खींचा और प्रतिपक्षी को मार गिराया।

बाण लगने से इधर वरुण भी अत्यन्त शक्तिरहित, निर्बल, वीर्यरहित और पुरुषार्थ एवं पराक्रमरहित हो गया। अपना अन्तकाल निकट देखकर उसने युद्धभूमिसे रथ लौटाया और एकान्त स्थानमें पहुँचा। वहाँ उसने घोड़ोंको छोड़ दिया और घासका बिछौना बिछा, पूर्व दिशाकी ओर पर्यकासन से बैठ गया। तदनन्तर इसप्रकार बोला :—'पूज्य अर्हतों को नमस्कार, सिद्धोंको नमस्कार, धर्मके आदिकर्ता, मोक्षप्राप्त करनेवाले, मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीरको नमस्कार।

तत्रस्थित भगवान् मुझे यहां देखें। पूर्व मैंने भगवान् महावीरके पाससे स्थूल हिंसा आदि पांच महापापों के परित्यागके नियम लिये थे। अव मैं सर्व प्रकारके हिंसादि महापापों का परित्याग करता हूं।'

उसने कवच खोला और वाण खींचा। पश्चात् आलोचना और प्रतिक्रमण कर समाधिके साथ मृत्यु प्राप्त हुआ।

नागपुत्र वरुणका एक वालमित्र भी युद्धमें सम्मिलित था। वह भी लड़ते२ घायल हो गया। उसने वरुणको संग्रामसे वाहर निकलते हुए देखा था अतः वह भी उसी ओर चल पड़ा। वरुणके सदृश ही उसने भी अपने घोड़े छोड़ दिये तथा वस्त्र विछाकर वैठ गया। पूर्व दिशाकी ओर मुंहकर तथा हाथ जोड़कर बोला—"हे भगवन्! मेरे वालमित्र वरुणने जो शीलादि ग्रहण किये, उन्हें मैं भी ग्रहण करता हूं।

तदनन्तर उसने कवच उतार दिया तथा वाण खींच लिया। अनुक्रम से वह भी मृत्यु प्राप्त हुआ।

वरुणको मृत्यु-प्राप्त देखकर निकटस्थ व्यन्तर देवताओंने उसपर सुगन्धित गन्धोदक की वृष्टि की, पचवर्णके फूल वरसाये तथा दिव्य ध्वनि की।

नागपुत्र वरुणकी दिव्य ऋद्धि एवं प्रभाव सुनकर अनेक मनुष्य यह कहा करते है कि संग्राममे घायल व्यक्ति देवलोक प्राप्त करते हैं।

नागपुत्र वरुण सौधर्म देवलोकके अरुणाभ विमानमे देवरूप

१—देखो पृष्ट संख्या ३३७, क्रमसख्या २४०।

में उत्पन्न हुआ है। वहाँ उसका आयुष्य चार पल्योपमका है। वहाँसे च्युत् हो महाविदेह क्षेत्रमें जन्म लेकर सिद्ध होगा।

—सप्तम शतक : उद्देशक ९

[११]

शंख श्रेष्ठि

उस समयकी बात है। श्रावस्ती नामक नगर था। वहाँ शंख आदि अनेक श्रमणोपासक रहते थे। [1]वे धनिक व प्रभाव-सम्पन्न थे तथा किसीसे पराभूत नहीं हो सकते थे। वे जीवा-जीवके ज्ञाता थे। शंख श्रमणोपासक के उत्पला नामक धर्मपत्नी थी। वह स्वरूपवान्, सुकुमोल तथा जीवाजीव की जाननेवाली थी। उसी नगरमें पुष्कली नामक श्रमणोपासक भी रहता था। वह भी धनिक, प्रभावसम्पन्न व जीवाजीव का ज्ञाता था।

एक बार श्रमण भगवान् महावीर श्रावस्ती नगरी के कोष्ठक चैत्यमें पधारे। उनके आगमनकी बात सुनकर सभी दर्शनार्थ गये। धर्मकथा हुई। श्रमणोपासक भी भगवान् महावीर के धर्मोपदेश को सुनकर अत्यन्त हर्षित एवं सन्तुष्ट हुए। उन्होंने कई प्रश्न पूछे और उनका प्रत्युत्तर प्राप्त किया। तदनन्तर वे श्रावस्तीकी ओर लौट गये।

लौटते हुए शंख श्रमणोपासकने समस्त श्रमणोपासकों से कहा—हे बन्धुओं! तुम पर्याप्त मात्रामें खान-पान बनवाओ, पश्चात् हम सब उनका आस्वादन लेते तथा परस्पर आदान-

१—तुंगिकाके श्रावकों की तरह।

प्रदान करते हुए [1]पाक्षिक पौषध का अनुपालन करेंगे। सबोंने शंखकी बात स्वीकार की।

घर आनेपर शंखको यह संकल्प हुआ—अन्न-पानादिका आस्वादन ले-लेकर तथा परस्पर आदान-प्रदान करते हुए पाक्षिक पौषध करना मेरे लिये उपयुक्त नहीं। मुझे तो पौषधशालामें ब्रह्मचर्य के साथ—मणि-सुवर्ण, चन्दन, विलेपन व शस्त्रादि का परित्याग कर व डाभका संस्तारक कर अकेले ही पौषधव्रत अंगीकार करना चाहिये। उसने अपनी पत्नीसे पूछा और पौषधशाला में जाकर पौषधव्रत स्वीकार किया।

इधर सर्व श्रमणोपासक अपने-अपने घर गये और पुष्कल खान-पान तैयार करवाया। उन्होंने एक दूसरेको बुलाया। शंखको नहीं आते देखकर उन्होंने पुष्कली श्रावकको शखको बुलाने के लिये भेजा। उत्पला (शंख श्रमणोपासककी धर्मपत्नी) पुष्कली श्रावकको आते देखकर हर्षित हुई तथा आगे बढ़कर उसने उसे नमस्कार किया तथा आगमनका कारण पूछा। शंख के बारेमें पूछनेपर पौषधशालामें जाकर पौषध करनेकी सब बात कह दी।

पुष्कली श्रमणोपासक पौषध-शाला गया। पुष्कलीको देख-कर शंख बोला—पुष्कल अन्नादिका आहार करते हुए पौषधका पालन करना मुझे उचित नहीं लगा अतः मैंने इसप्रकार पौषध करनेका निश्चय किया है। तुम सब अपने निश्चयानुसार कार्य करो।

१—पौषध दो प्रकारका होता है—एक इष्ट भोजन-दानादि रूप और दूसरा पौषधशालामें ब्रह्मचर्यके साथ ध्यानादिरूप।

मध्य रात्रिमें धर्म-जागरण करते हुए शंखको विचार आया —प्रातः भगवान् महावीरको वन्दन-नमस्कार करके ही मैं अपना पौपधव्रत पूर्ण करूंगा। प्रातःकाल होनेपर वह अपने घर गया तथा बाहर जानेयोग्य वस्त्र पहिन भगवान् महावीर के पास वंदनार्थ गया। अन्य सभी श्रमणोपासक भी वन्दनार्थ आये हुए थे। धर्मकथा हुई। तदनन्तर सभी श्रमणोपासक शंख के पास गये और उसे उपालम्भ देने लगे। तब भगवान् बोले— हे आर्यो! तुम शंखकी हीलना, निन्दा तथा अपमान न करो। क्योंकि यह धर्मका प्रेमी तथा धर्ममें दृढ़ है। इसने सदृष्टि ज्ञानीका आचरण किया है।

तदनन्तर शंखने भगवान्को वन्दन-नमस्कार किया तथा क्रोधवशीभूत व्यक्ति क्या करता है? यह प्रश्न पूछा। [1]महावीरने योग्य समाधान किया।

भगवान्की बात सुनकर श्रमणोपासक भयभीत और उद्विग्न हुए। वे शंखके पास जाकर बार-बार विनयपूर्वक क्षमा मांगने लगे।

उनके जानेके पश्चात् भगवान् गौतम ने पूछा—हे भगवन्! क्या यह शंख श्रमणोपासक आपके पास प्रव्रज्या लेगा?

महावीर बोले—हे गौतम! नहीं। यह शीलव्रत, गुणव्रत तथा स्वीकृत तपकर्म-द्वारा आत्माको निर्मल बनाकर, मासिक संलेपणा कर समाधिके साथ मृत्युप्राप्त हो सौधर्मकल्पके अरुणाभ विमान में देवरूपमें उत्पन्न होगा। वहाँ इसकी स्थिति

---

[1] देखो पृष्ठ संख्या ३८८ क्रम संख्या ३१८

चार पल्योपम की होगी। इस स्थिति के क्षय होनेपर महाविदेह क्षेत्रमें सिद्धपद प्राप्त करेगा तथा समस्त दुखोंका अन्त करेगा।

—बारहवाँ शतक : उद्देशक १

[१२]

श्रावक ऋषिभद्र

आलभिका नामक नगर था। वहाँ ऋषिभद्रपुत्र आदि अनेक श्रमणोपासक रहते थे। वे धनाढ्य, प्रभावसम्पन्न तथा किसीसे भी पराभूत नहीं हो सकते थे। वे जीवाजीवके ज्ञाता थे

एक दिन सभी श्रमणोपासक बैठे हुए वार्तालाप कर रहे थे। उनकी चर्चाका विषय था—देवलोकमें देवता की कितनी स्थिति है। ऋषिभद्र पुत्रको सत्य बात ज्ञात थी। वह बोला—देवताओं की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष फिर क्रमशः एक २ समय अधिक करते हुए तैतीस सागरोपम है। इसके पश्चात् देवताओं की स्थिति नहीं है।

श्रमणोपासकोंने ऋषिभद्र की बातपर विश्वास नही किया।

एक बार श्रमण भगवान् महावीर आलभिका नगरी पधारे। जनता दर्शनार्थ गई। धर्मकथा हुई। श्रमणोपासक धर्मकथा सुनकर अत्यन्त प्रसन्न एवं संतुष्ट हुए। तदनन्तर उन्होंने ऋषिभद्रपुत्रका देवताओंके आयुष्यके सम्बन्धमें कहा गया वक्तव्य कहा और पूछा। महावीरने ऋषिभद्रपुत्रके कथनका समर्थन किया।

श्रमणोपासकोंने ऋषिभद्रपुत्रसे क्षमा-याचनाकी तथा वन्दन-नमस्कार किया।

उनके जानेके पश्चात् गौतम स्वामीने पूछा—हे भगवन्!

ऋषिभद्रपुत्र क्या आपके पास गृहवास छोड़कर प्रव्रज्या ग्रहण करेगा ? महावीर बोले—नहीं। शेष वर्णन शंख श्रावककी तरह जानना चाहिये।

—ग्यारहवाँ शतक : उद्देशक १२

[१३]

पुद्गल परिव्राजक

उस समयकी वात है। ओलभिका नगरीमें शखवन चैत्यसे कुछ दूर पुद्गल नामक परिव्राजक रहता था। वह ऋग्वेदादिका ज्ञाता था-स्कन्दककी तरह। निरन्तर छट्ठ तपके साथ सूर्यके सम्मुख आतापना लेनेसे तथा प्रकृतिकी सरलतासे उसे विभंगज्ञान उत्पन्न होगया। अपने विभंगज्ञान द्वारा ब्रह्मलोककल्पके देवोंकी स्थिति जानने व देखने लगा। उसको विचार उत्पन्न हुआ—मुझे अतिशययुक्त ज्ञान और दर्शन प्राप्त हुआ है। यह सोचकर वह त्रिदंड आदि उपकरण लेकर आतापनाभूमिसे तापसोंके आश्रममें पहुँचा। वहां अपने उपकरणोंको रखकर आलभिका नगरीके त्रिकमार्गों और चतुष्पथों पर अपने ज्ञानकी चर्चा करने लगा। वह कहता था—मुझे अतिशययुक्त ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है। अपने ज्ञान-द्वारा मैं यह जानता हूं कि देवलोकमें देवताओंकी स्थिति जघन्य दश हजार वर्ष और अधिकसे अधिक दश सागरोपम है। इसके पश्चात् देव और देवलोक व्युच्छिन्न होते हैं।

एक वार श्रमण भगवान् महावीर आलभिका नगरीमें पधारे। भगवान् गौतम भिक्षार्थ गये। वहां उन्होंने अनेक मनुष्यों से पुद्गलकी मान्यता सुनी। उन्होंने इस विषयमें भगवान्से

पूछा और महावीरने पुद्गलके मन्तव्यका खंडन किया। वे बोले—देवताओंकी जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष और उत्कृष्ट तैतीस सागरोपम है। पश्चात् देव और देवलोक व्युछिन्न हैं।

पुद्गलने महावीर-द्वारा अपनी मान्यताका खंडन सुना। शिव राजर्षि व स्कन्दककी तरह वह भी सोचने लगा। भगवान्के पास पहुँचा तथा समस्त उपकरणोंको त्यागकर प्रव्रजित हुआ। शेष सर्व वर्णन शिव राजर्षिकी तरह ही है।

—ग्यारहवां शतक : १२ उद्देशक।

[१४]

सुदर्शन श्रेष्ठि

उस समयकी बात है। वाणिज्यग्राम नामक नगर था। वहाँ सुदर्शन नामक एक श्रेष्ठि रहता था। सुदर्शन श्रेष्ठि धनिक, प्रभावसम्पन्न तथा किसीसे भी पराभूत नहीं हो सकता था। वह जीवाजीवका ज्ञाता था।

एक दिन श्रमण भगवान् महावीर वाणिज्यग्राम नगरके दूतिपलाशक चैत्यमें पधारे। उनके आगमनका समाचार सुनकर सुदर्शन श्रेष्ठि हर्षित एवं संतुष्ट हुआ। वह सर्वालंकारसे विभूषित हो, कोरंटपुष्पकी मालावाला छत्र धारणकर अनेक व्यक्तियोंके साथ पैदल-पैदल ही भगवान्के दर्शनार्थ गया। धर्मकथा हुई। धर्मकथा सुनकर वह अत्यन्त हृष्ट, तुष्ट व संतुष्ट हुआ और वन्दन-नमस्कारकर उसने भगवान्से पूछा :—

हे भगवन् काल कितने प्रकारका है?

सरोवर, (११) समुद्र, (१२) विमान अथवा भवन, (१३) रत्न-राशि, (१४) प्रज्वलित अग्नि।

इन चौदह महास्वप्नोंमें वासुदेवकी माताएँ जब वासुदेव गर्भमें आते हैं तब सात, बलदेवकी माताएँ बलदेवके गर्भमें आनेपर चार और प्रतिवासुदेवकी माताएँ प्रतिवासुदेवके गर्भमें आनेपर एक स्वप्न देखकर जागती हैं। प्रभावती देवीने एक महास्वप्न देखा है। यह स्वप्न उदार, कल्याणप्रद, मंगल-रूप है तथा आरोग्य व सुख-समृद्धिका सूचक है। यह बताता है कि आपको अर्थलाभ, भोगलाभ, पुत्रलाभ और राज्यलाभ होगा। निश्चयरूपसे आपके कुलमें ध्वजसदृश नवमास साढ़े सात दिन सम्पूर्ण होनेपर पुत्ररत्न उत्पन्न होगा। वह पुत्र बड़ा होने पर या तो (मांडलिक) राजा होगा अथवा भावितात्मा अनगार होगा।

स्वप्नपाठकोंकी बात सुनकर राजा अत्यन्त हर्षित एवं संतुष्ट हुआ। उसने उनका स्वागत-सत्कार किया तथा यथोचित दान देकर विदा किया।

प्रभावती रानी गर्भका प्रतिपालन करने लगी। वह अत्यन्त शीतल, अत्यन्त ऊष्ण, अत्यन्त तिक्त, अत्यन्त कटु, अत्यन्त कषायले, अत्यन्त खट्टे व अत्यन्त मधुर पदार्थ नहीं खाती परन्तु ऋतुयोग्य सुखकारक भोजन करती। वह गर्भको हितप्रद, पथ्य, मित एवं पोषण करनेवाले पदार्थ यथासमय ग्रहण करती तथा वैसे ही वस्त्र और माला-पुष्प-आभरण आदि धारण करती। उसका प्रत्येक दोहद सम्मानके साथ पूर्ण हुआ। रोग, मोह, भय और परित्रासरहित हो वह गर्भका पोषण करने लगी।

समय आनेपर रानीने श्रेष्ठ पुत्र-रत्नको जन्म दिया। राजा और प्रजाने धूमधामसे जन्मोत्सव मनाया। बारहवें दिन राजाने सर्व कुटुम्बियों तथा सम्बन्धियोंको बुलाकर महाबल नाम रखा।

धीरे-धीरे महाबलकुमार बड़ा हुआ। विवाहयोग्य वय देखकर राजाने आठ योग्यवयवाली कुमारियोंके साथ विवाह कर दिया। उस समय उनके माता-पिताने [1]आठ २ वस्तुओंका प्रतिदान दिया। राजाने महाबल और वधुओंके रहनेके लिये शानदार आठ महल बनवाये तथा उनके मध्यमें सैकड़ों खंभवाला एक स्थापत्यकलापूर्ण महल बनवाया। वहां महाबल अपूर्व भोग भोगता हुआ रहने लगा।

एक बार विमलनाथ तीर्थंकरके प्रपौत्र धर्मघोष नामक मुनि अपने पांचसो साधुओंके परिवारके साथ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए हस्तिनापुर पधारे। उनके दर्शनार्थ जाते हुए अनेक मनुष्योंको देखकर महाबलको कुतूहल हुआ। उसने कंचुकीसे कारण पूछा। समाचार जानकर महाबल कुमार भी दर्शनार्थ गया। धर्मकथा हुई। महाबलकुमारने प्रव्रज्या लेनेकी इच्छा व्यक्त की। राजाने बहुत समझाया परन्तु वह अपने निश्चय पर अडिग रहा। अन्तमें राजाकी इच्छानुसार उसका राज्याभिषेक हुआ परन्तु उसके विचारोंमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

उसने धर्मघोष आचार्यके पास दीक्षा ग्रहण की। चौदह पूर्व-ग्रन्थोंका अध्ययन किया। अनेक विचित्र तपकर्मों-द्वारा आत्माको निर्मल बनायी। बारह वर्ष-पर्यन्त श्रमणपर्याय-पालनके

१—मूलसूत्रमें आठ २ वस्तुओंके नाम गिनाये गये हैं।

पश्चात् व साठ समय उपवास करके तथा समाधिके साथ आलोचन-प्रतिक्रमणकर महाबल अनगार ब्रह्मलोक कल्पमें देव-रूपमें उत्पन्न हुए। तत्रस्थ देवोंकी स्थिति दश सागरोपम है।

हे सुदर्शन! वह महाबलदेव तू ही है। दश सागरोपमकी स्थिति क्षयकर यहाँ वाणिज्यग्राममें समुत्पन्न हुआ है। इससे पल्योपम और सागरोपमका क्षय एवं अपचय होता है, यह जाना जा सकता है।

महावीरकी बात सुनकर सुदर्शनको शुभ अध्यवसायोंके परि-णाम-स्वरूप जातिस्मरणज्ञान हो गया। इससे उसे अधिक श्रद्धा और संवेग उत्पन्न हुआ। उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया और महावीरके पास दीक्षा ग्रहण की। बारह वर्ष-पर्यन्त साधुपर्यायका पालनकर तथा मासिक संलेषणाकर वह सिद्ध-बुद्ध तथा विमुक्त हुआ।

—ग्यारहवाँ शतक : उद्देशक ११

[१५]

मद्रुक श्रावक

उस समयकी बात है। राजगृह नामका नगर था। उसके पास ही गुणशील नामक चैत्य था। उस चैत्यसे कुछ दूर कालोदायी, शैलोदायी, सेवालोदायी, उदय, नामोदय, नर्मोदय अन्यपालक, शैलपालक, शखपालक और सुहस्ति नामक अन्य-तीर्थिक गृहस्थ रहते थे। एक दिन वे सब एकसाथ बैठे हुए बात कर रहे थे। उनकी चर्चाका विषय था ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर-द्वारा प्ररूपित पंचास्तिकाय। वे कह रहे थे—श्रमण

ज्ञातपुत्र पांच अस्तिकाय प्ररूपित करते हैं:—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय। इनमें जीवास्तिकाय जीवरूप व पुद्गलके अतिरिक्त अन्य अस्तिकाय अरूपी व अमूर्त हैं। मात्र एक पुद्गलास्तिकाय रूपी है, ऐसा कैसे माना जा सकता है ?

उसी नगरमें मद्रुक नामक एक धनाढ्य श्रावक रहता था। राजगृहमें भगवान् महावीरके आगमन के सवादको सुनकर वह उनके दर्शनार्थ जा रहा था। इतनेमें अन्यतीर्थिकोंने उसे जाते हुए देखा और उसे बुलाया तथा अपने उपर्युक्त मन्तव्यको प्रकट किया।

मद्रुक बोला—कोई भी वस्तु अपने कार्य-द्वारा जानी जा सकती अथवा देखी जा सकती है। यदि वस्तु अपना कार्य न करे तो न हम उसको जान सकते है और न देख ही सकते हैं। पवन प्रवाहित होता है परन्तु हम उसका रूप नहीं देख सकते, गन्धगुणयुक्त पुद्गल होते हैं परन्तु हम उन्हें देख नहीं सकते, अरणिमें अग्नि होती है परन्तु हम उसमें अग्नि नहीं देख सकते, समुद्रके उसपार अनेक पदार्थ हैं परन्तु हम नही देख सकते, देवलोकमें भी पदार्थ हैं परन्तु हम उन्हें नहीं देख सकते ; इसका अर्थ यह तो नहीं कि तुम्हारे-हमारे जैसे अज्ञानी व्यक्ति जिस पदार्थोंको नहीं देख सकते अथवा नहीं जान सकते, वे पदार्थ ही नहीं। इस आधारसे तो अनेक पदार्थोंका अभाव हो जायगा।

इतना कहकर मद्रुकने उन्हें निरुत्तर कर दिया। तदनन्तर वह भगवान् महावीरके पास गया उन्हें वन्दन-नमस्कार किया। भगवान् महावीरने उसे सर्व घटना बताई तथा कहा—हे मद्रुक!

जब कोई अन्य पुरुष अनदेखी, अनसुनी, अस्वीकृत तथा अज्ञात वस्तु, हेतु या प्रश्नके सम्बन्धमें अथवा किसी ज्ञानके सम्बन्धमें अनेक मनुष्योंके मध्य कहता है तो वह अर्हतों तथा अर्हत-प्ररूपित धर्मकी आशातना करता है। अतः अन्य-तीर्थिकोंको तेरा दिया हुआ प्रत्युत्तर ठीक व उचित था। भगवान् के वचन सुनकर मद्रुक बहुत संतुष्ट हुआ। उसने धर्मकथा सुनी तथा अनेक प्रश्न पूछे। तदनन्तर वह वह वन्दन-नमस्कार कर अपने घर आया।

मद्रुकके जानेके पश्चात् गौतम स्वामीने भगवान् से पूछा—हे भगवन्! यह मद्रुक श्रावक क्या आपके पास प्रव्रज्या ग्रहण करेगा?

महावीर बोले—हे गौतम! ऐसी बात नहीं। यह अनेक शीलव्रत आदि नियमोंका पालन कर तथा यथायोग्य स्वीकृत तपकर्म-द्वारा आत्माको भावित कर साठ समय तक अन-शन द्वारा मृत्यु प्राप्त कर सौधर्म-कल्पमें अरुणाभ नामक विमानमें देवता रूपमें उत्पन्न होगा। वहाँ उसका आयुष्य चार पल्योपम का होगा। वहाँसे वह च्युत् हो महाविदेह क्षेत्रमें जन्म लेकर सिद्ध-बुद्ध तथा मुक्त होगा।

— अठारहवाँ शतक : उद्देशक ७

[१६]

तुंगिका के श्रावक

तुंगिका नगरीमे अनेक श्रमणोपासक—श्रावक रहते थे? वे श्रमणोपासक आढ्य—अपार समृद्धियुक्त और प्रभावसम्पन्न

थे। उनके निवासस्थान—गृह, विशाल और उन्नत थे। उनके पास आसन, शयनोपकरण, वाहन आदि पर्याप्त मात्रामें थे। सोना, चांदी आदि धन भी उनके पास बहुत था। बेन्किगके व्यवसाय द्वारा अपने धनको दुगुना, तीगुना करनेमें कुशल थे। वे अन्य कलाओंमें भी पटु थे। उनके घरोंमें बहुत झूठन छूटता था (क्योंकि उनके यहाँ अनेक व्यक्ति भोजन किया करते थे)। उनके यहाँ अनेक दास-दासियाँ तथा गाय-भैंस आदि अनेक चतुष्पद भी रहते थे। अनेक मनुष्यों द्वारा भी वे पराभूत नहीं हो सकते थे।

तुंगिकाके श्रमणोपासक जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, सवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, बंध और मोक्ष—आदि तत्त्वों के ज्ञाता तथा विचारक थे। वे यह जानते थे कि इनमें कौन ग्राह्य या कौन अग्राह्य है। वे निर्ग्रन्थ-प्रवचन में इतने दृढ़ थे कि समर्थ देव, असुर, नाग, ज्योतिष्क, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष, गरुड़—स्ववर्णकुमार, गन्धर्व, महोरग तथा अन्य देव भी चलित नहीं कर सकते थे। वे निर्ग्रन्थ प्रवचनमें शंका एवं विचिकित्सा रहित थे। उन्होंने शास्त्रोंका वास्तविक—निश्चित अर्थ ग्रहण कर रखा था, शास्त्रीय अर्थोंमें संदेहास्पद स्थलोंको पूछकर योग्य निर्णय कर रखा था। शास्त्रीय अर्थोंका विस्तृतरूपसे ज्ञान प्राप्तकर रखा था। शास्त्रीय रहस्य उन्होंने निर्णयके साथ समझ रखे थे। निर्ग्रन्थ-प्रवचनका प्रेम उनकी हड्डी २ में व्याप्त था। कभी २ प्रेमवश वे एक दूसरेको कहा करते थे "हे आयुष्मन्! यह निर्ग्रन्थ-प्रवचन ही परम अर्थ है, यही परमार्थ रूप है; अन्य सर्व अनर्थ रूप है"

ये अत्यन्त उदार थे। उनके घरके दरवाजोंकी अर्गलें सदैव दूसरोंके लिये खुली रहती थीं। वे श्रावक यदि किसीके अन्तःपुर या घरमें चले जाते तो उनके प्रति सब प्रेम प्रदर्शित करते। शील-व्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्याख्यान, पौषध और उपवास-द्वारा अपनी आत्मा निर्मल करते रहते थे। चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या तथा पूर्णिमाको परिपूर्ण पौषध किया करते थे। श्रमण-निर्ग्रन्थोंको निर्दोष और कल्पनीय अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कंबल, रजोहरण, पीठ, पट्ट, शैय्या, संस्तारक, और औषध-भेषज आदि दिया करते थे।

इसप्रकार यथाप्रतिग्रहीत तपकर्म-द्वारा अपनी आत्माको संजोकर अपनी दिन-चर्या व्यतीत किया करते थे।

—द्वितीय शतक : पंचम उद्देशक

[१७]

गोशालक

उस समयकी बात है। श्रावस्ती नामक नगर था। उसके ईशान कोणमें कोष्ठक नामक चैत्य था। श्रावस्तीनगरमें आजी-विक मतकी उपासिका हालाहला नामक एक कुम्हारिन रहती थी। वह समृद्धिशालिनी तथा प्रभावसम्पन्न थी। वह किसीसे भी पराभूत नहीं हो सकती थी। उसने आजीविकमतके सिद्धान्त हृदयंगम कर रखे थे और आजीविकमतका प्रेम उसके रग-रगमें व्याप्त था। वह प्रायः कहा करती थी "अजीविक मत ही सत्य तथा परमार्थ है; अन्य सर्व मत अनर्थ हैं।

एक बार चौवीस वर्षीय दीक्षा-पर्यायवाला मंखलीपुत्र

गोशालक हालाहला कुम्हारिनके कुंभकारापण—बाजारमें अपने आजीविक संघसे परिवृत्त हो ठहरा हुआ था।

एक दिन मंखलिपुत्र गोशालकके पास शान, कलंद, कर्णिकार, अछिद्र, अग्निवेश्यायन और गोमायुपुत्र अर्जुन नामक छः [1]दिशाचर आये। इन दिशाचरोंने पूर्व ग्रन्थमें कथित आठ प्रकारके निमित्त, नवम गीतिमार्ग तथा दशम नृत्यमार्गका ज्ञान प्राप्त कर रखा। इन्होंने गोशालकका शिष्यत्व अंगीकार किया।

गोशालकको अष्टांगनिमित्तका कुछ ज्ञान था। अतः वह इसके द्वारा सर्व व्यक्तियोंको लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवन और मरणके विषयमें सत्य २ उत्तर दे सकता था। अपने इस अष्टागनिमित्तके ज्ञानकी बदौलत गौशालकने अपनेको श्रावस्तीमें जिन नहीं होते हुए भी जिन, केवली नहीं होते हुए भी केवली, सर्वज्ञ नहीं होते ही भी सर्वज्ञ घोषित करना प्रारम्भ कर दिया। वह कहा करता था—"मैं जिन,केवली और सर्वज्ञ हूं।" उसकी इस घोषणाके फलस्वरूप श्रावस्तीके त्रिकमार्गों, चतुष्पथों और राजमार्गोंमें सर्वत्र यही चर्चा होने लगी।

एक दिन श्रमण भगवान् महावीर श्रावस्ती नगरीमें पधारे। जनता धर्मकथा श्रवणार्थ गई। सभा समाप्त हुई। तदनन्तर महावीरके प्रमुख शिष्य गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति अनगार भिक्षार्थ श्रावस्तीनगरीमें पधारे। भिक्षार्थ जाते हुए उन्होंने अनेक व्यक्तियोंके मुखसे गोशालककी उद्घोषणाके सम्बन्धमें सुना। वे भगवान् महावीरके पास आये और गोशालककी

१—ये दिशाचर महावीरके पथभ्रष्ट (पतित) शिष्य थे, ऐसा टीकाकार तथा पार्श्वनाथसंतानीय थे, ऐसा चूर्णिकार कहते हैं।

घोषणाके सम्बन्धमें पूछा तथा गोशालकका आरम्भसे अन्ततक का इतिवृत्त सुनानेकेलिये भी अनुरोध किया।

महावीर बोले—हे गौतम! गोशालककी घोषणा मिथ्या है। वह जिन, सर्वज्ञ और केवली नहीं है। मंखलीपुत्र गोशालक का मंखजातीय मंखली नामक पिता था। मंखलीके भद्रा नामक पत्नी थी। वह सुन्दर और सुकुमार थी। एक बार भद्रा गर्भिणी हुई। उस समयमें शरवण नामक एक ग्राम था। वहाँ गोवहुल नामक ब्राह्मण रहता था। वह धनिक तथा ऋग्वेदादि ब्राह्मण-शास्त्रोंमें निपुण था। गोबहुलके एक गोशाला थी।

एक बार मखली भिक्षाचर हाथमें चित्रपट लेकर गर्भवती भद्राके साथ ग्रामानुग्राम घूमता हुआ शरवण सन्निवेश—ग्राममें आया। उसने गोबहुलकी गोशालामें अपना सामान रखा तथा भिक्षार्थ ग्राममें गया। भिक्षार्थ जाते हुए उसने निवासयोग्य स्थानकी बहुत खोजकी परन्तु उसे कोई स्थान न मिला। अतः उसने उसी गोशालाके एक भागमें चातुर्मास व्यतीत करनेके लिये निवास किया। तदनन्तर नवमास साढ़े सात दिवस व्यतीत होनेपर मंखलीकी धर्मपत्नी भद्राने एक सुन्दर व सुकुमार बालकको जन्म दिया। बारहवे दिवस मातापिताने गोवहुलकी गोशालामें जन्म लेनेके कारण शिशुका नाम गोशालक रखा। क्रमशः गोशालक बड़ा हुआ और पढ़-लिखकर परिणत मतिवाला हुआ। गोशालकने भी स्वतन्त्ररूपसे चित्रपट हाथमें लेकर अपनी आजीविका चलाना प्रारम्भ कर दी।

उस समय मैं तीस वर्ष-पर्यन्त गृहवासमें रहकर, मेरे माता-पिताके दिवंगत होनेपर, स्वर्णादिका त्यागकर, मात्र एक देवदुष्य

वस्त्र पहिनकर प्रव्रजित हुआ था। अर्द्ध २ मासके उपवास करते हुए मैंने अपना प्रथम चातुर्मास अस्थिग्राममें व्यतीत किया। तदनन्तर द्वितीय वर्षमें मासक्षमण—एक २ मासके उपवास करता हुआ तथा ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ राजगृहके बाहर नालंदाके बुनकरोंकी तंतुवायशालाके एक भागमें यथायोग्य अभिग्रह ग्रहण कर मैंने चातुर्मासार्थ निवास किया। उससमय गोशालक भी हाथमें चित्रपट लेकर ग्रामानुग्राम घूमता हुआ तथा भिक्षाके द्वारा अपना निर्वाह करता हुआ उसी तंतुवायशालामें आया। उसने भिक्षार्थ जाते हुए अन्य स्थान ढूंढनेका बहुत प्रयत्न किया परन्तु योग्य स्थान न मिला। अतः उसने भी वहीं तंतुवायशालामें चातुर्मास व्यतीत करनेका निश्चय किया।

मेरे प्रथम मासक्षमणके पारणका दिन था। मैं भिक्षार्थ राजगृहके उच्च, नीच और मध्यम कुलमें घूमता २ विजय नामक गाथापतिके घर गया। मुझे घरमें प्रवेश करते देखकर विजय गाथापति अत्यन्त हर्षित हुआ। वह अपने आसनसे उठा तथा सात-आठ कदम आगे आया। अपने उत्तरीयका उत्तरासंग बनाकर उसने हाथ जोड़कर मुझे तीन बार प्रदक्षिणा-पूर्वक वन्दन-नमस्कार किया। तदनन्तर उसने मेरा पुष्कल अशन, पान, खादिन-स्वादिम आदिसे सत्कार किया। विजय गाथापतिने द्रव्यकी शुद्धिसे, दायककी शुद्धिसे, पात्रकी शुद्धिसे तथा त्रिविध-त्रिविध करण-शुद्धिसे दिये गये दानके कारण देवायुष्य बांधा और अपने संसारको अल्प किया। ऐसा करनेसे उसके घरमें पांच दिव्य प्रकट हुए—(१) वसुधारा की वृष्टि, (२) पांच वर्णके पुष्पोंकी वृष्टि, (३) ध्वजारूप वस्त्रकी वृष्टि (४) देव

दुंदुभिका बजना तथा (५) नभमडल से "अहोदान अहोदान" की ध्वनि। कुछ ही देरमें नगरमें यह संवाद त्वरासे फैल गया। लोग विजय तथा उसके मनुष्य जन्मको धन्यवाद देने लगे तथा उसके पुण्य-शालित्वका अभिनन्दन करने लगे।

मंखलिपुत्र गोशालकने भी यह संवाद सुना। उसके हृदयमें कुतूहल व जिज्ञासा हुई। वह विजय गृहपतिके घर आया। उसने वर्षित वसुधारा, पुष्पवृष्टि तथा घरसे बाहर निकलते हुए मुझे व विजय गृहपतिको देखा। वह मन-ही-मन बहुत प्रसन्न व हर्षित हुआ। तदनन्तर गोशालक मेरे पास आया और मुझे तीन बार प्रदक्षिणापूर्वक वन्दन-नमस्कार कर बोला—"हे भगवन्। आप मेरे धर्माचार्य है तथा मैं आपका शिष्य हूं।" उस समय मैंने उसकी बातपर ध्यान न दिया और मौन रहा। मेरे द्वितीय मासके मासक्षमणका पारण आनन्द गृहपतिके यहां, तृतीय मासक्षमण का पारण सुनन्दके घर और चतुर्थ मासका पारण नालन्दाके निकट कोल्लाक ग्राममें बहुल ब्राह्मणके यहाँ हुआ। तीनों ही स्थानोंपर वही बनाव हुआ जो विजय गाथापतिके यहाँ हुआ था।

तंतुवायशालामें मुझे न देखकर गोशालक राजगृहमें, मुझे ढूढने लगा परन्तु उसे कहीं भी पता न लगा। अतः वह पुन. तंतुवायशाला मे आया। उसने अपने वस्त्र, पात्र, जूते तथा चित्रपट ब्राह्मणोंको दे दिये तथा अपनी दाढी व मूछका मूडन करवाया। तदनन्तर वह भी कोल्लाक सन्निवेशकी ओर चल पड़ा। कोल्लाक सन्निवेशमें उसने जनता-द्वारा बहुलके यहाँ हुई वृष्टिका समाचार सुना। यह सुनकर उसके मनमें विचार

उत्पन्न हुआ—"मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीरको जैसी, द्युति, तेज, यश, बल, वीर्य और पुरुषाकार पराक्रम और ऋद्धि प्राप्त है वैसी अन्य श्रमण-ब्राह्मण के संभव नही। अतः मेरे धर्माचार्य व धर्मगुरु यही होने चाहिये" अतः वह खोजता २ कोल्लाक सन्निवेशके वाहर मनोज्ञ भूमिमें मेरे पास आया। उसने तीन बार प्रदक्षिणापूर्वक वन्दन-नमस्कार किया तथा मेरेसे निवेदन करने लगा—"हे भगवान्! आप मेरे धर्माचार्य हैं और मैं आपका शिष्य हूँ" मैंने मंखलीपुत्र गोशालक की यह बात स्वीकार की। तदनन्तर गोशालकके साथ प्रणीत भूमिमें छः वर्ष पर्यन्त लाभ, अलाभ, दुख, सुख, सत्कार, असत्-कारका अनुभव करता हुआ विहार करता रहा।

एक बार शरदकालमें जब वृष्टि नहीं हो रही थी, मैं गोशा-लकके साथ सिद्धार्थग्रामसे कूर्मग्रामकी ओर जा रहा था। मार्गमें एक पत्र-पुष्पयुक्त तिलका पौधा मिला। उसको देखकर गोशालकने मेरेसे पूछा—हे भगवन्! यह तिलका पौधा फलेगा या नहीं? ये सात तिलपुष्प के जीव मरकर कहाँ उत्पन्न होंगे? मैंने कहा—हे गोशालक! यह तिलका पौधा फलेगा तथा ये सात तिल पुष्पके जीव मर कर इसी तिलके पौधेकी एक फलीमें सात तिलोंके रूपमें उत्पन्न होंगे।

गोशालकको मेरी बातपर विश्वास नहीं हुआ। मुझे झूठा सिद्ध करनेकी नियतसे वह मेरे पाससे खिसका और तिलके पौधेको मिट्टीसहित मूलसे उखाड़कर एक ओर फेंक दिया। हम कूर्मग्रामकी ओर आगे बढ़ गये। इसी मध्य आकाशमें बादल घुमड़ आये और बिजली चमकने लगी। साधारण वर्षा हुई—

वह वर्षा जिसमें अधिक कीचड़ न हो और धूल शान्त हो जाय, इससे वह तिलका पौधा मिट्टीमें जम गया तथा बद्धमूल हो गया। क्रमशः सात तिल पुष्प भी मरकर उसी तिलके पौधेकी एक फलीमें तिलरूपमें उत्पन्न हुए।

हम कूर्मग्राममें आये। उस समय कूर्मग्रामके वाहर वैश्यायन नामक वाल तपस्वी निरन्तर छट्ठ तपके साथ सूर्यके सम्मुख अपने दोनों हाथ ऊंचे करके आतापना भूमिमें आतापना ले रहा था। सूर्यकी गर्मीसे तप करके उसके सिरसे जूएँ नीचे गिर रही थीं और प्राण, भूत, जीव और सत्त्वकी दयाके लिये वह नीचे गिरी हुई जूओंको पुनः वहीं रख लेता था। गोशालकने वैश्यायन वाल तपस्वीको देखा और मेरे पाससे खिसकर उसके पास गया और उससे बोला—"तुम मुनि हो कि मुनिक—तपस्वी हो, अथवा जूओंके [1]शैय्यातर हो? वैश्यायन बालतपस्वीने गोशालकके कथनका आदर नहीं किया और मौन ही रहा। गोशालकने अपनी बात पुनः दो-तीन बार दुहरायी। इससे वैश्यायन वालतपस्वी एकदम कुपित हो उठा। वह अत्यन्त क्रुद्ध हो आतापना भूमिसे नीचे उतरा। उसने तेजसुमुद्‌घात करके सात-आठ कदम पीछे हट, गोशालकके वधके लिये तेजोलेश्या फेंकी। इस प्रसंगपर मंखलिपुत्र गोशालकके ऊपर अनुकम्पासे वैश्यायन वालतपस्वीकी तेजोलेश्याका प्रतिसंहरण करने के लिये मैंने शीत-तेजोलेश्या फेंकी। मेरी शीत-तेजोलेश्याने उसकी ऊष्ण-तेजोलेश्याका प्रतिघात कर दिया। वैश्यायन वालतपस्वीने गोशालकको किञ्चित् भी पीड़ासे पीड़ित न देखकर तथा

1—जिस व्यक्तिके मकान पर साधु ठहरे, उसे शैय्यातर कहते हैं।

बालबाल बचे हुए देख कर अपनी ऊष्ण तेजलेश्याका शीत-लेश्या द्वारा प्रतिघात समझ, तेजोलेश्याको पुनः खींच ली। वह मेरेसे बोला 'हे भगवन्! मैंने जाना, हे भगवन्! मैंने जाना।

गोशालकने इस सम्बन्धमें मेरेसे पूछा और मैंने सर्व वृत्तान्त सुना दिया। मेरे बात सुनकर वह अत्यन्त भयभीत हुआ। उसने मुझे वन्दन-नमस्कार कर पूछा—"हे भगवन्! संक्षिप्त और विपुल तेजोलेश्या कैसे प्राप्त की जा सकती है? मैंने कहा—जो नाखूनसहित बन्द मुट्ठीभर उड़दके बाकलों और एक चुल्लूभर पानीसे निरन्तर छट्ठ-छट्ठका तप करके तपस्या करे तथा आतापना भूमिमें सूर्यके सम्मुख हाथ ऊँचेकर आतापना ले, उसे छः मासके पश्चात् संक्षिप्त और विपुल दोनों प्रकारकी तेजोलेश्यायें प्राप्त होती हैं। गोशालकने मेरी बातको विनय-पूर्वक स्वीकार की।

एक दिन मैंने गोशालकके साथ कूर्मग्रामसे सिद्धार्थग्रामकी ओर प्रस्थान किया। जब हम उस स्थानपर आये, जहाँ वह तिलका पौधा था; गोशालकने तिलोंके सम्बन्धमें पूछा और बोला—हे भगवन्! वह तिलका पौधा उगा नहीं। नहीं उगने से सात तिल पुष्पके जीव मृत्यु प्राप्तकर तिलरूपमें कैसे उत्पन्न हो सकते हैं? अतः आपका कथन असत्य रहा। मैंने उसे सर्व घटना सुनाई तथा कहा "हे गोशालक वह तिलका पौधा उगा है। सात तिल पुष्पके जीव भी मरकर इसी तिलकी एक फलीमें सात तिल रूपमें उत्पन्न हुए हैं। क्योंकि वनस्पतिका-यिक मरकरके प्रवृत्तपरिहारका परिहार करते हैं अर्थात् मरकर पुनः उसी शरीरमें उत्पन्न होते हैं, गोशालकने मेरी बातपर

विश्वास तथा श्रद्धा नहीं की। वह तिलके पौधेके पास गया और उस फलीको तोड़कर तथा हथेलीमें मसलकर तिल गिनने लगा। गिननेपर सात तिल ही निकले। इससे उसके मनमें विचार उत्पन्न हुआ—"यह निश्चित बात है कि सर्व प्राणी मरकर पुनः उसी शरीरमें ही उत्पन्न होते हैं" गोशालकका यही परिवर्तवाद है। तदनन्तर मेरे पाससे (तेजोलेश्या विधि) ग्रहण कर वह मेरेसे पृथक् हो गया।

छः मास पर्यन्त उपर्युक्त विधिके अनुसार तपस्या करनेपर गोशालकको संक्षिप्त और विपुल—दोनों तेजोलेश्यायें प्राप्त हुईं।

कुछ दिनों बाद गोशालक से ये छः दिशाचर आमिले। तबसे वह अपनेको जिन नहीं होते हुए भी जिन, केवली न होते हुए भी केवली, सर्वज्ञ नहीं होते हुए भी सर्वज्ञ घोषित कर रहा है।

यह बात श्रावस्ती नगरमें सर्वत्र फैल गई। सब जगह यही चर्चा होने लगी। 'गोशालक जिन नहीं परन्तु जिनप्रलापी है। श्रमण भगवान् महावीर ऐसा कहते है।'

मंखलिपुत्र गोशालकने भी अनेकों मनुष्योंसे यह बात सुनी। वह अत्यन्त क्रोधित हुआ। उसके क्रोधका पार न रहा। वह क्रोधसे जलता हुआ आतापनाभूमिसे हालाहला कुम्भकारापणमें आया और अपने आजीविक संघके साथ अत्यन्त अमर्षके साथ बैठा।

उस समय श्रमण भगवान् महावीरके आनन्द नामक स्थविर शिष्य भिक्षार्थ नगरमें गये हुए थे। आनन्द स्वभावसे सरल व विनीत थे। निरन्तर छट्ठ तप किया करते थे। उच्च, नीच व मध्यम कुलोंमें घूमते हुए वे हालाहलाके कुम्भकारापणसे कुछ

दूरसे गुजरे। गोशालकने उन्हें देखा और बोला—हे आनन्द! तू इधर आ और मेरा एक दृष्टान्त सुन। गोशालककी बात सुनकर आनन्द गोशालकके पास पहुँचे और गोशालकने कहना शुरू किया :—

बहुत पुरानी बात है। कुछ धनके लोभी व्यापारी धनकी खोज करनेके लिये तथा धन प्राप्त करनेके लिये अनेक प्रकारका किराना और सामान गाड़ियोंमें भर तथा मार्गके लिये यथोचित भोजन-पानीका प्रबन्धकर रवाना हुए। मार्गमें उन्होंने एक ग्रामरहित, गमनागमन रहित, जलविहीन, लम्बे मार्गवाली अटवीमें प्रवेश किया। जंगलका कुछ भाग पार करनेके पश्चात् साथमें लिया हुआ पानी समाप्त होगया। तृषासे पीड़ित व्यापारी परस्पर विचार-विमर्श करने लगे। उनके सामने एक समस्या खड़ी हो गई। अन्तमें वे उसी अटवीमें चारों ओर पानी ढूंढ़ने लगे। खोजते २ वे एक ऐसे घने जंगलमें पहुँचे जहाँ एक विशाल बल्मीक था। उसके ऊँचे २ चार शिखर थे। उन्होंने एक शिखर फोड़ा। फोड़ते ही उन्हें स्वच्छ, उत्तम, पाचक और स्फटिकके सदृश जल प्राप्त हुआ। उन्होंने पानी पिया, बैल आदि वाहनोंको पिलाया तथा मार्गके लिये पानीके बर्तन भर लिये। तदनन्तर उन्होंने लोभसे दूसरा शिखर भी फोड़ा उसमें उन्हें पुष्कल स्वर्ण प्राप्त हुआ। उनका लोभ बढ़ा और मणि-रत्नादिकी कामनासे तीसरा शिखर भी फोड़ा—उसमें उन्हें मणिरत्न प्राप्त हुए। तदनन्तर बहुमूल्य, श्रेष्ठ, महापुरुषोंके योग्य तथा महाप्रयोजनयुक्त वज्ररत्नकी कामनासे उन्होंने चतुर्थ शिखर भी फोड़नेका विचार किया। उन बनिकोंमें एक समझदार,

हितैषी तथा अपने तथा सबोंके हित, सुख, पथ्य, अनुकम्पा तथा कल्याणका अभिलाषी वनिक था। वह बोला—हमें चतुर्थ शिखर फोड़ना नहीं चाहिये। यह हमारे लिये कदाचित् दुख और संकटका कारण भी वन सकता है। परन्तु अन्य साथी व्यापारियों ने उसकी बात स्वीकृत नहीं और चौथा शिखर फोड़ ही दिया। उसमें एक महाभयंकर अत्यन्त कृष्णवर्ण दृष्टिविष सर्प निकला। उसकी क्रोधपूर्ण दृष्टि पड़ते ही वे सर्व वनिक मय सामानके जलकर राख हो गये। मात्र चौथे शिखरको न तोड़नेकी सम्मति देनेवाला वनिक बचा। उसको उस सर्पने मय सामानके उसके घर पहुँचाया। उसीप्रकार हे आनन्द! तेरे धर्माचार्य और धर्मगुरु श्रमण ज्ञातपुत्रने उदार अवस्था प्राप्त की है। देव-मनुष्यादिमें उनकी कीर्ति तथा प्रशंसा फैली हुई है। पर यदि आज वे मेरे संबन्धमें कुछ भी कहेंगे तो मेरे तप-तेज द्वारा वनियोंके सदृश उन्हें भस्म कर दूँगा। मात्र उस हितैषी व्यक्तिकी तरह तुझे बचालूँगा। अतः तू अपने धर्माचार्यके पास जाकर मेरी कही हुई बात कह।

मंखलिपुत्र गोशालककी बात सुनकर आनन्द बहुत भयभीत हुए और श्रमण भगवान् महावीरसे आकर सब वृत्त सुनाया। उन्होंने महावीरसे साथमें यह भी पूछा कि क्या गोशालक उन्हें भस्म कर सकता है ?

महावीर बोले—गोशालक अपने तप-तेजसे किसीको भी एक ही चोटमें कुटाघातके सदृश भस्म कर सकता है परन्तु अरिहत-भगवन्तोंको नहीं जला सकता! हाँ, दुख—परिताप, अवश्य उत्पन्न कर सकता है। उसमें जितना तप-तेज है उससे

अनागार साधुका तपतेज अनन्तगुणित विशिष्ट है; क्योंकि अनगार-साधु क्षमा-द्वारा क्रोधका निग्रह करनेमें समर्थ हैं। अनगार भगवंतोंके तपसे स्थविर भगवंतोंका तप, क्षमाके कारण अनन्त-गुणित विशिष्ट है। स्थविर भगवंतोंके तपोबलसे अरिहंत भगवंतोंका तपोबल, क्षमाके कारण अनन्तगुणित विशिष्ट है अतः उनको कोई जला नहीं सकता पर परिताप अवश्य उत्पन्न कर सकता है। अतः तू जा और गौतमादि श्रमण-निर्ग्रन्थोंसे यह बात कह—"हे आर्यो! तुममेंसे कोई भी गोशालककी साथमें धर्म सम्बन्धी प्रतिचोदना—उसके मतसे प्रतिकूल वचन, धर्मसम्बन्धी प्रतिसारणा—उसके मतसे प्रतिकूल सिद्धान्तका स्मरण और धर्मसम्बन्धी प्रत्युपचार—तिरस्कार, नहीं करे। क्योंकि गोशालकने श्रमण-निर्ग्रथोंके साथ म्लेच्छत्व तथा अनार्यत्व ग्रहण किया है।"

आनन्द अनगार गौतमादि मुनियोंसे उक्त समाचार दे ही रहे थे कि गोशालक अपने संघसे परिवृत्त हो कोष्ठक चैत्यमें आ पहुँचा। वह भगवान् महावीरसे कुछ दूर खड़ा होकर बोला—"हे आयुष्मन् काश्यप! मंखलीपुत्र गोशालक आपका धर्म-संबंधी शिष्य था; ऐसा जो आप कहते है, वह ठीक है परन्तु आपका वह शिष्य शुद्ध अध्यवसायोंके साथ मृत्यु प्राप्त कर देवलोकमें देवरूपसे उत्पन्न हुआ है। मैं तो कौडिन्यायन गोत्रीय उदायी हूं और गौतमपुत्र अर्जुनके शरीरका परित्याग कर मखलीपुत्र गोशालकके शरीरमें प्रवेश करके मैने सातवां प्रवृत्त-परिहार—शरीरान्तर प्रवेश, किया है। हमारे सिद्धान्तके अनु-सार जो कोई मोक्ष गये हैं, जाते हैं और जायेंगे, वे सभी

चौरासी लाख महाकल्प (काल विशेष), सात देव भव, सात संयूथनिकाय, सात संज्ञीगर्भ (मनुष्य गर्भावास) और सात प्रवृत्तपरिहार करके तथा पांच लाख, साठ हजार, छः सो तीन कर्म-भेदोंका अनुक्रमसे क्षय करके मोक्ष गये है तथा सिद्ध-बुद्ध तथा विमुक्त हुए हैं। इसीप्रकार करते आये हैं तथा भविष्यमें भी करेंगे।

चौरासी महाकल्पका परिमाण इसप्रकार है :—गंगा नदीकी लम्बाई पाचसो योजन है। विस्तारमें अर्धयोजन तथा गहराईमें पांचसो धनुप है। ऐसी सात गंगाओंके मिलनेसे एक महागगा, सात महागंगाओंसे एक सादीन गंगा, सात सादीन गंगाओंसे एक मृत्युगंगा, सात मृत्युगंगाओंसे एक लोहित गंगा, सात लोहित गंगाओंसे एक अवंति गंगा, सात अवंतिगंगाओंसे एक परमावती गंगा होती है। इसप्रकार पूर्वापर सब मिलाकर एकलाख, सीतर हजार, छः सो उनपचास गंगा महानदियां होती है। इन गंगानदियोंके रेत-कण दो प्रकारके हैं—सूक्ष्म कलेवर और बादर कलेवर। सूक्ष्म कलेवरका यहाँ विचार नही है। बादर कलेवर कणोंमेंसे सो-सो वर्षोंसे एक-एक कण निकाला जाय और इसक्रमसे उपर्युक्त गंगा-समुदाय जितने समयमें रिक्त हो, उस कालको मानससर-प्रमाण कहा जाता है। इसप्रकारके तीन लाख मानससरप्रमाणोंको मिलानेसे एक महाकल्प होता है और चौरासी लाख महाकल्पोंसे एक महामानस होता है। एक जीव अनन्त जीव-समुदायसे च्युत् होकर संयूथदेवभवमें उत्पन्न होता है। वहाँ उसका आयुष्य मानससर-प्रमाण है और वह दिव्य भोगोंका उपभोग करता है। वहाँसे अपना आयुष्य समाप्त कर

सञ्ज्ञी गर्भज पंचेन्द्रिय मनुष्य-रूपमें उत्पन्न होता है। वहांसे च्युत् हो मध्यममानससरप्रमाण आयुष्यवाले संयूथदेवनिकाय में उत्पन्न होता है। वहांसे अपना आयुष्य समाप्त कर द्वितीय संज्ञीगर्भ - गर्भज मनुष्य-रूपमें जन्म लेता है। वहांसे मरकर कनिष्ट मानससरप्रमाण आयुष्यवाले संयूथदेवनिकायमें उत्पन्न होता है; वहां से च्युत् हो वह तृतीय संज्ञी गर्भज मनुष्यके रूपमें जन्म लेता है—इसतरह क्रमशः महामानस, मध्यम महा-मानस, कनिष्ट महामानस-प्रमाणवाले देवसंयूथोंमें तथा चौथे पांचवे, छट्ठे संज्ञी गर्भज—गर्भज मनुष्यरूपमें उत्पन्न होता है। छट्ठे मनुष्यजन्मका आयुष्य समाप्त कर वह ब्रह्मलोक नामक कल्पमें उत्पन्न होता हैं। ब्रह्मलोक पूर्व तथा पश्चिममें लंबा तथा उत्तर व दक्षिणमें [1]विस्तारयुक्त है। वहां दश सागरोपमका आयुष्य हैं। वहां दिव्य भोग भोगकर वह जीव सातवें संज्ञी-गर्भज मनुष्यरूपमें उत्पन्न होता है। नव मास साढे सात दिन पूर्ण होनेके पश्चात् एक सुन्दर, सुकुमार व साक्षात् देवकुमार समान बालकका जन्म हुआ। हे काश्यप! वही बालक मैं हूं। कुमारावस्थामें ही मुझे प्रव्रज्या व ब्रह्मचर्यव्रत-ग्रहण करनेकी इच्छा हुई। प्रव्रज्या ली। तदनन्तर मैंने सात प्रवृत्तपरिहार—शरीरान्तर प्रवेश, किये। उनके नाम इसप्रकार हैं ऐणेयक, मल्लराम, मंडिक, रोह, भारद्वाज, गौतमपुत्र अर्जुन, मंखलीपुत्र गोशालक। प्रथम शरीरान्तर प्रवेश राजगृहके बाहर मंडिकुक्षि नामक चैत्यमें अपने कुंडियायन गोत्रीय उदायनका शरीर त्याग कर ऐणेयकके शरीरमें किया। बाईस वर्ष-पर्यन्त मैं उस शरीर

---

[1] देखो प्रज्ञापना पद २

में रहा। द्वितीय शरीरान्तर प्रवेश उद्दंडपुर नगरके बाहर चन्द्रावतरण चैत्यमें ऐणेयकके शरीरका परित्यागकर मल्लरामके शरीर में किया। उस शरीरमें ईक्कीस वर्ष-पर्यन्त रहा। फिर, तृतीय शरीरान्तर प्रवेश चम्पानगरीके बाहर अंगमन्दिर नामक चैत्यमें मल्लरामका शरीर त्यागकर मंडिकके देहमें किया। उसमें बीस वर्ष-पर्यन्त रहा। चतुर्थ शरीरान्तर प्रवेश वाराणसी नगरीके बाहर काममहावन नामक चैत्यमें मंडिकके देहका त्यागकर रोहके शरीरमें किया। उसमें १९ वर्ष अवस्थित रहा। पांचवां शरीरान्तर प्रवेश आलभिका नगरीके बाहर प्राप्तकाल नामक चैत्यमें रोहके देहका परित्याग कर भारद्वाजके शरीरमें किया। इसमें १८ वर्ष स्थित रहा। तदनन्तर छट्ठा शरीरान्तर प्रवेश वैशाली नगरीके बाहर कुंडियायन चैत्यमें भारद्वाजका शरीर परित्याग कर गौतमपुत्र अर्जुनके शरीरमे किया। उसमें १७ वर्ष रहा। सातवां शरीरान्तर प्रवेश इसी श्रावस्तीनगरीमें हालाहला कुम्हारिनके कुम्भकारापणमें गौतमपुत्र अर्जुनका शरीर परित्याग कर मंखलीपुत्र गोशालकके शरीरको समर्थ, स्थिर, ध्रुव, धारणयोग्य, शीतादि परिषहोंको सहन करनेयोग्य तथा स्थिर संघयणयुक्त समझ, उसमें किया। अतः हे काश्यप! मंखलिपुत्र गोशालकको अपना शिष्य कहना; इस अपेक्षासे उचित है।

महावीर बोले—हे गोशालक! जिस प्रकार कोई चोर ग्रामवासियोंसे पराभूत होकर भागता हुआ किसी खड्ड, गुफा, दुर्ग अथवा खाई या विषम स्थानके न मिलनेपर ऊन, शण, कपास या तृणके अग्र भागसे अपनेको ढकनेकी चेष्टा करता है, यद्यपि वह ढका नहीं, फिर भी वह अपनेको ढका हुआ मानता है,

सर्वानुभूति अनगारको अपने तप-तेजसे एक ही प्रहारमें जलाकर भस्म करदिया और पुनः उसीप्रकार अन्टसन्ट वकने लगा।

अयोध्यानिवासी सुनक्षत्र नामक अनगारसे न रहा गया। वे भी सर्वानुभूति अनगारकी तरह उसके पास गये और उसी प्रकार समझाने लगे। गोशालक और क्रोधित हुआ। उसने उनपर भी तेजोलेश्याका प्रहार किया। तपतेजसे जलकर सुनक्षत्र अनगार भगवान् महावीरके पास आये और तीन बार प्रदक्षिणापूर्वक वंदन-नमस्कार किया। उन्होंने पाचों महाव्रतोंका उच्चारण किया तथा साधु-साध्वियोंसे क्षमायाचना की। पश्चात् आलोचना-प्रतिक्रमणादि कर समाधिपूर्वक शरीरोत्सर्ग किया।

भगवान् महावीरने भी गोशालकको सर्वानुभूति अनगारके सदृश उसीप्रकार समझाया। इससे गोशालक अत्यन्त क्रोधित हो उठा। उसने तैजससमुद्घातकर तथा सात-आठ कदम पीछे हटकर महावीरको भस्म करनेके लिये तेजोलेश्याका प्रहार किया। जिसप्रकार वातोत्कलिक वायु—रह २ कर प्रवाहित वायु, पर्वत स्तूप या दिवालका कुछ भी नहीं विगाड़ सकती उसीप्रकार वह तेजोलेश्या भी विशेष समर्थ नहीं हुई। अन्तमें वार-वार गमनागमन कर प्रदक्षिणा-पूर्वक आकाशमें ऊपर उछली। वहांसे स्खलित हो, गोशालकके शरीरको जलाती हुई उसीके शरीरमें प्रविष्ट हो गई।

स्वयं अपनी ही तेजोलेश्यासे पराभूत गोशालक श्रमण भगवान् महावीरसे बोला—हे काश्यप! मेरी इस तपोजन्य तेजोलेश्यासे पराभूत होकर तू छः मासके अन्दर पित्तज्वर-जन्य दाहसे पीड़ित हो छद्मस्थ अवस्थामें ही मृत्यु प्राप्त करेगा।

महावीर बोले—हे गोशालक ! तू ही तेरी तपोजन्य लेश्यासे पराभूत होकर तथा पित्तज्वरसे पीड़ित हो, सात रात्रि पश्चात् छद्मस्थ अवस्थामें काल-कवलित होगा। मैं तो अभी सोलह वर्ष पर्यन्त जिन—तीर्थंकरके रूपमें विचरण करता रहूंगा।

यह बात, बात-की-बातमें श्रावस्ती नगरीमें फैल गई। श्रावस्तीके त्रिकोण मार्गों, चतुष्पथों और राजमार्गोंमें सर्वत्र यही चर्चा थी। लोग कहते थे—श्रावस्ती नगरीके बाहर कोष्ठक चैत्यमें दो जिन परस्पर आक्षेप-प्रक्षेप कर रहे है—इनमें एक कहता है—तू प्रथम मृत्यु प्राप्त होगा और दूसरा कहता है कि तू प्रथम मृत्यु प्राप्त होगा—इनमें कौन-सच्चा और कौन झूठा है? उनमें जो मुख्य व प्रतिष्ठित व्यक्ति थे, वे कहते—श्रमण भगवान् महावीर सत्य-वादी हैं और मंखलिपुत्र गोशालक मिथ्यावादी है।

इधर भगवान् महावीरने अपने निर्ग्रन्थ-श्रमणोंको बुलाया और कहा—जिसप्रकार तृण, काष्ठ, पत्र आदिका ढेर अग्निसे जल जानेके पश्चात् नष्ट-तेज होजाता है उसीप्रकार गोशालक भी मेरे वधके लिये तेजोलेश्या निकालकर नष्टतेज होगया है। अतः तुम खुशीसे उसके सामने उसके मतके प्रतिकूल वचन कहो, विस्तृत अर्थ पूछो, धर्मसम्बन्धी प्रतिचोदना करो और प्रश्न, हेतु, व्याकरण और कारण-द्वारा उसे निरुत्तर करो।

श्रमण-निर्ग्रन्थोंने उसको विविध प्रकारके प्रश्नोत्तरों-द्वारा निरुत्तर कर दिया। गोशालक अत्यन्त क्रोधित हुआ परन्तु वह श्रमण-निर्ग्रन्थोंको किञ्चित् भी कष्ट न पहुँचा सका। इससे अनेक आजीविक स्थविर असंतुष्ट होकर उसके संघसे पृथक् हो

भगवान् महावीरकी सेवामें उपस्थित हुए और उनकी सेवामें रहने लगे।

मंखलिपुत्र गोशालक जिस कार्यकी सिद्धिके लिये आया था, उसमें असफल होकर कोष्ठक चैत्यसे बाहर निकला। वह विक्षिप्त सा चारों दिशाओंमें देखता, गर्म २ दीर्घ उच्छ्वास-निःश्वास छोड़ता, अपनी दाढ़ीके बालोंको खींचता, गर्दनको खुजलाता, दोनों हाथोंसे कड़िके करता, हाथोंको हिलाता, पावोंको पछाड़ता, हाय मरा! हाय मरा! चिल्लाता हुआ हालाहला कुम्हारिनके कुम्भकारापणमें पहुँचा। वहां अपने दाहकी शान्तिके लिये कच्चा आम चूसता, मद्यपान करता, बार-बार गीत गाता, वार २ नाचता और वार हालाहला कुम्हारिनको हाथ जोड़ता तथा मिट्टीके वर्तनमें रहे हुए शीतल जलसे अपना गात्र सिंचित करता था।

उधर श्रमण भगवान् महावीरने श्रमण-निर्ग्रन्थोंको आमंत्रित करके कहा "हेआर्यो! मंखलिपुत्र गोशालकने मेरे वधके लिये जिस तेजोलेश्याका प्रहार किया वह १, अंग २, बंग, मगध, ४, मलय ५, मालव, ६, अच्छ ७, वत्स, ८, कौत्स, ९, पाठ, १०, लाट, ११ वज्र १२, मौलि, १३, काशी, १४, कोशल १५, अवाध और १६, संमुक्तर—इन सोलह देशोंकी घात करने, वध करने, उच्छेद करने तथा भस्म करनेमें समर्थ थी। अब वह कुम्भकारापणमें कच्चा आम चूसता हुआ मद्यपान कर रहा है, नाच रहा है तथा वार २ हाथ जोड़कर ठंडे पानीसे शरीरको सिंचित कर रहा है। अपने इन दोपोंको छिपानेके लिये वह निम्न आठ चरम (अन्तिम) वातें प्ररूपित कर रहा है—चरम पान, चरम

गान, चरम नाट्य, चरम अंजलि-कर्म, चरम पुष्कलसंवर्तमहामेघ, चरम सेचनक गंधहस्ति, चरम महाशिलाकंटक संग्राम और इस अवसर्पिणी कालमें चरम तीर्थंकरके रूपमें उसका सिद्ध होना। ठंडे पानीसे शरीर सिंचित करनेके दोषको छिपानेके लिये चार पानक - पेय और चार अपानक—अपेय पानी प्ररूपित कर रहा है। चार पानक - चार प्रकारका पेय पानी इस प्रकार हैं—गायके पृष्ठभागसे गिरा हुआ, हाथसे उलीचा हुआ, सूर्य-तापसे तपा हुआ और शिलाओंसे गिरा हुआ। चार अपानक—पीनेके लिये नहीं परन्तु दाहादि उपशमनके लिये व्यवहारयोग्य, इसप्रकार हैं—स्थालपानी—पानीमें भीगे हुए शीतल छोटे-बड़े वर्त्तन। इन्हें हाथसे स्पर्श करे परन्तु पानी न पीए। त्वचापानी-—आम, गूठली और बेर आदि कच्चे फल मुँहमें चवाना परन्तु उसका रस नहीं पीना, फलीका पानी—उड़द, मूंग, मटर आदिकी कच्ची फलियां मुँहमें लेकर चवाना परन्तु उनका रस नहीं पीना, शुद्धपानी–जो व्यक्ति छः मास-पर्यन्त शुद्ध मेवा मिष्टान्न खाए। इन छः मासोंमें दो मास-पर्यन्त भूमि-शयन, दो मासपर्यन्त पट्टशयन और दो मास-पर्यन्त दर्भ-शयन—घासके विछोनेपर शयन, करे तो छट्ठे मासकी अन्तिम रात्रिमें महाऋद्धिसम्पन्न मणिभद्र और पूर्णभद्र नामक देव प्रकट होते हैं। वे अपने शीतल और आर्द्र हाथोंका स्पर्श करते हैं। यदि व्यक्ति उस शीतल स्पर्शका अनुमोदन करता है तो आशीविषरूपमें प्रकट होता है और अनमोदन नहीं करता है तो उसके शरीरसे अग्नि समुत्पन्न होती है और समुत्पन्न ज्वलाओंमें उसका देह भस्म हो जाता है। तदनन्तर वह व्यक्ति सिद्ध, बुद्ध एवं विमुक्त हो जाता है।

उसी नगरमें अयंपुल नामक एक आजीविकोपासक रहता था। एक दिन मध्य रात्रिमें कुटुम्बचिन्ता करते हुए उसके मनमें विचार आया कि हल्लाका आकार कैसा होता है ? वह अपने धर्माचार्य गोशालकसे समाधान करनेके किये हालाहला कुंभकारापणमें आया। गोशालकको नाचते, गाते तथा मद्यपान करते देखकर वह अत्यन्त लज्जित हुआ और पुनः लौटने लगा। अन्य आजीविक स्थविरोंने उसे देखा तथा बुलवाया। उन्होंने उसे उपर्युक्त आठ चरम वस्तुओंसे परिचित किया तथा कहा—तुम जाओ और अपने प्रश्नका समाधान करो।

स्थविरोंके संकेतसे गोशालकने गुठली एक ओर रख दी तथा अयंपुलसे बोला—'हे अयंपुल ! तुम्हे मध्यरात्रिमें हल्लाका आकार जाननेकी इच्छा हुई परन्तु तुम योग्य समाधान नहीं कर पाये। अतः मेरे पास समाधानके लिये आये थे। मेरी यह स्थिति देखकर तुम लज्जित होकर लौटने लगे। पर यह तुम्हारी भूल है। मेरे हाथमें यह कच्चा आम नहीं परन्तु आमकी छाल है—इसका पीना निर्वाण समयमे आवश्यक है। नृत्य-गीतादि भी निर्वाण समय की चरम वस्तुएं है—अतः हे भाई ! तू भी वीणा बजा ! (उन्मादावस्थामें बोलना)

अयपुल अपने प्रश्नका समाधान कर लौट गया। इधर अपना मृत्यु समय निकट जानकर गोशालकने आजीविक स्थविरोंको बुलवाया तथा बोला—"जब मैं मर जाऊँ तब मेरे देहको सुगंधित पानीसे नहलाना, सुगन्धित भगवां वस्त्र-द्वारा मेरे शरीरको पोंछना, गोशीर्ष चन्दनका विलेपन करना, बहुमूल्य श्वेत वस्त्र पहिनाना तथा सर्वालंकारोंसे विभूषित करना।

तदनन्तर एक हजार पुरुषों द्वारा उठाई जा सके, ऐसी शिविका में बैठाकर श्रावस्ती नगरीके मध्य इसप्रकार घोषणा करते हुए ले जाना—"चौबीसवें चरम तीर्थंकर मंखलिपुत्र गोशालक जिन हुए, सिद्ध हुए, विमुक्त हुए तथा सर्वदुःखोंसे रहित हुए हैं।" इसप्रकार महोत्सवपूर्वक अन्तिमक्रिया करना।

इधर सातवीं रात्रि व्यतीत होनेपर गोशालकका मिथ्यात्व दूर हुआ। उसके मनमें विचार उत्पन्न हुआ—"मैं जिन नहीं होते हुए भी अपनेको जिन घोषित करता रहा हूं। मैंने श्रमणोंका घात किया है और आचार्यसे विद्वेष किया है। श्रमण भगवान् महावीर ही सच्चे जिन हैं।"

उसने स्थविरोंको पुनः बुलवाया और बोला—"हे स्थविरो ! मैं जिन नहीं होते हुए भी अपनेको जिन घोषित करता रहा हूं, मैं श्रमणघाती तथा आचार्य-प्रद्वेषी हूं। श्रमण भगवान् महावीर ही सच्चे जिन हैं। अतः मेरी मृत्युके पश्चात् मेरे बाएं पांवमें रस्सी बांधकर मेरे मुंहमें तीन बार थूकना तथा श्रावस्ती नगरीके राजमार्गोंमें—'गोशालक जिन नहीं परन्तु महावीर ही जिन हैं,' इसप्रकार उद्घोषणा करते हुए, मेरे शरीरको खींचकर ले जाना।" ऐसा करनेके लिये उसने स्थविरोंको शपथ दी।

इतना कह, गोशालक मृत्यु प्राप्त हुआ। स्थविरोंने गोशालक को मृत्यु प्राप्त जानकर कुम्भकारापणके दरवाजे बन्द कर दिये। उन्होंने जमीनपर ही श्रावस्ती नगरीका नक्शा बनाया। तदनन्तर गोशालकके कथनानुसार सब कार्य किया—उसके मुंहमें तीन बार थूका तथा धीमी २ आवाजमें बोले—"गोशालक जिन नहीं परन्तु श्रमण भगवान् महावीर ही जिन हैं।"

इसप्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूर्णकर स्थविरोंने गोशालक के प्रथम कथनानुसार उसकी पूजा और सत्कारको स्थिर रखनेके लिये धूमधामसे उसका मृत देह बाहर निकाला।

इधर श्रमण भगवान् महावीर भी श्रावस्ती नगरीसे विहार कर मेंढिकग्रामके साणकोष्ठक नामक चैत्यमें पधारे। वहाँ उन्हें अत्यन्त पीड़ाकारी पित्तज्वरका दाह समुत्पन्न हुआ और खूनकी दस्तें लगने लगीं। उनकी यह स्थिति देखकर चारों वर्ण के मनुष्य परस्पर चर्चा करने लगे—अब महावीर गोशालकके कथनानुसार छद्मस्थावस्थामें ही मृत्यु प्राप्त करेंगे। भगवान् महावीरके शिष्य सिंह अनगारने यह चर्चा सुनी। उन्हें अच्छा न लगा और वे रुदन, करने लगे। महावीरने यह वात जान ली और निर्ग्रन्थोंको सिंह अनगारको बुलानेके लिये भेजा। सिंह अनगारके आनेपर उन्होंने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—"मैं अभी मृत्यु प्राप्त नहीं होऊँगा परन्तु सोलह वर्ष पर्यन्त जिनरूपमे गन्धहस्तिके सदृश विचरण करूँगा।" अतः तू मेंढिकग्राममें रेवती गाथापत्नीके यहाँ जा। उसने मेरे लिये दो "कुष्मांडफल संस्कारित कर तैयार किये हैं परन्तु वे मुझे प्रयोजनीय नहीं। परन्तु कल उसने वायुको उपशान्त करनेवाला मार्जारकृत विजोरा पाक बनाया है, वह मेरे लिये ले आ!"

सिंह अनगार रेवती गाथापत्नीके यहाँ गये। महावीरके कथनानुसार भिक्षा मांगी। अपनी गुप्त वात जाननेवाले साधुके प्रति वह बहुत प्रसन्न हुई तथा उसने प्रसन्नतासे भिक्षा दी। इससे उसने देवायुष्यका बंधन किया तथा जीवनका वास्तविक फल प्राप्त किया।

तदनन्तर भगवान् महावीरने आसक्तिरहित हो, बिलमें प्रविष्ट सर्पके सदृश उस भिक्षाको शरीररूपी कोष्ठमें डाली। इससे वह पीड़ाकारी रोग उपशान्त हुआ। इस आनन्दजनक समाचारसे देव-मनुष्य आदि सर्व प्राणी प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हुए।

एक दिन गौतम स्वामीने भगवान् महावीरसे पूछा—हे भगवन्! सर्वानुभूति अनगार, जिन्हें गोशालकने भस्म कर दिया था, यहाँसे मरकर कहाँ गये?

महावीर बोले—हे गौतम! सर्वानुभूति अनगार सहस्रार कल्पमें अठारह सागरोपमकी स्थितिवाले देवरूपमें उत्पन्न हुए हैं। वे वहांसे च्युत हो, महाविदेहक्षेत्रमें जन्म लेकर सिद्ध-बुद्ध तथा विमुक्त होंगे। इसीतरह सुनक्षत्र अनगार भी अच्युत कल्पमें २२ सागरोपमकी स्थितिवाले देवरूपमें उत्पन्न हुए हैं। वहांसे च्युत होकर महाविदेह क्षेत्रमें उत्पन्न होंगे। वहां सर्व कर्म क्षय कर विमुक्त होंगे।

गौतम स्वामीने फिर पूछा—हे भगवन्! आपका कुशिष्य गोशालक मृत्यु प्राप्तकर कहां उत्पन्न हुआ है?

महावीर बोले—वह अच्युतकल्पमें २२ सागरोपम की स्थितिवाला देव हुआ है। वहांसे च्युत् हो अनेक भव भवान्तरों को ग्रहण कर संसाराण्यमें भटकता रहेगा। अन्तमें उसे सम्यग्-दृष्टि प्राप्त होगी। पश्चात् दृढप्रतिज्ञ मुनिके रूपमें केवली होकर सर्वदुखोंका अन्त करेगा।

[१८]

श्राविका जयन्ती

उस समयकी बात है। कौशंबी नामक नगर था। वहाँ उदायन नामक राजा राज्य करता था। उसके दादाका नाम सहस्रानीक, पिताका नाम शतानिक तथा माताका नाम मृगावती था। मृगावती राजा चेटककी पुत्री थी।

उसी नगरमें जयन्ती नामक श्रमणोपासिका रहती थी। वह राजा सहस्रानिककी पुत्री, शतानिककी वहिन, उदायन की बूआ तथा रानी मृगावतीकी ननद थी। वह स्वरूपवान्, सुकुमार और सुन्दर थी। वह बहुत प्रभावसम्पन्न तथा जीवाजीव की ज्ञाता थी। भगवान् महावीरके साधुओंकी प्रथम शैय्यातर निवासके लिए (स्थान देनेवाली) होनेका उसे गौरव प्राप्त हुआ था।

एक वार ग्रामानुग्राम विहार करते हुए श्रमण भगवान् महावीर कौशंवी नगरीके चन्द्रावतरण चैत्यमें पधारे। उनके आगमनके संवादको सुनकर जनता दर्शनार्थ गई। राजा उदायन भी अपने पूर्ण आडम्बरके साथ दर्शनार्थ गया।

जयन्ती श्राविका भी उनके आगमनके संवादको सुनकर अत्यन्त हृष्ट व तुष्ट हुई। वह अपनी भाभी मृगावतीके पास गई और बोली—"हे देवानुप्रिये! हमारे नगरमें श्रमण भगवान् महावीर पधारे हैं। उनका नाम-गोत्र श्रवणसे भी महाफल मिलता है, फिर वन्दन-दर्शनका तो कहना ही क्या? उनका एक भी वचन सुनने मात्रसे महाफल मिलता है, फिर तत्त्वज्ञान की

बातें सीखनेसे महाफल मिले तो उसमें क्या ? अतः हम चलें और वन्दन-नमस्कार करें। हमारा यह कार्य इस भव तथा पर भव—दोनों भवोंके लिये कल्याणप्रद तथा श्रेयस्कर होगा।

मृगावती और जयन्ती दोनों दर्शनार्थ गईं। धर्मकथा हुई। धर्मकथाके पश्चात् उपस्थित जनसमुदाय, राजा उदायन तथा मृगावती आदि सब लौट गये परन्तु जयन्ती वहीं रही। उसने भगवान्को वन्दन-नमस्कार किया और [1]प्रश्न पूछने लगी। महावीरने उसके प्रश्नोंके योग्य प्रत्युत्तर दिये।

महावीरके उपदेशसे जयन्ती अत्यन्त प्रभावित हुई। उसने उनके पास प्रव्रज्या ग्रहण की। आर्या चन्दनाके सानिध्यमें उसने ग्यारह अंगादिका अध्ययन किया। तदनन्तर अनेक वर्षोंतक साध्वी-जीवनका पालन कर साठ समय उपवास कर निर्वाण प्राप्त हुई तथा सर्व दुखोंसे विमुक्त हुई।

—बारहवाँ शतक : उद्देशक २

[१९]

राजा उदायन

उस समयकी बात है। सिंधुसौवीर देशमें वीतभय नामक नगर था। वहाँ उदायन नामक राजा राज्य करता था। उसके प्रभावती नामक रानी, अभीचिकुमार नामक पुत्र तथा केशी-कुमार नामक भाणेज था। उदायन राजा सिंधुसौवीर आदि सोलह प्रान्तों, वीतभय आदि ३६३ नगरों का अधिपति था। [1]महासेन जैसे दश मुकुटबद्ध राजा तथा अनेक छोटे २ नृपतिगण

---

[1] देखो पृष्ठसंख्या ३८९ क्रमसंख्या ३१९-२०-२१-२२

उसकी आज्ञामें रहते थे। उसके राज्यमें अनेक स्वर्ण-रत्नकी खानें थीं। अनेक नगरश्रेष्ठि, सार्थवाह आदि उसके राज्यमें सुख-पूर्वक निवास करते थे। उदायन्न जीवाजीव का ज्ञाता तथा श्रमणोपासक था। वह न्यायपूर्वक अपने शासनका संचालन किया करता था।

एक दिन पौषधशाला में धर्म-जागरण करते हुए राजा उदा-यनके हृदयमें इसप्रकार विचार उत्पन्न हुए—वे ग्राम व नगर धन्य हैं जहाँ श्रमण भगवान् महावीर भ्रमण कर रहे हैं, वे जन धन्य हैं जो उन्हें वन्दन-नमस्कार करते है। यदि भगवान् विहार करते २ यहाँ वीतभय पधारें तो मैं उन्हें वन्दन-नमस्कार कर उनकी उपासना करूँ।

भगवान् महावीर उस समय चम्पानगरीके पूर्णभद्र चैत्यमें विराजमान थे। उन्होंने उदायन राजाके संकल्पको जाना। अतः उन्होंने वहाँसे वीतभयकी ओर प्रस्थान किया। अनुक्रमसे गमन करते हुए वे वीतभय नगरके मृगवन उद्यानमें पधारे। उनके आगमनके संवादको सुनकर उदायन बहुत प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हुआ। वह पूर्णभक्ति व श्रद्धाके साथ दर्शनार्थ गया। धर्मकथा हुई। धर्मकथा सुनकर उदायन अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसका हृदय संसारसे विरक्त हो गया और वह बोला—हे भगवन्! मैं अभीचिकुमारको राज्यारूढ़ कर आपके पास प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूं।

महावीर बोले—जिसमें तुम्हें सुख हो वैसा करो परन्तु क्षण-मात्र भी देरी न करो।

उदायन उद्यानसे निकलकर राजमहलों की ओर चला।

मार्गमें उसे विचार आया—मैं अपने प्रिय पुत्रको राज्यारूढ कर प्रव्रजित होना चाहता हूँ परन्तु वह राज्यारूढ हो जानेपर अनेक मनुष्य-संबन्धी काम-भोगोंमे लुब्ध होगा; परिणामस्वरूप संसार-सागरमें भटकता रहेगा। अतः मुझे उसे राज्यारूढ न कर केशीकुमारको सिंहासनारूढ़ करना चाहिये।

अपने निश्चयानुसार उसने केशीकुमारका राज्याभिषेक करवाया और स्वयं वे भगवान्‌के पास मुंडित होकर अनगारधर्म स्वीकार किया। अनेक वर्ष-पर्यन्त साधु-पर्यायका पालनकर सिद्ध-बुद्ध व विमुक्त हुआ।

उदायनके पुत्र अभीचिकुमारको अपने पिताका व्यवहार अच्छा न लगा। अतः वह मानसिक व्यथासे पीड़ित हो वीत-भय नगर छोड़कर चम्पानगरीमे कुणिक राजाके पास चला गया। वहाँ उसे सर्व वैभव प्राप्त हुआ। धीरे धीरे वह श्रमणो-पासक भी होगया परन्तु अपने पिताके वैरसे विमुक्त न हुआ। उसकी राजर्षि उदायनके प्रति वैर-वृत्ति बनी रही। परिणाम-स्वरूप यहाँसे काल करके वह असुरकुमारावास में देवरूपमे उत्पन्न हुआ है। वहाँकी स्थिति समाप्तकर वह महाविदेहक्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध, बुद्ध तथा विमुक्त होगा।

—तेरहवां शतक : उद्देशक ६।

[२०]

सोमिल ब्राह्मण

उस समयकी बात है। वाणिज्यग्राम नामक नगर था। वहाँ सोमिल नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह ऋग्वेदादि

ब्राह्मण-शास्त्रोंका ज्ञाता, समृद्धिशाली तथा प्रभावशाली व्यक्ति था। एक बार वह भगवान् महावीरके दर्शनार्थ आया। वह मन ही मन यह निश्चय करके आया था कि यदि महावीर उसके प्रश्नोंका यथोचित उत्तर देंगे तो वह उन्हें वदन-नमस्कार करेगा, अन्यथा उन्हें विवादमें निरुत्तर कर देगा।

सोमिल ब्राह्मणने महावीरसे [1]विविध प्रश्न पूछे। महावीरने उसके प्रश्नोंके यथोचित उत्तर दिये। वह बहुत प्रभावित हुआ। प्रव्रज्या ग्रहण करनेमें अपनेको अशक्त समझ, उसने श्रावकके बारह व्रत ग्रहण किये। शेष सर्व वर्णन शंख श्रावककी तरह जानना चाहिये।

—अठारहवां शतक : उद्देशक १०

[२१]

ब्राह्मण ऋषभदत्त और देवानन्दा ब्राह्मणी

उस समयकी बात है। ब्राह्मणकुण्डग्राम नामक नगर था। वहां ऋषभदत्त नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह धनिक, तेजस्वी, प्रसिद्ध और अपराभूत था। वह स्कन्दक तापसके सदृश अनेक शास्त्रोंका ज्ञाता था। वह श्रमणोपासक था। उसकी पत्नी देवानन्दा ब्राह्मणी भी श्रमणोपासिका थी। देवानन्दा सुकुमार व सर्वांग सुन्दर थी।

एक बार श्रमण भगवान् महावीर ब्राह्मणकुंडग्राममें पधारे। ऋषभदत्त तथा देवानन्दा ब्राह्मणी बहुत प्रसन्नतासे रथमें बैठकर

१—देखो पृष्ठसंख्या ५५१ क्रमसंख्या ५६४—५६९

भगवान्‌के दर्शनार्थ गये। ऋषभदत्तने भगवान को [1]सविधि वंदन किया। देवानन्दा ब्राह्मणी भी तीन बार प्रदक्षिणापूर्वक वन्दन कर ऋषभदत्तके पीछे हाथ जोड़कर खड़ी हो गई।

देवानन्दा भगवान महावीरकी ओर अनिमेष दृष्टिसे देख रही थी। देखते २ उसके नेत्र आनन्दाश्रुओंसे परिपूर्ण हो उठे। हर्षसे उसकी छाती भर गई। मेघ-धारासे विकम्पित कदंब पुष्पके सदृश उसका सारा शरीर रोमांचित हो उठा। उसकी कञ्चुकी फट गई और स्तनोंसे दूधकी धारा छूट पड़ी।

भगवान् गौतमसे न रहा गया; वे महावीरसे पूछ ही बैठे — हे भगवन्! आपको देखकर इस देवानन्दा ब्राह्मणीके स्तनोंसे दूधकी धारा क्यों छूट पड़ी?

महावीर बोले—हे गौतम! यह देवानन्दा मेरी मा है और मैं इसका पुत्र हूं। पुत्र-स्नेहसे ऐसा हुआ है।

तदनन्तर महावीरने धर्मकथा कही। ऋषभदत्त ब्राह्मण धर्मकथा सुनकर अत्यन्त प्रसन्न, हृष्ट व तुष्ट हुआ। वह भगवान्‌से वन्दन-नमस्कार कर बोला—हे भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ-धर्मकी प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूं।

स्कन्दककी तरह उसने भगवान्‌के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। ग्यारह अंगोंका अध्ययन किया, अनेक विचित्र तपकर्मो-द्वारा

१—श्रावकगण भगवान्‌को वन्दनार्थ जाते हुए पांच अभिगमपूर्वक जाते थे। पांच अभिगम इस प्रकार हैं (१ —सचित्त पुष्प-फल आदिका परित्याग (२) अचित्त द्रव्यका परित्याग न करना (३) विनयसे शरीरको नमित रखना (४) भगवान्‌को नेत्रोंसे देखनेके साथ ही हाथ जोड़ना (५) मनकी एकाग्रता। प्रत्येक श्रमणोपासक इन पांचों अभिगमोंके साथ वदनार्थ जाता था।

अपनी आत्मा निर्मल की। अन्तमें साठ समय उपवास करके सिद्ध गति प्राप्त की।

देवानन्दाने भी भगवान्से दीक्षा ग्रहण की। महावीरने उसे आर्या चन्दनाके पास शिष्यारूपमें सौंप दिया। उसने ग्यारह अंगोंका अध्ययन किया, अनेक तपकर्मोंके द्वारा आत्मा उज्ज्वल बनायी व अन्तमें संलेषणापूर्वक मृत्यु प्राप्त कर सिद्ध-बुद्ध व विमुक्त हुई।

—नवम शतक : उद्देशक ३३

[२२]

जमाली

ब्राह्मणकुंडग्रामकी पश्चिम दिशामें क्षत्रियकुण्डग्राम नामक नगर था। वहाँ [1]जमाली नामक क्षत्रियकुमार रहता था। जमाली धनिक एवं ऐश्वर्यशाली था। वह अपने राजमहलमें अनेक सुन्दर युवतियोंके साथ विविध विषय-सुख भोगता हुआ सदा भौतिक सुखोंमें ही निमग्न रहता था। उसे सर्व सांसारिक सुख उपलब्ध थे।

एक बार श्रमण भगवान् महावीर क्षत्रियकुण्डग्राममें पधारे। उनके आगमनका संवाद सुन्दर मनुष्योंके झुण्डके झुण्ड दर्शनार्थ जाने लगे। जन-कोलाहल सुनकर जमालीने कंचुकीसे पूछा—क्या आज इन्द्र, स्कन्द, वासुदेव, नाग, यक्ष, भूत, कूआ, तालाब, नदी, पर्वत, वृक्ष, मन्दिर या स्तूपका कोई उत्सव है, जिससे इतने व्यक्ति कोलाहल करते हुए नगरके बाहर जा रहे

1—जमाली महावीरकी बहिन सुदर्शनाका पुत्र तथा उनकी पुत्री प्रियदर्शना का पति था—विशेषावश्यक सूत्र।

है ? कंचुकीने महावीरके आगमन के सम्वादसे अवगत किया। जमाली भी पूर्ण भक्ति एवं श्रद्धाके साथ वन्दनार्थ गया।

भगवान्‌का धर्मोपदेश सुनकर जमाली अत्यन्त प्रभावित हुआ। वह खड़ा हुआ और तीन वार प्रदक्षिणापूर्वक वन्दन कर बोला—हे भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर श्रद्धा करता हूं। मैं आपके प्रवचनानुसार जीवन व्यतीत करनेके लिये कटिबद्ध हुआ हूं। आपका यह उपदेश सत्य और असंदिग्ध है। मैं अपने माता-पिताकी आज्ञा लेकर गृहवास छोड़कर अनगार-धर्म स्वीकार करना चाहता हूँ।

महावीर बोले—जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो पर क्षण-मात्र भी विलम्ब न करो।

जमालीने अपने माता-पितासे भगवान्‌के धर्मोपदेश तथा उसमें अपनी अभिरुचि की वात प्रकट की। अभिरुचिकी वात सुनकर माता-पिता उसके पुण्यशालित्व पर अत्यन्त प्रसन्न हुए। परन्तु जव उसने संसार-भयसे उद्विग्न होकर साधु होनेकी अभिलाषा व्यक्त की तव उसकी माता एकदम पसीनेसे भीग गई। उसका सारा शरीर शोक-भार से प्रकंपित होने लगा और चेहरेकी कान्ति विलुप्त हो गई। उसके शरीराभरण ढीले हो गये, उत्तरीयवस्त्र अस्तव्यस्त हो गया और कुल्हाड़ेसे कटी हुई चम्पक-लताके सदृश मूर्च्छित होकर धड़ामसे नीचे गिर पड़ी। उसे शीघ्र ही पानी छिड़ककर होशमें लाया गया। स्वस्थ होते ही वह पुनः विलाप करने लगी—हे पुत्र! तू मुझे अत्यन्त इष्ट, कान्त और प्रिय है। तू ही मेरा आभ-रण तथा जीवनाधार है। तेरा वियोग मुझसे एक क्षण भी सहन

नहीं हो सकता। अतः जबतक हम जीएं तबतक तू—यहीं घर रह कर कुल-वंशकी अभिवृद्धि कर। पश्चात् वृद्धावस्थामें साधु होना।

जमाली बोला—हे मातापिता! यह मनुष्य-जीवन जन्म-जरा-मरण-रोग-व्याधि आदि अनेक शारीरिक एवं मानसिक वेदनाओं तथा विविध व्यसनोंसे पीड़ित है। इतने पर भी यह सन्ध्याकालीन रङ्गोंके सदृश, पानीके बुदबद के सदृश, तृण-स्थित जलबिन्दुके सदृश, स्वप्न-दर्शनके सदृश व बिजलीकी चमकके सदृश अस्थिर एवं चंचल है। सड़ना, गलना तथा विनष्ट होना इसका धर्म है। पूर्व या पश्चात् एक-न-एक दिन इस मनुष्य देहका अवश्य ही त्याग करना होगा। हमारेमें कौन पहले या पीछे जायगा; इसका निर्णय कौन कर सकता है? अतः आप मुझे आज्ञा दें।

मातापिता—हे पुत्र! तेरा यह शरीर अनेक शुभ लक्षणों से युक्त, स्वस्थ, सुन्दर व सवीर्य है। तू विविध विद्याओंमें पारंगत, सौभाग्य-गुणसे उन्नत, कुलीन, अत्यन्त समर्थ व शक्तिशाली है। अतः जबतक तेरेमें सौन्दर्य व यौवन है तबतक तू इनका उपभोग कर। पीछे इच्छा हो तो हमारी मृत्युके पश्चात् दीक्षा लेना।

जमाली—हे मातापिता! यह शरीर विविध दुखोंका घर और अनेक व्याधियों का स्थान है। यह अस्थि, चर्म, मांस और स्नायुओंका पिण्ड-मात्र तथा अशुचिसे परिपूर्ण है। मिट्टीके पात्रके सदृश कमजोर है। निरन्तर इसकी सम्हाल करनी पड़ती है। जीर्ण गृहके समान सड़ना, गलना तथा विनाश होना,

इसका स्वभाव है। यह शरीर एक न एक दिन छोड़ना ही होगा। अतः आप मुझे आज्ञा दें।

माता-पिता—हे पुत्र! तेरे रूप-यौवन-सम्पन्न आठ पत्नियां हैं। वे सभी भी प्रतिष्ठित कुलोंमे समुत्पन्न व स्नेहसें पली हुई है। अतः तू अपनी पत्नियोंके साथ मनुष्य-संबंधी काम-भोग भोग। पश्चात् भुक्तभोगी तथा विषयोंकी उत्सुकता रहित होकर दीक्षा अंगीकार करना।

जमाली—हे मातापिता! मनुष्य-संबंधी ये काम-भोग अशुचिमय और अशाश्वत है। वात, पित्त, श्लेष्म, वीर्य और लोहितके निर्भर है। ये अमनोज्ञ, मल-मूत्रादिसे परिपूर्ण तथा विभत्स हैं। ये सर्वदा दुखरूप हैं। अज्ञानी व्यक्ति ही इनका सेवन करते है। ज्ञानी जन सर्वदा इन विषय-सुखोंकी निन्दा करते हैं। ये अनन्त संसारकी अभिवृद्धि करनेवाले हैं। इनका परिणाम अत्यन्त कटु है। प्रज्वलित घासकी पूलीके स्पर्शके सदृश इनसे दुखके अतिरिक्त और क्या मिल सकता है?

माता-पिता—हे पुत्र! हमारे पास तेरे प्रपितामह व पितामहसे आती हुअी अपार सम्पत्ति है! वह सम्पत्ति इतनी है कि यदि सात पीढियों-पर्यन्त भी अनापशनाप खर्च की जाय, तो भी समाप्त नहीं हो सकती। अतः अभी इस सम्पत्तिका उपभोग करते हुए मनुष्य-संबंधी सुखोंका उपभोग कर।

जमाली—यह अपार धन-ऐश्वर्य राजा, चोर, अग्नि व कालके लिये साधारण बात है। यह अध्रुव, अनित्य और अशाश्वत हैं। हमारेमें कौन पहले जायगा, यह कौन जानता है? अतः आप मुझे दीक्षा लेनेकी आज्ञा प्रदान करें।

इसप्रकार जब विषयके अनुकूल विविध उक्तियोंसे जमालीके माता-पिता उसे न समझा सके तो वे विषयके प्रतिकूल तथा संयममें भय उत्पन्न करनेवाली बातोंसे समझाने लगे।

माता-पिता—हे पुत्र! यह निर्ग्रन्थ-प्रवचन निश्चितरूपसे सत्य, अद्वितीय, न्याययुक्त, शुद्ध, शल्यको छेदन करनेवाला, सिद्धिमार्गरूप, मुक्तिमार्गरूप तथा निर्वाणमार्गरूप है। इसमे तत्पर जीव सिद्ध, बुद्ध एवं विमुक्त होकर निर्वाण प्राप्त करते हैं। परन्तु यह सर्पके सदृश निश्चित दृष्टिवाला, तलवारकी धारके सदृश तीक्ष्ण, लोहेके चने चबानेके सदृश कठिन, गंगानदीके विपरीत प्रवाहमें जानेके सदृश अथवा हाथोंसे समुद्र तैरनेके सदृश दुष्कर है। साधुओंको आहार-संबंधी अनेक कठिनाइया है। बावीस परिषह सहन करने पड़ते है। अभी तू इतना कष्टमय जीवन व्यतीत करनेमें असमर्थ है।

जमाली—हे माता-पिता! निश्चय ही निर्ग्रन्थ-प्रवचन मंदशक्ति, कायर, निम्न, संसारमें आसक्त तथा विषयोंमें गृद्ध व्यक्तियोंके लिये दुष्कर है परन्तु धीर, वीर तथा दृढप्रतिज्ञ व्यक्तियोंके लिये किञ्चत् भी कठिन नहीं है।

जमालीको जब उसके माता-पिता किसी भी प्रकार न समझा सके तो उन्होंने विवश हो आज्ञा प्रदान की। अत्यन्त उत्साह तथा राजकीय समृद्धिके साथ उनका दीक्षा-महोत्सव मनाया गया। अपार वैभव तथा समृद्धिके परित्यागसे जन-जनका हृदय प्रभावित था। हर व्यक्ति उसे इसप्रकार आशीष दे रहा था—"हे पुत्र! तेरी धर्म-द्वारा जय हो! विजय हो! तेरी तप-द्वारा जय हो! विजय हो! तेरा कल्याण हो! अखंडित और उत्तम

ज्ञान-दर्शन-चारित्र-द्वारा अविजयी इन्द्रियोंको जीतना, श्रमण-धर्मका पालन करना, सर्व विघ्नोंको जीतकर सिद्धगतिमें निवास करना। धैर्यरूपी कच्छको मजबूत बाँधकर, तप-द्वारा राग-द्वेष रूपी मल्लोंको विजय करना। उत्तम शुक्लध्यान-द्वारा अष्ट-कर्मरूपी शत्रुओंका मर्दन करना। हे धीर! अप्रमत्त होकर तीन लोकरूपी मंडपमें आराधना-पताकाको फहराना तथा निर्मल एवं अनुत्तर केवलज्ञान प्राप्त करना। तू परिषहरूपी सेनाओंको पराजित कर इन्द्रियोंको वशीभूत करना तथा अपना धर्म-मार्ग-निष्कंटक बनाना।"

जमाली भगवान् महावीरकी सेवामें उपस्थित हुआ। उसके साथ उसके माता-पिता भी उपस्थित थे। भगवान्को तीन बार वन्दन-नमस्कार कर वे इसप्रकार बोले—'हे भगवन्! यह हमारा इकलौता प्रिय पुत्र है। जिसप्रकार कमल कीचड़में उत्पन्न होने तथा पानीमें बड़ा होने पर भी पानी और कीचड़से निर्लिप्त रहता है उसीप्रकार जमालीकुमार भी कामसे उत्पन्न हुआ और भोगोंमें पला है परन्तु यह इनमें किंचित् भी आसक्त नहीं है। यह संसार-भयसे उद्विग्न हुआ है। जन्म-मरण-भयसे भयभीत हुआ है और आपके पास मुण्डित होकर अनगार धर्म स्वीकार करना चाहता है अतः हे भगवन्! हम यह शिष्यरूपी भिक्षा समर्पित करते हैं। आप इसे स्वीकार करें।'

महावीरकी अनुमति मिलते ही जमालीकुमारने अन्य पाँच सो क्षत्रियकुमारोंके साथ प्रव्रज्या ग्रहण की। पुत्रमोहसे व्याकुल माताने रुदन करते हुए आशीर्वाद दिया—हे वत्स! तू

संयममें यत्न करना, पराक्रम करना तथा संयम-पालनमें किञ्चित् भी प्रमाद न करना।

शनैः शनैः जमाली अनगारने ग्यारह अंगोंका अध्ययन किया तथा अनेक तपकर्मों-द्वारा अपनी आत्मा निर्मल बनायी।

एक दिन जमाली अनगार महावीर के पास आये और बोले—हे भगवन्! आपकी आज्ञा हो तो मैं अपने पाच सो साधुओंके साथ अन्य प्रान्तोंमें विचरना चाहता हूं। महावीरने जमालीके निवेदनको स्वीकार न किया और मौन रहे। जमालीने तीन बार इसीप्रकार अपना निवेदन दुहराया और महावीर उसीप्रकार मौन ही रहे। अन्तमें भी जमाली अनगार अपने पांच सो साधुओंके साथ अन्य प्रान्तोंमें चले गये।

एक बार ग्रामानुग्राम विहार करते हुए जमाली अनगार श्रावस्ती नगरीके कोष्ठक चैत्यमें ठहरे। निरन्तर तुच्छ, रसहीन, ठंडे और अल्प भोजनसे इन्हे एक दिन पित्तज्वर होगया। सारा देह दाह एवं वेदनासे पीड़ित था। उन्होंने अपने सहवर्ती साधुओंको बिस्तर बिछानेके लिये कहा। साधु बिस्तर बिछाने लगे। जमाली अपनी पीड़ासे अत्यन्त व्याकुल थे। अतः उन्होंने पुनः पूछा—क्या मेरे लिये बिस्तर किया? साधुओंने कहा—अभी बिस्तर बिछा नहीं परन्तु बिछ रहा है। उनका प्रत्युत्तरका सुनकर जमाली सोचने लगे—श्रमण भगवान् महावीर तो कृतमान कृत, चलमान चलित कहा करते है परन्तु यह बात तो गलत है। क्योंकि जबतक बिस्तर नहीं बिछ जाता तबतक बिस्तर बिछा; ऐसा कैसे माना जा सकता है। उन्होंने श्रमण-निर्ग्रन्थोंको बुलाया और अपना मन्तव्य प्रकट किया। कुछ श्रमणोंने उनके

सिद्धान्तको स्वीकृत किया और कुछने नहीं। जिन्होंने स्वीकृत नहीं किया वे भगवान् पास लौट गये।

समय आनेपर जमाली स्वस्थ हुए। वे श्रावस्तीसे विहार कर चम्पानगरी आये। चम्पामें उस समय भगवान् महावीर पधारे हुए थे। जमाली भगवान् महावीरके पास गये और बोले—आपके अनेक शिष्य छद्मस्थ एवं केवलज्ञानी नहीं हैं परन्तु मैं तो सम्पूर्ण ज्ञान-दर्शनके धारक अर्हन्, जिन और केवलीके रूपमें विचर रहा हूं।

भगवान् गौतमको जमालीकी मिथ्या उक्ति सहन नहीं हुई। वे बोले—हे जमाली। केवलज्ञानीका दर्शन पर्वत आदिसे प्रच्छन्न नहीं होता। यदि तू केवलज्ञानी है तो मेरे प्रश्नोंके प्रत्युत्तर दे—[१]लोक शाश्वत है या अशाश्वत? जीव शाश्वत है या अशाश्वत?

जमाली कोई प्रत्युत्तर न दे सका। वह मौन रहा! महावीर बोले—हे जमाली! मेरे अनेक शिष्य इन प्रश्नोंके प्रत्युत्तर दे सकते हैं; फिर भी वे अपनेको जिन या केवली घोषित नहीं करते है।

जमालीको महावीरका कथन अच्छा न लगा। वे वहाँसे रवाना हो गये। पश्चात् अनेक असत्य बातों-द्वारा अनेक वर्षों तक मिथ्यात्वका पोषण करते रहे। अन्तमें तीस समय तक उपवासकर अपने पापस्थानकी आलोचना तथा प्रतिक्रमण किये विना ही मरकर लान्तक देवलोकमें किल्बिषिक रूपसे उत्पन्न हुए।

यद्यपि जमाली अनगार रसरहित आहार करनेवाले,

---

१ देखो पृष्ठसंख्या ३४६ क्रमसंख्या २९१-९२

उपशान्त तथा पवित्र जीवनयुक्त थे परन्तु आचार्य और उपाध्यायके विद्वेषी तथा अकीर्ति करनेवाले थे, अपनेको तथा दूसरोंको भ्रममें डालनेवाले थे। किल्विषिक देवरूपमें उत्पन्न होनेका यही कारण है। वहांसे तिर्यंच, मनुष्य और देवके चार भव करनेके पश्चात् सिद्ध होंगे तथा सर्व दुखोंका अन्त करेंगे।

—नवम शतक : उद्देशक ३३

[२३]

गंगदत्त देव

बहुत पुरानी बात है। हस्तिनापुरमें गंगदत्त नामक श्रमणोपासक रहता था। एक बार भगवान् मुनिसुव्रतनाथ हस्तिनापुर पधारे। गंगदत्तने उनके उपदेशसे प्रभावित हो प्रव्रज्या ग्रहण की। उसने अनेक प्रकारकी तपस्याओं-द्वारा अपनी आत्मा निर्मल बनायी। अन्तमे मासिक संलेषणाके साथ मृत्यु प्राप्त कर महाशुक्र कल्पमें देवरूपमे समुत्पन्न हुआ।

एकवार गंगदत्तदेवका अपने सहजात मिथ्यादृष्टि देवसे "परिणाम प्राप्त वस्तु परिणत नही कही जा सकती", इस विषय पर मतभेद हो गया। वह अपने प्रश्नके समाधानके लिये भगवान् महावीरके पास आया। उस समय भगवान् महावीर उल्लूकतीर नगरमें ठहरे हुए थे। उसने अपने प्रश्नका समाधान कर भगवान्से पूछा—हे भगवन्! मैं भवसिद्धिक हूं या अभवसिद्धिक? सम्यग्दृष्टि हूं अथवा मिथ्यादृष्टि? परिमित संसारी हूं अथवा अपरिमित संसारी? सुलभबोधि हूं या दुर्लभबोधि? आराधक हूं या विराधक? चरम शरीरी हूं अथवा अचरम शरीरी?

महावीर बोले—हे गंगदत्त ! तू भवसिद्धिक……तथा चरम शरीरी है।

गंगदत्तदेव वन्दन-नमस्कार कर अपने स्थानपर लौट गया।

भगवान गौतमके पूछने पर महावीर बोले—यह अपना देवलोकका आयुष्य समाप्त कर महाविदेहक्षेत्रमें जन्म लेकर विमुक्त होगा।

—सोलहवां शतक : उद्देशक ५

[२४]

कार्तिक श्रेष्ठि

एक बार भगवान् महावीर विशाखानगरीके बहुपुत्रिक चैत्यमें ठहरे हुए थे। एक दिन शक्रेन्द्र उनके पास आया। उसकी अपार समृद्धि देखकर गौतम स्वामीने पूछा—यह शक्रेन्द्र पूर्वभवमें कौन था ?

महावीर बोले—हस्तिनापुरमें कार्तिक नामक एक श्रेष्ठि रहता था। वह एक हजार श्रेष्ठियोंका नायक था। गंगदत्त की तरह उसने भी मुनिसुव्रतस्वामीसे एकहजार श्रेष्ठियों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की। अनेक प्रकारकी तपस्याओं द्वारा अपनी आत्मा उज्ज्वल बनायी। अन्तमें मासिक संलेषणाके साथ मरकर शक्रेन्द्रके रूपमें उत्पन्न हुआ है। वहांका आयुष्य समाप्त कर यह महाविदेहक्षेत्रमें जन्म लेकर विमुक्त होगा।

—अठारहवां शतक : उद्देशक २

पारिभाषिक शब्दकोष

(अ)

अंग—शरीर-अवयव, शरीर।

अंगप्रविष्ट—आचारांग आदि बारह आगम। वर्तमानमें ग्यारह आगम ही उपलब्ध हैं। बारहवां दृष्टिवाद लुप्त हो चुका है।

अन्तर्मुहूर्त—दो घडी प्रमाण-काल। एक घड़ी (२४) मिनट, दो घडी एक सामायिककाल।

अन्तराय—रुकावट, जिस कर्मके उदयसे किसी वस्तुकी प्राप्ति या किसी कार्यके सम्पन्न होनेमें बाधा हो उसे अन्तराय कहते हैं।

अन्तरालगति—जन्मान्तरके समय नवीन भवग्रहणके लिये जाती हुई आत्माकी गति। अन्तराल गति।

अकामनिर्जरा—विना इच्छाके कष्ट सहकर कर्मकी निर्जरा करना।

अगुरुलघुकर्म—जिस कर्मके उदय से जीवका शरीर न भारी हो और न हल्का हो; उसे अगुरुलघु नामकर्म कहते हैं।

अघातिकर्म—जो कर्म आत्माके मुख्य गुणोंका नाश नहीं करते, वे अघातिकर्म। वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र—ये चार अघातिकर्म हैं। घातिकर्मोंके क्षय होनेपर ये कर्म भी उसी जन्ममें क्षय हो जाते हैं।

अचक्षुस्—आँखको छोड़कर त्वचा, जिह्वा, नाक, कान और मन-द्वारा पदार्थोंके सामान्य धर्मका जो प्रतिभास होता है उसे अचक्षुस् दर्शन कहते हैं, उसका आवरण अचक्षु दर्शनावरण है।

अजीव—जिसमें प्राण न हो अर्थात् जो जड हो, वह अजीव। चेतना-रहित द्रव्य अजीव।

अनादेय—जिस कर्मके उदयसे किसी व्यक्तिका वचन युक्त होनेपर भी आदरणीय न समझा जाय।

अनाभोग—विचार व विशेष ज्ञान का अभाव। मिथ्यात्व विशेष।

अनाभोगनिर्वर्तित—अज्ञानता से इप्सित आहारकी इच्छा।

अनाहारक- आहार नहीं करनेवाले जीव। अनाहारक जीव दो प्रकारके हैं—छद्मस्थ और वीतराग। वीत-रागमें जो (मुक्त) अशरीरी हैं वे सदा अनाहारक रहते हैं परन्तु जो सशरीरी वे केवली समुद्घातके तीसरे

ज्ञान। पदार्थके अव्यक्त ज्ञानको अर्थावग्रह कहते हैं।

अर्द्धनाराच—चतुर्थ संहनन। जिस शरीर-रचनामें एक ओर मर्कट-बंध हो और दूसरी ओर कील हो, उसे अर्द्धनाराच संहनन कहते हैं।

अलोभ—लोभको छोडकर।

अलेश्य—लेश्यारहित, चौदहवें गुण-स्थानमें वर्तित जीव।

अयोगी—मन, वचन और काय-योगका निरोधकर अयोगी-योगरहित अवस्था। सिद्ध जीव।

अवग्रह—एक तरहका मतिज्ञान। विषय और विषयी (जाननेवाला) के संबधसे जो प्राथमिक स्वरूपमात्रका ज्ञान होता है उसे अवग्रह कहते हैं।

अवगाढ़ ढके हुए।

अवधिज्ञान—इन्द्रिय और मनकी बिना सहायता जो ज्ञान मूर्त्त पदार्थों को जानता है उसे अवधिज्ञान कहते हैं

अवाय - ईहासे जाने पदार्थमें यह यही है, दूसरा नहीं ऐसा निश्च-यात्मक ज्ञान।

अविरति—पापोंसे विरक्त न होना।

अविरत—चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव, त्यागरहित प्राणी।

असातावेदनीय—जिस कर्मके उदयसे आत्माको अनुकूल विषयोंकी अप्राप्ति अथवा प्रतिकूल विषयोंकी प्राप्तिसे दुख हो उसे असातावेदनीय कर्म कहते हैं।

अस्तिकाय – वे द्रव्य जो सदा ही सत्तात्मक रूपसे विद्यमान रहते हैं। इनका कभी विनाश नहीं होता।

अस्तेय—तृतीय महाव्रत—सर्वथा चोरीका परित्याग किया जाता है।

अप्रत्याख्यान नाम—जिस कषायके उदयसे देशविरतिरूप-अल्पप्रत्याख्यान नही हो और श्रावकधर्मकी प्राप्ति न हो।

अहोरात्रि—रात-दिन।

असंज्ञीभूत—वर्तमान जन्मसे पूर्व जन्ममें जो जीव असंज्ञी थे उन्हे असंज्ञीभूत कहते हैं।

(आ)

आकाशास्तिकाय - आश्रय देने वाला द्रव्य।

आयुष्य—जिस कर्मके अस्तित्वसे प्राणी जीवित रहता है तथा जिसके क्षय हो जानेसे मर जाता है।

आत्मा—चेतनामय अविभाज्य असंख्येयप्रदेशी पिंड।

आवरण—आच्छादन।

आवरणद्विक—ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म।

आश्रव—कर्मोंके आनेका द्वार।

आहारक—चतुर्दशपूर्वधर मुनि आवश्यक कार्य उत्पन्न होने पर जो विशिष्ट पुद्गलोंका शरीर बनाते हैं, उसे आहारक शरीर कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे ऐसे शरीरकी प्राप्ति होती है, उसे आहारकशरीरनाम कर्म कहते हैं।

आहार—भुक्त भोजनका रक्त, हड्डी आदिके रूपमें निर्माण होना।

आवलिका—असंख्य समयोंकी एक आवलिका होती है। आवलिका समयका माप विशेष है।

आलापक—विभेद, भंग।

आहारक—औदारिक, वैक्रिय और आहारक इन तीनों शरीरोंमें किसी भी शरीरयोग्य पुद्गलोंको ग्रहण करनेवाला जीव आहारक कहा जाता है।

(इ)

इन्द्रिय—आत्मा जिस बाह्य चिह्नसे पहचाना जाय, अथवा त्वचा, नेत्र आदि जिन साधनों-द्वारा विषयोंका ज्ञान हो उसे इन्द्रिय कहते हैं।

(ई)

ईहा—मतिज्ञान विशेष। अवग्रहके द्वारा जाने हुए पदार्थ-ज्ञानका विशेष आलोचन करना।

ईर्यासमिति—अप्रमाद एवं उपयोग पूर्वक गमनागमन करना।

(उ)

उत्तरप्रकृति—अवान्तर प्रकृति।

उदय—विपाक, फलानुभव।

उदीरणा—अबाधाकाल व्यतीत हो जानेपर जो कर्मदलिक पश्चात् उदय में आनेवाले हैं, उनको प्रयत्न विशेष से खींचकर उदयप्राप्त दलिकोंके साथ भोग लेना उदीरणा कहा जाता है।

उपयोग—ज्ञान-दर्शनकी प्रवृत्तिको उपयोग कहा जाता है।

उद्वर्तन—स्थितिबंध और अनुभाग बंधके बढनेको उद्वर्तन कहते हैं।

उपभोग—बार २ काममें लाना।

उपशम—उपशम नामक भावविशेष, कर्मोंका शान्त होना और उदयमें न आना।

उपरिमक—ऊपरके।

(ऊ)

ऊण—कम, हीन।

(ए)

एकजीवप्रदेश—एक जीवके प्रदेश।

एकेन्द्रिय—जो जीवमात्र स्पर्शन इन्द्रियकी योग्यता एवं आकृतियुक्त हैं, ऐसे जीवोंकी जाति एकेन्द्रिय कही जाती है। स्पर्शन इन्द्रियुक्त एक जीव भी एकेन्द्रिय ही कहा जता है।

(ओ औ)

ओघ—सामान्य ।

औदारिक—स्थूल पुद्गल, हड्डी, रक्त, मांस आदि स्थूल द्रव्योंसे जो शरीर-निर्माण हो, उसे औदारिक कहते हैं ।

(क)

कर्म—आत्माकी शुभ-अशुभ प्रवृत्ति-द्वारा आकृष्ट किये गये पुद्गल, जो आत्माके साथ संवद्ध होकर शुभाशुभ फलके कारण होते हैं और शुभाशुभ रूपमें उदयमें आते हैं; उन आत्म-गृहीत पुद्गलोंको कर्म कहा जाता है।

कर्म-विपाक—कर्मका शुभाशुभ फल।

करण—इन्द्रिय, शरीर आदि ।

कषाय—कष-जन्म-मरणरूपी संसार में जिन प्रवृत्तियोंके द्वारा आगमन हो, उसे कषाय कहते हैं । क्रोध, मान, माया और लोभ ये काषायायिक वृत्तियां हैं ।

कृष्णलेश्या—कज्जलके सदृश कृष्ण और अत्यन्त कटु पुद्गलोंके सबधसे आत्माके जो परिणाम होते हैं, उसे कृष्णलेश्या कहते हैं । क्रूरता-सम्बन्धी सर्व कार्य इसमें आ जाते हैं।

कीलिका—कील ।

कापोतलेश्या—कपोतवर्ण और अनन्त निक्त पुद्गलोंके सम्बन्धसे आत्माके जो परिणाम होते हैं, उसे कापोतलेश्या कहते हैं । वक्रता, शठता आदि कापोतलेश्याके परिणाम हैं ।

कार्मण—जीव-प्रदेशोंसे संवद्ध आठ प्रकारके कर्म-पुद्गलोंको कार्मण शरीर कहते हैं ।

कुब्ज—जिस व्यक्तिके शरीरके छाती, पेट, पीठ आदि अंग हीन हों, उसे कुब्ज संस्थान कहते हैं ।

कुब्ज—कुबडा ।

(ग)

गति—जीवकी नरक आदि अव-स्थाओंको गति कहते हैं ।

गतिनामकर्म—जिस कर्मके उदय से जीव देव, नारक आदि अवस्थाओं को प्राप्त करता है, उसे गतिनामकर्म कहते हैं ।

गुरु—भारी ।

गुरुलघु—भारी और हल्का ।

गोत्र—आत्माके अगुरुलघु गुणको प्रच्छन्न कर जो कर्म आत्माको उच्च अथवा नीच कुलमें उत्पन्न करता है, उसे गोत्रकर्म कहते हैं ।

गुणस्थान—संसारके दृढ बन्धनोंसे लेकर संपूर्ण विमुक्तिकी अवस्था तक पहुँचनेकी सर्व भूमिकायें जिन विभागों में विभाजित हैं, उन्हें गुणस्थान

कहते हैं। गुणस्थान आत्माकी स्थिति विशेष हैं।

गुण—वस्तु-स्वरूपको गुण कहते हैं।

(घ)

घन—दृढ, मजबूत।

घातिकर्म-जो कर्म आत्मासे चिपक कर आत्माके मूल—स्वाभाविक गुणो की घात करते हैं उन्हें घातिकर्म कहते हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय—ये घातिकर्म कहे जाते हैं।

(च)

चतुरिन्द्रिय—जातिविशेष, शरीर, जिह्वा, नाक, आंख, इन चार इन्द्रिय वालेको चतुरिन्द्रिय कहते हैं।

चारित्र—आत्माको शुद्ध स्वरूपमें रखनेका प्रयत्न करना।

चरम—जो जीव अपनी वर्तमान देहसे ही विमुक्त होनेवाला हो, उसे चरम कहते हैं।

चक्षुदर्शन—चक्षुदर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशमसे नेत्रों-द्वारा पदार्थोंका जो सामान्य ज्ञान होता है,उसे चक्षु-दर्शन कहते हैं।

चारित्रमोहनीय—जिस कर्मके द्वारा जीवके आत्म-स्वरूप प्रकट होने में बाधा हो, उसे चारित्रमोहनीय कर्म कहते हैं।

(छ)

छद्मस्थ—कषाययुक्त जीव छद्मस्थ कहा जाता है।

छेद—भेद, अभाव।

छेदोपस्थानीय चारित्र—संयम विशेष। प्रथम ली हुई दीक्षामें दोष आ जाने पर उसका विच्छेद कर पुनः नये सिरेसे दीक्षा लेना छेदोपस्थानीय चारित्र कहा जाता है।

(ज)

जघन्य—कमसे कम।

जाति—इन्द्रियोंके अनुसार जीवोंके विभाग, जाति कहे जाते हैं।

जिन—वीतराग।

जीव देखो—आत्मा।

ज्योतिष्क—सूर्य चन्द्रादि ज्योतिष्क देव।

जातिनामकर्म—जिस कर्मके उदय से जीव एकेन्द्रिय आदि कहा जाय, उसे जातिनामकर्म कहते हैं।

(त)

तिर्यंच—मनुष्य, नैरयिक और देवको छोडकर सर्व सांसारिक जीव तिर्यंच कहे जाते हैं।

तीर्थंकर—साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका रूप चार तीर्थोंकी स्थापना करनेवाले तीर्थंकर कहे जाते हैं।

तेजसकायिक—अग्निकायिक जीव।

तेजोलेश्या—अत्यन्त मधुर पुद्गलों के संयोगसे आत्माका जो परिणाम होता है, उसे तेजोलेश्या कहते हैं। इसके द्वारा शुभ कार्योंमें प्रवृत्ति बढ़ती है।

तैजसशरीर—जो शरीर खाये हुए आहार आदिको पचानेमें समर्थ है तथा जो तेजोमय पुद्गलोंसे बना हुआ है, उसे तैजस शरीर कहा जाता है। तेजोलेश्या और शीत-लेश्याका संबंध इसी शरीरसे है।

(द)

दंडक—विभाग, भेदपूर्वक ज्ञान।

दर्शनावरणीयकर्म—जो कर्म आत्मा के दर्शन गुणको आच्छादित करे, वह दर्शनावरण कर्म कहा जाता है।

दर्शन—जो पदार्थ जैसा है, उसे वैसा ही समझना दर्शन है। तत्त्व-श्रद्धाको भी दर्शन कहते हैं।

दर्शनमोहनीय—दर्शन गुणकी घात करनेवाले कर्मको दर्शनमोहनीय कहते हैं।

द्रव्य—जिस पदार्थमें गुण और पर्याय विद्यमान हो उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य सत्तात्मक रूपसे सदा विद्यमान रहता है। उसका कभी विनाश नहीं होता।

द्रव्यात्मा—आत्माके असंख्येय प्रदेश हैं। इन असंख्येय प्रदेशोंका समूह ही जीव-आत्मा है। इन असंख्येय प्रदेशोंका विभाजन नहीं किया जा सकता।

दृष्टि—आँख, पदार्थोंके सत्य या असत्य स्वरूपमें अपनी मान्यताके अनुसार विश्वास करना।

द्रव्येन्द्रिय—पुद्गलमय जड इन्द्रिय द्रव्येन्द्रिय। इन्द्रियोंकी बाह्य या आभ्यन्तर पौद्गलिक रचनाको द्रव्येन्द्रिय कहा जाता है।

देव—एक गति विशेष।

(ध)

धर्मास्तिकाय—गतिमें सहायता करनेवाले द्रव्यको धर्मास्तिकाय कहते हैं।

धारणा—मतिज्ञान, ज्ञानविशेष। अवायके द्वारा जाना हुआ ज्ञान इतना दृढ हो जाय कि कालान्तरमें भी वह नहीं भूला जा सके। इसप्रकारके संस्कारवाले ज्ञानको धारणा कहते हैं।

(न)

नरकगति—अधोलोक, जिसमें दुख है।

नपुंसकवेद—जिस कर्मके उदयसे स्त्रीपुरुष दोनोंके साथ विषय-सेवनकी

जीवको प्राप्त हो, उसे पर्याप्त कहते हैं।
परित्त—मर्यादित।
परमाणु—वह निरंश अंश जिसका कोई विभाजन न हो।
प्रज्ञा—बुद्धि—
पर्याप्ति—पुद्गलोपचय-जन्य शक्ति-विशेष।
प्रत्यनीक—निन्दक, अहितैषी।
परिग्रह—आसक्ति।
परिहारविशुद्धि चारित्र—जिस चारित्रमें परिहारविशुद्धि नामक तप-द्वारा शरीरको प्रहारित कर तप किया जाता है उसे परिहारविशुद्धि चारित्र कहते हैं।
पल्य—परिणामविशेष।
पल्योपम—औपमेयिक काल।
पश्चानुपूर्वी—पीछेके क्रमसे।
पारिणामिक—आत्माके परिणामों से समुत्पन्न भाव।
पुद्गल—रूप, रस, गध आदि गुण-युक्त पदार्थ।
पुरुषवेद—जिस कर्मके उदयसे पुरुष को स्त्रीके साथ भोग करनेकी इच्छा हो, उसे पुरुषवेद कहते हैं।
प्रत्येकशरीरी—जिस वनस्पतिमें एक शरीरमें एक जीव हो, उसे प्रत्येक शरीरी कहते हैं।
प्रदेशबंध—जीवके साथ न्यूनाधिक परमाणुवाले कर्मस्कंधोका बंधन, प्रदेश-बंध कहा जाता है
प्रकृति—स्वभाव, कर्मभेद।
प्रत्याख्यान—त्याग, देशविरतिरूप श्रावकधर्म प्राप्त होना।
प्रकृतिबंध—जीव-द्वारा ग्रहीत कर्म-पुद्गलोमें विभिन्न स्वभावों अर्थात् शक्तियोका पैदा होना प्रकृतिबंध कहा जाता है।
प्रदेश—निरंश अंश। जिस अगके दो अश न हो, उसे प्रदेश कहते हैं। यह स्कंधका सूक्ष्मातिसूक्ष्म विभाग है।
प्राण—जिसके सयोगसे यह जीव जीवनावस्था प्राप्त हो और जिसके वियोगसे मृत्यु प्राप्त हो, उसे प्राण कहते हैं।

(ब)

बंध—कर्म-पुद्गलोंका जीवप्रदेशोंके साथ दूध-पानीकी तरह मिल जाना, बंध कहा जाता है।
बादर—दृष्टिगोचर होनेवाले जीव।

(भ)

भंग—विकल्प, भेद।
भव्य—विमुक्त होनेवाले जीव।
भव—संसार।
भाव—जीवपरिणाम।
भाषा—असत्यामृष, वचन-योग विशेष।

भेद—प्रकार।

भोग—भोगना—व्यवहार करना।

भवनपति—देवजाति विशेष।

(म)

मतिज्ञान—इन्द्रिय तथा मनकी सहायतासे होनेवाला ज्ञान, मतिज्ञान।

मत्यज्ञान—इन्द्रिय तथा मनकी सहायतासे होनेवाला अज्ञान-मति-अज्ञान।

मनयोग - मनकी प्रवृत्तिको मनयोग कहते हैं।

महाव्रत—हिंसादिका सर्वथा परित्याग महाव्रत कहा जाता है।

मनःपर्ययज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता बिना जिस ज्ञानके द्वारा संज्ञी जीवोंके मनोगत भाव जाने जा सकें, उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं।

मनुष्यगति—मनुष्यरूपमें जहाँ उत्पन्न हुआ जाता है, उसे मनुष्यगति कहते हैं।

मिथ्यात्व—विपरीत श्रद्धानरूप जीवके परिणामको मिथ्यात्व कहते हैं।

मोक्ष—समस्त कर्मोंका क्षय होना मोक्ष कहा जाता है।

मोहनीयकर्म - जो कर्म स्व-पर-विवेकमें तथा स्वरूपज्ञानकी प्राप्तिमें बाधक हो, उसे मोहनीयकर्म कहते हैं।

मायी—माया-कषाययुक्त जीव।

(य)

योगआत्मा—मन-वचन - कायाकी प्रवृत्ति योग कही जाती है। इस योग से आत्माकी परिणति ही योगात्मा है।

योग—मन, वचन और शरीरकी प्रवृत्तिको योग कहते हैं।

(र)

राग—प्रीति, ममता।

राजि—रेखा, लकीर।

राशि—समूह।

(ल)

लब्धि—शक्तिविशेष।

लघु—जघन्य।

लेश्या—मनकी शुभाशुभ वृत्ति।

लोक – प्राणिवर्ग, संसार।

(व)

व्यंजनावग्रह—अव्यक्तज्ञान, अर्थावग्रहसे पूर्व होनेवाला अत्यन्त अव्यक्त ज्ञान, व्यंजनावग्रह कहा जाता है। व्यंजनावग्रह पदार्थकी सत्ता अनुभव करनेके लिये होता है।

वर्ण—रंग।

वर्णनाम—जिस कर्मके उदयसे शरीर के कृष्ण या गौर आदि वर्ण होते हैं।

वक्रगति—जन्मान्तर को जाते हुए जीवकी घुमावयुक्त गति। इसमें घूमने का स्थान आते ही पूर्व देह-जनित

वेग मन्द हो जाता है और कार्मण योग-द्वारा नवीन प्रयत्न करके अपने गन्तव्य स्थानपर जाना होता है।

वज्र—कील।

वज्रऋषभनाराच–संहननविशेष। इस सस्थानमें दोनों ओर मर्कटबंधसे बधीहुई दो हड्डियोंके ऊपर तीसरी हड्डीका वेष्टन होता है। और तीनोंको भेदनेवाला हड्डी का कीला होता है।

वृक्ष—वनस्पति, पादप।

वामनसंस्थान—जिस शरीरमें हाथ, पैर आदि अवयव हीन हों तथा पेट, छाती आदि अवयव पूर्ण हो, उसे वामनसंस्थान कहते हैं।

विपर्यय—विपरीत, उल्टा।

विहायोगति—जीवकी हाथी या बैलकी चालके समान शुभ अथवा ऊँट या गधेकी चालकी तरह अशुभ चालको विहायोगति कहते हैं। शुभ चाल होनेपर शुभ विहायोगतिं अशुभ होनेपर अशुभ विहायोगति। यहाँ विहायका अर्थ आकाश नहीं है और न गतिका अर्थ नर्क आदि गति ही है

विकल–दो, तीन और चार इन्द्रियों वाले, जीव, अपरिपूर्ण, खण्डित।

विपाक—कर्मफल।

विमुक्त—कर्म-बन्धन-रहित सिद्ध जीव।

विग्रहगति—देखो वक्रगति।

विभंगज्ञान—मिथ्या अवधिज्ञानको विभंगज्ञान कहते हैं। देखो अवधिज्ञान।

वीतराग—रागद्वेषको विजय करने वाले—वीतराग, केवली।

वीर्य—पराक्रम।

वेद—जिस लक्षण द्वारा स्त्री-पुरुष या नपुसक की पहचान हो, उसे वेद कहते हैं।

वेदना—अनुभूति। सुखरूपमें अनुभूति सुख-वेदना और दुखरूपमें अनुभूति दुखवेदना।

वेदनीय—जो कर्म आत्माको सुख-दुख पहुँचाये उसे वेदनीयकर्म कहते हैं।

वेदक—अनुभव करनेवाला।

वैक्रिय—जिस शरीरसे विविध क्रियायें हों उसे वैक्रिय कहते हैं। इस शरीरमे हड्डी, मास, रक्त आदि स्थूल पदार्थ नहीं होते परन्तु सूक्ष्म पुद्गल होते हैं। मरने पर यह कपूरकी तरह उड जाता है।

(श)

शरीर—जिसके द्वारा जीव रूप धारण कर चलना-फिरना, खाना-पीना आदि कार्य करता है तथा जो

शरीरनामकर्मके उदयसे प्राप्त होता है उसे शरीर कहते हैं। अथवा सांसारिक आत्माका निवासस्थान।

श्रुतज्ञान—शास्त्र-श्रवण अथवा चिन्तन, मनन तथा पढ़ने से जो ज्ञान होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं।

शुक्ललेश्या—मिश्रीसे भी अनन्त गुणित मधुर पुद्गल द्रव्योंके संबंधसे आत्माके जो परिणाम होते हैं, उसे शुक्ललेश्या कहते हैं। शान्त मन, जितेन्द्रियता तथा वीतरागता शुक्ल लेश्याके परिणाम हैं।

शैलेशी—शैल-पर्वतके सदृश निष्कंप अवस्था। चौदहवें गुणस्थानमें वर्णित जीव की यह स्थिति होती है

(स)

संहनन—हड्डियोंकी रचना। संहनन नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे शरीरकी हड्डियोंकी संधियां दृढ होती हैं, उसे संहनन नामकर्म कहते हैं।

संस्थान—शरीरके विभिन्न आकारों की रचना।

संघात—शरीरयोग्य पुद्गलोंका पूर्व ग्रहित पुद्गलोंपर व्यवस्थित रूपसे स्थापित होना संघात कहा जाता है।

संवर—आते हुए नये कर्मोंको रोकनेवाला आत्माका परिणाम भाव संवर और कर्म-पुद्गलकी रुकावटको द्रव्यसंवर कहा जाता है।

संज्वलन—जिस कषायका व्यक्तिपर अल्प प्रभाव पड़ता हो, उसे संज्वलन कषाय कहते हैं। यह कषाय सर्व-विरति रूप साधु-धर्ममें बाधा नहीं पहुंचाता परन्तु यथाख्यातचारित्रमें बाधा पहुंचाता है।

संज्ञी—मनयुक्त जीव।

सज्ञीभूत—जो जीव वर्तमान भव से पूर्वजन्ममें संज्ञी जीव हो उन्हें सज्ञीभूत कहते हैं, सज्ञियोको अनुभव होनेवाली वेदनाको भी संज्ञीभूत कहते हैं।

संयत—इन्द्रियोंको वशीभूत रखने वाला संयममें दृढ अनगार।

संक्रमण—जिस प्रयत्नविशेषसे कर्म एकस्वरूपको छोड़कर सजातीय अन्य स्वरूपको प्राप्त हो, उसे संक्रमण कहते हैं, एक कर्म-प्रकृतिका दूसरी कर्म-प्रकृतिमें बदल जाना।

सत्ता—कर्म फल न देकर जबतक अस्तित्वमें रहते हैं, उसे सत्ता कहतेहैं।

समय—कालके उस अत्यन्त सूक्ष्म भागको समय कहते हैं, जिसका कोई विभाजन न हो।

समचतुरस्र—जिस देहके चारों

कोण समानान्तर हों उसे समचतुरस्र सस्थान कहते हैं।

सपर्यवसित—अन्त सहित।

सर्वविरत—साधु-धर्मको प्राप्त करना, सब ओरसे आरंभादिसे विरत होना।

समासतः-सक्षेपमें।

सम्यक्त्व—आत्माके उस परिणाम को सम्यक्त्व कहा जाता है जिसके अभिव्यक्त होनेपर आत्माकी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी हो जाती है। सम, सवेग, निर्वेद, अनुकंपा व आस्था मे दृढता।

सम्यक्दृष्टि—वस्तुका यथार्थज्ञान।

सात—सुख वेदनानुभव।

साधारण—जहाँ एक शरीरमें अनन्त जीव निवास करते हों, उसे साधारण वनस्पतिकाय कहते हैं।

सामायिक—आत्माको समभावमें स्थिर रखनेके लिये सर्व अशुद्ध प्रवृत्तियोंका परित्याग करना सामायिक है।

साम्परायिकी—वह हिंसाजनक प्रवृत्ति-जो उपयोग-रहित, व प्रमादपूर्वक की जाती है।

सुभग-सुन्दर, सुभगनामकर्म।

सूक्ष्मसाम्परायिक चारित्र-जिस अवस्थामें क्रोध, मान, और मायाका क्षय या उपशम होता है। मात्र सूक्ष्म लोभ विद्यमान रहता है, उस अवस्थामें सूक्ष्मसम्पराय नामक चारित्र प्राप्त होता है।

सूक्ष्म—नेत्र या अनुविक्षण यन्त्र द्वारा भी दृष्टिगोचर न होनेवाले सशरीरी जीव।

स्थावर—जो जीव गमनागमन क्रिया नहीं कर सकते उन्हें स्थावर कहते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और वनस्पतिकायिक जीव स्थावर कहे जाते हैं।

स्थिति-आयुष्य।

स्थितिबंध—आयुष्यका बंधन।

(ह)

हुण्डसस्थान—जिस शरीरके समस्त अवयव यथानुरूप न हों, उसे हुण्ड संस्थान कहते हैं।

हेतु—कारण,

(क्ष)

क्षायिक सम्यक्त्व—अनन्तानुबधी दर्शनमोहनीयके क्षयोपशमसे प्रकट होनेवाला आत्म-परिणाम, जिसमें तत्व के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होती है।

क्षयोपशम—सर्वथा विनाश या काषायिक वृत्तियोंके उपशान्त होनेसे आत्मामें उज्ज्वलता प्राप्त होना।

क्षुल्लकभव—२५६ आवलिका एक क्षुल्लकभव, (सबसे अल्पायुष्य)

(त्र)

त्रस—हलन-चलन करनेवाले जीव त्रस कहे जाते हैं।

त्रिक—तीन,

(ज्ञ)

ज्ञान—चेतना शक्तिका व्यापार—जिसके द्वारा किसी वस्तुका ज्ञान हो उसे ज्ञान कहते हैं।

अनुक्रमणिका

(आ)